

अन्निनीसी अरुणसहाय बहील छत पच्छेत्त और निरुम्य सतिव सर्वोपसिद्धिका सुखं हिदी अनुबाह । अम्माय १ सुत्र ८
 पञ्चीय प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशाने ॥ चतुर्णामुपक्रमका ॥ नानाजीमा
 पक्षया सामान्यम् । एकत्रीय प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशाने ॥ चतुर्णां
 क्षात्राणा सामान्योक्तम् ॥ अवधुर्दानीनिपु मिथ्यादृष्ट्या दिक्षिणकथयान्ताना सामान्योक्तमन्तरम् ॥

न अस्ति एकत्रीय १, प्रति १ जघन्येन १, अन्तर्मुहूर्त १, नही है एक जीव के लिये अपन्यकरि अन्तर्मुहूर्त ।

उत्कर्षेण १, देशाने ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥

चतुर्णां १, उपक्रमका १ ।

नाना-जीव अपेक्षा १॥ सामान्यवत् ॥

एकत्रीय १, प्रति १ जघन्येन १, अन्तर्मुहूर्त १ ।

उत्कर्षेण १, देशाने ॥ द्वे ॥ सागरोपमसहस्रे ॥

चतुर्णां १, उपक्रमका १ ।

सामान्य-उक्तम् १॥

अप्यधुर्दानीनिपु, मिथ्यादृष्टि-आदि-धीनव्याप-
 अन्तर्ना १॥ सामान्य उक्तम् १॥ अन्तरम् ॥

अपेक्षा अपन्य एकसमय है । उत्कृष्ट छेपास है एकजीव प्रति अन्तरनहीं है (पृ० २२५)

अप्यधुर्दक्षेन बानों में मिथ्यादृष्टि से (= प्रादि) धीनकथाय गुणस्थानबाने

अप्यधुर्दक्षेन बानों में मिथ्यादृष्टि से (= प्रादि) धीनकथाय गुणस्थानबाने

मिथ्यादृष्टी अप्यधुर्दक्षेनबानोंका अनेक धीनकी अपेक्षा से अन्तर नहीं है

(१) अप्यधुर्दक्षेन पाठे जीव और अप्यधुर्दक्षेन बाने जीव भी प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से धीनकथाय से द्वे बारद्व गुणस्थानों में बोले हैं ।

एतानिपाती वगुरुपस्यैव नक्षत्रकूल पञ्चैव और विभक्त्यर्थं सहित सर्वाधिकारिका इन्द्रशः द्विती अनुवाद । अभ्याय एक छान ८
अवधिदर्शनिनाश्रित्तिनिनत ।

एक जीवके लिये जबन्य अर्जुन है उत्कृष्ट कुछवाटि एकसौ पचीस सागर समाप्त है । अथशुद्धनवासे
सासादन सम्मरदिका अन्तर नानाजीवकी अपेक्षासे जबन्य एक समय है उत्कृष्ट फल्यके अस्तस्यतनो भाग है । एक
जीवका जबन्य पच्योष अरीक्यतनो भाग है । उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्ध गुह्यपरिवर्तन है । अथशुद्धनवासे विभगुण-
स्यानर्तिबोका नानाजीवकी अपेक्षासे जबन्य एक समय है । उत्कृष्ट पच्यके अस्तस्यतनो भाग है । एक जीवका
जबन्य अर्जुन है उत्कृष्ट कुछ हीन अर्द्धगुह्य परिवर्तन है ॥ अथशुद्धनवासे अविरत सम्मरदितिस सेकर अप्रमच
गुह्यस्यानर्तकनिका नानाजीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके लिये जबन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट कुछ हीन
अर्द्धगुह्य परिवर्तन है ॥ अथशुद्धनवासे चार उपयम येकी (आठौ-नवौ-दशौ-न्याहवा-गुणस्थान) बालोका
अ-उ नानाजीवकी अपेक्षासे जबन्य एक समय है उत्कृष्ट पच्यत्व रूप है । एक जीवके लिये जबन्य अन्तर्मुहूर्त है ।
उत्कृष्ट कुछ वाटि अर्द्धगुह्य परिवर्तन है ॥ चार खरक येकी (आठौ-न्याहवा-गुणस्थान) बालोका
दशमौ लीनरुगाय वाहवा गुह्यस्थान) वनोका नानाजीवकी अपेक्षासे जबन्य एक समय है । उत्कृष्ट छह मास है
एकजीवके लिये अन्तर नहीं है ।

अवि-दर्शननिनः । =अवि दर्शनबालोका (विहकाल अर्थात् अन्तर)

अवि-शानिस्तः =अवि-शानिपौके सदृश दे अर्थात् अवधिदर्शन वाले (=अविधानवाले) अर्थात् सम्मरदृष्टीका नानाजीवकी अपेक्षासे
अन्तर नहीं है । एकजीवके प्रति जबन्यकारि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकारि कुछ वाटि एक करोड पूर्व है ॥ अवाध दर्शनवाले
संयमा संयमीका अनेक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एकजीवके लिये जबन्यकारि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकारि

(१) मातमकान, सुतप्रधान, सुतप्रधान मिश्रगण-अप्यम, मानावल दूसर गुणस्थ नोन हवा है । विभगुणस्थानमं तोन मकान और भीनकान
नोपकीर सम मिले हुए है (एक मक, ८९ का द्विपयी देखो) ॥ अवधिवा । और अवधिदर्शन वांछित बारदर्वा गुणस्थान तः है और मक
पर्ययकान बड़ेसे बारदर्वा गुणस्थान तक है ॥

पटानिवासी जगत्प्रसाय वल्लील्लुत्त पदच्छेद और निमग्नस्यै सहित सर्वाभिस्त्रिका शुष्यत् हिंदी अनुपाद । अध्याय १ सूत्र ८
 केवलदर्शनिन केवलज्ञानियत् ॥ (१०) लेख्यानुवादेन-कृष्णनीलकापोतलेख्येषु मिथ्यादृष्टयसयतसम्य
 गृष्टयोर्नानाजीवाणेषु नास्त्यन्तरम् ।

बृष्ट अधिक क्रमासि सागर प्रमाण है ॥ (अधि दर्शनवाले) प्रमत्त और अग्रमत्त गुणस्थानवर्तियोंका नाना
 जीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । एक जीवके लिये ज्वन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक वेतीस
 सागर प्रमाण है । (अधिदर्शनवाले वा अधिज्ञानवाले) चार उपक्रम धेणीवालोकका नानाजीव अपेक्षासे
 गुणस्थानवर्त है (जो पृष्ठ २२४ के अनुकूल) ज्वन्य ए समय है उत्कृष्ट तीन बरससे ऊपर और नौ वर्षके
 नीचे (=दृष्टस्व वर्ष) है एक जीवकी अपेक्षासे ज्वन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ अधिक छयासठि सागर
 प्रमाण है (अधिदर्शनवालौमि-अधिज्ञानवालौमि) चार क्षण धेणीवालोकका अनेक जीवकी अपेक्षासे ज्वन्यकरि
 एक समय है उत्कृष्टकरि एकस्व वर्ष है । एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है । (वेखो पृष्ठ २४७-२४८)
 केवलदर्शननिनः । केवलदर्शनवालौका (वियोगकाल) केवलज्ञानी (सयोग केवली और अयोग केवली) सद्य है
 अर्थात् सयोगकेवलीका नानाजीव अपेक्षासे और एकजीव अपेक्षासे अन्तर नहीं है । अयोग-
 केवलियोंका नानाजीव अपेक्षासे ज्वन्यकरि एक समय है उत्कृष्टकरि छैमास है एक जीवकी
 अपेक्षासे कुछ भी अन्तर नहीं है ॥ (वेखो पृष्ठ २२५)

[१०] सेव्या-अनुवादेनः, कृष्ण-नील-

कापोत-सेव्येषु ३ मिथ्यादृष्टि-

भस्यतसम्यग्दृष्टयोः । नाना-जीव-

अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥

=सेव्याके कयनानुसारकरि कृष्ण-नील-

=कापोत सेव्याभक्तों में मिथ्यादर्शन प्रथम गुणस्थानवाले और

=भस्यतसम्यग्दृष्टयोः । नाना-जीव

=अपेक्षासे अन्तर (अर्थात् विरहकाल-वियोगकाल-विहोहकाल) नहीं है

(१) कृष्ण नील कापोत सेव्यायें मिथ्याभक्ते असंयत तक, पीत-पद्म सेव्यायें मिथ्याभक्ते अग्रमत्त गुणस्थान तक, शुद्ध मिथ्याभक्ते स्यामी तक है ।

अष्टादश वारः सप्तम्यः साहस्रं सवाचासहस्रं शब्दः । इति ब्रह्मसंहिता ॥ १०० ॥
 एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तमगरोपमाणि देशानि ॥ सासादनं
 सम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पत्योपमासहस्यमगरो
 अन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तमगरोपमाणि देशानि ॥ तेन पञ्चोत्तराष्ट्रमिथ्यादृष्ट्यं संयत
 सम्यग्दृष्ट्यानां जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे
 अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥

एकजीवं ॥ प्रतिक्रियन्तेन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ।

उत्कर्षेण ॥ त्रयस्त्रिंशत् ॥

सप्तदश ॥ (सप्तदश ॥ १-सप्तदश ॥)

वर्ग ॥ (सप्त ॥ १-सप्त ॥) सागरोपमाणि ॥ देशानि

सासादनं सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयोः ॥

नानाजीव-अपेक्षा ॥ सामान्य-वत्

एकजीवं ॥ प्रतिक्रियन्तेन ॥ पत्योपमा-असहस्य-

मगरोपमाणि ॥ उत्कर्षेण ॥

सप्तदश

त्रय-सागरोपमाणि ॥ देशानि ॥

सप्तदशोत्तराष्ट्रयोः ॥ मिथ्यादृष्टि-सप्तदशसम्यग्दृष्टयोः ॥

नानाजीव-अपेक्षया ॥ नञ्अस्ति ॥ अन्तरम् ॥

एकजीवं ॥ प्रतिक्रियन्तेन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥

उत्कर्षेण ॥ द्वे ॥ सागरोपमे ॥ च सातिरेकाणि ॥

अष्टादश ॥ सागरोपमाणि ॥

= एकजीविके लिये जघन्यकरि (अन्तर) अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कर्षकरि (सातवां नरककी अपेक्षासे कुछ न्यून) केतीस (सागर प्रमाण)

= और पाँचवां नरककी अपेक्षासे कुछ हीन) सबद (सागर प्रमाण)

= (और तीसरे नरककी विषयासे) कुछघाटि सात सागर के बराबर है

= (कुछ नील कापोत सेस्वावर्तियेमें) सासादनसम्यग्दृष्टी, मिथ्यागुत्थान वालोंका

= (विरहकाल) अनेक जीव प्रति संश्लेष (प्रसंगमें पूर्व उक्त गुणस्थान) तुल्य है

वर्षांत जघन्य अन्तराष्ट्र एक समय है उत्कृष्ट पत्यका असंख्यातवां भाग है

= एकजीविके लिये जघन्यकरि पत्यके असंख्यातवां

= भाग और अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (सातवां नरकमें कुछ हीन)

= केतीस (सागर प्रमाण) और (पाँचवां नरक प्रति कुछ न्यून) सबद (सागर)

= (तीसरे नरककी अपेक्षा से) कुछ घाटि सात सागर प्रमाण (विरहकाल) है

= नील-यक्ष-सेस्वावालों में मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्बन्धितियों से

= अनेक जीव की अपेक्षा से अन्तर काल नहीं है

= एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कृष्टकरि दो सागर प्रमाण है । और (=च) कुछ अधिक

= अष्टादश सागर प्रमाण है ॥

(१) दिव्यनि पृष्ठ १२१ पर देखा (२) दिव्यनि पृष्ठ १७५ पर देखा (३) इस सबे को समाप्त मानकर आठवें अध्याय बाक्य मफमा विमर्शि
 ब्रह्मचर ब्रह्मचर विमर्शि में है

पगनिवासी जगन्पसाहाय वकीलकुल पदच्येद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वावसिद्धिका श्रद्धाः हिंदी बलुवाह । अन्त्याप १ वृत्त ८

सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ॥ एकजीवं प्रति जघन्येन पत्योपमा मम्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षण द्वे सागरोपमे अष्टादश च मागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ सयतांसयत प्रमत्ताप्रमत्तसयताना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ शुक्लत्रेक्षेषु मिथ्यादृष्टयंसयत सम्यग्दृष्टोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षणेकात्रिंशत्सागरोपमाणि देशो नानि ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयो

सासादन

सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयो ॥

नाना जीव अपेक्षया ॥ सामान्य-वत् ॥

= (पीत-पक्षसेय्यार्थियों में) सासादन

= साम्यवर्तीका और मिथ्य (तीसरे) गुणस्थानवर्तियोंका (अन्तरकाल)

= अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व कक्षित गुणस्थान) बत है

अर्थात् अपन्य एक समय है उत्कृष्ट पत्यका अंतस्थातर्वा भाग है (पृष्ठ २२३)

= एक जीवके लिये जघन्यकरि पत्योपमेके अंतस्थातर्वा

= भाग और (- च) अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि (कुछ अधिक) दो सागर

= प्रमाण और (कुछ अधिक) अष्टादश सागर

= प्रमाण है । (पीत-पक्षसेय्यार्थों में) वेदसंबन्धी, प्रमत्तसंयमी और

= अप्रमत्त संयताना । नाना-जीव-अपेक्षया ॥

च एक-जीव-अपेक्षया ॥ नञ् भस्ति । अन्तरम् ॥

शुक्लत्रेक्षेषु, मिथ्यादृष्टि-अंतर्मुहूर्तसम्यग्दृष्टयो ।

नाना-जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥ एक-

जीव, प्रति जघन्येन, अन्तर्मुहूर्त, उत्कर्षण;

देशो नानि; ॥ एकत्रिंशद्वत्; ॥ सागर-उपमाणि, ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टयो' ॥

= (शुक्लसेय्यार्थों के धारक) साम्यग्रन्थ सम्यक्दृष्टि और विभक्त्यर्थानुवालोका

एगानिवासी बगरूपसाय क्रीलकृत पञ्चेश्वर और विमलस्यर्य सारित सर्वाथसिद्धिका श्रद्धाः सिद्धिबलुभाद अस्याय १ ध्वं ४

अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१२) सम्यक्त्वानुविदिनसाधिकै-
सम्यग्दाष्टिस्त्वमयतसम्यग्दृष्टानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण
पूर्वकोटी देवोना ॥ संयतासयत्प्रमत्ताप्रमत्तसंयताना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

मव्य जीवों में अतंसयत्सम्यग्दृष्टी से अप्रमत्तसंयमी तकनिका नानाजीव अपेक्षासे
अन्तर नहीं है । एक जीव के लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ
घाटि आधा पुद्गल परिवर्तन है ॥

मव्य जीवों में चार उपप्रमत्तजीवालोंका नानाजीव अपेक्षासे जघन्य एक समर्थ
है । उत्कृष्ट एवम्ब कर्ष है । एक जीव के लिये जघन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट
कुछ न्यून अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन है ॥ मव्य जीवोंमें चार प्रकार केजीवालोंका
और अयोग्यवृत्तियों का नाना जीव अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छे
मास है । एक जीव की अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ मव्य जीवोंमें 'संयोग के-
लियों का नाना जीव और एक जीव अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥
(पृष्ठ १२२-२२५)

अभव्यानाम् ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥ च एक जीव-
अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् [१२] सम्यक्त्व-अनुवायेन = अपेक्षा से अन्तर (विरहाकाल) नहीं है ॥ (१२) सम्यक्त्वकी अपेक्षा से
साधितसम्यग्दृष्टिः, अमयतसम्यग्दृष्टे ॥ नाना
जीव अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥ एकजीव प्रति = जीवकी अपेक्षासे विरहाकाल नहीं है । एक जीवके लिये
जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देवोना ॥
पुनश्चेती ॥ मयवांसयत् प्रमत्त-
अप्रमत्त संयतानाम् ॥ नाना जीव अपेक्षया ॥
न अस्ति अन्तरम् ॥

=मव्य जीवों का अनेक जीवकी विक्षा से और एक जीवकी
=साधित सम्यग्दृष्टियों में असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक
=जीवकी अपेक्षासे विरहाकाल नहीं है । एक जीवके लिये
=जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कृष्टकरि कुछ घाटि
=एक करोड वर्ष है । (साधित सम्यक्दर्शनविर्य) संयतासंयमी प्रमत्तसंयमी
=अप्रमत्तसंयमियोंका नानाजीवकी अपेक्षा से
=विरहाकाल नहीं है ॥

एतानिवासी जगत्सहाय वक्रोत्कृष्टवृक्षश्च और विमरुणार्थं सखि स्वर्गसिद्धिंका उन्मथः हिंदी मनुवाद ॥ अध्याय १ एवं ८

एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सारांगेषामाणि सातिरेकाणि ॥ चतुर्णांमुपशमकाना
नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सारांगेषामाणि सातिरे
काणि ॥ दोषाणां सामान्यवत् ।

एक-जीविम् । प्रतिजघन्येन । अन्तर्मुहूर्तः ।

उत्कर्षेण । स-अतिरेकाणि । त्रयस्त्रिंशत्सारांगेषामाणि ।

सामान्यवत् ।

उपशमकानाम् । नाना-जीव अपेक्षया ।

सामान्यवत् ।

एक-जीविम् । प्रतिजघन्येन । अन्तर्मुहूर्तः ।

उत्कर्षेण । स-अतिरेकाणि । त्रयस्त्रिंशत्सारांगेषामाणि ।

सामान्यवत् ।

सामान्यवत् ।

= एक जीवकी अपेक्षासे (= प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेजीस सागर

= प्रमाण (= उपम) है ॥ (सांख्यिक सम्पन्दर्शन में) चार

(प्रपूर्वकस्य-अनिवृत्तिकरण-युक्तसामान्याय-उपस्थांतकमाय गुणस्थान)

= उपशमभेगीवालोक अनेक जोककी अपेक्षासे

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान)प्रसृत (अन्तर) है अर्थात् जघन्य

एक समयपर उत्कृष्ट तीन वर्षसे उपर नौ से नीचे(वर्ष) है (पृष्ठ २२४)

= एक जीवके लिये जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कृष्टकरि कुछ अधिक तेजीस सागर

= प्रमाण (= उपम) है ॥ अवक्षेप अथवा बचेहुये

(चार लक्षभेगी वाले संयोग केवली और अयोग केवली) निका

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) समान (अन्तर) है अर्थात्

चार लक्षभेगी वालोंका और अयोगकेवालियों कानाना जीव अपेक्षासे

जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छे मासों । एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥

संयोग केवालियोंका नानाजीव और एक जीव प्रति अन्तर नहीं है ॥

(२) उपशमसंयोजक चार से थारह गुणस्थान तक है । केवक मध्यमवत् चार से सात गुणस्थान तक है और क्षणिक चार से जोबह तक है-॥

पठानिनासी अगुरुसहाय फकीलकुल धर्मेन्द्र और विमर्श्यर्ष सहित तयोर्गतिद्विका क्षुब्धः। विदीधनुषाद अग्राय १ घटी ४

अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१२) समयकथानुविदिनक्षायिकं-
समग्रदृष्टिस्वसंयतसमग्रदृष्टनानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण
पूर्वकोटी देशोना ॥ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

मन्य जीवों में शरीरवसामग्रदृष्टी से अप्रमत्तसंयमी तकनिका नानाजीग अपेक्षासे
अंतर नहीं है । एक जीव के लिये अपन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है उत्कर्षकरि कुछ
पादि आभा पुटल परिस्रोत है ॥

मन्य जीवों में चार उपक्रमेणीयालोका नानाजीग अपेक्षासे अगन्य एक समक
है । उत्कृष्ट पुणकत्व पर्व है । एक जीव के लिये अगन्य अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट
कुछ न्यून अर्ध पुटल परिस्रोत है ॥ मध्य जीवोंमें चार क्षणक भेणीयालोका
और अयोग्येयलियों का नागा जीग अपेक्षा से अगन्य एक समय है उत्कृष्ट छे
गात है । एक जीग ही अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥ मन्य जीवोंमें समय के-
लियों का नागा जीग और एक जीग अपेक्षा से अन्तर नहीं है ॥
(शु २२२—२२५)

अभयानाम् । नागा-जीग-अपेक्षया ॥ ५ एक-जीग = चमन्य जीवों का अनेक जीगकी विवसा से और एक जीगकी
अपेक्षया ॥ न शक्ति चतुस्रम् (१२) समयसरा-अनुसारेण = अपेक्षा से अंतर (निराहाल) नहीं है ॥ (१२) समयवर्धनकी अपेक्षा से
भावित्वाभ्याशक्तिः, अतोयतात्मग्रहे ॥ नागा = सायिक समयवृष्टियों में शरीरतत्त्वग्रहणार्थीयासेका अनेक
जीग-अपेक्षया ॥ ७ ७ शक्ति अन्तरम् ॥ ॥ एकजीव प्रति = जीगकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है । एक जीगके लिये
अग्राये ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ गेखोना ॥ ॥
पूर्व-कोटी ॥ संयतासंयत प्रमत्त
अप्रमत्त संयतानाम् ॥ नागा-जीग अपेक्षया ॥
नक्षत्राणि ७ अन्तरम् ॥ ॥

= समयसंयतासंयतों का नागाजीगकी अपेक्षा से
= विरहकाल नहीं है ॥

पदान्विता उग्ररूपसहाय वकील ह्य षष्ठ्येद और विमलपर्य संहित सर्वाभिहितिका छन्दसः सिद्धी अनुवाद । अप्याय १ सूत्र ८
उत्कृष्टं चान्तमुद्धृतः ॥ सैयतास्यतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिदिनानि ।
एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तमुद्धृतं ॥ प्रज्ञाप्रमत्तस्यतयोनाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण
पञ्चदश रात्रिदिनानि । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तमुद्धृतं ॥ त्रयाणामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया
जघन्येनैकः समयः । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तमुद्धृतं ॥ उपशान्तकषायस्य
नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् ।

उत्कृष्टम् ॥ अन्तमुद्धृतं ॥ सैयतास्यतस्य ॥
नाना जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥
उत्कर्षेण ॥ चतुर्दश ॥ रात्रिदिनानि ॥ एकजीवम्
प्रति ॥ जघन्यम् ॥ पञ्चदश ॥ अन्तमुद्धृतं ॥
प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतयोः ॥
नाना जीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥
उत्कर्षेण ॥ पञ्चदश ॥ रात्रि दिनानि ॥ एकजीवम्
प्रति ॥ जघन्यम् ॥ पञ्चदश ॥ अन्तमुद्धृतं ॥
त्रयाणाम् ॥
उपशमकानाम् ॥ नाना जीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥
एकः ॥ समयः ॥ उत्कर्षेण ॥ वर्षपृथक्त्वम् ॥
एकजीवम् ॥ प्रति ॥ जघन्यम् ॥ पञ्चदश ॥ अन्तमुद्धृतं ॥
अन्तमुद्धृतः ॥ उपशान्तकषायस्य ॥
नाना-जीव-अपेक्षया ॥ सामान्य-वत् ॥

= उत्कृष्ट अन्तमुद्धृतं (विरा काळ) है । (उपशम सम्यग्दृष्टिर्गोमिं) वैश्व संपर्मीका
= अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय (अन्तरकाल) है
= उत्कृष्टकरि चौदह रात्रि दिवस है । एक जीवकी
= अपेक्षासे जघन्य और (= प) उत्कृष्ट अन्तमुद्धृतं है
= (उपशम सम्यग्दृष्टिर्गोमिं) प्रमत्त और अप्रमत्तसंयमिर्गोका (अन्तर)
= अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
= उत्कृष्टकरि पन्ध्रह रात्रि दिवस है । एक जीवकी
= अपेक्षासे जघन्य और उत्कृष्ट विराकाळ अन्तमुद्धृतं है ।
= (उपशम सम्यग्दृष्टिर्गोमिं) गोमि (अपूर्वकरण-अनिद्वयिकरण-अस्मत्सापराय)
= उपशमभेगिर्गोका नानामीषकी अपेक्षासे जघन्यकरि
= एक समय है । उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (गोमि से ऊपर नौ से नीचे) वर्ष है
= एक जीवकी अपेक्षा से (= प्रति) जघन्य और (= प) उत्कृष्ट
= अन्तमुद्धृतं है ॥ (उपशम सम्यग्दृष्टिर्गोमिं) उपशान्तकषाय बालेका
= (विराकाळ) अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (मि पूर्व उक्त गुणस्त्वान्)सम है
अर्थात्जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व बाल है (श्रु २२४)

पटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृष्ण षट्चक्षुः और विभक्त्यर्थ सहित स्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८

क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वस्यतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ॥ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त ।
उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ॥ सैतस्यैतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त ।
उत्कर्षेण षट्पष्टिसागरोपमाणि देशोनानि ॥ प्रमत्ताप्रमत्तमयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति
जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वस्यतसम्यग्दृष्टे
र्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण सप्त रात्रिदिनानि ॥ एकजीवं प्रति जघन्यम्

- = षेदक सम्यग्दर्शनशालों में अविरत सम्यग्दृष्टी का
- = अनेक जीवकी अपेक्षासे विरहकाल नहीं है
- = एक जीवके लिये (=प्रति) जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त (विरहकाल) है
- = उत्कृष्टकरि कुछहीन एक करोड़ पूर्व है ॥
- = षेदकसम्यग्दृष्टियों में देखसंपत्ती का अनेक जीव की अपेक्षा से
- = विरहकाल नहीं है । एकजीव के लिये (=प्रति) जघन्यकरि
- = अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछहीन छयासठि
- = सागर प्रमाण है ॥ (षेदक सम्यग्दर्शनशालों में) प्रमत्त और
- = अप्रमत्त संशयियों का अनेक नीचकी अपेक्षा से
- = विरहकाल नहीं है । एक जीवके लिये जघन्यकरि
- = अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्टकरि कुछ अधिक
- = धेवीस सागर के धारापर (अन्तर काल) है । उपशमसम्यग्दृष्टियों में
- = अविरत सम्यग्दृष्टी का (विरहकाल) अनेक जीवकी अपेक्षा से
- = जघन्यकरि एक समय है । उत्कृष्टकरि सात
- = रात्रि दिवस है । एक जीवके लिये जघन्य और (=च)

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ॥ अर्तसम्यग्दृष्टे ॥
नाना जीव अपेक्षा ॥ न अस्ति अन्तरम् ॥
एकजीवम् ॥ प्रतिक जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥
उत्कर्षेण ॥ पूर्वकोटी ॥ देशोना ॥
सप्तसार्धतस्य ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥
न अस्ति अन्तरम् ॥ एकजीवम् ॥ प्रति जघन्येन ॥
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ देशोनानि ॥ षट्पष्टि
सागरोपमाणि ॥ प्रमत्त
अप्रमत्तस्यो ॥ नाम्ना-जीव अपेक्षया ॥
न अस्ति अन्तरम् ॥ एकजीवम् प्रति जघन्येन ॥
अन्तर्मुहूर्तः ॥ उत्कर्षेण ॥ स अतिरेकानि ॥
षट्पष्टि सागरोपमाणि ॥ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु ॥
अर्तसम्यग्दृष्टे ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥
अपन्येन ॥ एक ॥ समय ॥ उत्कर्षेण ॥ सप्त ॥
रात्रिदिनानि ॥ एक-जीवम् प्रति जघन्यम् ॥

एगनिवाती अगस्तसहाय कर्कोक्तुत स्यच्छेद और विमर्श्यर्ष सरित सर्वाधिसिद्धि का सम्पदा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८

अंसयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तानां नानाजीवापक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः ।
उत्कर्षेण मागरोपभजतपृथक्त्वम् ॥ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्ये
नान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपभजतपृथक्त्वम् । चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । असंज्ञिना नानाजीवापक्षये
कजीवापक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ तदुभय-

अंसयतसम्यग्दृष्टि आदि अप्रमत्त-अन्तानाम् ॥

नानाजीव अपेक्षया ॥ न० अस्ति १॥ अन्तरम् ॥

एक जीवम् ॥ प्रति० जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥

उत्कर्षेण ॥ सागरोपभजतपृथक्त्वम् ॥

चतुर्णाम् ॥

उपशमकानाम् ॥ नानाजीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥

एत जीवम् ॥ प्रति० जघन्येन ॥ अन्तर्मुहूर्तः ॥

उत्कर्षेण ॥ सागरोपभजत पृथक्त्वम् ॥

चतुर्णाम् ॥

क्षपकाणाम् ॥ सामान्यवत् ॥

असंज्ञिनाम् ॥ नाना-जीव अपेक्षया ॥ च एकजीव-

अपेक्षया ॥ न० अस्ति अन्तरम् ॥ तदुभय-

= (सैनी में) असंयमी सम्पदार्जन वालेसे अप्रमत्त गुणस्थानस्वीं सकनिका

= अनेक जीवकी विविधासे विरहकाल (= अन्तर) नहीं है

= एक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कृष्टकरि तीनसौ सागरसे ऊपर और नौसौ सागर के नीचे प्रमाण है

= (सैनियों में) चार (अर्धैकरण अनिवृष्टिकरण-सूक्ष्मलोम-उपस्थानरूपाय)

= उपशम भणीवालोक अनेक जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (में गुणस्थान) वत है

अर्थात् जघन्य एक समय है उत्कृष्ट पृथक्त्व बर्षे अन्तर है (२२४)

= एक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि अन्तर्मुहूर्त है

= उत्कृष्टकरि पृथक्त्व (= तीन से ऊपर नौसे नीचे) सौ सागर प्रमाण है

= (सैनियों में) चार (अर्धैकरण-अनिवृष्टिकरण-सूक्ष्मलोम-जीवकणाय)

= सप्तक भणीवालोक का अन्तर संक्षेप (विषयमें पूर्व उक्त गुणस्थान) सद्य है

अर्थात् नानाजीव की अपेक्षा से जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छे मास है

एक जीव प्रति विरह काल नहीं है (पृष्ठ २२५ देखो)

= असंक्षिप्तोका (जो मिथ्याह्यगुणस्थानमें हैं) नाना जीवकी अपेक्षा से और एक जीवकी

= विविधा से अन्तर नहीं है ॥ उन (सैनीमनसहित अवेनी मनसहित) दोनों

(१) सैनी अथवा मनसहित जीव मध्यमत्व पचम गुणस्थान से क्षीण हयाय बाहर्वा गुणस्थानमें रहते हैं असंक्षी केगन मिथ्याह्य गुणस्थान में हैं ॥

पट्टानियासी जगद्गुरुसहान वकीलनृत पदच्छेद और विमलस्य साहस सहायादाका सम्बन्ध। अभ्यास ? पृष्ठ ८

एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानजीवापेक्षया जघन्येनैक संभयः । उत्कर्षेण पल्योपमासख्येयभाग । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ मिथ्यादृष्टेर्नानजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ (१३) सद्ब्रानुवादेन- सत्त्विषु मिथ्यादृष्ट सामान्यवत् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्टयोर्नानजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पल्योपमासख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तेश्च । उत्कर्षेण सागरोपमा शतपृथक्त्वम् ॥

एक जीवम् । प्रविष्टं न० अस्मिन् भूतम् ।

स्रासादनसम्यगष्टि-सम्पदमिष्याष्टयो ॥

नाना-भूवि-अपेक्षया ॥ भवन्येन ॥ एकः ॥ समः ॥

तत्कर्णेण ॥ पत्न्योपम-असंस्मये-भागाः । एकत्रीणि ॥

प्रति न त्रिंशत् अन्तरम् ।।।। मिथ्यावृष्टेः । नानाश्रीवि-

अपेक्षया ॥॥ च एकजीव-अपेक्षया ॥ न अस्ति अन्यरम्

[१३] सञ्ज्ञा-प्रनुवावेन ।। सखिषु ॥ मिथ्यावृष्टेः ॥

सामान्यवत् •

=एक जीवके लिये वियोगकाल (=अन्तर) नहीं है ।

-साम्राट् नसम्बर्द्धनवाले और मिश्रगुणस्यानवासेका (अन्तर)

अनेक जीवकी व्यपेक्षासे ज्वन्यकरि एक समय हे ॥

= दृष्टकारि फलार्थे असंस्थात्वां अंशः । एक जीवक

॥ अनेवासे अन्तर नहीं है ॥ मिथ्यादर्शनवाले का अनेक बीषकी

=अपेक्षासे और (-च) एक जीवकी अपेक्षासे अन्तर (काल) नहीं है ।

= (१३) सैनी (अन सदित श्रीव) निनी अपेलासे मैनिपोसे मिथ्याप्रष्टिवा

==संश्लेष (प्रकल्पन) पड़िछे छू। छा गणस्यान) साधन (अन्तर) है अस्यां।

सैनिकों में मिथ्याबपुईका नाना जीवकी उपेक्षासे अन्तर नहीं है ।

जीवने छिगे बजुन्य कलपार्थे । तत्कय कळ नाम पाङ्कजो कल्पिनि साकार

प्रमाण है (पा २२३ देखो)

== (सैनी जीबिसिं) सामाहान् ग्रामाकर्तृ-पार्षदेषु चो विष्णवः)

(२) मानव , तादायुग सम्प्रबृद्धनका वार । भद्रगुणस्वाननालिक
=अन्तर) अनेक क्षीर पति कसेम (प्राप्तिमें र्म्ह =

अथानि सन्त्य एक याम्य है। उक्त याम्य सन्त्य है (२३)

—नाम अवगन्त दश वनम् । उत्कृष्ट भक्ष्यं
—एक मीथके मित्रो नानावर्णि

— ४८ —

उत्कर्षेणागुलासस्येयमाग असंख्येयांसंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य । अस्यतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमतान्ताना
नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त ॥

उत्कर्षेण !। अंगुल-असंख्येयमार्गः ।।

-उत्कृष्टकरी (स्वीडिश) अंगुल के अंतस्थातवा भाग है अर्थात् अंगुल के अंतस्थातवा भाग के बराबर आकार में वा आकार के भित्ति प्रवेश गबना में है उन्हे समयों के बराबर विरह काल वा अंतरकाल है

वसुस्मैवाप्तुंस्म्येवाः ।। उत्सर्पिणि-अत्सर्पिण्याः ॥

— (वे पूर्वोक्त समय) अस्मत्प्राप्तस्मात् उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल है अर्थात् हस्तशुल के अस्मत्प्राप्त भाग में बितने अक्षांश के प्रवेश संख्या में है उतनी ही (गणना अन्तर काल) के समयों की है और ये समय गिन्ती में उन समयों के बराबर हैं (बतने कि समय अस्मत्प्राप्तस्मात् उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालों (अस्मत्प्राप्तस्मात् कृत कालों) में है

असंख्य-सम्यग्-दृष्टि-आदि-अपमप-अन्तानां ॥

—जर्मनपतसम्यगृष्टी से अप्रमत्तसंपत्ती (सातवां गुणस्थान वर्ति) नि तज

नानाजीविन्यपेक्षया !॥ न-अस्ति अन्यम् ॥॥

-अनेक प्राणियों की अपेक्षा से मन्द नहीं है

एकजीवि । पूर्ति० अथन्येन । अन्वमुद्धतः ।

-एक जीव की अपेक्षा से बचन्य अन्तर्गत है ॥

(१) "मसलेबा" छूट ८५ (विधिव धरमपत्र के छूट ४८) में होर जाया है ॥ पर बापे को जमुदि है । छूट ८७ (पूठ ४९) में मसलेबाईकेबा जाबा है पर छूट है स्त्रोके अव रमदी को वषा १५१ और दलसिचित बचनिका में सो सेतो ल्बानो में मसलेबासक्याल बाक्य है और मसलेबा यही है कि सुमंगल के मसलेबासो मागे के बाकाद प्ररोकोर गणना मसलेबासक्याल कसपिणी मसलेबासो (न कि मसलेबासो कसपिणी मसलेबासो) कालो के समवो के बरोकर है ॥

[illegible]

एतानिवासी अग्ररूपसदृश वक्षी कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सति सर्वावसिद्धिका सम्यक् अत्र १ सप्त ८
 व्यपदेशरहिताना सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकेषु भिन्नाष्टे सामान्यवत् । सामादन-
 सम्यग्दृष्टिसम्यङ्भिन्नाष्टाष्टयोर्नानाजीवोपेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येन पत्योपमासंख्येयभागो-

न्तर्मुहूर्तश्च ।

व्यपेक्ष-रहितानाम् ।

सामान्य-वत् ॥

=नाभौ से शक्ति (सयोगकेवली और अयोगकेवली) त्रिका (विदकाल)
 =संक्षेप (प्रकरणमें परिसे ब्रह्मादुया गुणस्वान) समान है अर्थात् सयोगकेवलिचो
 का नाना जीवकी अपेक्षासे और एक जीव की अपेक्षासे अन्तर नहीं है अयोग
 केवलिचोका नाना जीवकी अपेक्षासे अवन्त्य एक समय है उत्कृष्ट छे मास
 है एकजीव प्रति अन्तर नहीं है (पृष्ठ २२५)

(१४) आहार-अनुवादेन । आहारकेषु । भिन्नाष्टे ।
 सामान्यवत् ॥

=आहारके कृन्नानुसारकरि आहारकोमें भिन्नाष्टकीका (अन्तर)

=संक्षेप (प्रकरणमें परिसे ब्रह्मा द्रुया गुणस्वान) समान है अर्थात् आहारक
 भिन्नाष्टिका नाना जीवकी अपेक्षासे अन्तर नहीं है एक जीवके प्रति अवन्त्य
 अन्तर्मुहूर्त है । उत्कृष्ट एकसौ वर्षस सागर से कुछ न्यून है

सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यङ्भिन्नाष्टाष्टयोः ।

नाना-जीव अपेक्षया ॥ सामान्यवत् ॥

=(आहारको में) सासादनसम्यग्दृष्टि और भिन्नगुणस्वानवालोका

=नाना जीवकी अपेक्षासे संक्षेप (प्रसंगमें पूर्व-उक्त गुणस्वान) वत् (अन्तर) है
 अर्थात् अवन्त्य एक समय है उत्कृष्ट पत्यका अंतस्मात्तर्वाभागै (पृष्ठ २२३)
 =एक जीव के लिये अवन्त्यकरि पत्योपमेक

एकजीवम् । प्रति जघन्येन । पत्योपम-
 अंतस्तेयमागः । य अन्तर्मुहूर्तः ।

=अंतस्मात्तर्वाभाग और (- च) अन्तरमुहूर्त है ॥

(१) आहारक जीव भिन्नाष्ट से सयोगकेवली गुणस्वान सह १३ स्थानों में होती है अन्तःकारक जीव, भिन्नाष्ट सामाकन अंतस्तेय सग्यवाच,
 सयोगकेवली और अन्तःकारककी एक पाँच स्थानों में (जीव स्वसिद्ध) होते हैं अर्थात् भिन्नगुणस्वानको प्राप्त होनेवाले बाते गति संबंधी जीव, अन्तर और
 मोक्ष पूर्व समुद्रवात करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली, सर्वसिद्ध (सग दान), इतने जीवको अन्तःकारक होती है । अग्न्य क्षेत्र जीव अन्तःकारक होते हैं ।
 गोमयटसार जीव कोष्ठ गात्रा ११९ ३

इस जगत्सहाय कुंड के मरतेपर दूसरी एक सरसों अगवस्था कुंडों की गिनती करने के लिये शकाका कुंडमें रहस्यनी । मध्य डाक में अस्तवगात शीघ्र समुद्र हैं । तिनमें सबके बीचमें अमृदीप है । इसका गमन एक लक्षपात्रन है उसके चारों ओर लवण समुद्र है । वसको चारों ओरसे घेरकर पायकीलड है । इन मध्य द्वीपके आगे समुद्र समुद्र के आगे द्वीप कमसे असंख्यगत द्वीप समुद्र है । चौड़ाई दूनी दूनी होती गई है । किसी द्वीप वा समुद्र की परिधि (गोर्धन) के एक छत से दूसरे छत तक की चौड़ाई को खुली कहते हैं । जैसे लवण समुद्रकी खुली ५ काल योजन है ।

अब अगवस्था कुंड में से समस्त सरसोंको निकालकर किसी देश के द्वारा एक सरसों द्वीपमें एक सरसों समुद्रमें अनुक्रम से डालते चाहिये, जिस द्वीप या समुद्रमें सब सरसों पूर्ण कर अंतही सरसों डालो उसी द्वीप वा समुद्रकी खुली के समान खुली बाका और एक सहायपात्रन गहराईवाला दूसरा अगवस्थाकुंड बनाये और उसको मी सरसों से शिकाक भर एक दूसरी सरसों शकाका कुंडमें डालिये इस दूसरे अगवस्था कुंडकी सरसों को मी निकालकर जिस द्वीप या समुद्र में पहिले समाति हुई थी उसके आगे एक सरसों द्वीपमें और एक (सरसों) समुद्र में डालते चाहिये जहां ये सरसों मी समात हो जायें वहां उसी द्वीप वा समुद्र की खुली प्रमाण चौड़ी और एक सहाय पात्रन गहराईवाला दूसरा अगवस्था कुंड बनाकर उसे सरसों से शिकाक भरिये और शकाका कुंड में तीसरी सरसों डालिये इस तीसरे कुंड की मी सरसों निकालकर जगत् द्वीप समुद्रों में एक एक सरसों डालते जाय सरसों समात हो जाय जब पूर्वोक्तानुसार चौथा अगवस्था कुंड भरकर चौथी सरसों शकाका कुंडमें डालिये इसी प्रकार एक एक अगवस्था कुंड की एक एक सरसों शकाका कुंड में डालते डालते जब शकाका कुंड मी शिकाक भरजाय जब एक सरसों प्रति शकाका कुंड में डालिये इसी प्रकार एक एक अगवस्था कुंड की एक एक सरसों शकाका कुंड में डालिये शकाका कुंड में डालते डालते जब दूसरी बार मी शकाका कुंड (शिकाक) भर जाय वा दूसरी सरसों प्रतिशकाकाकुंड में डालिये एक एक अगवस्था कुंड की एक एक सरसों शकाकाकुंड में और एक एक शलाकाकुंडकी एक एक सरसों प्रतिशकाकाकुंडमें डालते डालते जब प्रतिशकाकाकुंडकी भर जाय जब एक सरसों महाशलाकाकुंडमें डालिये, जिस क्रमसे एक बार प्रति शलाकाकुंड भर है उसी क्रमसे दूसरी बार सरसों पर दूसरी सरसों महाशलाका कुंडमें डालिये । इसी प्रकार एक एक प्रतिशलाका कुंडकी सरसों महाशलाका कुंडमें डालते डालते जब महाशलाका कुंड मी भरजाय उस समय

इस अन्वयका कुंड के मरतेपर दूसरी एक सरसों अन्वयका कुंडों के निर्मिती करते के लिये शालाका कुंडमें शालनी । मध्य कोण में असकगत द्वीप समुद्र है । त्रिजनें सबके बीचमें अन्वयद्वीप है । इसका ग्राम एक कुरायेग्राम है जन्मके बालों ओर लवण समुद्र है । वनको बातों ओरसे घेरकर घातकीलक है । इन प्रकार द्वीपके आगे समुद्र समुद्र के आगे द्वीप कमसे अन्वयगत द्वीप समुद्र है । चौड़ाई पूर्वी द्वीप होती गई है । किसी द्वीप का समुद्र की परिधि (गोकार) के एक घट से दूसरे घट तक की चौड़ाई का पूर्वी काले है । जैसे लवण समुद्र की पूर्वी ५ काले चौकन है ।

अब अन्वयका कुंड में से समस्त सरसोंको निष्काककर किसी देश के द्वारा एक सरसों द्वीपमें एक सरसों समुद्रमें अनुक्रम से शालसे चालिये त्रिजने द्वीप का समुद्रमें सब सरसों पूर्ण कर लेंत की सरसों शाली वसी द्वीप का समुद्रकी पूर्वी के समान पूर्वी शाला और एक साहस्यजान गहराईका दूसरा अन्वयकाकुंड बनाये और उसको भी सरसों से निष्काक मर एक दूसरी सरसों शालाका कुंडमें चालिये इस दूसरे अन्वयका कुंडकी सरसों को भी निष्काककर बिच द्वीप का समुद्र में पहिले समाप्त हुई वी उसके आगे एक सरसों द्वीपमें और एक (सरसों) समुद्र में शालसे चालिये जहाँ ये सरसों भी समाप्त हो जायें वहाँ वसी द्वीप का समुद्र की पूर्वी प्रमाण चौड़ी और एक सखल योजन गहरा हीनतप अन्वयका कुंड अन्वयकर हवे सरसों से निष्काक भरिये और शालाका कुंड में तीसरी सरसों चालिये इस तीसरे कुंड की भी सरसों निष्काककर आगेके द्वीप समुद्रों में एक एक सरसों शालसे अब सरसों समाप्त हो जाय तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अन्वयका कुंड मरकर चौथी सरसों शालाका कुंडमें चालिये इसी प्रकार एक एक अन्वयका कुंड की एक एक सरसों शालाका कुंड में शालसे अब शालाका कुंड भी निष्काक मरजाय तब एक सरसों शाले शालाका कुंड में चालिये इसी प्रकार एक एक अन्वयका कुंड की एक एक सरसों शालाका कुंड में शालसे अब दूसरी बार भी शालाका कुंड (निष्काक) मर जाय तो दूसरी सरसों प्रतिशमकाकुंड में चालिये एक एक अन्वयका कुंड की एक एक सरसों शालाकाकुंड में और एक एक शालाकाकुंडकी एक एक सरसों प्रतिशमकाकुंडमें शालसे अब प्रतिशमकाकुंडकी मर जाय तब एक सरसों शालाकाकुंड में और एक एक शालाकाकुंड मर प्रति शालाकाकुंड मर है वसी क्रमसे दूसरी बार मरने पर दूसरी सरसों शालाकाका कुंडमें चालिये । इसी प्रकार एक एक प्रतिशमकाका कुंडकी सरसों महाशालाका कुंडमें शालसे अब महाशालाका कुंड की मरजाय वन समाय

एटा निवासी बगरूपकृष्ण बलीलठ्ठ परच्छेद और विमलत्पर्य सहित सर्वाधिकारिका सुवन्धः सिद्धी अनुवादे । अम्भाये १ पक्ष ८

एक विरहज और एक देव इस प्रकार से राशिकरना । विरहजराशिका विरहजकार प्रत्येक एकके अन्तर देवराशियोंका परस्पर गुणाकार करना और शकाकाराशियोंसे एक और घटाना । इस दूसरीबार वाले ब्रूये गुणफलक प्रमाण पुनः विरहज और देवराशि करना और पूर्वोक्तनुसार सनसद देवराशियोंका परस्पर गुणाकार करना तथा शकाकाराशियों में से एक और घटाना इसी अनुक्रमसे अतीत नवीन गुणफलक प्रमाण विरहज और देवने क्रमसे एक एक बार देवराशियों का गुणाकार होने पर शकाकाराशि में से एक एक घटाये घटाये अब शकाकाराशि समाप्त होजाय उस समय जो अन्तिम गुणफलकक म्हाप्राप्ति होय उस प्रमाण फिर विरहज देव-शकाकार से तीनि राशि विकानी । विरह राशिका विरहजकार प्रत्येक एकके अन्तर देवराशिका रज देवराशिका परस्पर गुणाकार करने करते पूर्वोक्त-क्रमानुसार एक बार देवराशियोंका गुणाकार हुमेपर शकाकाराशियों से एक एक घटाये घटाये अब यह द्वितीकार शकापन की हुई शकाकाराशियों समाप्त होजाय उस समय । इस अन्तकी गुणफलकक म्हाप्राप्ति प्रमाण पुनः विरहज-देव शकाकार से तीनिप्राप्ति विकानी । पूर्वोक्त क्रमानुसार अब यह तीसरीबार स्थापना की हुई शकाकाराशि भी समाप्त होजाय उस समय यह अन्तिम गुणफलकक ओ म्हाप्राप्ति हुई वह अर्सेकगतसकगतका एक सन्ध्य मेव है ।

अन्तिम क्रमानुसार तीनिबार द्वितीये राशियों के गुण विधा लो शकाकाराशयनिष्ठान् कइते हैं आते भी अर्वा "शकाकाराशयनिष्ठान्" देना पद आये वही देसाही विधा । समझ लेना । इस महा राशि में लोक भगवान (विष्णुका कण्ठ वरदानावर के कण्ठ में कहा जायगा) लोकप्रमाण धर्मद्वयके प्रवेश लोक के प्रमाण अर्धमन्त्रयके प्रवेश, लोक प्रमाण एक और के प्रवेश, लोक प्रमाणलोकप्रत्ययके प्रवेश, लोकसे अर्सेकगत शुष्ण अन्तिमिष्ठि प्रत्येक बनस शिकाविकि बीबों का प्रमाण और उसके भी अर्सेकगत एक गुणा तथापि सामान्यपरसे अर्सेकगत लोक प्रमाण प्रतिष्ठित प्रत्येक यलत्प्राप्तिकाविकि बीबोंका प्रमाण-ये बहु राशि भिन्नान् । इस दोषलक्षणप्रमाण विरहज-देव-शकाकार से तीनि राशि स्थापनकर पूर्वोक्तनुसार शकाकाराशय निष्ठान् करना । सम्पाकार करने से ओ म्हाप्राप्ति उत्पन्न हो उस में बीसकोडाकोडी भागार प्रमाण ककराकाक के समग्र अर्सेकगत लोक प्रमाण स्थितिरन्ध्याप्यय सायस्यान । (स्थितिरन्ध्याको कारण मृतजन्मा के परिणाम) इनसे भी अर्सेकगत गुणे तथापि अर्सेकगत लोक प्रमाण अनुमानके आधारबसर शक्यता और इनसे भी अर्सेकगत गुणे तथापि अर्सेकगत लोक प्रमाण मन बचन काय धर्मों के अविभाग प्रतिच्छेद (गुणैकिक अन्त) ये बार राशि भिन्नान् । इस दूसरे योगफल प्रमाण फिर -

[illegible][illegible]

आजको छोटी आँखी के अपत्य मुक्कस्यगत प्रमाण समय होखे हैं । अथार पत्य के एक एक रोम लई के अस्वपत्य डोहि बर्ये के समय समूह प्रमाण बरने से उधार पत्य के रोम लई आ प्रमाण होला है । अिन उधारपत्य के रोम लई हैं छत्ते हो उधार पत्य के समय आन्ते । एक कोटो के वार्को कोबाको दो छत्ते हैं छोप समुद्रों को संख्या उधारपत्य से है अर्धम् उधार पत्य के समयको पब्लोस कोबाको दो गुणा छत्ते से जो गुण नछल होला है उत्तरेको सग छोप समुद्र हैं । उधार पत्य के प्रत्येक रोमलई के अस्वपत्य बरने के समय समूह प्रमाण लई बरने से अस्वापत्य के रोम लई होखे हैं । अिनने अस्वापत्य के रोमलई हैं छत्ते हो अस्वापत्य के समय हैं ।

पटानिवासी जगरूपसहाय सकलकृत पञ्चेश्वर और विमलस्पर्श साहित सर्वोपसिद्धिका कल्पका हिंदी अनुवाद । अध्याय १ छंद ८
उत्तरेणगुलासस्येयभागाः असंख्येयासस्येया उत्तरार्णववर्साः ७५ ॥ चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवोऽस्य ।
सामान्यवत् एकजीव प्रति जयन्थेनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणगुलासस्येयभागाः अपख्येयामस्येया उत्तरार्णववर्साः ७५ ॥

- उत्कर्षण १, अंगुल-असंख्येय-भागाः १,
- असंख्येयासंख्येयाः ॥ उत्तरार्णववर्साः १,
- चतुर्णाम् १, उपशमकानाम् १,
- नाना-जीव-अपेक्षया १० सामान्यवत् १
- उत्कर्षण १, अंगुल-असंख्येय-भागाः १ (इस भागके प्रवेशों के तुल्य है)
- (येप्रवेश संख्याओं) असंख्यातार्थरूपात् उत्तरार्णवी अवसर्पिणीके समर्थके तुल्य है
- चार उपशमयेषी (आठवेंसे स्मारहवां गुणस्थान) वालैनिका (अन्तर)
- अनेक जीव की विकासे सामान्य (पकरण में कथित गुणस्थान) सम है अपार्णव
- जयन्थेन प्रति एक समय है उत्कृष्टकरि पृष्पस्त्व (गिनते कसर नौसे नीचे) वर्ष है (युग २२४)
- (चार उपशम भेगी वालों का) एक जीव की अपेक्षा से अचान्य अन्तर्मुहूर्त है
- उत्कृष्टकरि खर्चगुल के असंख्यातार्थ भाग (के अकाश प्रवेशों के तुल्य) है
- (ये प्रवेश गिनतीमें) असंख्यातार्थरूपात् उत्तरार्णवी अवसर्पिणीके समर्थके तुल्य है

क्यों कि विनि अद्यावत्तरे इवैन को गई है पावको रा कोबाकोहो से गुला करनेपर सागर होला है जर्बोत्तराकोबाकोहो व्यवहार पक्षका पछ व्यवहार सागर । अकोबाकोहो ब्यापारस्वका एक छदार सागर और एराकोहोको ब्यापारस्वका एक ब्यादा सागर होला है किनो राशिको अितलो बार कावा भावा करने से एक दोष ये सस्ये अर्धेच्छे करेते हैं जैसे ४ को दोबार भावा भावा करनेसे एक होला है अतः चार क अर्धेच्छे २ हैं । अतः के तीन हैं । सोमर के अर्धेच्छे चार हैं इसकी प्रकार उर्ध्वत्र लगा सेना अद्यावत्तरे अर्धेच्छेराशिक बिरलनकर प्रत्येक एकक ऊपर अद्यावत्तरे रलच्छे तब ब्यादा सम्यो ११ परस्पर गुणाकार करनेसे जो राशि बनम हो उसको खर्चगुल करते हैं जर्बोत्तरा एक प्रमाणगुल सेवे और एक प्रदेरा बोधे और उधे का कालसे कले प्रदेरा हैं । खर्चगुलक वर्ग को प्रवर्तगुल और घन (यह राशि को सोनवार परस्पर गुणाकरने से जो गुणन पछ हो रवे घन करते हैं । जैसे दोहा घन भात और तीन का घन सचास है) को घनगुल करते हैं पक्षको अर्धेच्छे राशि के अर्धेच्छेयार्थ भागा ११ विरलनकर प्रत्येक एक एकके ऊपर घनो ११ रल समस्त घनो ११ गुणाकार करनेसे जो गुणन कर रहे जो गुणन कर रहे हो अर्धेच्छे राशि के अर्धेच्छेयार्थ भागा ११ अर्धेच्छेयार्थ भाग राज ब्याद गमा है जर्बोत्तरा सात राजको एक अर्धेच्छेयार्थ भाग है जगन्मेषीक वर्गको अगस्त्यर और अगन्मेषीके घनको लोक करते हैं । परी दोनो लोकके बाकाय प्रदेरीकी संख्या है ।

इस उपमानाके सेवेसे इत्य क्षेत्र काल और भाषापर परिमाण लिया जाय है साधार्य जहाँ इत्य का परिमाण ब्यादाय बहाँ कले प्रवत्त २ प्कारे जानम जहाँ के नका परिमाण ब्यादाय बहाँ कले प्रदेरा जानने जहाँ अक्षका परिमाण ब्यादाय बहाँ कले समय जानने और जहाँ माय १ परिमाण ब्यादाय बहाँ कले क्षितिमाय प्रलम्बेय जानने ॥

प्रदानिवासी जगरुसाहाय धर्मीकृत्य पञ्चदे और विषयस्य सवि सवार्थसिद्धिका श्रद्धाः विदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८

चतुर्णी क्षपकाणा सयोगकेवलिनां च मामान्यवत् । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवाणेषु या एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवाणेषु जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण पत्योपमासख्येयभागः । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवाणेषु जघन्येनैक समय उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ सयोगकेवलिना

चतुर्णां ॥

क्षपकाणाम् ॥ च सयोगकेवलिनाम् ॥

सामान्यवत् ॥

= (आहारकों में) चार (अपूर्वकरण-अनिष्टस्फुरण-द्वस्त्वलोम-सौणक्षपाय)
= क्षपकाणीवाले और सयोगकेवलियोंका (विरहकाल)

= संश्लेष (प्रकरणमें) पहिले क्वाहुआ गुणस्थान) सह है अर्थात् आहारकोंमें चार क्षपकाणीवालोंका अन्तरकाल अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छद् मास है । एक जीवके लिये अन्तर नहीं है आहारकोंमें सयोग केवलियोंका नानाजीव और एक जीवके प्रति अन्तर नहीं है

अनाहारकृत्यः ॥ मिथ्यादृष्टेः ॥ नाना-जीव-अपेक्षया ॥

चक्षुष्म-जीव-अपेक्षया ॥ नञ्अस्ति अन्तरम् ॥

सामादनसम्यग्दृष्टेः ॥ नाना जीव-अपेक्षया ॥

जघन्येन ॥ एकः । समयः । उत्कर्षेण ॥ पत्यु

उपम-असख्ये रभागः ॥ एकजीवि ॥ प्रति

न अस्ति अन्तरम् ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥

नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥

उत्कर्षेण ॥ मास-पृथक्त्वं ॥ एकजीवि ॥

प्रतिभेन अस्ति अन्तरम् ॥ सयोगकेवलिनाम् ॥

= (अनाहारकों में) चार (अपूर्वकरण-अनिष्टस्फुरण-द्वस्त्वलोम-सौणक्षपाय)
= क्षपकाणीवाले और सयोगकेवलियोंका (विरहकाल)
= संश्लेष (प्रकरणमें) पहिले क्वाहुआ गुणस्थान) सह है अर्थात् आहारकोंमें चार क्षपकाणीवालोंका अन्तरकाल अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है उत्कृष्ट छद् मास है । एक जीवके लिये अन्तर नहीं है आहारकोंमें सयोग केवलियोंका नानाजीव और एक जीवके प्रति अन्तर नहीं है

= (अनाहारकों में) मिथ्यादर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्य एक समय है । उत्कृष्टकरि पत्युके
= असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
= असंयतसम्यग्दर्शनवालेका अनेक जीवकी अपेक्षासे
= अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारकों में) असंयमी सम्यग्दृष्टीका (विरहकाल)
= अनेक जीवकी अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है
उत्कृष्टकरि तीन से ऊपर नौ स नीचे (= पृथक्त्व) मास है एक जीवकी
= अपेक्षासे (= प्रति) अन्तर नहीं है ॥ (अनाहारक अवस्था में) सयोगकेवलियोंका

एतानिवासी अंगरूपस्थायं वक्षीमृदुपलब्धेयं और विषयत्वायै सहितं स्वार्थमिन्द्रिका सम्यक्छाः हिंदी अनुवाक ॥ अध्याय १ छंद ८

नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अयोग-
केवल्लिना नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैकः समय । उत्कर्षेण पम्पासा । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ॥ अन्तरमवगतम् ॥
भावो विभाज्यते ॥ स द्विविध । सामान्येन विशेषेण च ॥ सामान्येन तावत्-मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भाव ।
सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भावः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति स्थायोपशमिको भाव ॥

नानाजीव-अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ = (अन्तर कास) अनेक जीव की अपेक्षासे जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ॥ वर्षं पृथक्त्वम् ॥ एकस्मिन् ॥ = उत्कृष्टकरि रीतिसे ऊपर नौसे न्यून (= पृथक्त्व) रहत है ॥ एक जीव के

प्रति न अस्ति अन्तरम् ॥ अयोगैकवर्जिनाम् ॥

नानाजीव अपेक्षया ॥ जघन्येन ॥ एकः ॥ समयः ॥ = (अन्तरकाल) अनेक जीव की अपेक्षा से जघन्यकरि एक समय है

उत्कर्षेण ॥ पम्पासाः ॥ पृथ्वीस्य ॥ प्रति अन्तरम् ॥ = उत्कृष्टकरि छद् मास है । एक बीकरी अपेक्षा से अन्तर

नैक अस्ति अन्तरम् ॥ अस्मात् ॥

भावः ॥ विभाव्यदोः साः ॥ द्विविधाः ॥ सामान्येन ॥ = भाव (प्रत्यक्षा) श्रांथ्य की जाती है । सो याव दो प्रकार संशय से

विशेषण ॥ च सामान्येन ॥ तावत् ॥

मिथ्यादृष्टिः ॥ इति ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥

सासादनसम्यग्दृष्टिः ॥ इति ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥ = सासादन सम्यग्दृष्टी पारिणामिक भाव है अर्थात् सासादन दूसरे गुणस्वाभ में

दृष्टेनमोहका उदय, उपशम, क्षय, संशयक्षय नहीं होती है

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः ॥ इति ॥ श्रायोपशमिकः ॥ भावः ॥ = सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह श्रायोपशमिक भाव है (स्वोंकि यहां दृष्टेनमोहकी सर्वबाती

मिथ्यात्व प्रकृति का उदयायावीलय और उपशम तथा सम्यक्त्व मिथ्यात्व का

उदय रहता है ॥ देखो जी का गाथा ११ की म प सं० टीका

(१) मिथ्यात्व गुणस्याभ से कविराज सम्यक्त्व गुणस्याभ तक पूर्ण मोह की अपेक्षा से भावो का कथन आत्मता काचित है

(२) श्राव्येण काज मानके सिमित से कर्त्त अत्र अपेक्षा दल (तब) देता है जो कथन है कर्त्तोंक कथन के जो आत्मके भाव होते है ये औदयिक भाव है

एतन्निवासी जगत्पुत्रात् नदीन कुत्र पृथक्कृतं और विगत्यर्थं सति सर्ववैशेषिका कल्पना हिरी अनुवाद । अथवा १ इति ८

अस्यतत्सम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा शायिको वा शायोपशमिको वा भावः ॥ उक्तं च मिच्छे खलु आदृष्टो विदिष पुण परिणामिओ भावो । भिस्से स्वावसमिओ अविरदसम्ममि तिण्णव ॥१॥

अस्यतत्सम्यग्दृष्टिः । इति * औपशमिकः । वा * = अविश्रुत सम्यग्दृष्टी यद् औपशमिकभाव सति है अर्थात् दर्शनयोगेह के उपशम होनेसे (= उदयनहोनेसे) आत्माके दर्शन गुणकी विस्तृता है

शायिकः । वा *

= यथा सायिक भाव सति है क्योंकि दर्शन योगका सर्वथा नाश होने से आत्मा के दर्शनगुणकी अत्यन्त विस्तृति होजाती है

शायोपशमिकः । वा भावः । = वा शायोपशमिकभाव सति है अर्थात् शिष्यात् सम्प्रत्यक्षमिध्यात् और सर्वपाती प्रकृतियेके उदयमावी क्षय (= उदयमें आकर-फलनेकेर खिलवाना) और उपशम होने से यथा वेषपाति सम्प्रत्यक्ष के उदय होने से दर्शन योग का शायोपशम है

उक्तम् ॥१॥ य*

= भेदा कि निम्न लिखित गाथा में कहा भी है

मिच्छे कुरु (= मिच्छेऽनुष्ठुः = मिश्रितेऽनुष्ठुः) = शिष्यात् (= प्रथम गुणस्थान) में नियमसे (= खलु) वा " प्रकटयन् " (= खलु)

अवशजो (= अवशजोः ।) = औदात्मिकः ।) = औदात्मिक (= कर्मके उपरसे आत्माके जो परिणाम हो सो भाव) होता है

विदिष पुण (= विदिषः, पुणः = द्वितीयः, पुनः) = और (= पुण) इसरे (सासादत गुणस्थान) में

परिणामिओ (= परिणामिओः ।) = परिणामिकः ।) = परिणामिक (= जिसमें कर्म के उदय उपशमादिक की कुछ भी अपेक्षा न हो सो)

भावो ॥ भिस्से (= भावोः, भिस्से = भावः, भिस्से = भावः) भाव वा परिणाम होता है ॥ भिष अथवा सम्प्रत्यक्षमिध्यात् (सिस्से गुणस्थान) में

स्वजनमगिओ (= स्वजनमगिओः, = शायोपशमिकः, = शायोपशमिक (अवपाति स्वर्गको के वर्तमान नियमों के बिना फल दियेकी निर्भरा

रानेपर और उनकी सर्वथाति स्वर्गका के अगामि नियमों के सद्वस्था रूप उपशम

होनेपर और वेष पाति स्वर्गकोके उदय पर आत्मा का) भाव होता है ॥

अविश्रुत (= अविश्रुतः = अविश्रुतः) = अविश्रुत अथवा असंस्त

सम्ममि (= सम्ममिः, = सम्ममिः) = सम्ममि (= चतुर्थ गुणस्थान) में

तिण्णव (= तिण्णवः + एव = त्रयः । एव = त्रयः । एव = त्रयः) = त्रयो (औपशमिक भाव, सायिक भाव, शायोपशमिक भाव) ही होते हैं

(१) जैसे मखिम यत्न में निर्मली ना स्निग्धही यत्नसे से स्निग्ध नीले घेठ जाती है और ऊपर से ऊँच निर्मल हो जाता है उसही प्रकार कर्मोंके उपशम

प्राप्त्यामी जगन्ममहाय वकील हुन प्रहरेष्ट और विमलपर्व सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्द 'हिंदी अनुवाद' । अध्याय १ पृष्ठ ८

अस्यंत पुनरौदयिकेन भावेन ॥ संयतासयत प्रमत्तसयतोऽप्रमत्तसयत इति च क्षायोगशमिको भाव ॥
चतुर्णामुपक्रमकानामित्योपशमिको भाव ॥ चतुर्यु क्षागकुषु सयोगायोगवेवलिनोश्च क्षायिको भाव ॥ विशेषेण
(१) गत्यनुवादेन नरकगतौ प्रथमाया धृतिव्या नारकाणा मिथ्यादृष्ट्या त्रसयतमस्य दृष्टचन्तानां

अंत्यते १ पुनः शब्दविकृत १ भावेन १

मयतामयत । प्रमत्तसयत । च प्रमत्त

सयत १ इति १ क्षायोगशमिक १ भाव १

= और (यहां चौथे गुणस्थानमें) अस्तस्यपना है सो औदयिक भावसे है

= देश संयतगुणस्थान प्रमत्तसयत गुणस्थान और अप्रमत्त-

= सयत गुणस्थान ' वालोक क्षायोगशमिक भाव है' चारित्र मोह विशेष का क्षयोक्षम (होने से)

चतुर्णाम् १

उपक्रमकानाम् १ इति १ औपक्रमिक १ भाव १ = उपक्रममालाकिक औपक्रमिकभाव है (चारित्रमोहका उपक्रम होने से)

चतुर्यु १ क्षयकुषु १

च सयोग अयोगवेवलिनो १ क्षायिक १ भाव १ = और (अपूर्वकरण से क्षयकराय वरु) लक्ष्म धर्मी में (चरित्र मोह क्षयसे)

विशेषेण १ (१) गति-अनुवादेन । नरकागतौ १ = विशेषकर (१) गतिके कल्पानुसार से नरक गति में

भवमायाय १ धृतिव्याय १ नारकाणाम् १ मिथ्या-पहिली प्रमि (नरक) में नारकियोंके मिथ्या

दृष्टि-आदि अस्तस्यमगदृष्टि-अन्तानाम् १

= दर्शनबोले से अंत्यमी सम्प्रदाशन वाले पर्यंतोंका

(१) अस्तस्यमगदृष्टौ नरकगतौ १ सत्यतत्त्वस्योदयिकर्ण प्राहुः अस्तस्यतत्त्वस्य चारित्र मोहादय हेतुत्वात् ॥

अस्यंत सत्यतत्त्वौ १ अस्तस्यतत्त्वस्य १ ॥ मगदृष्टौ १

औपक्रमिकस्य १ ॥ उपक्रमकानाम् १ अस्तस्यतत्त्वस्य १ ॥

चारित्र भाव उपर्युत्तुत्वात् १ ॥

= अंत्यमी सत्यतत्त्वस्य चारित्र मोहादय हेतुत्वात् ॥

= औपक्रमिकस्य (कारण) बतलाते है (कथोक्ति) अस्तस्य का दाना

= चारित्र मोहानीयकर्मके उपर्युत्तुत्वात् (क दृष्ट) से है साबाय वरु है कि चौथे गुणस्थान में

औपक्रमिक भावके कारण अस्तस्य होता है कथोक्ति चारित्र मोहानीयकर्म भाव गाक गाना

कारण का उपर्युत्तुत्वात् है (१) यहाँ अस्तस्यतत्त्व अस्तस्यतत्त्व के अर्थ में है ॥

(३) पाँचवां संयत गुणस्थानमें क्षीण क्षयन धारद्वारा गुणस्थान तक चारित्र मोहानीयकर्म को नष्टता से यह क्षयन किया है ॥

पटानेवासी जगत्संसारं बद्धोत्कृष्ट पदच्छेद और विपक्षये साहित सर्वाथैसिद्धिंका अग्रशः दिवी अनुवाद । अथाप १ अश ८

सामान्यवत् ॥ द्वितीयादिष्व सप्तम्या मिथ्यादृष्टिमादानमगदृष्टिम्यशमिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत् ॥

असंयतसंम्यग्दृष्टेरोपशमिको वा क्षयोपशमिको वा भाव । असंयत पुनरोदधिकेन भावेन ॥

सामान्यवत्*

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सख (भाव) हैं अर्थात् मिथ्यादृष्टि नारक्षिक्योक्ति औदधिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टि नारक्षिक्योक्ति पारिणामिक भाव है । मिथ्यगुणस्थानकर्त्ता नारक्षिक्योक्ति क्षयोपशमिक भाव है और असंयत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थानकर्त्ता नारक्षिक्योक्ति औपशमिक वा क्षायिक अथवा क्षयोपशमिक भाव है

द्वितीय शब्दिपु, । वा-सप्तम्या ३॥ मिथ्यादृष्टि-
सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टीनाम् ३॥

सामान्यवत्*

इसरी (समि) आदिमें साक्षी(धर्मि)वक (=अ॥) (हैनरकामें) मिथ्यादृष्टनवाले
= सासादनसम्यग्दर्शनवाले और मिथ्यगुणस्थानकर्त्ता (नारक्षिक) निरक्ष
= संक्षेप (विषयमें पहिले कहेहुये गुणस्थान) सदुक्त (भाव) हैं अर्थात् इसरे
नरकसेलेखर सातवें नरक तकके मिथ्यादर्शनवाले नारक्षिक्योक्ति औदधिक
भाव है उक्त छद्मों नरकमें सासादनसम्यग्दर्शनवाले नारक्षिक्योक्ति पारिणामिक
भाव है और इसरी छद्म नरकोके मिथीसरे गुणस्थानकर्त्ता नारक्षिक्योक्ति,
धायोपशमिक भाव है (वेखो पृष्ठ २७८)

असंयतसम्यग्दृष्ट *

= (इसरे नरकसे सातवां नरक तकके) असंयमी सम्यग्दृष्टि (नारक्षी) क
= औपशमिक वा क्षयोपशमिक भाव है । (नारक्षिक्योक्ति पथमसे चौथतक गुणस्थान है)
= और (इन इसरे नरकसे सातवां नरक तकके असंयमी सम्यग्दृष्टी चौथ
गुणस्थानकर्त्ता नारक्षिक्योक्ति)

असंयतसम्यग्दृष्ट १,
औपशमिकः ३, । वा-क्षयोपशमिकः, । वा भाव १, ।

पुनः

असंयतः १, औदधिकेन ३, भावेन ३,

= असंयतपना औदधिक भावकर्त्ता है ॥

पटानिवासी अगस्त्यदाय षष्ठीलङ्कृत षष्ठ्येय और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाधिसिद्धिका श्रवणः विदीभ्युवाव अभ्यास १ सप्त ८

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतान्तानां सामान्यवत् ॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणा मिथ्यादृष्ट्या
शयोगवेद्यन्तानां सामान्यवत् ॥

तिर्यग्गतौ १। तिरश्चां १। मिथ्यादृष्टि-आदि-संस्था-
मयत-अन्तानाम् १। सामान्यवत् १

=तिर्यक्गतिमें तिर्यचों के मिथ्यादृष्टी से संस्था

=संयमी लक्षिकें (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्णोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात्
मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यचों के औदात्मिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थान-
वर्ती तिर्यचों के पारिजातिक भाव है । मिश्रगुणस्थानवर्ती तिर्यचोक्तिसायोपलब्धिक
भाव है । अर्थात् सम्मयुष्टि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तिर्यचों के औपलब्धिक वा
सायिक वा शायोपलब्धिक भाव है । संयमासवमी तिर्यचों के शायोपलब्धिक भाव
है (देखो पृष्ठ २७८ से २८०) तिर्यच गतिमें मिथ्यात्व से संयमासवत एक पाँच
ही गुणस्थान होते हैं

मनुष्यगतौ १। मनुष्याणाम् १। मिथ्यादृष्टि-आदि
अयोगवेद्यि-अन्तानाम् १। सामान्यवत् १

=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टीसे लेकर (=आदि)

=अयोगवेद्यिकानिके संक्षेप (विषय में पूर्णोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) हैं अर्थात्
मिथ्यादृष्टी मनुष्यों के औदात्मिक भाव है । सासादन सम्मयुक्तभावले मनुष्यों के
पारिजातिक भाव है । मिश्र गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के शायोपलब्धिक भाव है ।
असंयमी सम्मयुष्टी मनुष्यों के औपलब्धिक वा सायिक वा सायोपलब्धिक भाव है ।
संयमासवमी से अग्रमय संयमी एक शायोपलब्धिक भाव है । बार उत्पन्न अनेकी
वालों के औपलब्धिक भाव है । बार एक अनेकियों के ओर संबोध और अग्रमय
केवलियों के सायिक भाव है (देखो पृष्ठ २७८, २७९, २८०) ॥
मनुष्यों के सर्व षोडश गुणस्थान होते हैं ॥

प्रातिपत्ति अकारपसहाय कर्मिन्मृग पक्षच्छ और विमक्त्यर्थ सहित सर्वाभिप्रायिका मध्यम हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८
 देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्टाद्यसंयतसम्यग्दृष्टयन्तानां सामान्यवत् ॥ (२) इन्द्रियानुवादेन—एकेन्द्रियविकले
 न्द्रियाणामौदयिको भावः । यज्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टाद्ययोगवैकल्यन्तानां सामान्यवत् ॥

देवगतौ १ । देवानाम् १ । मिथ्यादृष्टि-आदि—असंयत-
 सम्यग्दृष्टि अन्तानाम् १ । सामान्यवत् ०

इन्द्रिय अनुवादेन १ । एकेन्द्रिय

विकल-इन्द्रियाणाम् १ । औदयिक-भावः १ ।

यज्चेन्द्रियेषु १ । मिथ्यादृष्टि-आदि—अभोगक्यलि-
 अन्तानाम् १ । सामान्य-वत् ०

=वैकल्यमिदं देवोंके मिथ्यादृष्टिसे अंतर्गामी

• सम्यग्दर्शनबालेकनिके संश्लेष (विषयमें एवोंके गुणस्थान) सम (भाव) हैं
 अर्थात् मिथ्यादृष्टि देवोंके औदयिक भाव है । सासादन इतरे गुणस्थानकर्त्ता
 देवोंके पारिभाषिक भाव है । मिथ्यगुणस्थानकर्त्ता देवोंके धायोपलम्भिक भाव
 है । अस्तवत् सम्यग्दृष्टी देवोंके औपलम्भिक वा धायिक वा धायोपलम्भिक
 भाव है ॥ देवों के प्रकृत से चौथे तक चारही गुणस्थान हैं ॥

—(३) इन्द्रियके कथनानुसारकरि एकेन्द्रियबालेवीच और

—विकल (दो-हीन—चार) इन्द्रियचारक जीवोंके औदयिक भाव है

—पारिभाषिकबाले जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे अभोगक्यली

—पर्यवोका संश्लेष (प्रकरणमें एवोंके गुणस्थान) समुच्च (भाव) हैं अर्थात्
 मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय जीवोंके औदयिक भाव है ॥ (सासादनसे अभोगितिक
 के पाँचों इन्द्री इत्थी हैं अत इन्द्रिय छन्द स्थितनेकी आवश्यकता नहीं है)
 सासादन सम्यग्दृष्टिके पारिभाषिक भाव होता है । मिथ्यगुणस्थानकर्त्ताके
 धायोपलम्भिक भाव है । अस्तवत् सम्यग्दृष्टीके औपलम्भिक वा धायिक वा
 धायोपलम्भिक भाव है । ऐक्यसंपत्तसे अभिसंपत्ततक धायोपलम्भिक भाव है ।
 चार उपलम्भयोगबालोंके औपलम्भिक भाव है । चार वृष्णकर्मबालोंमें और
 सयोगकर्मली-अभोगकर्मबालोंके धायिक भाव है । (देखो पृष्ठ २७८ से २८० तक)

पटानिपासी अग्ररूपसदाय धर्मीलङ्कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाध्यात्मिका स्रष्टव्यः विदीक्षुवाय अध्यय १ सूत्र ८

तिर्यग्गतौ तिरश्चां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतास्यतान्तानां सामान्यवत् ॥ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्या यथोपवेद्यन्तानां सामान्यवत् ॥

तिर्यग्गतौ १। तिरश्चां २। मिथ्यादृष्टि-आदि-संज्ञा-
मंयत-अन्तानाम् ३। सामान्यवत् ४।

=तिर्यग्गतौ तिर्यगों के मिथ्यादृष्टि से संयता

=संयमी लङ्कनिके (भाव) संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश है अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानवाले तिर्यगों के औदायिक भाव है ॥ सासादन गुणस्थान-वर्ती तिर्यगों के पारिणात्मिक भाव है ॥ मिथ्यगुणस्थानवर्ती तिर्यक्किापोपलब्धिक भाव है ॥ असंयत सम्यग्दृष्टि प्तुर्धे गुणस्थानवर्ती तिर्यगों के औपलब्धिक वा सायिक वा धारोपलब्धिक भाव है ॥ संयतासयमी तिर्यगों के सायोपलब्धिक भाव है (पैलो पृष्ठ २७८ से २८०) तिर्यक् गतिमें मिथ्यात्व से संयतामय १४ पाँच ही गुणस्थान होते हैं

मनुष्यगतौ २। मनुष्याणाम् ३। मिथ्यादृष्टि-आदि
अयोग्यैकैकै-अन्तानाम् ४। सामान्यवत् ५।

=मनुष्यगति में मनुष्यों के (भाव) मिथ्यादृष्टि से छेक (==आदि)

=अयोग्यैकैकैलङ्कनिके संक्षेप (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (भाव) है अर्थात् मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के औदायिक भाव है ॥ सासादन सम्यग्दर्शनवाले मनुष्यों के पारिणात्मिक भाव है ॥ मिथ्य गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के सायोपलब्धिक भाव है ॥ असंयमी सम्यग्दृष्टि मनुष्यों के औपलब्धिक वा सायिक वा सायोपलब्धिक भाव है ॥ संयतासंयमी से अग्रमय संयमी तक सायोपलब्धिक भाव है ॥ बार उपलब्ध केनी वालों के औपलब्धिक भाव है ॥ बार सायिक केनी के नीचे और अयोग्य-केनी के सायिक भाव है (पैलो पृष्ठ २७८, २७९, २८०) ॥

मनुष्यों के तम चौदह गुणस्थान होते हैं ॥

एटा निवासी भगरूपसहाय कभीसकृद पश्येत् और विमर्शपर्यंत सहित सचार्थसिद्धिना अष्टाक्षा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८

(५) वेदानुवादेन- स्त्रीपुनर्युक्तवेदानां भवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कथायानुवादेन-कोयमानमाया-
लोभकथायाणामकथायाणां च सामान्यवत् (७) ज्ञानानुवादेन- मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिविभङ्गज्ञानिनां मतिश्रुतावाधिभ-

न पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत् ॥

(५) वेद-अनुवादेन ; स्त्री-पुन-न्युक्त-वेदानाम् ;

च-अवेदानाम् ;

सामान्यवत्

= (५) वेदके कथनानुसारसे स्त्री पुनः न्युक्त वेद वाले (और) निम्ने
= और वेदरहित स्त्री (ब्रह्मसंसारपरसे अयोगजन्यली गुणस्थान वर्णी) निम्ने
= संक्षेप (प्रकरणमें) कहा हुआ गुणस्थान) सद्रुच (भाव) है अर्थात्

मिथ्यात्वमें औद्यमिक मात्र है । सासादनमें परिणामिक । मिश्रमें धारोपचमिक ।

असत्यमें औपद्यमिक वा ध्यामिक वा धारोपद्यमिक है । संयतासंस्तसे

नम्रमपत्तक धारोपद्यमिक मात्र है । चार उपक्रमक के औपद्यमिक मात्र और

चार ध्यस्तके, संयोगेकैवल्य-अयोगेकैवल्योक्त ध्यामिक मात्र है । (२७८ से २८०)

= (६) कथाएकी विख्या से कोयमान-कण्ट (= माया) लोभ कथा

= बातोंके और (= च) कथायवस्थित (उपश्रोतकथापरसे अयोगेकैवली तक) निष्का

= संक्षेप (प्रकरणमें) पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सद्रुच है (युक्त २७८ से २८०)

= ज्ञानके कथनानुसारकरि कुमतिज्ञान कुभ्रतज्ञान

= कुअवविज्ञान [ये तीन कुज्ञान मिथ्यात्व, सासादन गुणस्थान वाले और

तीन कथान तीन मति-भूत-यवविज्ञान-मिथ्यतस्यमिथ्यात्व वाले] निम्ने

= और [= च] मति-भूत-अवधि [असंस्तसे क्षीण कथाय वर्णी]

= मना पर्यय [एषाच संयमीसे क्षीणकथाय वाले] और केवल ज्ञानि निम्ने

= संक्षेप [प्रकरणमें पूर्वकथित गुणस्थान] सद्रुच मात्र है [विश्वो २८५ भक्ति ७ से १३]

(६) कथा-अनुवादेन ; कोय-मान-भावा-लोभ-कथा

याणाम् । च-अकथायणाम् ।

सामान्यवत्

[७] ज्ञान अनुवादेन ; मति-अज्ञानि-भूत-अज्ञानि

विभक्तज्ञानिनां ।

च-मति-भूत-अवधि

मना-पर्यय-केवलज्ञानिनाम् ।

सामान्य-वत्

पटानिगामी जगत्समाराय मन्त्रीलङ्कृत फण्डेष्ट और विभक्त्यर्थ सहस्रिग मर्वाचिसिद्धिका श्रद्धा १ अथाथ १ एव ८

[३] कायानुवादेन-स्थावरकायिकानामौदयिको भाव । त्रसकायिकाना सामान्यमेव ॥ [४] योगानुवादेन-
त्रायवाहमानमयोगिना मिथ्याहृद्यचदिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिना च सामान्यमेव ॥

[३] काय अनुवादेन १, स्थावर

कायिकानाम् ॥ औदयिक १ भाव ॥ ग्रह—

कायिकानाम् ॥ सामान्यम् ॥ एव ॥

—(३) कायके कयानुवादाकारि स्थावर (पृथिवी-अप-तेजो वायु-वनस्पति)

—कायिकोंके औदयिक भाव है । तस (अर्थात् चलने फिरने वाले)

—कायचारी (जीव निक संश्लेष (विषय में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (- एव) है

अर्थात् मिथ्यादृष्टी जीव स्थावर भी है और त्रस भी है उन दोनोंके औदयिक

भाव है । दूसर सं चौदहवां गुणस्थान तक त्रस पञ्चेन्द्रिय जीव हैं ॥ उन में

सासादन सम्पदुष्टके पारिणामिक भाव है । मिथ्यगुणस्थानवर्तीके धायोपश्रमिक

भाव है । अतएव सम्पदुष्टीके औपश्रमिक क्षायिक वा क्षायोपश्रमिक भाव है ॥

संभूतसंयत से वप्रमण संयत तक क्षायोपश्रमिक भाव है । चार उपश्रमके

वालोंके औपश्रमिक भाव है । चार क्षणकेवली वालों के, सयोगकेवलियोंके और

अयोगकेवलियों के क्षायिक भाव है (वेला पृष्ठ २७८ से २८० तक)

—योग की अपेक्षा से काय-वचन-मनोयोगीतिके

—मिथ्यादर्शन वाले से सयोगकेवली फर्कों का और (=च)

—अयोगकेवलियोंका संश्लेष (प्रकरण में पूर्वोक्त गुणस्थान) सदृश (एव) है अर्थात्

मिथ्यात्मके औदयिक भाव है । सासादनमें परिणामिक है । मिथमें धायोपश्रमिक

है । अतएवमें औपश्रमिक, वा क्षायिक वा क्षायोपश्रमिक है ॥ वेप्रमणीसे अप्रमण

तक धायोपश्रमिक है । चार उपश्रमके औपश्रमिक है । चार क्षणके, सयोग-
अयोग केवलियोंके क्षायिक भाव है (पृष्ठ २७८-२८० तक देखो)

[४] याग अनुवादेन ॥ काय-वाद् मानस-योधिन्याम् ॥

मिथ्याहृदि आदि—मयोगकेवलि-अन्तानाम् ॥ च

प्रयोग-कवलिन्याम् ॥ सामान्यम् ॥ एव ॥

एतानिवासी अगस्तसहाय कबीलकृत पदच्छेद और विमलसूर्य सहित सर्वांशसिद्धिका कल्पदा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ शब्द ८
(१०) लेखानुवादेन-प्रलेखानामलेखानां च सामान्यवत् ॥ (११) मव्यानुवादेन-मव्यानां मिथ्यादृष्ट्या-
द्योगिकेत्यन्तानां सामान्यवत् । अभव्यानां पारिणामिको भावः ॥

(१०) लेख्या-अनुवादेन १, पद

लेख्यानाम् १, च० अलेख्यानाम् ॥

सामान्य-वत् ०

= (१०) लेख्याके कथनानुसारकरि छै (कृष्ण-नील-सोप-पीत-पद्म-शुक्ल)
= लेख्यावालोंके और लेख्यारहित (अयोगकेवल)निके (भाव)
= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कथनके गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छबिलेख्या
मिथ्यात्व-साक्षादन मिथ-असत्य गुणस्थानोंमें हैं वहां क्रमसे औदयिक-पारिणा-
मिक-सायोपशमिक और औपशमिक-सायिक-सायोपशमिक भाव हैं । पीत-
पद्म शुक्ल लेख्यावें देखविरतसे अप्रमत्त सक हैं वहां सायोपशमिक भाव है ।
शुक्ललेख्या चार उपशमक में हैं वहां औपशमिक भाव है । शुक्ललेख्या चार सायिक
के और सयोगकेवली-अयोगकेवलीके हैं वहां सायिक भाव है ॥

(११) मव्य अनुवादेन १, मव्यानाम् १, मिथ्यादृष्टि-आदि- = (११) मव्य जीवोंकी अपेक्षासे मव्योंके मिथ्यादृष्टिसे
अयोगकेवलि-अव्यानाम् ॥ सामान्यवत् ०

= अयोगकेवलि-अव्यानाम् १, प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भाव है अर्थात्
मिथ्यात्व गुणस्थानों औदयिक भाव है । साक्षादनमें पारिणामिक है । मिथ-
में सायोपशमिक है असत्यमें औपशमिक, वा सायिक वा सायोपशमिक है
संप्रसारकस्तसे अप्रमत्तक सायोपशमिक है चार उपशमकके औपशमिक है ।
चार सायिक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलियों के सायिक भाव है ।
= असमव्योंके पारिणामिक भाव है (वो भाव जिसमें क्रमकी कुछमी अपेक्षा नहीं है)

मायावें असमव्यत्व परमकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे
औदयिकवरी है ॥

अमव्यानाम् १, पारिणामिकः १, भावाः १।

पटानिवासी जगत्पुत्राया वकील कृत पञ्चदश और विमलपथ सहित सर्वाथिदिकका शब्दः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८

(२) सैयमानुवादेन—सर्वेषां सैयतानां सैयतासैयतानामसैयतानां च सामान्यवत् (९) दर्शानुवादेन—
चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनाविदर्शनेकवददर्शनीनिनां सामान्यवत् ॥

[८] सैयम-अनुवादेन ॥ सर्वेषाम् ॥ संप्रदानम् ॥

सैयमासैयतानाम् १, चक्षुः असैयतानाम् १।

सामान्यवत् ३

= (८) सैयमके कृमनातुलारुकरि सब सैयमी (प्रमत्तसे अयोग केसली) निका
= केसलेसैयमियोंका और असैयमी (मिथ्यासक्ते अविरत गुणस्थान तक) निका
= (भाव) सैयय (प्रसंगमें पहिले क्वाहुआ गुणस्थान) सद्रुह है अर्थात्

मिथ्यात्व गुणस्थानमें औदिकभाव है । सासादनमें पारिणामिक भाव है ।
मिथ्ये सायोपद्रविक है । असैयममें औपद्रविक वा क्षायिक वा सायोपद्रविक है ।
संस्तानसत्तसे अप्रमत्तक सायोपद्रविक, चार उपद्रवमकके औपद्रविक, चार
उपद्रवके, सयोगकेवल, अयोगकेवलियोंके सायिक भाव है ॥

[९] दर्शन अनुवादेन ॥ चक्षुर्दर्शन अपचक्षुर्दर्शन-

(ये दोनों मिथ्यात्व अप्रम गुणस्थानसे क्षीणकभाव गुणस्थान तक १२ संशेते हैं)
= अनधिकर्शन (असंयतसे क्षीणकभाव गुणस्थान तक) निके (भाव)
= केसलुर्दर्शनासे (सयोगकेसली और अयोगकेसली) निके (भाव)
= संशेय (अप्रमत्तमें पहिले क्वाहुआ गुणस्थान) सद्रुह है अर्थात् शब्दः
वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें फटलो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातेसे दृश्यक दिया है ।

अवचिदर्थन

कन्तदृष्टान्तिनाम् १।

सामान्य-म् ३

(१) सामादिक-मोपेयस्थान दो सप्त प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकारण, अतिवृत्तिकरण गुणस्थानोंमें दोते है । परिहार मिश्रि संसम प्रमत्त;
अप्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है । सुमत्तान्तराप सैयम सुमत्त सायताय गुणस्थानोंमें होता है । यथाकथाय सैयम उपपातिकभाव, सौमिकभाव,
सयोगकेसली, अयोगकेसली गुणस्थानोंमें होता है । सैयमासंयम केशविरय गुणस्थानमें होता है और अदर्शय सिक्कारक, स्तान्तराक, सिक्कारक, सिक्कारक,
और असैयत गुणस्थानोंमें होता है ॥

पटानिवासी अगस्तसराय बसीलकुल पदच्छेद और विमर्षस्यै सहित सर्वाधिकारिका शुद्धस्था हिंदी अनुवाद । अम्माच १ कल ८

(१०) लेस्यानुवादेन-श्वलेस्यानामलेस्यानां च सामान्यवत् ॥ (११) मव्यानुवादेन-मव्याना मिथ्यादृष्टाद्योगवेवत्यन्ताना सामान्यवत् । अमव्यानां पारिणामिको भावः ॥

(१०) लेस्या-अनुवादेन १, २४

लेस्यानाम् ॥ च० मलेस्यानाम् ॥

सामान्य-वत् ०

= (१०) लेस्याके कथनानुसारकरि छे (छप्प-नील-कगत-पीत-पञ्च-शुक्ल)

= लेस्यावालोके और लेस्यारहित (अयोगकेवलि)निके (भाव)

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कबहुने गुणस्थान) समान हैं अर्थात् छोलेश्या मिथ्यात्व-सासादन मिथ-असंयत गुणस्थानमें हैं वहाँ क्रमसे औद्यमिक-पारिणामिक-शायापद्यमिक और औपद्यमिक-शायापद्यमिक भाव हैं । पीत-पञ्च शुक्ल-लेस्यायें दैद्यवितसे अप्रमत्त तक हैं वहाँ शायापद्यमिक भाव हैं । शुक्लेश्या चार उपद्यमक में हैं वहाँ औपद्यमिक भाव हैं । शुक्लेश्या चार हाफक के और सयोगकेवली-अयोगकेवलीके हैं वहाँ शायापद्यमिक भाव हैं ॥

(११) मव्य-अनुवादेन १, मव्यानाम् १, मिथ्यादृष्टि आदि- = (११) मव्य जीवोंकी अपेक्षासे मव्योंके मिथ्यादृष्टिसे

अयोगकेवलि अन्तानाम् ॥ सामान्यवत् ०

= अयोगकेवलीतकनिका संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम भावों अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानमें औद्यमिक भाव है । सासादनमें पारिणामिक है । मिथ में शायापद्यमिक है असंयतमें औपद्यमिक, वा शायापद्यमिक वा शायापद्यमिक है संयतासंयतसे अप्रमत्तक शायापद्यमिक है चार उपद्यमकमें औपद्यमिक है । चार हाफक में और सयोगकेवली-अयोगकेवलीयों के दायिक भाव हैं ।

अमव्यानाम् १, पारिणामिकः १, भावः १, १

= अमव्योंके पारिणामिक भाव है (वो भाव जिसमें कर्मकी कुछमी अपेक्षा नहीं है) गार्थ अमव्यत्व धर्मकी मुख्यतासे पारिणामिक है पर मिथ्यात्वकी मुख्यतासे औद्यमिकही है ॥

पटानिवासी जगत्समाय यकीन कृत फलछेय और विमल्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका सम्बन्धः हिंदी अनुवाद । अर्थात् १ धर्म ८
(२) सैमानुवादेन—सर्वेषां सैयतानां सैयतसैयतानामसैयतानां च सामान्यवत् (९) दर्शनानुवादेन—
चक्षुर्दर्शनावक्षुर्दर्शनावधिदर्शनकेवलदर्शनिनां सामान्यवत् ॥

[८] संयम-अनुवादेन ; सर्वेणाम् । संस्थानाम् ।।

संयतसैयतानाम् । च० अस्तैयतानाम् ।।

सामान्यवत्०

= (८) संयमेकं कृत्नानुसारकरि सप्त संयमी (प्रमत्तसे अयोग केवली) निका
= येषसंयमियोंका और अस्तंयमी (सिध्यात्वसे अविरत गुणस्थान तक) निका
= (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पहिले क्वाहुया गुणस्थान) सक्षुब्ध है अर्थात्

सिध्यात्व गुणस्थानमें औदिकभाव है । सासादनमें पारिजातिक भाव है ।
मिथमें सायोपश्रमिद्ध है । अस्तंयमें औपश्रमिक वा क्षायिक वा सायोपश्रमिक है ।
संयतसंयतसे अग्रमस्तक सायोपश्रमिक, चार उपश्रमके औपश्रमिक, चार
अपश्रमके, सयोगकेवलि, अयोगकेवलियोंके सायिक भाव है ॥

[९] दर्शन अनुवादेन ; चक्षुर्दर्शन अवक्षुर्दर्शन

(ये दोनों सिध्यात्व प्रथम गुणस्थानसे क्षीणकृपाय गुणस्थान तक १२ में होते हैं)

अवक्षिर्दर्शन

कस्तदक्षिन्नाम् ।।

सामान्य-वत्०

= अवक्षिर्दर्शन (यस्तंयसे क्षीणकृपाय गुणस्थान तक) निके (भाव)

= केवलदर्शनवाले (सयोगकेवली और अवयोगकेवली) निके (भाव)

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले क्वाहुये गुणस्थान) सक्षुब्ध है अर्थात् सम्बुद्धः

वही भाव प्रत्येक गुणस्थानमें पड़तो जो इस पृष्ठकी पंक्ति सातेसे दक्षक दिया है ।

(१) सामासिक-च्छेदः। गुणस्थान दो स ११ प्रमत्त, अग्रमत्त, अपूर्णकृपा, अनिवृत्तिकृपा गुणस्थानोंमें होते हैं । परिहार विमुक्ति संयम प्रमत्त,
अग्रमत्त गुणस्थानोंमें होता है । सृष्टमामास्यपाव संयम सूक्ष्म साम्यपाव गुणस्थानोंमें होता है । यथाकृपाय सक्रम उपपातिकापाव, क्षीणकृपाव,
सयोगकेवली, अवयोगकेवली गुणस्थानोंमें होता है । संयमासंयम केवलित गुणस्थानोंमें होता है और अस्तंयम मिथपाव, सामासिक मिथ
और अस्तंयत गुणस्थानोंमें होता है ॥

क्षायोपशमिको भाव । क्षायोपशमिक सम्पक्त्वम् । अस्यत पुनरौदधिकेन भावेन ॥ स्यतास्यतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना क्षायोपशमिको भावः । क्षायोपशमिकं सम्पक्त्वम् ॥ औपशमिकमध्यदृष्टिषु असंयतसम्पन्देरौपशमिको भाव औपशमिक सम्पक्त्वम् । अस्यत पुनरौदधिकेन भावेन ॥ स्यतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव । औपशमिकं सम्पक्त्वम् ॥

वायोपशुम्भिकाः । मावः । वायोपशुम्भिकम् ॥

=सायोपल्लभिक भाव है (सौ नी) सायोपल्लभिक

सम्यक्त्वम् ॥ असंपदः ॥ पुनः

—सम्यग्दर्शन है। और (वपन) असंयतपना (=असंयतः=असंयतस्वम्) है।

औद्योगिकेन । भारेण । संपत्त-असंयत

—(सो) औद्योगिक भावकरी है। (वेदक समयव्यवस्थानवालों में) वेद्यसयमी,

प्रमत्तं अप्रमत्तं च स्य तानाम् । धार्योपश्रमिभ्यः ।

-प्रमदा श्रेष्ठ अकाश विनिर्माण, काठमाडौं

भावः । वायोपन्नमिच्छा ॥ सम्प्रवृत्तयः ।

—नमो आर अग्रमय विरातवाक् नै व
माय है नो नै नै नै नै नै नै नै नै नै

औपत्यगिह-सम्पदादयि ।

भाषा इ सा पदक सम्यग्

[illegible]

— उपर्युक्तसम्बन्धितनवाला म

अतएव सत्यं च ॥ अथवात्मकमायः ॥
मोक्षमसिद्धाय ॥

—असत्यमा सम्यग्दर्शनवाले क ओपनिमिक भाव ।

आविष्कारमस्तु ॥ सम्पन्न
मौख्यसिद्धिः ।

=(सा) उपश्रम सम्यक्स्य है और असंयमपना है

जावयकन । मायन ।

८८(सो) ओदयिक माकरि हे ॥ (असंयतः = असंयमयना)

मयि-असुखं त्रमत्तं अग्रमत्तं-सयवानाम् ॥

=(ठपषमसम्यग्दर्शनवालो मे) देखसंगी, प्रमत्त-अप्रा

(१) अत्र औदयिको माघ त्र्येकः पाठः । औपशमिको माघः त्र्येकः पाठः ॥

(१) इत्र औदयिको मास इत्येक पाठः । औष्यामिको मास इत्येक पाठः ॥

अत्र शोधितः । गायः । इति पृष्ठः । पाठा

१० औद्योगिक मान है ऐसा एक पात्र है सर्गण स्थिति में

५५मी प्रमणसंयमी और उपमणसामीमिक्क सौवयिक मण्ड है।

पञ्चांगिक भाषा ई पेसा और (= एङ-रावम्पु कारा प्रम ल्हा) पाट

संयमासंपत्तियों के प्रमाणधर्मियों के पाठानुसृत आपराधिक भाग है। आचार्य एसा है कि मित्र मित्र पाठानुसृत

पुननिवासी जगत्संसारं धकील्लुत्तुपच्छेत्तुं और निमत्तवार्यं सारित सर्वाथिदिदिक्षा सुखदा हिंदी अनुवाद ॥ अध्याय १ पृष्ठ ८

(१२) सम्यक्त्वानुवादेन-क्षायिकमग्न्यग्नष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टिषु अर्थस्यतसम्यग्दृष्टे क्षायिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वम् । असंयतत्वमौदयिकेन भावेन ॥ सयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना क्षायोपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वं च ॥ चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः । क्षायिकं सम्यक्त्वम् ॥ शेषाणां सामान्यवत् ॥ क्षायोपशमिकमग्न्यग्नष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः

[१२] सम्यक्त्व अनुवादेन ॥ क्षायिकमग्न्यग्नष्टिषु ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि ॥ क्षायिकः । भावः ॥

क्षायिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥ असंयतत्वम् ॥

अदयिकेन ॥ भावेन ॥

संयतासंयत-प्रमत्त-अप्रमत्त-

संयतानाम् ॥ क्षायोपशमिकः । भावः ॥ च ॥

क्षायिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥

बौध्दमिकः । भावः । क्षायिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥

शेषाणाम् ॥

सामान्य-वत् ॥

क्षायोपशमिक-सम्यग्दृष्टिषु ॥ असंयतसम्यग्दृष्टेः ॥

= (१२) सम्यग्दर्शन के अनुवादकर क्षायिक सम्यग्दर्शनवालों में

= "असंयत सम्यग्दृष्टी के क्षायिक भाव तो

= क्षायिक सम्यक्त्व है अर असंयतपणां है तो

= औदयिक भाव करि है " अर्थस्यतसम्यग्दृष्ट वचनिका मुद्रित पृष्ठ ११४ ।

= (क्षायिक सम्यग्दर्शन वालों में) वेक्षसंयमी, प्रमत्तसंयमी, अप्रमत्त

= संयतानों में क्षायोपशमिक भाव है और (=च)

= "सम्यक्त्व क्षायिक है (तो क्षायिक भावकरि है)" अर्थस्यतसम्यग्दृष्ट वचनिका ११४

= (क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में) चार उपशम केनी

(अर्थस्यतसम्यग्दर्शन-वचनिका-वचनिका-वचनिका-वचनिका) वालों में

= बौध्दमिकभाव है । क्षायिक सम्यक्त्व (यही) है (तो क्षायिक भाव करि है) ।

= (क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में) अवशेष (चार क्षायिक भेदीवाले-संयमी-असंयमी) निका

= संयते (विषयों) पूर्वों के गुणस्वान समान भाव) है (इन सबके क्षायिक भावों)

= वेक्षकमग्न्यग्नष्टिषु असंयमी सम्यग्दर्शनीले (बौध्द गुणस्वानवर्ती) के

(१) क्षायिक सम्यक्त्व असंयत बौध्द गुणस्वानवर्ती बौध्द गुणस्वानवर्ती (वेक्षक) सम्यक्त्व असंयत बौध्द गुणस्वानवर्ती

से अप्रमत्त संयत मत्तों तक है । उपशममग्न्यग्नष्टिषु अवशेष बौध्द गुणस्वानवर्ती के उपशममग्न्यग्नष्टिषु अवशेष तक है ।

(२) क्षायिक सम्यक्त्व औपशमिक और अप्रमत्त केनी भाव उपशम है

प्रातिपत्ति अङ्गप्रमाण कहील कृप कच्छेय और विभक्त्यर्थ संहित स्मार्थसिद्धिका शब्दशः सिद्धी अनुवाद । अन्वय १ सूत्र ८

क्षायोपशमिको भाव । क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । अमयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ सयतासंयतप्रम
ताप्रमत्तसंयताना क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् ॥ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकमभ्यगृष्टिषु असंयतसम्य-
गभ्येरोपशमिको भाव औपशमिक सम्यक्त्वम् । असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन ॥ सयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंय
ताना क्षायोपशमिको भाव । औपशमिक सम्यक्त्वम् ॥

क्षायोपशमिकः । भावः । क्षायोपशमिकम् ॥

सम्यक्त्वम् ॥ असंयतः । पुनः ॥

औदयिकेन । भावेन । संयत असंयत

प्रमत्त अप्रमत्त-सयतानाम् । क्षायोपशमिकः ।

भावः । क्षायोपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥

औपशमिक-सम्यगृष्टिषु ।

असंयत-सम्यगृष्टे । औपशमिकभावः ।

औपशमिकम् ॥ सम्यक्त्वम् ॥ पुनः ॥ असंयतः ।

औदयिकेन । भावेन ।

संयत-असंयत प्रमत्त-अप्रमत्त-संयतानाम् ।

क्षायोपशमिकः । भावः । सम्यक्त्वम् ॥ औपशमिकम् ॥

= क्षायोपशमिक भाव है (सो तौ) क्षायोपशमिक

= सम्यग्दर्शन है । और (= पुनः) असंयतता (= असंयतत्वम्) है

= (सो) औदयिक भावकरि है । (वेदक सम्यग्दर्शनवालों में) वेदसंयमी,

= प्रमत्त और अप्रमत्त विरतिवों के क्षायोपशमिक

= भाव है सो वेदक सम्यग्दर्शन है ॥

= उपशमसम्यग्दर्शनवालों में

= असंयमी सम्यग्दर्शनवाले के औपशमिक भाव है

= (सो) उपशम सम्यक्त्व है और असंयमपना है

= (सो) औदयिक भावकरि है ॥ (असंयतः = असंयमपना)

= (उपशमसम्यग्दर्शनवालों में) वेदसंयमी, प्रमत्त-अप्रमत्त संयमियों के

= क्षायोपशमिक भाव है । सम्यक्त्व औपशमिक है ॥

(१) अत्र औदयिको भाव इत्येकः पाठः । औपशमिका भावः इत्येकः पाठः ॥

अत्र औदयिकः । भावः । इति एकः । पाठः । -- यहाँ औदयिक भाव है ऐसा एक पाठ है अर्थात् किसी किसी पुस्तक के पाठानुसार न

संयमी प्रमत्तसंयमी, और अप्रमत्तसंयमीनिके औदयिक भाव है ।

= औपशमिक भाव है ऐसा और (= एक-एक-एक कोरा पृष्ठ नष्ट) पाठ है अर्थात् इस

पाठानुसार औपशमिक भाव है आचार्य वत्सा है कि मित्र मित्र पाठानुसार

संयमासंयमियों के औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक दोनों ही भाव समर्थ हैं ॥

पदानिवासी जगत्सर्वदाय कसील्लुकी परच्छेद और विमत्सर्य सहित सर्वावसिद्धि का शुभ्रका हिंदी अनुवाद । अध्याय १ कुं ८
चतुर्णामुपशमकानामोपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको
भावः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टे क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टे रौदयिको भावः । (१३) सज्ञानुवादेनसज्ञिनां
सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशराहितानां

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥

= (उपशम सम्यग्दृष्टियोंमें) चार उपशमभेदीवाले (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकारण-
क्षरुप्रत्याभारय-उपशान्तकपाय) निके

औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥॥ औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यक्त्वम् है ॥

सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥ सासादन सम्यक्त्वम् के पारिणामिक भाव है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥ मिथ (सीसरे) गुणस्वान्) अर्थात् क्षायोपशमिक भाव है ।

मिथ्यादृष्टेः ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ [१३] स्त्री-अनुवादेन

संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत् ॥

= मिथ्यादृष्टि (प्रकम) गुणस्वान् अर्थात् औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे

= सैनी (=ननतश्चित्तवृत्ति) निके संक्षेप (विषयों) पूर्वाक्त गुणस्वान्) सम है अर्थात्

मिथ्यादृष्टी संक्षिप्तोंके औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संक्षिप्तोंके

पारिणामिक भाव है । मिथ गुणस्वान् अर्थात् संक्षिप्तोंके क्षायोपशमिक भाव है ।

असंमतसम्यग्दृष्टी संक्षिप्तोंके औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव

है । संप्रसासितसे अप्रमत्तवर्ती संक्षिप्तोंके क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमिक

संक्षिप्तोंके औपशमिक भाव है । चार संप्रमत्तवर्ती संक्षिप्तोंके क्षायिक

भाव है ।

प्रसंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ अर्थात् संक्षिप्तोंके (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्वान् में ही हैं) औदयिक भाव है ।

तद् उपस-व्यपदेशादितानाम् ॥

= उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्णित (संयोगकेवली-अयोगकेवली) निकल

(१) संक्षिप्तोंके मिथ्यात्व प्रथम गुणस्वान् से क्षायिकभाव चार होंगे । अर्थात् संक्षिप्तोंके मिथ्यात्व प्रथम गुणस्वान् से क्षायिक भाव चार होंगे ।

पटानिवासी शगरूपस्त्राय ककीतकृत पदच्छेद और विमर्त्यर्थ साहित सर्वाथसिद्धिका सुन्दरः हिंदीअनुवाद अध्याय १ सूत्र ८

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्त ॥

अत्यबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत्*

(१४) आहार-अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥

वच्च-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत्*

=संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् क्षाणिक भाव केवलियोंके हैं
 =(१४) आहारकोकी विवक्षासे आहारक (जीव) निर्वेद(जो मिथ्यात्वसे सयोगी तर्क्य)
 =और अनाहारकोके (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात्
 मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासादनसम्बन्धन-
 वाले आहारक जीवोंके पारिजातिक भाव है । मित्र गुणस्थान— वाले
 आहारक जीवोंके सायोपश्रमिक भाव है । असंयत सम्यग्दृष्टि आहारकोके
 औपश्रमिक, वा दायिक वा सायोपश्रमिक भाव है । संयतासंयतसे अप्रमत्त
 गुणस्थानवर्ती आहारकों के सायोपश्रमिक भाव है ॥

घार उपलभ्येयी वाले आहारकोके औपश्रमिक भाव है । चार क्षणक क्षेपी-
 वाले आहारकोके दायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले हुंसेरे, चौथे,
 चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतर समुदायत और लोक पूर्वसमुदायतमें
 प्रमादहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिजातिक,
 असंयतमें औपश्रमिक, दायिक वा सायोपश्रमिकभाव और सयोगी अयोगी के
 दायिक भाव होते हैं ॥

भावः ॥ परिसमाप्तः ॥

=भाव (प्रत्ययणा) परिपूर्ण कीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मक्षी अपेक्षा से
 उदाहरणरूप समाप्त कियागया

अत्य-बहुत्वम् ॥॥ उपवर्ण्यते ॥

=एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे बोदे-बहुतसे कमनका वर्णन किया जाताहै ।

एतानिवासी जगत्संसारं वेदिककृतं वेदच्छेदं और विमत्सर्यं सहितं सर्वार्थसिद्धिंका क्षम्यः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ छंद ८
चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः औपशमिक सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको
भावः ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टे शायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । (१३) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां
सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशराहितानां

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥

= (उपशम सम्यग्दृष्टिर्गो) चार उपशमशेणीवासे (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिपरिहरण-
वास्तवसाम्यरास-उपशान्तकारण) निक्के

औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥
= औपशमिक भाव है । (सो) उपशम सम्यक्त्वम् है ॥

सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥
= सासादन सम्यक्त्वमेवासेके पारिणामिक भाव है ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टेः ॥ शायोपशमिकः ॥ भावः ॥
= मिथ (सीसरे गुणस्वान) इति किं शायोपशमिक भाव है ।

मिथ्यादृष्टेः ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥ [१३] स्वी-अनुवासेन

संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत् ॥

= मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानकर्त्तिक औदयिक भाव है (१३) सैनीकी अथवासे

= सैनी (=मनसहितनीव) निक्के संज्ञेय (विषयमे) पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात्

मिथ्यादृष्टी संक्षिप्तोक्ते औदयिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संक्षिप्तोक्ति

पारिणामिक भाव है । मिथ गुणस्थानकर्त्तिको संक्षिप्तोक्ते शायोपशमिक भाव है ।

असंप्रत्यक्षसम्यग्दृष्टी संक्षिप्तोक्ति औपशमिक वा शायिक वा शायोपशमिक भाव

है । संप्रत्यक्षवत्तरे अप्रमत्तकर्त्तिक संक्षिप्तोक्ते शायोपशमिक भाव है । चार उपशमिक

संक्षिप्तोक्ते औपशमिक भाव है । चार सप्तक श्रेणीवाले संक्षिप्तोक्ति शायिक

भाव है ।

असंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावः ॥
= असंक्षिप्तोक्ति (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमे ही है) औदयिक भाव है ।

तत्र उप-न्यपदेशराहितानाम् ॥
= उन (सैनी-वसैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (संयोगकेवली-अयोगकेवली) निष्का

(१) सखीबीच मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमे ही कथ्यताय बाधते सक है । अस्वीकी मिथ्यात्वमे है । सखी अस्वीकीसे एतिल सर्वोपशम अयोग केवली है ॥

एतानिवासी भग्नरूपस्थाय कर्मलक्ष्मण स्वच्छेद और विभक्त्यर्थे संहित सर्वाधिसिद्धिका सम्बन्धः निर्दिष्टवृत्ताय अभ्यास १ खल ८

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्तः ॥

अत्यवहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-स्तु ॥

(१४) आहार-अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥

स्वच्छेद आहारकाणाम् ॥ सामान्य-स्तु ॥

संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्वान) सम है अर्थात् साधक भाव केवलिकों के
 = (१४) आहारकोषी विवक्षासे आहारक (जीव) निके(जो मिथ्यात्वसे सयोगी लक्ष्मण)
 -और अनाहारकोषी (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्वान) सम है अर्थात्
 मिथ्यात्व गुणस्वानवर्ती आहारक जीविक औदयिक भाव है सासादनसम्बन्धिन
 वाले आहारक जीविक पारिषादिक भाव है । मिथ गुणस्वान— वाले
 आहारक जीविक सायोपश्रमिक भाव है । असंयत सत्यगृष्टि आहारकोषी
 औपश्रमिक, वा साधक वा सायोपश्रमिक भाव है । संयतासंयतसे अभ्रमण-
 गुणस्वानवर्ती आहारकोषी के सायोपश्रमिक भाव है ॥

चार उपलब्धमेवानी वाले आहारकोषी औपश्रमिक भाव है । चार स्वक भेदी-
 वाले आहारकोषी साधक भाव है ॥ अनाहारक जीविक जो पहिले ईश्वर, चौथे,
 चौदह गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रतरसमुद्र्यात और लोक पूर्णसमुद्र्यातमें
 प्रनाहारक, दोसे हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिषादिक,
 असंयतमें औपश्रमिक, साधक वा सायोपश्रमिकभाव और सयोगी अयोगी के
 साधक भाव होते हैं ॥

भावः (प्ररूपणा) परिपूर्ण कीर्ति अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से
 उदाहरणरूप ममाप्त किमागया

भावः ॥ परिसमाप्तः ॥

अत्यवहुत्वम् ॥ उपवर्ण्यते ॥

अत्यवहुत्वम् ॥ उपवर्ण्यते ॥

एतानिवासी जगत्संसाराय वकीलकृतं कष्टं च और विमर्शार्थं सहित सर्वाभिहितिका क्षम्यः हिंदी अनुवाद । अंशमात्र १ छान्द ८
चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः पारिणामिको
भावः ॥ सम्यक्त्वमिथ्यादृष्टे क्षायोपशमिको भाव ॥ मिथ्यादृष्टेरौपशमिको भाव । (१३) संज्ञानुवादेनसंज्ञिनां
सामान्यवत् । असंज्ञिनामौपशमिको भाव ॥ तदुभयव्यपदेशारहितानां

चतुर्णाम् ॥ उपशमकानाम् ॥

== (उपशम सम्यग्दृष्टियमि) चार उपशमयेणीवासे (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण-
सूत्रसात्त्विक-उपशमिकभाव) निके

औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥ ॥ ॥ सम्यक्त्वम् ॥ ॥ ॥ (सो) उपशम सम्यग्दर्शनम् ॥ ॥

सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ पारिणामिकः ॥ भावः ॥

सम्यक्त्वमिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावः ॥

मिथ्यादृष्टेः ॥ औपशमिकः ॥ भावः ॥ [१३] सा-अनुवादेन
संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत्

— मिथ्यादृष्टि (अपम) गुणस्थानवर्तिक औपशमिक भाव है (१३) सैनीकी अपेक्षासे
= सैनी (=मनसहितबीज) निके संज्ञेय पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात्
मिथ्यादृष्टी संज्ञियोक औपशमिक भाव है । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोक
पारिणामिक भाव है । मिथ गुणस्थानवर्तिक संज्ञियोक क्षायोपशमिक भाव है ।
असंभवसम्यग्दृष्टी संज्ञियोक औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव
है । संभवसंभवसे अप्रमत्तवर्ती संज्ञियोक क्षायोपशमिक भाव है । चार उपशमिक
संज्ञियोक औपशमिक भाव है । चार सप्तक भेजनासे संज्ञियोक क्षायिक
भाव है ।

प्रसंज्ञिनाम् ॥ औपशमिकः ॥ भावः ॥

तत् उपशम-व्यपदेशारहितानाम् ॥

= व्यसंज्ञियोक (जो मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमें ही है) औपशमिक भाव है ।

= टन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे वर्जित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निक

(१) संज्ञिबीज मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे ही निकटतम बार होने तक है । अतः ही मिथ्यात्ववर्त है । संज्ञो कर्तव्यीति दृष्टित मयोग कारण केवली है ।

एतान्निवासी न्यस्तसहाय कर्मकुल पञ्चैव और विमर्त्यर्ह सहित सर्वार्थसिद्धिका रुद्धशः विदीयतुवाद् अभ्यास १ सप्त ८

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्त ॥

अल्पबहुत्वमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत् ॥

(१४) आहार-अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥

वत्-अन्-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत् ॥

—संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् सायिक भाव केवलियोंके है
—(१४) आहारकोषी विषयासे आहारक (जीव) निके(खो मिथ्यात्वसे सयोगी तत्त्वों)
—और अनाहारकोषिक (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात्
मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदायिक भाव है सासादनसम्यग्दर्शन-
वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मित्र गुणस्थान—वाले
आहारक जीवोंके सायोपचमिक भाव है । असंयत सम्यग्दर्ष्टि आहारकोषिक
औपचमिक, वा दायिक वा सायोपचमिक भाव है । संयतासंयतसे भ्रममत्त
गुणस्थानवर्ती आहारकों के दायोपचमिक भाव है ॥

चार उपचमयेयी वाले आहारकोषिक औपचमिक भाव है । चार दृष्टक अणी
वाले आहारकोषिके दायिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले ईश्वर, बीये,
बौद्धे गुणस्थानमें और सयोगकेवलीओ प्रवर समुदायत और लोक पूर्णसमुदायतमें
अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदायिक भाव, सासादन में पारिणामिक,
असंयतमें औपचमिक, सायिक वा दायोपचमिकभाव और सयोगी अयोगी के
दायिक भाव होते हैं ॥

भावः ॥ परि-समाप्त ॥

—भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण करीगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से
उदाहरणरूप समाप्त क्रियागया

अत्य-बहुत्वम् ॥ उपवर्ण्यते ॥

—एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे शोदे-बहुतेके कथनका वर्णन किया जाता है ।

पदानिवासी जगत्संसारं धर्मेच्छन् और विमक्त्यर्थं सहित सर्वार्थसिद्धिकां क्षुब्धः हिंसां वञ्चनाव । अन्त्येय १ छन्द ८
चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भावः औपशमिकं सम्यक्त्वम् ॥ सासादनसम्यग्दृष्टेः परिणामिको
भावः ॥ सम्यक्त्वमिथ्यादृष्टे क्षायोपशमिको भावः ॥ मिथ्यादृष्टेरौदयिको भावः । (१३) सञ्ज्ञानुवादनसंज्ञिनां
सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भावः ॥ तदुभयव्यपदेशराहितानां

चतुर्णां ॥ उपशमकानाम् ॥
= (उपशम सम्यग्दृष्टियोगे) चार उपशममेणीवाते (अपूर्वकार-अनिवृत्तिपरिहर-
वृत्तस्यान्तराय-उपशान्तकपाय) निके

औपशमिकः ॥ भावः ॥ औपशमिकम् ॥॥ सम्यक्त्वम् ॥॥ औपशमिक भावः । (सो) उपशम सम्यक्त्वम् ॥
सासादन-सम्यग्दृष्टेः ॥ परिणामिकाः ॥ भावाः ॥
सम्यक्त्वमिथ्यादृष्टेः ॥ क्षायोपशमिकः ॥ भावाः ॥
मिथ्यादृष्टेः औदयिकः ॥ भावाः ॥ [१३] सञ्ज्ञा-अनुवादेन
संज्ञिनाम् ॥ सामान्य-वत् ॥
= मिथ्यादृष्टि (प्रथम) गुणस्थानवर्ती औदयिक भावः (१३) सैनीकी अपेक्षिते
= सैनी (अनसंहितमीश) निके संश्लेष (विषयमे पूर्वाक्त गुणस्थान) सम है अर्थात्
मिथ्यादृष्टी संज्ञियोकं औदयिक भावः । सासादनसम्यग्दृष्टी संज्ञियोकं
पारिणामिक भावः । मिथ गुणस्थानवर्ती संज्ञियोकं क्षायोपशमिक भावः ।
असंस्तसम्यक्दृष्टी संज्ञियोकं औपशमिक वा क्षायिक वा क्षायोपशमिक भाव
है । संश्लेषार्थस्यसे प्रथमपक्षवर्ती संज्ञियोकं क्षायोपशमिक भावः है । चार उपशमक
संज्ञियोकं औपशमिक भावः है । चार सपक मेणीवाते संज्ञियोकं क्षायिक
भावः है ।

प्रसंज्ञिनाम् ॥ औदयिकः ॥ भावाः ॥
तदुभय-व्यपदेशराहितानाम् ॥
= अर्थसंज्ञियोक (ओ मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमे ही है) औदयिक भावः है ।
= उन (सैनी-असैनी) दोनों नामोंसे धर्मित (सयोगकेवली-अयोगकेवली) निका

(१) सङ्कीर्णमिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानमे ही प्रकटताय वा। हरे शक है । अर्थात् मिथ्यात्वमे है । सैनीकी अर्थसंज्ञियोकं है । सैनीकी अर्थसंज्ञियोकं है ।

पटानिवासी वगरूपस्थाय कर्मजन्तु पञ्चैव और विमर्शपूर्ण सारित सर्वाधिकारिका सुन्दरः विदीप्तनुवाद अभ्यास १ सूत्र ८

सामान्यवत् ॥ (१४) आहारानुवादेन-आहारकाणामनाहारकाणा च सामान्यवत् ॥ भावः परिसमाप्तः ॥
अत्यन्तदुर्लभमुपवर्ण्यते ॥

सामान्य-वत् ॥

(१४) आहार-अनुवादेन ॥ आहारकाणाम् ॥

वत्-अन्-आहारकाणाम् ॥ सामान्य-वत् ॥

= संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्तगुणस्थान) सम है अर्थात् स्वाधिक भाव केवलिकों के
= (१४) आहारकोषी विषयासे आहारक (जीव) निकले (जो मिथ्यात्वसे सयोगी सत्त्वों)
= और अनाहारकोषी (भाव) संक्षेप (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) सम है अर्थात्
मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंके औदयिक भाव है सासदानसम्बद्धन
वाले आहारक जीवोंके पारिणामिक भाव है । मित्र गुणस्थान—वाले
आहारक जीवोंके सायोपधमिक भाव है । असत्य सम्पदएि आहारकोषी
औपधमिक, वा स्वाधिक वा सायोपधमिक भाव है । संयवासंयससे अप्रमत्त-
गुणस्थानवर्ती आहारकों के सायोपधमिक भाव है ॥

चार उपक्रमेण्यी वाले आहारकोषी औपधमिक भाव है । चार सूक्त अर्थात्
वाले आहारकोषी स्वाधिक भाव है ॥ अनाहारक जीवोंमें जो पहिले ईश्वर, चौथे,
चौदवें गुणस्थानमें और सयोगकेवलीजो प्रथम समुद्रयात्र और लोक पूर्णसमुद्रयात्रमें
अनाहारक, होते हैं, मिथ्यात्व में औदयिक भाव, सासादन में पारिणामिक,
असत्यमें औपधमिक, स्वाधिक वा सायोपधमिकभाव और सयोगी अयोगी के
स्वाधिक भाव होते हैं ॥

= भाव (प्ररूपणा) परिपूर्ण करिगई अर्थात् भावका निरूपण मोह कर्मकी अपेक्षा से
उदाहरणरूप समाप्त क्रियागम्या

भावः ॥ परिसमाप्तः ॥

अत्यन्तदुर्लभम् ॥ उपवर्ण्यते ॥

= एक वस्तुको अन्य की अपेक्षासे शोदे-शुद्धके कथनका वर्णन किया जाता है ।

प्राणिनामी जगत्पञ्चदश पदच्छेद और विषमपर्यय सहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दशः विदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८ तत् द्विविधं सामान्येन विज्ञेयेण च ॥ सामान्येन तावत्-त्रय उपगमका सर्वत स्तोका. स्वगुणस्थान

मान्यु प्रवेगेन तुल्यसंस्था ॥ उपगान्तकपायास्तावत् एव ॥

तत् ॥ दि-विषय ॥ सामान्येन ॥ विज्ञेयेण ॥ दो प्रकार सहेयकरि और विस्तारकरि है । सामान्येन ॥ तावत् त्रयः ॥
 उपगमका मवेन स्तोका, स्व
 गुणस्थान कालेन । प्रवेगेन ॥ तुल्यसंस्था ॥

=वह (अत्यन्त-शुद्ध प्ररूपणा) दो प्रकार सहेयकरि और विस्तारकरि है ।
 =अयम (=तावत्) सहेयकरि तीन (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिरूप-यस्यसलोम)
 =उपगमभणीवाले सबसे शोड़े हैं । (ये तीन उपगम भेयी वाले) अपने २
 =गुणस्थान कालों में प्रवेशकरि समान का बराबर संख्यावाले शोड़े हैं अर्थात्
 प्रत्येक उक्त तीन गुणस्थान में कोई आचार्य तीनगो (३००) कहते हैं । कोई
 तीन सौ चार (३०४) कहते हैं । कोई दौ सौ निन्यानवे (२९९) कहते हैं ॥
 (वेखो गोम्पटसारगाथा ६२६ विसय सर्गविकेई इत्यादि)
 =उपगान्तकपाय ग्यारहवां गुणस्थानवर्ती उपगमभेयीवाले उतने ही हैं अर्थात् उक्त
 गाथा के अनुकूल २९९, वा ३०० अथवा ३०४ उल्टुट हैं

उपगान्तकपाया ॥ तावन्तः ॥ एवम्

(१) मान्यु सम्मयेण प्रवेशेन यत्तो वा हो वा यो वा इत्यादि अस्याः ॥ उ-कृष्टानु १६ । २४ । ३० । ३६ । ४२ । ४८ । ५४ । ५९ । स्वगुणस्थान
 कालेण प्रवेशेन तुल्यसंस्थाः ॥ संख्याकथनासरे प्रोक्ताः ॥ तत्र प्रथमम् ॥ पृष्ठाणि ९३, ९४, ९५, अयमनुशास्य ॥
 मान्यु ही सम्मयेण । प्रवेशेन ॥ एवम् ॥ वाक् हो ॥
 वा यः । वा इत्यादि अस्याः ॥ उ-कृष्टानु १६ । २४ । ३० । ३६ ।
 ४२ । ४८ । ५४ । ५९ । स्वगुणस्थान-
 कालेण प्रवेशेन । प्रवेशेन ॥
 तुल्यसंस्थाः ॥
 संख्याकथन प्रसरे ॥ प्राक्काः ॥
 तत्र पृष्ठाणि ॥ ९३, ९४, ९५ प्रथमम् ॥

एटाविवासी जगत्सहाय कर्तृलक्ष्मण पञ्चदश और विषयस्यार्थ सहित सपर्यायसिद्धिका श्रद्धाः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८
त्रय क्षपका सस्येययुगा ॥ क्षीणक्षपायवीतिरागच्छद्वास्थास्तावन्त एव ॥ सयोगक्षेत्रलिनीयोगक्षेत्रलिनीश्च
प्रवेशेन तुल्यसंख्या ॥

त्रय ॥

क्षपकाः । सस्येययुगा ॥

=चीन (अपूर्वक्षर-अनिष्टचित्करण-क्षमसाम्प्रदाय)

=क्षपक्षणीवाले (उक्त तीन उपक्रमक्षणीवालोंसे) संख्याते गुणैरे अर्थात् प्रत्येक गुणस्थानवर्ती क्षपक्षणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती उपक्रमक्षणीवालोंसे इने हैं (गोम्यदसार जीव कांठ गाथा ६२६) ॥ प्रत्येक उपक्रमक्षणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार २९९ हैं केईके ३०० हैं केईके ३०४ हैं अतः प्रत्येक क्षपक्षणी गुणस्थानमें कई आचार्योंके मतानुसार ५९८ हुये, केईके ६०० हुये केईके ६०८ मुनिहुये ॥

क्षीणक्षपाय-वीतिरागच्छद्वास्थाः ॥ तावन्तः ॥

एवम्

सयोगक्षेत्रलिनीः ॥ च अयोग-क्षेत्रलिनीः ॥

प्रवेशेन ॥ तुल्यसंख्याः ॥

=क्षीणक्षपाय वीतिरागच्छद्वास्थ गारहवागुणस्थानवर्ती उतने

=क्षी (=एव) हैं अर्थात् ५९८ हैं अथवा ६०० अथवा ६०८ मुनिहैं

=सयोगक्षेत्रलिनी और (=च) अयोगक्षेत्रलिनी (=चौदहवें गुणस्थानवर्ती)

=प्रवेशेन (नेकी अपेक्षा) करि समानगणनावाले हैं अर्थात् सयोगक्षेत्रलिनी, अयोग क्षेत्रलिनी गुणस्थानमें जयन्त्यपनासे जीव प्रवेश करै तो एक समयमें एक वा दो वा तीन हत्यादि जीव (पृथक् पृथक् गुणस्थान) में प्रवेश करै और उत्तर्यकरि एकसो आठ जीव तक एक समयमें प्रवेश होसके हैं (वेदो इसके पृष्ठ ९४, ९५) । समग्र यह कि यह तुल्य संख्या केवल तेरहवें गुणस्थानमें प्रवेश होनेवाले जीवों की, चौदहवें गुणस्थान में प्रवेश होनेवाले जीवोंक तुल्य प्रवेश होनेकी अपेक्षासे ही तुल्य है । तेरहवें गुणस्थानमें रहने वाले जीवोंकी संख्या चौदहवें गुणस्थान में रहने वाले जीवोंकी संख्याके कदापि तुल्य नहीं है क्योंकि

पटानिषासी बगरुस्तारन कर्मिस्तकृत फलच्छेद और विगमस्वर्ध सहित स्वीयसिद्धि का मुख्यः हिदी अनुवाद । अध्याय १ चत ८
सांसादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ सम्यगिगम्याहंष्टयः सख्येयगुणा । असंख्यतसम्यग्दृष्टयोऽमख्येयगुणा ॥

सासादनसम्यग्दृष्ट्याः । असंख्येयगुणाः ।
सम्यगिगम्याहंष्टयः । संख्येयगुणाः ।
असंख्य सम्यग्दृष्ट्याः । असंख्येयगुणाः ।

= सासादनसम्यग्दृष्टि (विश्वसंयमिष्योसे) असंख्यात गुणेषु है ।
= मिश्रगुणस्वानवर्षी (सासादन सम्यग्दृष्टिष्योसे) संख्यात गुणेषु है ।
= अवितसम्यग्दृष्टी (सम्यगिगम्याहंष्टिष्योसे) असंख्यात गुणेषु है ।

तब कहते हैं कि अमुक प्रकारकी वस्तुमें अमुक बात की वस्तुओंसे जोड़ी वा जनी है ।
सयमासवमी यज्ञ की गुणस्थानमें बातें हैं । इससे अलग बहुत नहीं है ॥ असंयमिष्योसे
कहा बहुत है क्योंकि ये मिश्रण स्वसादन मिश्र और असंख्य गुणस्थानोंमें है येसेही
संयमिष्योमें अन्य बहुत है क्योंकि ये ठेठेसे १४ गुणस्थान तक है

संयतासंयतानाथः । गुणस्थान-मेवाह ॥ इव ॥
१३०००००० । इति कुट्टनामयः ।

(१) सासादनसम्यग्दृष्ट्याः । संख्येयगुणाः ।
१२००००००० ॥ (२) सम्यगिगम्याहंष्टयः ।
संख्येयगुणाः । १०४२००००००

(१) असंख्यतसम्यग्दृष्ट्याः । संख्येयगुणाः ।
५०००००००० । इति कुतसागरः ।

सिंहली १ पुष्ट २९५ और सिंहली १ पुष्ट २९५में कुतसागर सहिते चार गुणस्थानोंमें आ गवना सिक्की है बहुत केवल मनुष्योंही समझना क्योंकि
गोमनदनार जीवकी है गया १२३ (ओहयम १२४) में मिश्रण गुणस्थानसे संपत्तासंयतही स्पर्ध सक्या ऐसे लिखी है कि

मिष्य सावयसमममिस्साविरः । हुवारज्जा य । पुरासंकेतः त्रियमसंख्युध संख्यसंख्युध ॥ १२५॥ मिथ्याः धावकसासनमिस्साविरः वा
विवापमंता य । पन्नासंख्यमसंख्युध संख्यसंख्युध ॥ अथवा ॥

= सासादन है ॥ येसे कुतसागरसहित (का वचन कुतसागरीश्रीग्राम है)
= अविद्यतसम्यग्दृष्टि (सम्यगिगम्याहंष्टि सीसरे गुणस्थानवाओं से) संख्यतगुणेषु है

= सासादनगुणेषु है (अर्थात्) एकसौचारकोट है ॥ चार
= संख्यातगुणेषु है ॥ मिश्रीसरेगुणस्थानवर्ती (सासादनसम्यग्दृष्टिसे)
= सासादनसम्यग्दृष्टि (अर्थात्) कुतसागरसहित (कुतसागरीश्रीग्राम) कहते है
= तेरह करोड़के है । येसे (भी) कुतसागरसहित (कुतसागरीश्रीग्राम) कहते है

= सयमासवमी की (गणना) गुणस्थानमेंदेखे बराबर (= इव)

गणिनामी जगरूपसहाय बकीलकृत पक्खेय और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शुद्ध अर्थ हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८
 मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा ॥ विशेषण (१) गत्यनुवादेन-नरकगतौ सर्वास्तु प्रथिवीषु सर्वतः स्तोत्राः सासा
 दनसम्यग्दृष्टय । सम्यग्मिथ्यादृष्टय सस्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽमरूपेयगुणा । मिथ्यादृष्टयोऽमरूपेय
 गुणा ॥ तिर्यगतौ तिरश्चा सर्वतः स्तोकाः सैयतासयता । इतरेषा सामान्यवत् ॥

मिथ्यादृष्टय ॥ अनन्तगुणाः ॥ विशेषण ॥ गति—

अनुवादेन । नरकगतौ ॥ सर्वास्तु ॥ पृथ्वीषु ॥

सर्वतः ॥ स्तोकाः ॥ सासादन-सम्यग्दृष्टयः ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥

संस्मयेयगुणाः ॥ असंयतसम्यग्दृष्टयः ॥

असंस्मयेयगुणाः ॥ मिथ्यादृष्टयः ॥

असंस्मयेयगुणाः ॥ तिर्यगतौ ॥ तिरश्चा ॥ सर्वतः

स्तोकाः ॥ सैयतासयताः ॥

इतरेषाम् ॥

सामान्यवत् ॥

= मिथ्यादृष्टी (असंयत सम्यग्दृष्टियोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥ विशेषकर गतिके
 = कथनानुसारकरि नरकागतिमें सब धर्मियों (नरकों) में
 = सबसे योग्य सासादनसम्यग्दर्शनवाले (इससे गुणस्मानवर्ती) हैं
 = (उन सासादनसम्यग्दृष्टी नारकियों से) मिथ्यगुणस्मानवर्ती (नारकी)
 = संस्मयातगुणा हैं । (मिथ्यगुणस्मानवर्ती नारकियोंसे) असंयतसम्यग्दृष्टि (नारकी)
 = असंस्मयातगुणे हैं । (असंयती सम्यग्दृष्टीनारकियोंसे) मिथ्यादृष्टी (नारकी)
 = असंस्मयातगुणे हैं ॥ तिर्यक्गतिमें तिर्यक्चोमै सबसे
 = अन्य संयमासंयमी (तिर्यक्च) हैं अर्थात् फलके असंस्मयातवां भागमें (देखो टिप्पणी)
 = अन्य (असंयतसे मिथ्यादृष्टी तक तिर्यक्चों) का
 = संसारेय (विषयमें पूर्वोक्त गुणस्मान) सर्वदृष्ट (अत्यवशुत्त्व) है नीचेकी टिप्पणी देखो

अर्थ—मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणा है । शायद फलके असंयतागत है । सासादन गुणस्मानवर्ती शायदकोसे असंयतात गुणे हैं । मिथ्यासाम्य
 बान्धने संस्मयातगुणे है अमृतसागरादि मिथ्याजीवोंसे असंयतातगुणे हैं । इनमें संयमा संयमीमें सासादनगुणस्थानमें, मिथ्यमें असंयतागुणस्थानमें कुछ न
 अधिक शान्तो अर्थात् संयतासंयमगुणस्थान के धारक मनुष्य और तिर्यक् ही गति के जीव होते हैं सो इनमें देख करीब मनुष्य है पत्थ के
 असंयतातवां भाग तिर्यक् हैं । सासादनगुणस्थानमें चारों गति के जीव होते हैं । इनमें शान्त करीब मनुष्य हैं और नारकी तिर्यक् और देव संयता-
 संयतमें अस्मयातगुणे हैं । सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव भी चारों गति में होते हैं सो एकसौचार करीब मनुष्य हैं और सासादनवांकोसे असंयतात गुणे
 योग जीव एक तिर्यक्, देवगति के जीव हैं । असंयतगुणस्थानमें भी चारोंगति के जीव हैं उनमें सातसौकरीब मनुष्य है शेष जीवोंसे संयतातगुणे
 अथवाय सोमगतिके जीव हैं ॥

एतामिवासी जगरूपसहाय धकीलकृष्णबुद्धेय और विमलत्वर्ये सरित सर्वाभिसिद्धिका श्रद्धाः सिद्धी अनुयाह ॥ अध्याय १ अथ ८

मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादिप्रमत्तसंयतान्ताना सामान्यवत् ॥ तत् संख्येयगुणा सयतासंयता ॥
सासादनसम्यग्दृष्टय संख्येयगुणा ॥ सम्यग्मिथ्यादृष्टय संख्येयगुणाः ॥ असंयतसंम्यग्दृष्टय संख्येयगुणा ॥
मिथ्यान्ष्टयोऽप्रख्येयगुणा ॥ देवगतौ देवानां नारकवत् ॥

मनुष्यगतौ ॥ मनुष्याणाम् ॥ उपशमक-आदि

प्रमत्तसंयत-अन्तानाम् ॥ सामान्यवत् ॥

मनुष्यगतिमें मनुष्योंका (अल्प-बहुत्व) उपशम भेदीवालोंसे

=प्रमत्तसंयमीशकनिका संसृष्ट (प्रसंगमें पूर्वोक्त गुणस्थान) समुद्र है अर्थात् अपूर्वकर-

अनिश्चितकरण-सुस्मसाधारण-उपशोक्तफाय इन उपशमभेदीवाले गुणस्थानमें प्रत्येकमें

२९९, केई आचार्योक्त मत्तमें ३०० अथवा केईकले मत्तमें ३०४ जीव हैं और अप्रमत्त

गुणस्थानमें २९६९९१०३ जीव हैं इसलिये प्रत्येक उपशमभेदीवालेसे अप्रमत्तमें

संख्यागुणा जीवबुधे और प्रमत्तगुणस्थानवर्ती ५९३९८२०६ जीव हैं इसलिये प्रत्येक

उपशमभेदीवालेसे, और अप्रमत्तगुणस्थानवर्तीसे भी प्रमत्तगुणस्थानमें संख्यागुणे जीव हैं ॥

=तिन (प्रमत्त संयमीयों) से संख्यागुणे संयमासंयमी (मनुष्य तेरह कोटि) हैं

= (उन बेशब्रतियोंसे) सासादन सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यागुणे (बायन) करोड़ हैं

= (सासादनवालोंसे) मिथ्यगुणस्थानवर्ती (नर) संख्यागुणे (एकसौचार कोटि) हैं

= (मिथवालोंसे) अर्धयमी सम्यग्दृष्टी (मनुष्य) संख्यागुणे (सातसौकरोड़) हैं ।

= (असंयमी सम्यग्दृष्टियोंसे) मिथ्यादृष्टी (मनुष्य नकि पूर्वबन्धि) असंख्यागुण हैं

= वेवगतिमें देवोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) नारभियेकित तुल्य है अर्थात्

सासादन सम्यग्दृष्टि देव सबसे थोड़े हैं । उनसे संख्यागुणे मिथ्यगुणस्थानवर्ती देव

हैं । इन (मिथवालोंसे) असंयमी सम्यग्दृष्टी देव असंख्यागुणे हैं ।

कता ॥ संख्येयगुणा ॥ सयतासंयता ॥

सामादन-सम्यग्दृष्टय ॥ संख्येयगुणाः ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टयः ॥ संख्येयगुणाः ॥

असंयत-सम्यग्दृष्टय ॥ संख्येयगुणाः ॥

मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥

देवगतौ ॥ देवानाम् ॥ नारकवत् ॥

पदानिवासी जगत्समस्तं पदोत्कृष्टं पदच्छेदं और विमलसूर्य सहित सर्वापेक्षितिका शब्दशः हिंदी अनुवाच । अध्याय १ अध्या ८

(२) इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्यानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभाव ॥ इन्द्रिय प्रत्युच्यते ।

पंचेन्द्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहव ॥ पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् ।

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन, एकेन्द्रिय-विकले-

इन्द्रियेषु १ गुणस्यानभेदः । नञ्अस्ति १

इतिअस्य बहुत्व अभावः ।

इन्द्रियेषु, १० प्रति ॥ उच्यते १

स्नेन्द्रिय आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः । उत्तरोपरम् ॥॥

बहव ॥

(असंख्य सम्मवृष्टीविधौसे) मिथ्यावृष्टी (वेध) असंख्यातगुणे द्वे ।

= (२) इन्द्रियकी अपेक्षासे एकइन्द्रिय (बीज) और विकल (दो-बीज-चार)

= इन्द्रियवासे (बीजों) में गुणस्मान विक्षेप नहीं है

= (इनके मिथ्यात्व गुणस्यान ही होता है) ऐसे (गुणस्यान प्रति) अल्प बहुत्व नहीं है

= इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (= प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है

= पांच इन्द्रियवासे बीजोंसे (= आदि) एक इन्द्रियवाले बीजों तक आगे आगे

= अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेबीजोंसे चार इन्द्रियवाले बीज अधिक

हैं । चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ तमि इन्द्रियवालोंसे दो

इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इन्द्रियवालोंसे एक इन्द्रियवाले बीज अधिक हैं ऐसे

आगे आगे बहुतवा है ॥

= पांच इन्द्रियवालोंका (कस्कर अल्प बहुत्व) संक्षेपमें (कचित गुणस्यान)

बद ॥

= समुदा है । अर्थात् चार अपूर्वकरण-अनिष्टपिकरण धर्मसमाप्तराव-उपशान्त-

क्याव उपशमभेजीवाले प्रत्येक गुणस्यानमें २९९ वा (केन्द्र आचार्याके

मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें) ३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक

प्रत्येक गुणस्यानकी संख्या शेष प्रत्येक गुणस्यानके जीवोंकी प्रमेका सबसे

अल्प वा योदी है । और चार अपूर्वकरण-अनिष्टपिकरण-धर्मसमाप्तराव

धीनकलावकणभेजीवाले प्रत्येक गुणस्यानमें ५९८ वा (केन्द्रके मतमें)

पदानिवासी वागरेसमर्थाय प्रकील कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वोपसिद्धिका समुदायः द्विती अनुवादः । अध्याय १ धृत् ८

अयं तु विशेषः—मिथ्यादृष्टयोः संस्थेयगुणाः ॥ (३)

एतौ अपनो (विश्व आचार्यक मतानुसार) ६०८ मुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपश्रमभेदीवाले गुणस्थान से प्रत्येक सप्तकभेदीवाले गुणस्थानके मुनियोंकी संख्या संख्यातगुणी है । अबोगकेवलिकी संख्या ५९८ वा ६०० वा ६०८ है (श्री का गाथा ६२६ और इस अनुवादके पृष्ठ २०८की टिप्पणी संख्या २ देखो) तो भी प्रत्येक उपश्रमभेदी गुणस्थानवालोंसे एक प्रकारसे संख्यातगुणी हैं और प्रत्येक सप्तकभेदीवाले गुणस्थान रसियों के बराबर है ॥ सबोगकेवलिकी संख्या आठ लाख अठान्चै सहस्र पाँचसौ दो (८९८५०२) है तो प्रत्येक उपश्रमभेदी गुणस्थानवालोंसे संख्यातगुणी है और प्रत्येक सप्तकभेदी गुणस्थानवालोंसे भी संख्यातगुणी है । इन सप्तोगकेवलियोंसे अप्रमत्त संपत्ती सातवाँ १०० नव्वीं संस्थेयगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या २९६९९९०३ है । और इन अप्रमत्तसंपत्तियमिनो संख्यात गुणे हैं क्योंकि ये ५९३९८२०६ हैं ॥ उक्त प्रमत्तसंपत्तियोंसे सप्तमासंपत्ती असंख्यान हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यच गतियों में दो बार देशसंयम गुणस्थान होता है इनमें वेरह करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यच पक्षके असंख्यातमें भाग है । इन संपत्तिसंयमियोंसे सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारों गतियों में होता है इन में बावन करोड़ मनुष्य हैं और भावकों से असंख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं । इन सासादन वालोंसे संख्यात गुणे मिथगुणस्थानवालों हैं क्योंकि इनमें एकतौ बारकरोड़ मनुष्य हैं और संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके जीव हैं । और असंयत गुणस्थान भी चारों गतिमें होता है इनमें साततौ करोड़ मनुष्य हैं और मिथवालोंसे असंख्यातगुणे दोष तीन गतिके जीव हैं (गोमटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और पृष्ठ २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पंचेन्द्रिय नीच स्वीकृती दूसरेसे बारह गुणस्थान हो सकते हैं । असंखी जीवनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है ॥

अयम् ॥ तुल्य विशेषः ॥ मिथ्या चरन्तु (न्तु) यह विशेष है कि पंचेन्द्रिय मिथ्या

दृष्टः ॥ असंस्थेयगुणाः ॥ १॥ चरन्ती जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पंचेन्द्रिय जीवों से) असंस्थेयगुण गले हैं ॥

एतानिवासी अगस्त्यगदाव वसिष्ठान्न परच्छेद और विमर्श्यर्थ सहित तर्वायसिद्धिका उद्भवः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ वृत्त ८

(२) इन्द्रियानुवादेन-एकैन्द्रियविक्लेन्द्रियेषु गुणस्यानभेदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभाव ॥ इन्द्रियं प्रत्युच्यते । पंचेन्द्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तर बहव ॥ पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् ।

(२) इन्द्रिय-अनुवादेन, एकैन्द्रिय-विक्लेन्द्रियेषु १ गुणस्यानभेदः ॥ नञ्प्रति ॥
 इति ३ अल्प बहुत्वं-अभावः ॥
 इन्द्रियम् ॥ प्रति ३ उच्यते ॥
 पंचेन्द्रिय आदि-एकेन्द्रिय-अन्ताः ॥ उत्तरोत्तरम् ॥
 बहव ॥

पंचेन्द्रियाणाम् ॥ सामान्य-
 वत् ॥

(अंतर्गत सम्पदपृथीयेवासे) विष्यावृथी (वेब) असंस्मात्पुण्ये हैं ।
 = (२) इन्द्रियकी अपेक्षासे एकैन्द्रिय (जीव) और विकल (बो-सीन-बार)
 = इन्द्रियवासे (जीवों) में गुणस्थान विशेष नहीं है
 = (इन्हें) विषयात्त्व गुणस्थान ही होता है ऐसे (गुणस्थान प्रति) अल्प बहुत्व नहीं है
 = इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (जीवोंसे) (= प्रति) (अल्प बहुत्व) कहा जाता है
 = पांच इन्द्रियवासे जीवोंसे (= आदि) एक इन्द्रियवासे जीवों तक आगे आगे
 = अधिक हैं अर्थात् पांच इन्द्रियवालेजीवोंसे चार इन्द्रियवाले जीव अधिक
 हैं । चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो
 इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इन्द्रियवालोंसे एक इन्द्रियवाले जीव अधिक हैं ऐसे
 आगे आगे बहुत्वा है ॥

= पांच इन्द्रियवालोंका (परस्पर अल्प बहुत्व) संबंधमें (कचित् गुणस्थान)
 = समुच्च है । अर्थात् चार अपूर्वकारण-अनिवृत्तिकरण ब्रह्मसाम्याय-उपशान्त-
 क्त्वाय उपशमयेषीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ वा (केन्द्रिक व्यापारोंके
 मतमें) ३०० अक्षया (अन्व आचार्योंके मतमें) ३०४ मुनि हैं और इन प्रत्येक
 प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या क्षेत्र प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकी प्रेषणा सबसे
 अल्प पा योदी है । और चार अपूर्वकारण-अनिवृत्तिकरण-ब्रह्मसाम्याय
 बीजकामायकपक्षेयीवासे प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ वा (केन्द्रिकके मतमें)

अयं तु विशेषः-मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ (३)

छत्ती अथवा (केवल नाचार्यिक मतानुसार) ६०८ छुनि हैं इसलिये प्रत्येक उपक्रमभेदीवासे गुणस्थान से प्रत्येक क्षणकभेदीवासे गुणस्थानके गुणियोंकी संख्या संख्यासुगुणी है । अयोगकेवलीकी संख्या ५९८ वा ६०० वा ६०८ है (जी का गाथा ६२६ और इस अनुवादके छु २०८की टिप्पणी संख्या २ देखो) सो भी प्रत्येक उपक्रमभेदी गुणस्थानवालोंसे एक प्रकारसे संख्यासुगुणी हैं और प्रत्येक क्षणकभेदीवासे गुणस्थान गतियों के बराबर है ॥ सयोगकेवलियोंकी संख्या आठ लाख अठानवै सहस्र गतितो दो (८९८५०२) है सो प्रत्येक उपक्रमभेदी गुणस्थानवालोंसे संख्यासुगुणी है और प्रत्येक क्षणकभेदी गुणस्थानवालोंसे भी संख्यासुगुणी है । इन सयोगकेवलियोंसे अप्रमत्त संकमी सातवाँ ७८ नवती संख्येयगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या २९६९९१०३ है । और इन अप्रमत्तसंख्यमियों , १ संख्यात गुणे हैं क्योंकि वे ५९३९८२०६ हैं ॥ उक्त प्रमत्तसंख्यमियोंसे संख्यासंयमी असंख्या २ हैं क्योंकि मनुष्य और तिर्यच गतियों में ही यह वेदसंयम गुणस्थान होता है इनमें वेद करोड़ मनुष्य हैं और तिर्यच पर्यके असंख्यातमें आग हैं । इन संयमासंख्यमियोंसे सासादन सम्पद्धी असंख्यात गुणे हैं क्योंकि यह गुणस्थान चारों गतियों में होता है इन में बावन करोड़ मनुष्य हैं और भावकों से असंख्यात गुणे अन्य तीन गतिके नीचे हैं । इन सासादन वालोंसे संख्यात गुणे मिथ्यागुणस्थानवर्ती हैं क्योंकि इनमें एकतो बारकरोड़ मनुष्य हैं और संख्यात गुणे अन्य तीन गतिके नीचे हैं । और असंख्यात गुणस्थान भी चारों गतिमें होता है इनमें सातसौ करोड़ मनुष्य हैं और मिथ्यावालोंसे असंख्यातगुणे दोष तीन गतिके नीचे हैं (गोमटसार गाथा ६२४, ६२५, ६२६ और छु २९२ से २९५ तक देखो) स्मरण रहे कि पनेन्द्रिय नीचे संकीर्णरी त्रसरेसे बारह गुणस्थान हो सके हैं । असंखी जीवके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है ॥

अथ २ ॥ ६० विशेषः ॥ मिथ्या चरन्तु (च) यह विशेष है कि पनेन्द्रिय मिथ्या

दृष्टः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ असंखी जीव (अन्य किसी गुणस्थान के पनेन्द्रिय जीवों से) असंख्यात गुणे हैं ॥

पदानिवासी जगत्परायण पक्षैतद्वृत्तं पश्येत् और विषयस्वरूपं सहित सर्वावधारितिका अर्थः १ अर्थाय १ अर्थ ८

(२) इन्द्रियानुवादेन-एकेन्द्रियविकलेन्द्रियेषु गुणस्थानमदो नास्तीत्यल्पबहुत्वाभाव ॥ इन्द्रियं प्रत्युच्यते ।

पंचेन्द्रियाद्येकेन्द्रियान्ता उत्तरोत्तरं बहव ॥ पंचेन्द्रियाणां सामान्यवत् ।

(२) इन्द्रिय अनुवादेनः, एकेन्द्रिय-विकले-

इन्द्रियेषु गुणस्थान-वेदाः, ॥ तच्छ्रुतिः ॥

इति अन्य बहुत्व-अभावः, ॥

इन्द्रियम् ॥ प्रति उच्यते ॥

पंचेन्द्रिय प्रादि-एकेन्द्रिय-अन्ताः, ॥ उत्तरोत्तरम्, ॥

बहवः, ॥

पंचेन्द्रियाणाम्, ॥ सामान्य-

वत् ॥

(असंखत सम्पद्वृद्धिर्बोसे) मिथ्यापट्टी (वेद्य) असंख्यास्तुमे है ।

= (२) इन्द्रियकी अपेक्षासे एकान्द्रिय (कीव) और विकल (दो-कीन-चार)

= इन्द्रियवाले (कीवो) में गुणस्थान विशेष नहीं है

= (इनके मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है) ऐसे (गुणस्थान प्रसि) अस्य बहुत्व नहीं है

= इन्द्रियोंकी अपेक्षासे (= प्रति) (अस्य बहुत्व) कहा जाता है

= पांच इन्द्रियवाले कीवोंसे (= आवि) एक इन्द्रियवाले कीवों तक आगे आये

= अधिक है अर्थात् पांच इन्द्रियवाले कीवोंसे चार इन्द्रियवाले कीव अधिक

हैं । चार इन्द्रियवालोंसे तीन इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ तीन इन्द्रियवालोंसे दो

इन्द्रियवाले अधिक हैं दो इन्द्रियवालोंसे एक इन्द्रियवाले कीव अधिक हैं ऐसे

आगे आये बहुतवा है ॥

= पांच इन्द्रियवालोंका (परस्पर अत्य बहुत्व) संक्षेपमें (कथित गुणस्थान)

= सहस्र है । अर्थात् चार अपूर्वकृत्य-अनिवृत्तिकरण-वृत्तसाम्यराय-उपशान्त-

कृत्य उपशमभेदीवाल प्रत्येक गुणस्थानमें २९९ वा (केन्द्र आचार्योक्त

मतमें) ३०० अथवा (अन्य आचार्योंके मतमें) ३०४ युनि हैं और इन प्रत्येक

प्रत्येक गुणस्थानकी संख्या क्षेत्र प्रत्येक गुणस्थानोंके जीवोंकी प्रयोग सबसे

अत्य वा घटती है । और चार अपूर्वकृत्य-अनिवृत्तिकरण-वृत्तसाम्यराय

धीनकृत्यरायकृत्यभेदीवाले प्रत्येक गुणस्थानमें ५९८ वा (केन्द्रके मतमें)

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ॥ सामान्यवत् *

= काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संशेष (अक्षरणमें पूर्वाक्त गुणस्थान) क्त है अर्थात् अयोगक्षेत्रलियोंको छोड़कर शुद्ध २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यावृत्तीधीन असंस्थात गुणे हैं (२९९ के अन्त तक पदलो) = [५] वेद(स्त्री-पुल्ल-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुवेद वालोंका = (अल्प-बहुत्व) पाँचन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् शुद्ध २९८ में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविधिं नयमा गुणस्थानका सवेद माग पर्यंत मार्क्सै सीम वेद है और द्रव्यतै एक पुल्ल वेवही है" गोमटसार मुद्रित पु ५९३ गाथा २७१ ॥ नवर्मा गुणस्थानके प्रथम तीनमाग मात्रवेदसहित हैं । अन्त्यके तीनमाग (किनको अगतमात्रवेद कहते हैं) मात्रवेद रहित हैं । इसलिये नवर्मा गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुल्ल वेदियोंका अल्पबहुत्व होगा ॥ वह ऐसी है कि अपूर्वकरव

[५] वेद अनुवादेन ; स्त्री-पुल्ल-वेदानाम् ॥
पंचेन्द्रियवत् *

(१) "प्राचिन मोहनोक्तक मेघ लोकनाथ वीरहल्ल पुष्पकेश लोचन नृप सकवेद नामा प्रकृति विनते कवयतं माव जो चेतस्त्व षपयोग सैवि विर पुत्र को नृप सकल्प जीव हो हैं । बहुवि निर्माक नामा नाम कर्म के बरकरारि संयुक्त च गोपयोग विनोक्तरूप नाम कर्मको प्रकृति के कवयतं द्रव्य जो पुत्रजीवक परागतीति विर पुष्पक लो नपुंसक हा है । सा ही कतिप है पुत्र्य पवक उद्यतं त्रीका क्षमिमायरूप मैथुन सबाका धारी जीव सो माव पुत्र हा है । बहुवि स्त्रीवत् के इत्यतै पुत्र्य का अस्मिमायरूप मैथु । संबाका धारक जीव माव स्त्री हा है बहुवि नपुंसकवेव के उद्यतै पुत्र्य अथ स्त्री रोजनका गुणप्रद अस्मिमायरूप मैथुन संबाका धारक जीव सो माव नपुंसक हा है बहुवि निर्माण माव कर्मका उद्य संयुक्त पुष्प वेदरूप आकारका विनाग विर अगार्यमा तासे माव कर्मका उद्यतै----- भूत बाधो लिग्यादिक किम्ह संयुक्त शरीरका धारक जीव सो प्याविका प्रथम ममपतं लगाय अत ममप पर्यत द्वय पुष्प हो है ॥

प्राप्तिनामी पगरूपसहाय कर्त्तृल कृत पदच्छेद और पितृसमर्थ सहित स्वार्थसिद्धिका कष्टद्वय विदी अनुवाद । अत्राप १ सूत्र ८
 कायानुवादेन— स्थावरकायेषु गुणस्यानभेदाभावात्पवद्वृत्त्याभाव ॥ काय प्रत्युच्यते । सर्वतस्तेन
 मायिका अत्या । ततो वहव प्रथिवीकायिका । ततो वातकायिका । सर्वतोऽनन्तगुणा
 वनस्तस्य ॥ त्रमकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत् ॥ [४] योगानुवादेन — वाहमानमयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत् ।

[३] काय अनुवादेन । स्थावर-कायेषु ।

गुणगाननेन प्रमाणात्, अत्य-महत्त्व-अभावः ।

कायम्, प्रतिष्ठ उच्यते सर्वतः अत्या ।

तत्र-मायिका । ततः वहव, पृथिवी कायिका ।

ततः अपकायिका । ततः वातकायिका ।

समस्तः अनन्त-गुणाः । वनस्तस्यः ।

त्रमकायिकानाम् । पञ्चेन्द्रियवत् ।

[४] योग अनुवादेन । वाहमानम-योगिनाम् ।

पञ्चेन्द्रियवत् ।

= (३) कायके कथनसे स्थावर (पृथिवी अप-सेखो-बायु-वनस्पति) कायामे

= गुण रथानमें भेद न होने (के हेतु) से थोड़े बहुतपनेका अभाव है

(क्योंकि समस्त स्थावर कायेकि एक सिध्दात्त प्रथम गुणस्थान ही होता है)

(अतः गुणस्थानकी अपेक्षासे कुछमी अत्य बहुत नहीं हो सका है)

= कायकी अपेक्षासे (अत्य बहुत) कदावाता है । समसे थोड़े

= अनल कायिक हैं । तिन (अनल कायिक) से भूमिकायिक बहुत हैं

= उन (भूमिकायिकोंसे) उल कायिक (बहुत) हैं । तिन (उलकायिकोंसे)

पवन कायिक (बहुत) हैं

= समसे अनन्तगुणे वनस्पति (कायिक) हैं

= त्रमकायिकोंका (अत्य-महत्त्व) पञ्चेन्द्रिय समान है अर्थात् पञ्चन्द्रियवाले

जीवोंसे चार इन्द्रियाले जीव अधिक हैं । चारइन्द्रियवालेजीवोंसे तीन इन्द्रिय

वासे जीव घने हैं । तीन इन्द्रियाल जीवोंसे दो इन्द्रियवाले बहुत हैं ॥ पांच

इन्द्रियवालोंका परस्पर अत्य बहुत गुणस्थानवत् है ॥

(देखो-चारअपूर्वकरण इत्यादि लेखसे एष्ट २९८में और २९९ के अन्तर्गत)

= [४] योगके कथनानुसारतः पवन मन योगियोंका [अत्य-बहुत]

= पांच इन्द्रियाल जीविक अत्य-बहुतके सदृश हैं । अर्थात् पांच इन्द्रियवालोंका

अत्य-बहुत गुणस्थानवत् [एष्ट २९८से २९९ के अन्तर्गत] है

पटा निवासी मगरूपसंज्ञाव शरीरलक्षण स्वच्छेद् और विमलस्पर्श सहित सर्वांगसिद्धिका सम्पत्ताः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८

नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कषायानुवादेन-क्रोधमानमायाकायाणां पुंवेदवत् । अयं तु विशेष-मिथ्यादृष्ट्योजनन्तगुणाः ॥ लोभकषायानां द्वयोस्त्यशमवयोस्तुत्या सस्या । क्षपका

नपुंसकवेदानाम् ॥ अवेदानाम् ॥ च

सामान्यवत्*

=नपुंसक वेद वालोंका तथा (=च) वेद (भाववेद) बर्तित

(हस्तसागरावसे प्रयोगवेत्तली गुणस्थानवर्ति) निका (अल्पबहुत्व)

=क्षेप (प्रसंगमें पहिले कथित गुणस्थान) समान है अर्थात् नपुंसक भाववेदी मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्थान तक है । और भाववेद रहित दृष्टवां गुणस्थानसे चौदहवां तक हैं ॥ देखो पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकरण मिथवालासे अस्त्यस्त गुणे शेष तीन गतिके जीव ह । मिथ्या दृष्टीजीव नपुंसकलिनी अनंतगुणे हैं क्योंकि स्त्रीलिङ्ग पुच्छिगजीव पंचेन्द्रिय होत हैं । और सैनी (मनसहित) होते हैं (देखो चौबीसस्थाना प्रथम) परन्तु नपुंसक लिनी जीव एकेन्द्रिय-श्रीन्द्रिय-श्रीन्द्रिय-बहुतिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सैनी अर्सेनी दोनों होते हैं (देखो चौबीसस्थानाप्रस्थ)

=(६) कषायके कयनानुसारसे क्रोध-मान-रूप कषायवालोंका (अल्प बहुत्व)

=मुला वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रिय वत है अतः क्रोध मान-माया-कषाय वालोंका अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियवत् है) पंचेन्द्रिय जीवोंके अल्प बहुत्व के लिये " चार अपूर्व २९८ से २९९ पृष्ठ के अन्त)

=परन्तु येद यह है कि मिथ्यादृष्टि (पुरुष गुणस्थानवालोंसे) अन्तर्गुणे हैं

=लोभकषायवासे दो (अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण) उपशमभेदीवालोंकी

=समान गणना है । (उन दो उपशमभेदीवालों से) क्षपकश्रेणी

क्षय-अनुवादेन-क्रोध-मान-माया-कषायानाम् ॥

पुंवेदवत्*

अयम् ॥ तु* विशेषः ॥ मिथ्यादृष्ट्याः ॥ अनन्तगुणाः

लोभकषायानाम् ॥ इत्योः ॥ उपशमकयोः ॥

तस्याः ॥ संख्या ॥ क्षपकाः ॥

और अनिवृत्ति क्षात्र उपक्रमेणैवाले जीव भाव पुरुषवेदी और भाव क्षीवेदी सबसे छोटे हैं २९९ वा ३०० वा ३०४ प्रत्येकगुणस्थानके ऐसे भाव नपुंसकवेदी पटादिये जावें तो भाव पुरुषवेदी और भाव क्षीवेदी शेष रह जावेंगे । इनसे संख्यातगुणे प्रत्येक अपूर्वकरण क्षणकभेणी और अनिवृत्तिकरण क्षणकभेणी होने क्योंकि इन प्रत्येक दोनों गुणस्थानोंमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ जीव दत्तकृति तीनों वेदवाले हो सके हैं । अप्रमत्त संयमी इनसे संख्यातगुणे हैं क्योंकि इनकी संख्या तीनों वेदवालोंकी २९६९९१०३ हो सकती है । इनसे अधिक प्रमत्तसंयमी हैं क्योंकि तीनों वेदवालोंकी संख्या ५९३९८२०६ जीव हैं ॥

वेपथेके लिये देखो उक्त प्रमत्तसे अन्य उक्त पृष्ठ २९९

बहुरि निमात्र नामका भय संशुक्त स्त्रीवेदका आकारका विशेष स्त्रीय क्षणोपयोगिता नामकर्मों परवर्तें रोमरहित युक्त स्तन योनि इत्यादि विष्णुसंशुक्त शरीरका घटक जीव तो पर्यायका प्रथम समर्थतः कणात् अतस्तमवर्षित द्रव्य स्त्री हारा है बहुरि निर्माण नामका उदयते संयुक्तनपुंसकवेदकय आकारका विशेष सिद्ध अंगोपांगिता नामकृतिदेव उदयते द्रुष्ट अङ्गी इत्यान् वा स्थान योनि र गतिक शक्त क्लिष्ट रहित शरीरका घटक जीव तो पर्यायका प्रथम समर्थतः कणात् अतस्तमवर्षित द्रव्य नपुंसक हो है । सा प्रायेण कश्चिद् बहुलताकरि तो समान वेद हारै जैसा द्रव्यवत् हारै तैसाही भाववेद हारै बहुरि स्त्री स्मान द्रव्य न हो है द्रव्यवेद अन्य हारा भाव वेद अन्य हारा । तहाँ देव अर भारती अर भानभूमिवां तिर्यक् मनुष्य भित्तिके तो जैसा द्रव्यवेद है तैसा ही भाववेद है बहुरिकर्म भूमिवां तिर्यक् अर मनुष्यवर्षित कर्म जीववर्षित तो जैसा द्रव्यवेद हो है तैसाही भाव वेद है बहुरि कर्म जीववर्षित द्रव्य हो है अर भाववेद अन्य हा है द्रव्यते पुनर है अर भावते पुनरका अभिजातकय पुरुषवेदी है वा स्त्री अर पुनर शक्ति का अभिजातकय न पुनरवेदी है । जैसे ही द्रव्यते स्त्री वेदी है भावते स्त्री का अभिजातकय पुरुषवेदी है वा द्रव्यका अभिजातकय नपुंसक वेदी है । बहुरि द्रव्यते नपुंसक वेदी है भावते स्त्री का अभिजातकय पुरुषवेदी है वा पुनरका अभिजातकय नपुंसक अर आत्मवर्षित ब्रह्मा गुणस्थानका स्वेद भाग वर्षित भावते स्त्री वेद है अर द्रव्यते पुरुषवेदी है जैसा अविशेष जानना, मुद्रित पृष्ठ ५९२, ५९३ ॥

पुरुषवेदीका परिणाम द्रव्यकी अग्नि समान है । स्त्री वेदीका परिणाम कशीरकी अग्नि समान है नपुंसक वेदीका परिणाम पञ्चापाकी अग्नि समान है जैसे सीताही आसिके परिणामकी ओ पीला सीहरिकरि अर रहित भय है जैसा भाववेद अथवा अभिवृत्तिकरणका अपगत वेद भागते समग्र अयागी पर्यंत का द्रव्य सादरवत् अथवा गुणस्थानातीत सिद्ध भागवान् आर्त्तन ॥ गो जीव मुद्रित पृष्ठ ५९८

पटा निवासी जगत्समूहाय परीक्षकः कश्चिन्म और विमर्शपूर्ण सहित स्वीकृतिका शुद्धता । अन्त्या १ पृष्ठ ८
नपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ॥ (६) कथायानुवादेन-कोषमानमायाकथायाणां पुंवेदवत् । अयं तु
विशेष' मिथ्यादृष्ट्योऽनन्तगुणाः ॥ लोभकथायाणां द्वयोः सप्तमवयोस्तुत्या सख्या । क्षपका

नपुंसकवेदानाम् ॥ अवेदानाम् ॥ च

सामान्यवत्*

=नपुंसक वेद वालोंका तथा (=च) वेद (भाक्वेद) वर्जित
(दससत्ताम्परायसे प्रयोगवेकली गुणस्वानवर्ति) निका (अल्पशुल्व)
=क्षेत्र (प्रसंगमें पहिले कथित गुणस्वान) समान है प्रधात नपुंसक भाषवेदी
मिथ्यात्व प्रथम गुणस्वानसे अनिवृत्तिकरण नवमें गुणस्वान तक है । और
भावेद रहित दसवां गुणस्वानसे चौदहवां तक हैं ॥ देखो पृष्ठ २९८ चार
अपूर्वकरण मिथवालोंसे असंख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं । मिथ्या
ष्टीवीव नपुंसकलिगी अन्तगुणे हैं क्योंकि क्षीलिग पुष्टिगजीव पंचेन्द्रिय होत
हैं । और सैनी (मनसहित) होते हैं (देखो चौबीसस्वाना प्रथम) परन्तु नपुंसक
लिगी जीव एकेन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय सैनी असेनी
दोनों होते हैं (देखो चौबीसस्वानाग्रन्थ)

कथायानुवादेन-कोषमान-माया-कथायाणाम् ॥

पुंवेदवत्*

=(६) कथायके कथनानुसारसे कोष-मान-कषट कथायवालोंका (अल्प शुल्व)
=पुला वेद समान है (और पुरुषवेदका अल्प शुल्व पंचेन्द्रिय कष है अतः कोष
मान-माया-कथाय वालोंका अल्प शुल्व पंचेन्द्रियवत् है) पंचेन्द्रिय जीवोंके अल्प
शुल्व के लिये " चार अपूर्व २९८ से २९९ पृष्ठ के अन्त)

अयम् ॥ तु* विशेषः ॥ मिथ्यादृष्टाः ॥ अनन्तगुणाः

लोभकथायाणाम् ॥ द्वयोः ॥ उपशमकत्वोः ॥

तुत्या ॥ सख्या ॥ क्षपकाः ॥

=परन्तु मेव यह है कि मिथ्यादृष्टि (पृष्ठ ६ गुणस्वानवालोसे) अनन्त गुणे हैं
=लोभकथायावाले दो (अपूर्वकरण-अनिवृत्तिकरण) उपशमक्रेणीवालोंकी
=समान गणना है । (उन दो उपशमक्रेणीवालों से) क्षपक्रेणी

प्रातिवासी अगस्त्यप्राय वसीलकृत शब्दोद और विषयन्यय सहित सर्वाभिहितिका उपपन्न। प्रियाय १ सत्र ८
मंन्येयगुणा । सक्षप्रमाप्तराय शुद्धयुगमवमयता विशेषाधिका । सूक्ष्मभारयक्षपकाः संस्येयगुणा ।

अयाणा सामान्यवत् ॥

संस्वयेय-गुणा ॥

= (अपूर्वकरण आठवां अनिवारिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संस्वातगुणे हैं अर्थात्
प्रत्येक उपपन्नमन्त्रिकी आठवें-नवमं गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं वा कैरि क आचार्यों
के मतमें ३०० प्रसङ्गा अन्व के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक एक के मुनिके
आठवें-नवमं गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं, किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपपन्नमन्त्रिकी से प्रत्येक एक में
संस्वात गुणे हुए

गुणस्थानमाप्तराय शुद्धि-उपपन्नमन्त्र-संस्वात ।

विशेष अधिका ॥

गुणस्थानमाप्तराय-क्षपकाः ॥

संस्वयेय गुणा ॥

= (उत्त संस्वातपराय उपपन्नमन्त्र) संस्वातपराय एकसंश्रितवाले
संस्वातगुणे हैं क्योंकि उपपन्नमन्त्र संस्वातपराय २०९ वा ३०० वा ३०४ ई और
संस्वातपराय एक ५९८ वा ६०० वा ६०८ है

= (उत्त संस्वातपराय उपपन्नमन्त्र) संस्वातपराय एकसंश्रितवाले

संस्वातगुणे हैं क्योंकि उपपन्नमन्त्र संस्वातपराय २०९ वा ३०० वा ३०४ ई और
संस्वातपराय एक ५९८ वा ६०० वा ६०८ है

= (उत्त संस्वातपराय उपपन्नमन्त्र) संस्वातपराय एकसंश्रितवाले
संस्वातगुणे हैं (उपपन्नमन्त्र-संश्रितपराय-संयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती)
निका (अन्त-बहुत्व परस्पर)

सामान्यवत् ०

= संश्रित (प्रकरणमें गहिले कहा हुआ गुणस्थान) संश्रित उपपन्नमन्त्रपराय
गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । भिन्न
कथाय में इन से होने हैं अतः उपपन्नमन्त्रपराय से हीनकथायमें संस्वात गुणे हैं ॥
संयोगकेवली ८९८५०२

एटानियामी क्सारुसहाय परीलङ्कृत फरफेय और विमरस्यर्थ सहित सर्वाथेतिदिका अन्वयः विदीजनवाद् अभ्याय १ सूत्र ८
 काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

= काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (अक्षरमें पूर्वाक्त गुणस्थान) क्या है
 अर्थात् अयोगकेअलियोंको छोड़कर श्रुत २९८, २९९ में चार अपूर्व
 पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुण हैं (२९९ के अन्त तक पदलो)
 = [५] वेद(स्त्री-पुंस्त्व-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका
 = (अल्प-बहुत्व) पंचेन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् श्रुत २९८
 में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानक है और "आगमविप्रे नवमा
 गुणस्थानका सकेद भाग पर्यंत भाविते रीति वेद हैं और ब्रह्मसं एक पुरुष
 वेदही है" गोम्भटसार अत्रित श्रुत ५९३ गाथा २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके
 प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (विन्ध्यो अपसतभावेद
 छन्दो हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम
 गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुंस्त्व वेदोंका अल्पबहुत्व
 होगा ॥ यह ऐसी है कि अपूर्वकरण

काय-योगिनः ; सामान्यवत् *

[५] वेद अनुवादेन ; स्त्री-पुंस्त्व-वेदानाम् ।
 पंचेन्द्रियवत् *

(१) "आदिश सोदानेनका मेर नोक्तान् एवैरूप पुरुषमेव लोके न्यु सकेवेद नामा प्रकृति दिनहे फरबर्हि भाव सो केवेदय उपयोग रीति विव
 पुरुष स्त्री न्यु सकरूप जीव हो हैं । बहुदि निर्माण नामा नम कर्मे के उपरकारि संयुक्त का गोवेगका विशेषरूप नाम कर्मेको प्रकृति के फरवर्हि द्रव्य सो
 पुत्रोक्त पर्यावर्तीति विपरी पुरुष स्त्री नपुंसक हो हैं । सा ही कश्चि है पुरुष वेदके उपरर्हि स्त्रीका अस्मिन्नारूप मैयुग संवाका घाटी जीव सा मीव
 पुरुष हो है । बहुदि स्त्रीवेद के उपरर्हि पुरुष का अस्मिन्नारूप मैयुग संवाका घाटक जीव स्त्री हा है बहुदि नपुंसकवेद के उपरर्हि पुरुष अब स्त्री
 वादानका युगम्भ अस्मिन्नारूप मैयुग संवाका घाटक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुदि निर्माण नाम कम्पका अवय संयुक्त पुरुष वेदका आकारका
 विराय छि (संतोषमि भासे नाम कर्मेका उपरर्हि)— मैयुग बाधो छिन्नाविकि किन्ध संयुक्त घाटीरका घाटक जीव सो पर्वोवका प्रथम नामनर्हि क्षाण्य
 अन्त ममप पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

एतन्निवासी अगुरुस्वरूप बलीलङ्घन पदच्छेद और विषयान्वय सहित सर्वांगसिद्धि का अन्वयः विंदी अनुवाद । अस्याय १ श्रव ८
मन्त्रेयगुणा । सूक्ष्मसाध्यराय शुद्धयुपगमकमयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाध्यरायक्षयकाः संस्थेयगुणाः ।
दायाणा भामान्यवत ॥

मन्त्रेय-गुणाः ॥

=अथ पूर्वकरण आठवां अनिवारिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संस्थायगुणे हैं अर्थात्
प्रत्येक उपसृष्टयणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ सुनि हैं वा दैनिक व्यापारों
के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षणक क्षणिक
आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ सुनि हैं, किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपसृष्टयणीवाले से प्रत्येक क्षणक में
संस्थाय गुणे हुए

गुणस्थानायशुद्धि-उपसृष्टय-संवता ।
विशेष अधिकाः ॥

=सूक्ष्मसाध्यराय शुद्धसंपन्न उपसृष्टयणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
=विशेषकरि अधिक हैं

गुणस्थानाय-क्षयकाः ॥
मन्त्रेय गुणा ॥

=(उन सूक्ष्मसाध्यराय उपसृष्टयफले) सूक्ष्मसाध्यराय क्षणकभूतिवाले
संस्थायगुण हैं क्योंकि उपसृष्टय सूक्ष्मसाध्यराय २०९ वा ३०० वा ३०४ हैं और
सूक्ष्मसाध्यराय क्षणक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

नैपाणाम् ॥

=जबे हुये (उपसृष्टयकपाय-सीम्नकाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती)
निका (अत्य-बहुत्व परस्पर)

भामान्यवतः

=संक्षेप (प्रकरभों पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सरल है अर्थात् उपसृष्टयकाय
गुणस्थानमें विभिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ सुनि हैं । सीम्न-
काय में इन से इने हैं अर्थात् उपसृष्टयकाय से सीम्नकायमें संख्याय गुणे हैं ॥
सयोगकेवली ८९८५०२

पटानिवासी अमरूपस्वाय वकीलकुल पदच्छेद और विषयार्थ सहित सर्वाथसिद्धका क्षयशः रिदीचनुवाद अप्याय १ सूत्र ८

कायोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन— स्त्रीपुंवेदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ; सामान्यवत् *

= कामयोगियोंका (अत्य-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) कथ है
अर्थात् अयोगवेदलियोंको छेदेकर शुद्ध २९८, २९९ में चार अपूर्व
पंचेन्द्रिय भिन्नादृष्टीजीव असंख्यात गुणों हैं (२९९के अन्त तक पदलो)

[५] वेद अनुवादेन • स्त्री-पुं-वेदानाम् ।

पंचेन्द्रियवत् *

= [५] कथ(स्त्री-मुख्य-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका
= (अत्य-बहुत्व) पांचान्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् शुद्ध २९८
में पंचेन्द्रियों का अत्य बहुत्व गुणस्थानकथ है और "आगमविधि नैवमा
गुणस्थानका सत्य भाग पर्यंत मार्केतें तीन वेद हैं और द्रव्यतै एक पुरुष
वेदही है" गोमटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गांधी २७१ ॥ नवमां गुणस्थानके
प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तर्के तीनभाग (जिनको अपमसभाववेद
कहते हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमां गुणस्थानसे भिद्यत्वात् प्रथम
गुणस्थान के अर्थमें जो अत्य बहुत्व है वही स्त्री-मुख्य वेदियोंका अत्यबहुत्व
होगा ॥ वह एसी है कि अपूर्वत्वस्य

(१) "चारित्र्य मोक्षलोचका मेद नोक्याय वीक्षरूप पुरुषवेद सविदे न्यु सचक्षेय नाभा प्रवृत्ति विनये छदबतं भाव जो चेतन्य रूपयोग सीद्धि (नय
पुत्र्य स्त्री न्यु सकल्प जीव हो हैं । बहुवि निर्माण नाभा नय कर्म के कथकरि संयुक्त अ गोपयोगका विशेषरूप नाम कर्मको प्रवृत्तिके छदबतं द्रव्य जो
पुत्रजीव परांपरीति विधि पुरुष स्त्री नपुंसक हा हैं । सा ही करिदे है पुरुष वेदके अर्णमं स्त्रीका अभिमानरूप मैयुन संज्ञाका घाटी जीव सो भाव
पुत्र्य दा है । बहुवि स्त्रीयेव के अर्णमं पुरुष का अभिमानरूप मैयुन संज्ञाका घाटक जीव भाव स्त्री हा है बहुवि गर्भमद्वैव के अर्णमं पुंयव कथ स्त्री
बाटा/नक्त गुणमन् अभिमानरूप मैयुन संज्ञाका घाटक जीव सो भाव नपुंसक हो है बहुवि निर्माण नाम कर्मका अर्थ संयुक्त पुरुष वेदरूप आकारका
विशेष छि (अंगोपम भावे कर्मका अवयव) — मैयुन कर्मो विगद्वि न मिष्ट संयुक्त गरीरका घाटक जीव सो पौर्याका प्रथम नयपतें लगाय
अस्त ममव पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

प्राणिनामी जगत्पञ्चाय पक्षीलङ्घन वरश्छेद और विषमर्थयं छदित सर्वांशोसिद्धि का मुख्यः सिद्धी अनुवाय । अथाय १ अथ ८
मन्येयगुणा । सूक्ष्ममाप्तराय शुद्धयुगमकमयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्प्रदायक्षयकाः संस्येयगुणाः ।
शराणा सामायवत ॥

मन्येय-गुणाः ॥

= (अपूर्वकर आठवां अनिष्टविकरण नवमां गुणस्वानवाले) संस्मात्तुगे हैं अर्थात्
प्रत्येक उपद्रुमकेषीके आठवें-नवमें गुणस्वानमे २९९ मुनि हैं वा केरिक्त आठवां
के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक एक एक केरिक्त
आठवें-नवमें गुणस्वानमे ५९८ मुनि हैं, किन्तीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपद्रुमकेषीवाले, तो प्रत्येक एक में
संस्मात्तु गुणे, इय

सम्भाम्प्रायशुद्धि-उपद्रमक-संगता ।
विशेष अधिकाः ॥

सम्भाम्प्राय-इच्छाः ॥

संस्त्रेय गुणा ।

प्राप्ताम् ॥

= (उत्सर्गपराय शुद्धसंगत उपद्रमकृणीवाले दशवर्ष गुणस्वानवर्षी
= विशेषकर अधिक हैं

= (उन दसवर्षपराय उपद्रमकृत्से) दसवर्षपराय उपद्रमकृतीवाले
संस्मात्तुगे हैं क्योंकि उपद्रमकृत् दसवर्षपराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और

दसवर्षपराय एक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं
= यने हुये (उपद्रमकृत्प्राय-संश्लेषण-संयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्वानवर्षी)
निका (अन्य-शुद्ध परस्पर)

= संश्लेष (प्रकारमें यहिले कहा हुआ गुणस्वान) सख्य है अर्थात् उपद्रमकृत्प्राय
गुणस्वानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । किन्ति-
कथाय में इन से इने हैं अतः उपद्रमकृत्प्राय से संश्लेषणप्रायमें संस्मात्तु गुणे हैं ॥

संयोगकेवली ८९८५०२

एटानियासी अमरूपस्त्राय कसिल्लूय फण्छेय और सिगकण्य मलित सर्वाथिसिद्धिका सुब्बका: विदीजनुवाद अप्पाय १ ध्व ८

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन— स्त्रीपुवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ॥ सामान्यम् ॥

= काययोगिनीका (अत्य-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) क्त है अर्थात् अयोगक्षेत्रादिमोक्षो छेदकर शुद्ध २९८, २९९ में चार अपूर्व पंचेन्द्रिय मिथ्यावृष्टीधीव अस्थायत गुण हैं (२९९ के अन्त तक पढ़लो) = [५] वेद (स्त्री-मुख-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका = (अत्य-बहुत्व) पांचेन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् शुद्ध २९८ में पंचेन्द्रियों का अत्य बहुत्व गुणस्थानक्य है और "भागमविद्ये नवमा गुणस्थानका तवेद भाग पर्यंत मार्क्के तीन वेद हैं और द्रव्यतै एक पुरुष केदरी है" गोमटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ नर्कमा गुणस्थानके प्रथम तीनभाग भास्वेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (विनको अपगतभास्वेद छेदते हैं) भास्वेद रहित हैं । इसलिये नवमा गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम गुणस्थान के जीवोंमें जो अत्य बहुत्व है वही स्त्री-मुख वेदीयोंका अत्यबहुत्व होगा ॥ वह ऐसी है कि अपूर्वकरण

[५] वेद अनुवादेन ॥ स्त्री-मुख-वेदानाम् ॥
पंचेन्द्रियवत् ॥

(१) "कारिण मोदनीबच्च मेव नोकचाव गीहल्लय पुरुषवेद स्त्रीवेद ननु सक्षेप नामा प्रकृति विनते छव्यते भाव जो चेतन्य रूपयोग सौद्धि विव पुरुष की ननु सक्षेप जीव हो हैं । बहुरि निर्माण नामा मम कर्म के व्यवहारि संयुक्त अ गोपगण्य विशेषरूप नाम कर्मको प्रकृति के छव्यते द्रव्य को पुद्गलीकृत पर्याप्ततीति स्विं पुरुष की नपुंसक हा है । सा ही कश्चित है पुरुष वेदक; उपगत स्त्रीका अभिनायक्य मैयुक्त संवाक्य घारी जीव सा माव पुरुष हा है । बहुरि स्त्रीवेद के श्वर्स्ते पुरुष का वसिष्ठाण्णय मैयुक्त संवाक्य धारक जीव सा ही है बहुरि नपुंसकवेद के छव्यते पुरुष ब्रह्म स्त्री वाग्वान्त्र युगम्त्र अभिनायक्य मैयुक्त संवाक्य धारक जीव सो भाव नपुंसक हा है बहुरि निर्माण नाम कर्मका उदय संयुक्त पुरुष वेदक्य आकारका विराज जि ८ अगोपाम भासे माव कर्मका अव्यर्त्त— मैत्र कर्मो द्दिगपदिक सिन्द संयुक्त शरीरका धारक जीव सो पर्यायका प्रथम समर्थतै कर्णाग अन्त समर्थ पर्यंत द्रव्य पुरुष हो है ॥

पठानिवामी जगरूपमदाय यक्षीत्पुनः पश्च्छेदं और विनाशपर्यंत सहित सर्वांगसिद्धिका मुख्यतः द्विवी, अनुवाद । अप्याप १ पुत्र ८
मन्त्रेयगुणा । सूक्ष्मसाधारणयक्षपकाः संस्त्रेयगुणाः ।
अथाणा सामान्यवत ॥

संस्त्रेय-गुणाः ।

= (अपूर्वभूत आठवां अनिष्टिकरण नवमां गुणस्थानवाले) संस्त्रेयगुणे हैं अर्थात्
प्रत्येक उपद्रुमश्रेणीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं वा द्वैत आठवां
के मतमें ३०० भयवा क्षुत् के मृगानुसार ३०४ है और प्रत्येक, दसक श्रेणीके
आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किस्तीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
प्रत्येक प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपद्रुमश्रेणीवाले से प्रत्येक क्षुत्क में
संस्त्रेय गुणे हुए

सामान्याभ्यासगुण-उपद्रुमक-संस्त्रेयः ।

निर्देश अधिक ।

सामान्याभ्यास-उपद्रुमकः ।

मन्त्रेय गुणा ।

नेपाणाम् ॥

= दससर्वाभ्यास गुणस्थान उपद्रुमश्रेणीवाले दशवां गुणस्थानवर्ती
= विद्योपनर्ती अधिक हैं

= (उन दससर्वाभ्यास उपद्रुमक) दससर्वाभ्यास क्षुत्कश्रेणीवाले
संस्त्रेयगुणे हैं क्योंकि उपद्रुमक दससर्वाभ्यास २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और
दससर्वाभ्यास क्षुत्क ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

= यों हुए (उपद्रुमकभास-सर्णिक्भास-सयोगक्षेत्री-अयोगक्षेत्री गुणस्थानवर्ती)
निका (अन्त-मनुष्य परस्पर)

सामान्यवतः

= संक्षेप (प्रकरणों पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सारक्ष है अर्थात् उपद्रुमकभास
गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षीण
कभास में इन से इने हैं अतः उपद्रुमकभास से क्षीणकभासमें संस्त्रेय गुणे हैं ॥
सयोगक्षेत्री ८९८५०२

गणानिवामी अगारूपमहाय बभ्रितकृत पदच्छेद और विमलार्थ सहित सर्वाधिसिद्धिका सुपुत्र विहीननुवाद अप्याय ? कृत् ८

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवेदाना पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ; सामान्यवत् *

= काययोगियोंका (अल्प-बहुत्व) संक्षेप (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है
अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर शुद्ध २९८, २९९ में चार अपूर्व
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टीजीव असंख्यात गुणों हैं (२९९के अन्त तक पड़लो)
= [५] वेद (स्त्री-पुंस्व-नपुंसक) की अपेक्षासे स्त्री-पुंवेद वालोंका
= (अल्प-बहुत्व) पांचेन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् शुद्ध २९८
में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमैक्यं नवमा
गुणस्थानका सर्वेद भाग पर्यंत मार्क्सों तीन वेद हैं और द्रव्यतै एकं पुंस्व
वेदही है" गोमटसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ याथा २७१ ॥ नवमो गुणस्थानके
प्रथम तीनभाग भाववेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (स्मिन्को अपातमावेद
कहाये हैं) भाववेद रहित हैं । इसलिये नवमो गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम
गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुंस्व वेदियोंका अल्पबहुत्व
होगा ॥ वह ऐसे है कि अपूर्वकरण

[५] वेद अनुवादेन : स्त्री-पुंस्व-वेदानाम् ;
पंचेन्द्रियवत् *

(१) "बाह्य मोहनीयका वेद लोकपात्र वीहृत्पु पुंस्ववेद स्त्रीवेद न्पु सद्भवेत् नामा प्रकृति विन के छवयै माव जो घेतय उपभोग रीति विव
पुत्र को न्पु सकल्प जीव हो हैं । बहुत निर्माण नामा आम कर्म के वदवदरि संयुक्त का गोप्यका विशेषरूप नाम कर्मको प्रकृति के वदयै द्रव्य जो
पुंस्वकीक पर्यायीति विन पुंस्व स्त्री नपुंसक हा है । सा ही कतिप है पुंस्व वदके उत्पत्त स्त्रीका अभिजात्यक मैयुन संज्ञाका चारी जीव सो माव
पुत्र हा है । बहुत स्त्रीवेद के श्रवण पुंस्व का अभिजात्यक मैयुन संज्ञाका धारक जीव भाव स्त्री हा है बहुत नपुंसकवेद के वदयै पुंस्व अक स्त्री
वाचनत गुणम् अभिजात्यक मैयुन संज्ञाका धारक जीव सो माव नपुंसक हा है बहुत निर्माण नाम कर्मका वदय संयुक्त पुंस्व वेदक्य भावाका
विन विर अगणनीय नामा आम कर्मका वदयै----- येन यको जिगाधिक विन संयुक्त गरीरका धारक जीव सा पर्यायक प्रथम समयै लगाय
अस समय पूर्वत द्रव्य पुंस्व हो है ॥

ज्जानित्वामी जगत्पद्मद्वय पत्नीत्युक्तं पदच्छेद और विमलन्ययं महिष सर्वाधिकशिक्षिका छन्दःशः द्विती अनुवाद । अभ्यास १ सूत्र ८
 मन्त्रेयगुणा । सधमाम्पराय शुध्दयुगमकमयता विशेषाधिका । सुद्धमाम्परायक्षपकाः संस्येयगुणा ।
 अयाणा मामान्यवत् ॥

मन्त्रेय-गुणाः ॥

=(अपूर्वकरण आठवां अनिवारिकरण नवमां गुणस्वानवाले) संस्मात्गुणे हैं अर्थात्
 मन्त्रेय उपपन्नमेकीके आठवें-नवमें गुणस्वानमे २९९ मुनि हैं वा वैदिक आचार्यों
 के मूलमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और मन्त्रेयक क्षपक मेकीके
 आठवें-नवमें गुणस्वानमे ५९८ मुनि हैं विसीके मत में मन्त्रेयके ६००, अन्यके
 मतमें मन्त्रेयके ६०८ इसलिये मन्त्रेयक उपपन्नमेकीवाले तो मन्त्रेयक क्षपक में
 संस्मात् गुणे रूप

सस्माम्परायद्वि-उपपन्नक-संवाता ।
 विदेष अधिका ॥

=सस्माम्पराय द्वादशयुग उपपन्नमेकीवाले दसवां गुणस्वानवती
 =विदेषकुरि अधिक है

यस्मान्पराय-क्षपका ।
 मन्त्रेय गुणा ॥

=(उन सस्माम्पराय उपपन्नकसे) सस्माम्पराय क्षपकमेकीवाले
 संस्मात्गुणे हैं क्योंकि उपपन्नक सस्माम्पराय २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और
 सस्माम्पराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

नोपाम् ॥

=वन्ने हुये (उपपन्नान्पराय-संवाताय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्वानवती)
 निका (अल्प-बहुत्व परस्पर)

मामान्यवत् ०

=संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्वान) सहज है अर्थात् उपपन्नकनाय
 गुणस्वानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । वीज-
 कपाय में इन से इने हैं अतः उपपन्नकनाय से क्षीयकनायमें संख्यात गुणे हैं ॥
 सयोगकेवली ८९८५०२

उपनिषद्गीता स्वरूपमहाप्रकीर्णक और विमलसुख फलप्रेरक । विद्वानुवाद अध्याय १ सूत्र ८

काययोगिनां सामान्यवत् ॥ [५] वेदानुवादेन-- स्त्रीपुंवदानां पञ्चेन्द्रियवत् ।

काय-योगिनाम् ॥ सामान्यवत् ॥

= काययोगिनों का (अल्प-बहुत्व) सर्वेष (प्रकरणमें पूर्वोक्त गुणस्थान) वत् है
अर्थात् अयोगकेवलियोंको छोड़कर पृष्ठ २९८, २९९ में बार-बार
पंचेन्द्रिय मिथ्याशुद्धीजीव असंख्यात गुणों हैं (२९९ के अन्त तक पढ़लो)

[५] येद अनुवादेन ॥ स्त्री-पुं-वेदानाम् ॥

= [५] येद (स्त्री-पुं-न-पुंसक) की अग्रेवासे स्त्री-पुंवेद वालोंका

= (अल्प-बहुत्व) पञ्चेन्द्रियवाले (जीव) निके समान है अर्थात् पृष्ठ २९८

में पंचेन्द्रियों का अल्प बहुत्व गुणस्थानवत् है और "आगमविषं नवमा

गुणस्थानका सर्वेद भाग पर्यंत मार्केतें तीन वेद हैं और इत्येते एक-पुल्य

केवही है" गोमूढसार मुद्रित पृष्ठ ५९३ गाथा २७१ ॥ त्वमो गुणस्थानके

प्रथम तीनभाग मार्बवेदसहित हैं । अन्तके तीनभाग (किन्तु अस्मात्माके

द्वये हैं) मार्बेद रहित हैं । इसलिये नवमां गुणस्थानसे मिथ्यात्व प्रथम

गुणस्थान के जीवोंमें जो अल्प बहुत्व है वही स्त्री-पुल्य केन्द्रियोंका अल्पबहुत्व

होगा ॥ वर-ऐसे है कि अपूर्वकरण

(१) "पारित मोहलोचका मेव लोकनाथ वीहल्य-पुरुषके स्तोत्रे ननु साद्वेद नामा प्रकृति तिनके कल्पों याव सो चेद्वय उपयोग सीति ॥ ५ ॥
पुल्य सो ननु सकल्प जीव हो हैं । बहुरि निर्मोह नामा नाम कर्मों के कल्पकरि संयुक्त अ गोपेयका विशेषरूप नाम कर्मोंको प्रकृतिके कल्पों प्रत्य को
पुद्गलको न परोपनीति मिले पुरुष की मनुष्यक हा है । सा ही कथिप है पुल्य वदक उपर्यंस्ती स्त्रीका अभिलाषक्य मैयुन संज्ञाका घारी जीव सा भाव
पुल्य हा है । बहुरि स्त्रीवेद के उपर्यंस्ती पुल्य का अभिलाषक्य मैयुन संज्ञाका धारक जीव याव स्त्री हा है बहुरि नपुंसकवेद के उपर्यंस्ती पुल्य अर स्त्री
वादान्तक युगमन् अभिलाषक्य मैयुन संज्ञाका धारक जीव सो भाव मनुष्यक हा है बहुरि निर्मोह नाम कर्मका उपर्य संयुक्त पुरुष वेदक्य आकारका
विराग नि ८ अंगोपनि भासे नाम कर्मका उपर्यंस्ती—मूढ बाढ़ी निर्मादिन किन्तु संयुक्त घारी ८ का धारक जीव सो पर्यायका प्रथम नामपर्यं खगाय
अस्त नामप र्धत द्रव्य पुरुष हो है ॥

पठानिवासी अग्ररूपमहाय यकीलकृत पदच्छेद और विभक्तियय सहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाय । अर्थात् १ युत्र ८
 मन्त्रेयगुणा । सृक्षमाम्भराय शुद्धयुगमकमयता विओगाधिका । सृक्षमाम्भरायशुक्काः संख्येयगुणाः ।
 श्रामाणा सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ।।

= (अपूर्वकरण आठवां अनिवृत्तिकरण तबमां गुणस्थान्वासे) संख्यातगुणे हैं अर्थात्
 प्रत्येक उपलब्धभेदीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं वा केवल आठवां
 के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ हैं और प्रत्येक क्षण भेदीके
 आठवें-नवमें गुणाधानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
 मतमें प्रत्येकमें ६०८ इत्यन्ये प्रत्येक उपलब्धभेदीके 'से' प्रत्येक क्षण में
 संख्यात गुणे हुए

गन्धमाभ्यामगुदित-उपप्रमद-मयता ।।

= यस्मिन्सिंहराजं दुर्दुर्लभं तत्र उपलब्धभेदीवासे दशवर्ग गुणस्थान्वासी

विशेष अर्थिका ।।

= विशेषकर अधिक हैं

गन्धमाभ्यामगुदित-उपप्रमद-मयता ।।

= (उन दससिंहराज उपप्रमदसे) दससिंहराज क्षणक्षयवासे

संख्येय गुणा ।।

संख्यातगुणे हैं क्योंकि उपलब्ध उपप्रमदसिंहराज २९९ वा ३०० वा ३०४ हैं और
 दससिंहराज क्षण ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

पैषाभ्याम् ।।

= कसे हुये (उपलब्धान्तकपाय-सिंहराज-संयोगकेवली अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती)

निका (अन्त-मदुल परस्पर)

सामान्यवत् ३

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सरल है अर्थात् उपलब्धकपाय

गुणस्थानमें विभिन्न भिन्न भिन्नानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षीण
 कपाय में इन से इने हैं अतः उपलब्धकपाय से क्षीणकपायमें संख्यात गुणे हैं ।।
 संयोगकेवली ८९८५०२

एतानिवासी जगत्पुण्यसहाय यक्षील्लस्य पद्मेन्द्र और विमलस्यैव सारित सर्वाभिहितिका अथवा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८

[७] ज्ञानानुवादेन-मत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिषुः सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । विभज्ज्ञानिषु सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥

ये उपधान्तकपायसे और क्षीणकपायसे संख्यात गुणे हैं अवोगकेवली मिश्र मिश्र मता-

नुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

(देखो अबस्य राम अनुवादके प्र३०८ की टिप्पणी संख्या (२)

ये उपधातकपायबालोसे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकपायबालोके उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं । इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं

ज्ञान अनुवादेन , मति अज्ञानिभुतअज्ञानिषु । = (७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुप्रतु ज्ञानियों में

मर्त्य ८ स्तोकाः । साम्प्रदानसम्यग्दृष्टय ' । = सबसे थोड़े (= स्तोका) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (दूसरे गुणस्थानवर्ती) हैं

(उन कुमति-कुप्रतु ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)

मिथ्यादृष्टय , अनन्तगुणा ।

= मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं वा "तिनैतं अनन्तगुणं मिथ्यादृष्टि है" जय० पच० ११७

निमद्-गानिषु , नस्त ८ स्तोका सासादामस्यग्दृष्टय = कुअविध्वानियोंमें सबसे थोड़े सासादन सम्यग्

दर्शनवाले हैं (तिन कुअविध्वानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे)

मिथ्यादृष्टय ' । असंख्येयगुणाः ।

= (कु-अविध्वानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

' सर्वतः साक्षाः सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । मर्त्यतः स्तोका निमद्गानिषु सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । एत पाप्येके ज्ञान में संख्यत सर्वाभिहित की दोनो अविध्वानियोंकी प्रतियोंमें सर्वतः साक्षा सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । मूलमे उपागा ही अर्थात् "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः निमद्गानिषु सासादनसम्यग्दृष्टय । नस्त ८ वाक्य छूट गया है क्योंकि (१) अबस्यवली की पद्यमिका इतत निश्चित और सुनिश्चित (पृष्ठ १७) में "सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टि है । तीभिर्नैतं अनन्त गुणं मिथ्यादृष्टि है । विमंग बानीति विवे मर्त्यमे शोच मामादन सम्यग्दृष्टि है । तिनिर्नैतं असंख्यातगुणां मिथ्यादृष्टि है" येसी मागा यद्यनिका है वह दृष्ट्या उपर्युक्त संख्यतके प्रथम वाक्य का अनुवाद है । (२) द्वागत हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्व गुणस्थानमें झिलने भी जीव है सब इन्द्रियबालोंके, सर्वगतमें, सर्व कल्पवाक्योंमें कुमति ज्ञान और कुप्रतु पात्र होते हैं और मिथ्यात्व सासादन वा ही गुणस्थान इस कुमति कुप्रतु ज्ञानियोंके

गन्तविषयी उगस्मयमहाय पत्नीलक्ष्मण पदच्छेद और विमर्शयथ सहित सर्वावसिद्धिका शुभ्यः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ धृत्वा ८
मन्त्रेयगुणा । सक्षममाग्नराय शुद्धयुगमकमयता विशेषाधिकार । सक्षममाग्नरायक्षणकाः संख्येयगुणाः ।
अपाणा सामान्यवत् ॥

संख्येय-गुणाः ॥

= (अपूर्वस्तर आठवां अनिष्टचिह्न नवमां गुणस्थानवाले) संख्यागुणे हैं अर्थात्
प्रत्येक उपक्षमधेनीकें आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं वा 'द्वैक' भाषायों
के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षपक भेरीकें
आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
मतमें प्रत्येक में ६०८ इत्येव प्रत्येक उपक्षमधेनीकित्तें से प्रत्येक क्षपक में
संख्यात गुणें हुये

सुखमाग्नरायशुद्धि-उपक्षमक-मयता ।

निनेग अश्रिता ॥

गुह्यमाग्नराय-क्षपका ।

संख्येय गुणाः ॥

= सुखमाग्नराय शुद्धसंयत उपक्षमधेनीवाले इत्येव गुणस्थानवर्ती
= विशेषकरि अधिक है

= (उन सुखमाग्नराय उपक्षमकसे) सुखमाग्नराय क्षपकधेनीवाले
संख्यागुण हैं क्योंकि उपक्षमक सुखमाग्नराय २०९ वा ३०० वा ३०४ हैं और
सुखमाग्नराय क्षपक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

= यथे हुये (उपक्षान्तकणाय-सीक्कणाय-सयोगकेवली-अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती)
निका (अत्य-महत्त्व परस्पर)

सामान्यवत् ०

= संक्षेप (प्रकरणमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सरल है अर्थात् उपक्षान्तकणाय
गुणस्थानमें भिन्न भिन्न मतानुसार २९० वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षिप्त
कणाय में इन से दूने हैं अतः उपक्षान्तकणाय से सीक्कणायमें संख्यात गुण हैं ॥
सयोगकेवली ८९८५०२

एतानिनामी जगत्पसाद्य पत्नीलङ्घ्य पदच्छेद और विगम्यसर्वम सहित सर्वावैसिद्धिका क्षन्दश्चः विदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८

[७] ज्ञानानुवादेन-भृत्यज्ञानिश्रुताज्ञानिपुः सर्वत स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । विभञ्जानिपु सर्वत स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यान्दृष्टयोऽभेद्येयगुणा ॥

ये उपद्वान्दृष्टकपाप्स और क्षीणकपाप्से संख्यात गुणे हैं अयोगकेस्ती भिन्न भिन्न मता-
नुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

(विशेष अवश्य इस अनुवादके पृष्ठ १०८ की टिप्पणी संख्या (२)

ये उपद्वान्दृष्टकपाप्सालोसे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकपाप्सालोकि उपर्युक्त अयोगकेस्ती
समान हैं । इनसे सयोगकेस्ती संख्यात गुणे हैं

ज्ञान अनुवादेन । मति अज्ञानि-भृत्यअज्ञानिपुः । = (७) ज्ञानके कथनसे कुमति और कुपुत्र ज्ञानिचों में

मर्त्य-स्तोकाः । मासादनसम्यग्दृष्टय । = सत्से बोदे (= स्तोक) मासादनसम्यग्दर्शनवाले (इससे गुणस्वानवर्ती) हैं

(उन कुमति-कुपुत्र ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टिबोसे)

= मिथ्यादृष्टी अन्त्य गुणे हैं या "तिनिते अनन्तगुणां मिथ्यादृष्टि है" अथ० पृ० ११७

विमद्-गानिपु, मत-स्तोका मासादामगय-कुपुत्रविद्वानियोगे सत्से बोदे सासादन सम्यग्

दृष्टयः । = दर्शनवाले हैं (तिन कुपुत्रविद्वानियोगे सासादन सम्यग्दृष्टिबोसे)

= (कु-अविद्वानि) मिथ्यादृष्टी असेम्यग्य गुणे हैं

"सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टय" । मिथ्यादृष्टयोऽन्तगुणाः । मर्त्यतः स्तोकाः विमद्गानिपु मासादामसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसत्सेयगुणाः ।
इम पाप्मने स्थान में मग्दृष्ट स्वार्थमिच्छि की दोनो अविद्वान्दो प्रतियोगं सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽ सत्सेयगुणाः ।
भूतमे एतन्नाम ही अर्थात् 'मिथ्यादृष्टयोऽन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विमद्गानिपु मासादामसम्यग्दृष्टयः । वाक्य छुट गया है क्योंकि (१) अथर्ववेदी
की वयमिच्छा इतत स्थिति और मुद्रित (पृष्ठ १७) में "सर्वतः स्तोका मासादनसम्यग्दृष्टि है । तीसरे अनन्त गुणां मिथ्यादृष्टि है । विमर्ग ज्ञानीति विवे
स्यमें गोरा मासादन सम्यग्दृष्टि है । तिनिते असेम्यग्यगुणां मिथ्यादृष्टि है" येसी भाग्य यवनिता है वह शून्यताः उपर्युक्त संख्यातके प्रथम वाक्य का
अनुवाद है (२) दृष्टता हेतु यह है कि संसार में मिथ्यात्वं गुणस्थानमें जितने भी जीव हैं सब इन्द्रियपाप्मके, सर्वगतिये, सर्व कल्पपाप्मनिं कुमति
ज्ञान और दृष्टत बा ३ दोते हैं और मिथ्यात्वं सासादन बो ही गुणस्थान इन कुमति कुपुत्र ज्ञानियेकि

जानिवामी जगत्पद्महाय यकील्लभ पदच्छेद और विमर्शय सहित सर्वाधिसिद्धि का मुख्य। विदी अनुयाय । अध्याय १ सूत्र ८
मन्येयगुणा । मृक्षमाभराय शुद्धयुगमकमयता विशेषाधिका । मृक्षमाभरायक्षणकः संख्येयगुणाः ।
अपाणा मामान्यवत् ॥

मन्येय-गुणाः ॥

मृक्षमाभराय शुद्धि-उपद्रमक-संकाः ॥

निगा अक्रिः ॥

मृक्षमाभराय-क्षयकाः ॥

मन्येय गुणाः ॥

पेपाणाम् ॥

मामान्यवत्

=(अपूर्वतन आठवां अनिवृत्तिरूप नवमां गुणस्थानवाले) संख्यागुणे हैं अर्थात् प्रत्येक उपद्रमधेवीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें २९९ मुनि हैं वां केरि के आषाढी के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षयके भेरीके आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपद्रमधेवीवाले से प्रत्येक क्षयके में संख्यात गुणे हुए

=सहस्रसापराय शुद्धसंयत उपद्रमधेवीवाले इष्टवां गुणस्थानवर्ती

=विशेषकरि अधिक है

=(उन सहस्रसापराय उपद्रमकसे) सहस्रसापराय क्षयकधेवीवाले

संख्यातगुण हैं क्योंकि उपद्रमक सहस्रसापराय २०९ वा ३०० वा ३०४ ई और

सहस्रसापराय क्षयक ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

=बचे हुये (उपद्रान्तकपाय-सीकपाय-सयोगकेयली-अयोगकेयली गुणस्थानकर्त्री)

निका (अत्य-युक्त परस्पर)

=संक्षेप (प्रकारमें पहिले कहा हुआ गुणस्थान) सरल है अर्थात् उपद्रांतकपाय

गुणस्थानमें विषय विषय मतानुसार २९९ वा ३०० वा ३०४ मुनि हैं । क्षय-

कपाय में इन से बचे हैं अतः उपद्रांतकपाय से सीकपायमें संख्यात गुणे हैं ॥

सयोगकेयली ८९८५०२

[७] ज्ञानानुवादेन-भयज्ञानिथुताज्ञानिपुः सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । विभद्धानिपु सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । मिथ्यादृष्टयोऽभ्यस्येयगुणा ॥

ये उपशान्तकषायसे और क्षीणकषायसे संख्यात गुणे हैं अयोगकेवली भिन्न भिन्न मता-
नुसार ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

(देखो अबस्य इस अनुवादके पृष्ठ ३०८ की टिप्पणी संख्या (२)

ये उपशान्तकषायवालोसे तो संख्यात गुणे हैं ॥ क्षीणकषायवालोसे उपर्युक्त अयोगकेवली समान हैं । इनसे सयोगकेवली संख्यात गुणे हैं

मान अनुवादेन । मति-अज्ञानि-भुवश्चानिपु ॥ = (७) ज्ञानके कर्मसे कुमति और कुभुव ज्ञानियों में

सर्वतः स्तोकाः ॥ साम्प्रदानसम्यग्दृष्टयः ॥ = भवसे बोधे (= स्तोका) सासादनसम्यग्दर्शनवाले (इससे गुणस्थानवर्ती) हैं

(उन कुमति-कुभुव ज्ञानी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे)

मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्तगुणाः ॥ = मिथ्यादृष्टी अनन्त गुणे हैं वा "तिनैः अनन्तगुणं मिथ्यादृष्टिः" अयं यच ० ११७

विमद्-गानिपु, मयतः स्तोका भासादात्मगण्य = कुअवधिज्ञानिन्यामि सप्त बोधे सासादन सम्यग्

दृष्टयः ॥ = दर्शनवाले हैं (तिन कुअवधिज्ञानी सासादन सम्यग्दृष्टियोंसे)

मिथ्यादृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥ = (कु-अवधिज्ञानी) मिथ्यादृष्टी असंख्यात गुणे हैं

'सर्वतः स्तोकाः सासादनसम्यग्दृष्टयः' । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विमद्-गानिपु सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । इम पापमर्ते स्थान में संवृत्य मर्ताभिमिति की दोनो अ दृष्टियोंकी प्रतियों सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टयः । मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः ॥ यूलो उपगमा दे अर्गति "मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । सर्वतः स्तोकाः विमद्-गानिपु सासादनसम्यग्दृष्टयः ॥ पापस्य दृष्टयः ॥ यचोक्ति १) अयमवर्णी की पर्याप्त दृष्टय निश्चित और मुद्रित (पृष्ठ ११७ में "सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टिः है । तीसरी कालत गुण मिथ्यादृष्टि है । चित्तग बलीमि विद्ये मर्ते भोग सागादन सम्यग्दृष्टि है । तिनित्ति असंख्यातगुणा मिथ्यादृष्टि है" ऐसी भाषा पर्याप्त है वह ज्ञानदा उपर्युक्त संख्यातके प्रथम पापय का अनुयाय दे ॥ (२) इतरा हेतु यह है कि संसार में मिथ्यातय गुणरक्षणमें कितने भी जीव हैं सब इन्द्रियपालोके, सर्वगतिते, सर्व क्षयवाक्योमें कुमति नाम और बुद्धत वा ३ बोधे हैं और मिथ्यातय सासम्भवम दो ही गुणस्थान इन कुमति कुपुत्र ज्ञानियोंके

पगनिवासी अगुरुपमहाय कलीलकृत पदच्छेद और विमर्शार्थे सहित सर्वाधिकारिका शब्दार्थः द्विती अनुवर्ष । अर्थात् १ छत्र ८
मन्त्रेयगुणा । सूक्ष्मसागराय शुद्धयुगमकमयता विज्ञेयाधिका । सूक्ष्मसागरायक्षणाः संस्त्रेयगुणाः ।

अत्राणा सामान्यवत् ॥

संस्त्रेयगुणाः ॥

= (अपूर्वकरण आठवां अनिशचिकरण नवमां गुणस्वानवासे) संस्त्रावगुणे है अर्थात्
प्रत्येक उपशमयेबीके आठवें-नवमें गुणस्यानमें २९९ मुनि हैं वा क्षेत्रिक आचार्यों
के मतमें ३०० अथवा अन्य के मतानुसार ३०४ है और प्रत्येक क्षणिक क्षेपीके
आठवें-नवमें गुणस्थानमें ५९८ मुनि हैं किसीके मत में प्रत्येकमें ६००, अन्यके
मतमें प्रत्येक में ६०८ इसलिये प्रत्येक उपशमयेबीके 'से' प्रत्येक क्षणिक में
संस्त्राव गुणे हुए

गुणमापरायशुद्धि-उपशमक-संस्त्राः ॥

त्रिनेत्र चरित्राः ॥

गुणमापराय-क्षणाः ॥

संस्त्रेय गुणाः ॥

= (उत्तमसर्गापराय उपशमकसे) उत्तमसर्गापराय क्षणिकक्षणीवाले
संस्त्रावगुण हैं क्योंकि उपशमक उत्तमसर्गापराय २०९ या ३०० वा ३०४ हैं और
उत्तमसर्गापराय क्षण ५९८ वा ६०० या ६०८ हैं

= (उत्तमसर्गापराय उपशमकसे) उत्तमसर्गापराय क्षणिकक्षणीवाले

संस्त्रावगुण हैं क्योंकि उपशमक उत्तमसर्गापराय २०९ या ३०० वा ३०४ हैं और
उत्तमसर्गापराय क्षण ५९८ वा ६०० या ६०८ हैं

= (उत्तमसर्गापराय उपशमकसे) उत्तमसर्गापराय क्षणिकक्षणीवाले

त्रिनेत्र चरित्राः ॥

गुणमापराय-क्षणाः ॥

= (उत्तमसर्गापराय उपशमकसे) उत्तमसर्गापराय क्षणिकक्षणीवाले

संस्त्रावगुण हैं क्योंकि उपशमक उत्तमसर्गापराय २०९ या ३०० वा ३०४ हैं और
उत्तमसर्गापराय क्षण ५९८ वा ६०० या ६०८ हैं

= (उत्तमसर्गापराय उपशमकसे) उत्तमसर्गापराय क्षणिकक्षणीवाले

संस्त्रावगुण हैं क्योंकि उपशमक उत्तमसर्गापराय २०९ या ३०० वा ३०४ हैं और
उत्तमसर्गापराय क्षण ५९८ वा ६०० या ६०८ हैं

एतानिवासी अगस्त्यसहाय वक्ष्येऽहं पश्येत् । और विमलसूर्य सशित सर्वाभिसिद्धिका शब्दशः सिद्धी अनुवाद । अभ्यास १ छत्र ८
सयतासंयता असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्भट्टेष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ मन पर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोका
श्रुत्वार उपशमका । चत्वार क्षपका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता

संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे है ॥

संयता संयताः ॥

असंख्येयगुणाः ॥

= (ऊन मति-युत अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी
= असंख्यातगुणे हैं अर्थात् 'मनुष्य और त्रिषण इन दो गतियों में ही वेद सयम
गुणस्थान होता है । इन में सरह करोड़ मनुष्य और पक्ष्य के असंख्यातम भाग
वर्षिच है ॥ गोमूट ० जीव ० गाया ० ६२४ ॥' मतिज्ञान-भूतज्ञान-अवधिज्ञान
चौयसे बारह गुणस्थान सक्त ० स्थानों में है ॥ इन में मति भूतज्ञान चार
से बारह गुणस्थान सक्त सब जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यक्ता
नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।

असंयत सम्यग्भट्टेष्टः ॥ असंख्येयगुणाः ॥

मनः पर्यय-शान्तिः । सर्वतः ० स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥

उपशमका । चत्वारः ॥

= उपशम अग्नीवाले शत ६ (मनः पर्यय शान्तियों में) चार (असंख्येय-अनिष्ट-चि-

त्वार-भूतसांपराय धीणकपाय)

क्षपकाः ॥ संख्येयगुणाः ॥

अप्रमत्त संयताः ॥

= क्षपक धणी वासं (बहु चार उपशम धणीवालों से) संख्यात गुणे है ॥

= (उक्त चार क्षपक धणीवालों से) अप्रमत्त संयमी (मन पर्यय ज्ञानी)

पञ्चनिवासी अगस्त्यपराय कबीरकृतं यद्वच्छेद और विमोक्षार्थं भक्ति सवायसिद्धिना दाम्पत्य विही अमुवादि । अङ्गानां १ वध ८

मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपगमकाश्चत्वार क्षपकाः संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसयताः
मन्येयगुणाः । प्रमत्तमयता संख्येयगुणाः ।

मतिभूत अयपिप्राप्तिः ॥ सर्वतः स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥ मतिश्रुत अवधिज्ञानियोंमें सबसे अत्यन्त चार (आठसे ग्यारह गुणस्थानतक)

उपगमकाः ॥ चत्वारः ॥ (उन चार उपगमभेदीवालोंसे) चार

(अपूर्वस्वरूप-अनिवृत्तिकरण-सत्समर्पणाय क्षीणकृपाय)

क्षपका भणीवाले संख्यामगुणें हैं अर्थात् विभिन्न मतानुसार चार उपगम

भणीवाले ११९६ वा १२०० वा १२१६ हैं और चार क्षपकभेदीवाले इस

प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणें हैं

= (मति-भूत-और अवधिज्ञानियोंमें सप्तक भेदीवालोंसे) अप्रमत्त संपत्ती

= संख्यातें गुणें हैं अर्थात् क्षपक भेदीवाल २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं

परन्तु अप्रमत्त सात्त्विक गुणस्थानकर्त्ता २९६९९१०३

अप्रमत्तसयताः ॥

मन्येयगुणाः ॥

प्रमत्तसयताः ॥

पटानिवासी जगद्गुरुपदवाचककृतकृत पदच्छेद और विमलपर्ये सहित स्तोत्रोपनिषद्का श्रवणः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ८
संयतासंयताः असंख्येयगुणाः । असंख्यतस्य भूदृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ मन पर्ययज्ञानिषु भवत स्तोका

श्रुत्वार उपशमका । चत्वार क्षपका संख्येयगुणाः । अप्रमत्तसंयता

संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे है ॥

संख्या संयताः ॥

असंख्येयगुणाः ॥

= (उन मति-भूत-अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी
= असंख्यातगुणे हैं अर्थात् 'मनुष्य और विषय इन दो गतियों में ही वेछ सबम
गुणस्थान होता है । इन में से रह करोड़ मनुष्य और फल के असंख्यातमे भाग
विषय हं ॥ गोमट० अथ० गाथा० ६२४ ॥' मतिज्ञान भूतज्ञान-अवधिज्ञान
चौयसे शारद गुणस्थान तक ९ स्थानों में है ॥ इन में मति-भूत-ज्ञान चार
से शारद गुणस्थान तक सप्त जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यकता
नहीं कि सबके ही किसीके होता है किसीके नहीं ।

असंख्य सम्पद्वृत्त्याः ॥ असंख्येयगुणाः ॥

मनः पर्यय-ज्ञानिषु ॥ सर्वताः स्तोकाः ॥ चत्वारः ॥

उपशमका ॥ चत्वारः ॥

क्षपकाः ॥ संख्येयगुणाः ॥

अप्रमत्त संयताः ॥

= उपशम यमीवाले दोसे ६ (मन पर्यय प्राप्तिओं में) चार (अपूर्वक्षण-अनिष्टचि-
कृत-यस्मत्सोपराय उपशमद्विपाय)
= क्षप भेगी वाले (उक्त चार उपशम भेगीवालोंसे) संख्यात गुणे हैं ॥
= (उक्त चार क्षप भेगीवालों से) अप्रमत्त संयमी (मन पर्यय ज्ञानी)

धननिधानी जगत्प्रमदाय वसीलकूलं पदच्छेदं और विमलस्वर्यं मणित मनाथमिद्विक्ता गन्धराः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ वंश ८

मतिश्रुताविधिज्ञानिषु मर्वत स्तोकाश्चत्वार उपठामकाश्चत्वार क्षपकाः सन्ध्येयगुणा । अप्रमत्तसंयताः
सन्ध्येयगुणा । प्रमत्तमयता सन्ध्येयगुणाः ।

मतिभूत अशिक्षानि ॥ मन्मन्मोका ॥ चत्वार ॥ =मति श्रुत अवधिज्ञानियों सप्ते अत्य चार (आठसे ग्याह गुणस्थानवत्क)

उपठामका । चत्वार ॥ =उपठामभीवासे हैं । (उन चार उपठामभीवाल्लोसे) चार

(अपूर्वकृत्य अनिवृत्तिरुत्तर-सूक्तसापराय क्षीणरूपाय)

=क्षपक भणीनासे संख्यामगुणे हैं अर्थात् भिन्न भिन्न म्स्तानुसार चार उपस्थम

भेणीवाल्ल ११९६ वा १२०० वा १२१६ ह और चार क्षपकभणीवाल्ले इस

प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यामगुणे हैं

=(मतिभूत-और अवधिज्ञानियोंमें क्षपक भेणीवाल्लोसे) अप्रमत्त संयमी

=संख्यामगुणे हैं अर्थात् क्षपक भेणीवाल्ल २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं

परन्तु अप्रमत्त सातवां गुणस्थानकर्त्ता २९६९९१०३

=(उन मतिभूत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोंसे) प्रमत्त संयमी

=संख्यामगुणे हैं अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ है और प्रमत्त

प्रमत्तमयताः ।

संध्येयगुणाः ।

होते हैं ॥ (देखो चौबीस भगवत्परायण के श्रियों की संख्या इसी ८ व सूत्र की संख्या प्रकरणार्थमं अंतर्गत करी है (देखा पृष्ठ ९१) और गाम्भिर्यार्थी गाय १२४ "मिथ्या गुणाव्यक्तय मं मिथ्यादृष्टि अर्थात्कृत है । और 'इतो गायार्थं मासाद्वय गुणरूपान से बावन बराह प्रत्य और प्रायदों से असंख्यामगुणे इतर तीन गतिके श्रीय है येसी गणना छिन्ती है ॥ इससे स्पष्ट है कि कुमति कुमुत क्षान्त्यो गायार्थ गुणरूपानवर्तियों से मिथ्यादृष्टि कुमति कुमुतक्षानी अर्थात् गुणे ही हैं नकि अत्यन्तगुण गुण ॥ (३) तीसरा हेतु यह ती है कि कुमति क्षानी मी मिथ्याय और मान्यार्थ को गुणरूपानर्तित होते हैं (देखा चौबीस स्थान चर्या) और यदि हम सरस्वत सत्रार्थी दिक् का पाठ शुक्लमान से तो मिथ्याय और मान्यार्थ गुणरूपानवर्तियों का प्रकरण बुद्धिज्ञानियोंकी अपेक्षाम सार्धगा छुड़ा जाता है ॥ अतः हमने डा उपर्युक्त पाठ लिखा है नद गुह है ॥ मिथ्यादृष्टयः अस्मत्पुष्पा अर्थात् अर्थात् अर्थात् सत्यमिथियों से मिथ्यादृष्टि अर्थात् गुण है ॥ (पृष्ठ ३११) जो उपर्युक्त टिप्पणीका समर्थन करता है ॥

पटान्निवासी अगारुपसत्त्व वस्त्रैःसकृत् पश्येत् और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाभिनिर्दिष्टा कृष्यः हिंदी बलुवाद् । अथवा १ उत्र ८ संयतासयताः असंख्येयगुणाः । असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ॥ मन पर्ययज्ञानिषु सर्वतः स्तोका-
श्चत्वार उपशमका । चत्वार क्षयका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसयता

संयमी ५९३९८२०६ है । अतः प्रमत्तसंयमी संख्यात गुणे हैं ॥

= (उन मति-भुत-अवधिज्ञानवाले प्रमत्त संयमियों से) संयमा संयमी
= असंख्यातगुणे हैं अर्थात् 'मनुष्य और तिर्यच इन दो गणियों में ही देख संयम
गुणस्थान होता है । इन में तरह करोड़ मनुष्य और पत्त्य के असंख्यातये भाग
तिर्यच हैं ॥ गोमूढ ० जीय ० गाथा ० ६२४ ॥' मतिज्ञान-भुतज्ञान-अवविज्ञान
बोयसे बारह गुणस्थान एक ९ स्थानों में हैं ॥ इन में मति भुत ज्ञान चार
से बारह गुणस्थान एक सप्त जीवों के होता है ॥ अवधिज्ञान यह आवश्यक्ता
नहीं कि सबके हो किसीके होता है किसीके नहीं ।

= (वेदवर्तव्यियोंसे) असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुणे हैं अर्थात् इन में सात सौ
करोड़ मनुष्य हैं और सिमवाल्लोसे असंख्यात गुणे सेप तीन गति के जीव हैं
= मत्तः पर्यय ज्ञानियोंमें सबसे अल्प अथवा सबसे छोटे चार (अपूर्वकृष्ण-अनिष्टि
कृष्ण-सूक्ष्मसांप्रदाय उपद्रोक्तपाय)

= उपशम भणीवाले दोसे ४ (मत्तः पर्यय ज्ञानियों में) चार (अपूर्वकृष्ण-अनिष्टि-
कृष्ण-सूक्ष्मसांप्रदाय-बीजकृष्ण)

= क्षयक भणी वाले (एक चार उपद्रम भणीवाल्लोसे) संख्यात गुणे हैं ॥
= (एक चार क्षयक भणीवाल्लो से) अप्रमत्त संयमी (मनः पर्यय ज्ञानी)

संयता संयताः ॥

असंख्येयगुणाः ॥

असंयत सम्यग्दृष्ट्याः ॥ असंख्येयगुणाः ॥

मत्तः पर्यय-ज्ञानिषु । सर्वैः ॥ स्लोकाः ॥ चत्वारः ॥

उपशमका ॥ चत्वारः ॥

क्षयकाः ॥ संख्येयगुणाः ॥

अप्रमत्त संयताः ॥

पगनिधानी चरूपमहाप वस्तीसङ्घर्ष परन्तु और विमर्षवर्ष सहित गवाथसिद्धिका सम्बन्धः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८

मतिश्रुताविघ्नानिपु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वार क्षपकाः सम्येयगुणा । अप्रमत्तसंयताः
मन्येयगुणा । प्रमत्तमयता सम्येयगुणा ।

मति-भूत प्रययिगानिपु । मत्त-स्तोकाः । चत्वारः । =मति भूत अवधिज्ञानियोर्मिं सबसे अत्य चार (आठसे ग्यारह गुणस्यान्तक)
उपशमकाः । चत्वारः । =उपशमकणीवाले हैं । (उन चार उपशमकणीवालोंसे) चार

(अपूर्वकरण-अन्विचिस्तरण-सहसतापराय धीणक्षमाय)
=क्षपक भोजीगाले संख्यातगुणे हैं अर्थात् मिश्र मिश्र मत्तानुसार चार उपशम
कणीवाले ११९६ या १२०० वा १२१६ ह और चार क्षपककणीवाले इस

प्रकार २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं अतः संख्यातगुणे हैं

=(मति-भूत-और अवधिज्ञानियोर्मिं साप्राप्त धेणीवालोंसे) अप्रमत्त संयमी

=संख्याते गुणे हैं अर्थात् क्षपक कणीवाले २३९२ वा २४०० वा २४३२ हैं

परन्तु अप्रमत्त सात्त्वा गुणस्यान्तवर्ती २९६९९१०३

=(उन मति-भूत-अवधिज्ञानि अप्रमत्तसंयमियोर्मिंसे) प्रमत्त संयमी

=संख्यातगुणे हैं अर्थात् अप्रमत्त संयमी २९६९९१०३ है और प्रमत्त

ह है ० । (देख) चौबीस स्थान परचा मिष्टान्त गुणस्थान के अंतर्गत की संख्या इसी ॥ य खूब की संख्या प्रकरणोंमें अन्तर्गत करी है (देखा
पृष्ठ ९१) और गाम्भिर्यमर जीवकांडकी गण १९४ "मिष्टान्त पुनारकताय म मिष्टान्तादि अन्तर्गत है । और "इत्तो गणामें यासाइन गुणस्थान
में बायन बराबर प्रत्यक्ष और प्रापकों से असंख्यातगुणे इतर तीन गतिके योग है ऐसी गणना किसी है ॥ इसमें स्पष्ट है कि कुमति कुमुल ज्ञानियो
गाम्भिर्य गुणस्थानवर्तियों से मिष्टान्तादि कुमति कुमुलजानी अन्तर्गत गुण ही हैं नकि असंख्यात गुण ॥ (३) तीसरा हेतु यह भी है कि कुमति ज्ञानी
की मिष्टान्त और सात्त्वात्त की गुणस्थानोंमें होते हैं (देखा चौबीस स्थान परचा) और यदि हम सरल स्वर्गधिदि कि च पाठ गुणस्थान के तो
मिष्टान्त और गाम्भिर्य गुणस्थानवर्तियों का प्रकरण कुमतिज्ञानियों से अप्रमत्त संयमी गुणस्थाना है ॥ अतः हमने आ उपर्युक्त पाठ लिखा है यह
गुण है ॥ मिष्टान्तादि, अन्तर्गतगुणा ज्ञानियोर्मिंसे मिष्टान्तादि अन्तर्गत गुण है ॥ (पृष्ठ ३११) जो उपर्युक्त टिप्पणीका सामर्थ्य
करता है ॥

पटानिवासी जगत्सप्तहाय वकीलकृपदच्छेद और निमग्नत्यर्थं सशित स्वायंसिद्धिका छन्दः ॥ अथाप १ छय ८

(८) सैयमानुवादेन-सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोऽस्यशमकयोस्तुल्यसंख्या । ततः सस्येयगुणो क्षणकौ । अप्रमत्ता सस्येयगुणा । प्रमत्ता सस्येयगुणाः ॥ परिहारविशुद्धिसंयतेषु अप्रमत्तस्य प्रमत्ताः सस्येयगुणा । सूक्ष्मसाम्यरायशुद्धिसंयतेषु उपशमकस्य ।

[८] संयम-अनुवादेन ॥ सामायिक-च्छेदोपस्थापन-

शुद्धिसंयतेषु ॥ द्वयोः ॥

उपशमकयोः ॥ तुल्य-संख्या ॥ ततः

संयमे-गुणौ ॥ क्षणकौ ॥

= (८) संयमके कथनानुसारकरि सामायिक च्छेदोपस्थापना

= शुद्धिसंयमिणो में दो (अपूर्वक-अनिवृत्तिकरण)

= उपशमके निवालों की समान गणना है । उन (दो उपशमके निवालों) से

= संख्यात गुणे दो (अपूर्वक-अनिवृत्तिकरण) क्षणक क्षणीवाले (सामायिक-च्छेदो-
पस्थापना शुद्धि संयमी) हैं अर्थात् प्रत्येक उपशमके निवालों की संख्या २९९
वा ३०० वा ३०४ है और प्रत्येक क्षणके निवालों की संख्या ५९८ वा ६००
वा ६०८ है

= अप्रमत्त संयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमी)

= (उक्त दो क्षणक सामायिक और च्छेदोपस्थापन शुद्धि संयमियों से) संख्यात गुणे हैं
अर्थात् क्षणक क्षणी प्रत्येक गुणस्थानवर्ती ५९८ वा ६०० वा ६०८ है और
अप्रमत्त संयमी गणना में २९६९९१०३ है

= प्रमत्त संयमी (सामायिक और च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमी) (उन प्रमत्त संयमी
सामायिक-च्छेदोपस्थापना शुद्धिसंयमियों से)

= संख्यात गुणे हैं ॥ परिहार विशुद्धिसंयमियों में

= अप्रमत्त संयमियों से प्रमत्त संयमी संख्यात गुणे हैं

= सूक्ष्मसाम्यराय शुद्धिसंयमियों में उपशमके निवालों से

अप्रमत्ताः ॥

संयमे-गुणाः ॥

प्रमत्ताः ॥

संयमे-गुणाः ॥ परिहारविशुद्धि-संयतेषु ॥

अप्रमत्तस्य ॥ प्रमत्ताः ॥ संयमे-गुणाः ॥

सूक्ष्मसाम्यरायशुद्धिसंयतेषु ॥ उपशमकस्य ॥

लान्तिनामी उगारुपगगः११ पकील्लूत थदुधेद और विमलसयथ सधित सर्वाधिसिद्धिका शुक्लः दिदी अलुवाद । अध्याय १ सूत्र ८
मंन्देयगुणा । प्रमत्तसयता सम्येयगुणा ॥ केवलज्ञानिपु अयोगकेवलिनः सयोगेयगुणाः ॥

मंन्देय-गुणाः ।

प्रमत्तसयता । मंन्देयगुणाः ।

इदम प्रानिन् । अयोगवृत्तिरथः । मयोग

पान्तिन् । मग्यगुणाः ।

= संख्यात गुणें हैं । (अप्रमत्तसयमी मनः पर्ययज्ञानियोसे)

= प्रमत्तसयमी (मनः पर्ययज्ञानी) संख्यात गुणें हैं । मनः पर्यय ६ से १२ तक है

= फल ध्यानियोमें अयोगकेवलियोसे सयोग

= वृत्ती संख्यात गुणें हैं अर्थात् अयोगकेवली निम्न निम्न मतमें

५९८ वा ६०० वा ६०८ ई और सयोगकेवली ८९८५०२ तक हो सकेहैं

(१) अयोगवृत्तिना पक्का पाठो वा त्रयो वा उत्कर्षेणाद्यानरादात्मक्या एककालेन समुक्तिरान्तेऽनः संख्येयाः सम्यक्परिमितः ॥ ८९८५०२ । अयोगे
केवलिनः । पक्कः । पाठो १ गा ३ त्रयः । = अयोगकेवली (अप्यक्करि) पक्क अथवा दो अथवा तीन । प्रवेद्युक्तेरि
गा ३ इत्यर्थः । अप्याप्ततात्मक्याः । एवमन्तेन । = वा उत्कर्षकरि पक्कासाठकी संख्यामें (प्रवेद्युक्तेरि) अर्थात् अन्ते कालसे
समुक्तिनाः । त्रयोः । संख्येयाः । = समुच्चयहाकर इन (अयोगकेवलीनि) से संख्याते (गुण) सयोगकेवली है

= (अर्थात् तेरहवें) आठे नाब इत्तार अठारवें पाँचवो दोय (बखाने)

(२) उत्पन्न इत्यत्र न यद शत मन्त्रकती है कि चौबड़ गुणरानमं अष्टुष्ट संख्या १० मन्त्रअयोगकेवलीकी हो सखी है । क्योंकि इस मनुष्याके गुण
१२मोने के पापय कि । बरवारः सपका अयोगकेपरिमित प्रवेशन पक्का वा द्वौ वा त्रयो वा । उत्कर्षेणाद्यानरादात्मक्या । संख्येय समुक्तिनाः
मग्यताः । न प्राप्त है कि सपककेली पापके प्रवेश होनेके तुल्य अयोगकेवलीका की प्रवेश होता है और सपककेवलीके जिय (गामग्रन्थार
अपककेवलीगा ६१८ बलीमं अष्टवल्द स्यादि के अनुमान) अन्तराव रहित आठ समग्र पर्यक्तों में प्रथम समग्रमं ३२, दुस समग्रमं ४८ तीसरे
गमग्रमं ६०, चतुस समग्रमं ८२ पाँचमे समग्रमं ८४, छठ समग्रमं ६६, सातमे समग्रमं १०८ आठमे समग्रमं १०८ बाते हैं । सयवाग ६०८ इये ॥
किन्तो किसी गाथार्थका मत है कि सपक केवलीका ५९८ प्रयेक २ गुणरानमं उत्पन्न समुच्चय हो सके हैं केरुके मतमें ६०० केरुके मतमें ६०५
बात है गामग्रन्थ १०३गा १३६ अन्तारी अर्थात् स्यादित्ति जो सपककेवली प्रयेक गुणरानमं ५९८ गाने हैं वे उल आचार्योंके मतानुसार
है जा है अर्थ कि प्रयेक उपगमक २९६ और प्रयेक सपक ५९८ हो सजे है इस गाथामें तीन घाति ना करार मुक्ति की संख्या का बर्णन है ।
(३) सपककेवलीनि, तात्रम एव पुत्र ३१०

पटानिगामी क्मारुस्सहाय वकील कृत पदच्छेद और विस्फुर्य सहित सर्वांशसिद्धिका श्रम्यशः हिंदी अनुवादे । अर्थात् १ सूत्र ८ असत्यतसम्यग्दृष्टयोऽसत्येयगुणाः । मिथ्यादृष्टयोजनन्तगुणाः ॥ (९) दर्शानुवादेन-चक्षुर्दर्शनिनां मनो-योगिवत् ॥ अचक्षुर्दर्शनिनां काययोगिवत् ॥

अर्थात् मिथ्यगुणस्थान भी चारों गतियोंमें होता है इसमें एकसौ चार करोड़ मनुष्य और सासादनवालोंसे संख्यात गुणे शेष तीन गतिके जीव हैं (गोमट० जीव० गाथा ६२४) संस्कृत सर्वांशसिद्धि मुद्रित की दोनों आश्रयियोंमें संत्येयके स्थानमें असत्येय अष्टुद छगया है ॥

असत्यत-सम्यग्दृष्टः ; असत्येय-
गुणाः ; ॥

मिथ्यादृष्टयः ; अनन्तगुणाः ; ॥

(९) दर्शन-अनुवादेन । चक्षुर्दृष्टनिनाम् ॥

मनस्-योगिन्-वत् ॥

अचक्षुर्दर्शनिनाम् ; काययोगिवत् ॥

= मिथ्यादर्शनवाले (इन असत्यमी सम्यग्दर्शनवालोंसे) अनन्तगुणे हैं ॥

= (९) दर्शनकी विधासे चक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व)

= मनयोगीवालोंके सदृश है अर्थात् पञ्चेन्द्रियवत् है क्योंकि पृष्ठ ३०० के अनुकूल मनयोगियोंका पञ्चेन्द्रियवत् है जिसके कथन के लिये पृष्ठ २९८ चार अपूर्वकण पञ्चेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव (अन्य किसी गुणस्थानके ? पञ्चेन्द्रिय जीवोंसे) असंख्यात गुणे हैं पृष्ठ २९९ के अन्ततक दृष्टशः पदलो

= अचक्षुर्दर्शनवालोंका (अल्प-बहुत्व) काययोगियोंके सदृश है और काय योगियों का गुणस्थान तुल्य है (सयोगी अयोगीको छोड़कर पृष्ठ २९८ अपूर्व-२९९ तक)

(१) अर्थात्में यह शब्द चक्षुर्दर्शन है इसका प्र का परिवर्तन २ में हाकर चक्षुर्दर्शन होगया । २२ और विसर्ग () का परिवर्तन २ में होनेके लिये पृष्ठ १३ की टिप्पणी । १) देखो ॥

प्रतिनिधायी स्वरूपमंदार वलीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाथसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ८

क्षयका मन्येयगुणा ॥ यथास्यातविहारशुद्धिसंयतेषु उपशातकपायेभ्य क्षीणकपाया सख्येयगुणा ॥
अयोगकेवलिनस्तावन्त एव । संयोगकेवलिन सम्येयगुणा ॥ सैयतासैयताना नास्त्यलघ्वद्वलत्वम् । असैयतेषु
मर्धत स्तोका मामादनसम्पददृष्टय । सम्यग्भिय्यादृष्टय सख्येयगुणा ।

धराका । मन्येयगुणा ।
= धूपक श्रृंगीशाले (यस्तस्याम्भराय शुद्धिसंयमी) संख्यासगुणे है

पथाग्यात विहार शुद्धिसंयमीयेमि उपशात

कपायेभ्यः । क्षीणकपाया ।
= कपाय ग्यारहवां गुणस्थानवालोसे क्षीणकपाय (यथाख्यात सयमी)

मन्येय-गुणा ।
= संख्यासगुणे है अर्थात् ग्यारहवें २९९ वा ३०० वा ३०४ सुनि हैं और

क्षीणकपाय बारहवें गुणस्थानमें ५९८ वा ६०० वा ६०८ हैं

= अयोगकेवली (अितने क्षीणकपाय गुणस्थानकर्त्ता हैं) उनमें ही है

अर्थात् ५९८ वा ६०० अथवा ६०८ हैं ।

= संयोगकेवली (अयोगकेवलियोंसे) संख्यासगुणे हैं (८९८५०२ सयमी हैं)

= संयमासंयमी वा वेदसंयमियोंका अत्यवदुत्व नहीं है क्योंकि गुणस्थान तीन

भागोंमें विभक्त है असंयत (प्रथमसे चार गुणस्थान तक), संयत छोटेसे

चौद गुणस्थानतक और संयतासंयत एक ही है इससे अत्यवदुत्व नहीं है

(देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ २९४ २९५)

= असंयमियोंमें अर्थात् प्रथमगुणस्थान वालोंसे चौथा गुणस्थानवालोंमें

= सबसे चौड़े सासादन सम्पदगृही हैं । अर्थात् सासादनगुणस्थान चारों गतिधर्मों

होता है । इनमें वाचन करोड़ मनुष्य और भानकोंसे असंख्यासगुणे इतरतीनिगति

के जीव हैं ॥ गोमद्वन्द्वीवंगपाया ६२४

= (उन सासादन सम्पददृष्टियोंसे) मिश्रगुणस्थानकर्त्ता संख्यासगुण हैं

मयोगवृत्तिनः । मन्येय-गुणा ।
मन्यतामपतानाम् । न अस्ति अन्य-वदुत्वम् ॥

अपेक्षानु १

मसः ७ स्तोकाः । सासादन-सम्पददृष्टयः ।

सम्पदिसंख्यादृष्टयः । संयमेय-गुणाः ॥

परमिमासी जगत्सहाय बलीकं ह्य एषं^३ औद विमलवर्गं ससिख सर्वाभिसिद्धिं का शब्दगुणं विन्वी अनुवाच । अगाप-१ सूत्र ७

तेज पद्मलेयानां सर्वतः । स्तोका अग्रमत्ताः । प्रमत्ता सत्ययगुणा । एवमितरेणं पञ्चन्द्रियवत् ॥

॥नेत्र पद्मलेख्यानां सर्वतः स्त्रोका अप्रभक्ताः । प्रभक्ता सत्ययगुणा । एवमितरेण पञ्चैन्द्रियवत् ॥

नेत्रः पद्म-सेयानाम् ॥ सर्वथा स्तोकाः ॥ वप्रमथाः ॥

प्रमत्ताः ॥ संस्येय-मुजाः ॥

एवम् इत्येषाम् ॥

१५ पञ्चोत्त्रियमस्तु ॥

=पीठ-यथा लेभ्यावालोमि। सधसे बोदे अप्रमण संयमी ह

अर्थात् अग्रमण्ड बिल २९६९९१०३ मुनि है (पटी सस्सी अर्थ में है)

—(इ) अप्रमत्त संयमिणो से) प्रमत्त संयमी संख्यात् गुणे ई

अर्थात्, इने (५९३९८२०६) मुनि हें

होईसँ अन्य (मिथ्यास्व गुणस्वान से संयतसंयत पीस-पुन होआगाली) का

वर्षेन्द्र जीर्णों के साथ (अस-गुल) है क्योंकि पीत-पल्लवोंवाले

॥वेनिर्द्दी रोषे हं और मिप्यात्सो अपमच्छ गुगत्सोन लक हं॥ अर्वाव

॥ अदुष्टं चो विष्णुं गतिर्भो मे श्री वेङ्कटसख्य गुणस्थानं शोभा देहने मे वेङ्कट

काँइ मनुष्य जो पत्यके असंस्थात्वा भाग' सिंच हइस संस्थासो ते

शुद्धसेवावाले संस्थासंघमीक्षी घटावेनासे. नये पीठ-पठलेल्यावाले रहावे.

साधारण गुणस्वानर्मो भावन क्षीरं मनुष्यं और श्रावकोसे असंख्यस्यैव

अन्धधनी, गरिके जीव हैं इनमेंसे कृष्णनील-कायोत और द्रवलेप्यावाहा

षट्पदेनेप्ता नोप (बीब) पीठ-पछेझ्यावाले राजावेंगे । मिथगणस्यानमें एड

सौ भार फोड़ मनुष्य और मासाइनगल्स से संख्यात्यापे तीन गतिके जीव

हैं। इनमें से कृष्णसिंह-काणोत और अष्टसेन्या वालोंसे पदानों में दोष

पल्लवप्रभस्या धाले जीव रात्रासे न । अत्र सम्यग्गीर्णामि मातुलो ब्योद

मनुष्य है और-मित्रपालों से असंतुष्टताग्रस्त दोष तीन गतिबिंदुओं में प्रत्येक

०११ निरामी जगत्प्रसादाय सकीलकृप पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित सर्वाधिसिद्धिका श्रव्यश्राद्धी अनुवाद । अध्याय १ श्रुत ८
अवधिदर्शनामवधिज्ञानिवत् ॥ केवलदर्शना केवलज्ञानिवत् ॥ (१०) - तेश्यानुवादेन - कृष्णनील-
कापोतलभ्याना अमयतमत् ॥

मणिन्द्रनिनाम ! अवधियानिवत् ०

नानन्दनिनाम ! नन्दमानिवत् ०

क्योंकि चतुर्दशम, अचतुर्दशमनाले मिथ्यात्वसे धीमत्प्रमाण सक होते हैं ॥
- अवधि दर्शनवालों का (अल्प-बहुत्व) अवधि ज्ञानियों के सदृश है अर्थात्
प्रुष्ट ३०६ अवधि ज्ञानियोंमें असत्य सम्पत्त्युद्भिद अस्संभाव
गुण हैं । प्रुष्ट ३०७ में देखो ॥ अवधिज्ञान चौथे बारहवें गुणस्थानतक है ॥
केवल दर्शन (सर्वत्र चौदहवें गुणस्थान) वालों का केवल ज्ञानियोगवत् है ।
अर्थात् केवल ज्ञानियोगमें सयोग केवली अयोग केवलियों से सत्त्वात् गुणे है
अयोग केवली ५९८ केवक के मत में ६१० अथवा केवक के मतानुसार ६०८
ह और सयोग केवली ८९८५०२ हो सके हैं ॥

(१०) तेश्या-अनुवादेन कृष्णनील-कापोतलेभ्यानाम् ।
नमयतमत् ०

= लेभ्या के कन्यानुसार स कृष्णनील-कापोत लेभ्यावालों का (अल्प-बहुत्व)
= अमयमी (मिथ्यात्व-सासादन मिथ-अधिरत गुणस्थानकर्त्री) नि सम है ॥
अर्थात् ये तीन अनुप लेदशयें उक्त प्रार गुणस्थान तक ही हैं । भावार्थ
सासादन गुणस्थान चारों गतियों में होता है । इनमें पावन करोड मनुष्य और
भावकर्त्तसे अस्सत्तात् गुणे इतर तीन गतिके बीच हैं । ये इन चारों गुणस्थानोंमें
मयसे धोद हैं । मिथ्यगुणस्थानमें १०४ करोड मनुष्य हैं । और सासादनवालोंसे
संख्यातगुणे दोष तीन गतियाँ की हैं । अधिरत गुणस्थान भी चारों गतियोंमें
होता है इनमें सातसौ करोड मनुष्य हैं । और मिथवालोंसे अस्सत्तात् गुणे दोष
तीन गतिके बीच हैं ॥ मिथ्यारति इन अस्सत्त सम्बन्धियोंसे अन्तर्गुणे हैं
(प्रुष्ट ३११) हैसे अनन्तान्त है ॥ (गाथा ६२४)

पद्यादिवासी अक्षरवर्णराशय बलील दृष्ट पदकेषु और विरुद्धराशय स्थित सवर्ण सिद्धका शब्दका हिही अनुवाद । अभ्यास १ सूत्र =

असंयतमम्यगदृष्टयोऽमस्येयगुणा । शेषाणां नास्त्यल्पवहुत्वम् । विशेषे एवैवगुणस्थानप्रवृत्तात् ॥ (१३)

सञ्ज्ञानुवादेन-संज्ञिनां बहुवर्णनिवत् ।

असंयत

मम्यगदृष्टयः ॥ असंयतेयगुणाः ॥ विशेषे ।

एक-एक-गुणस्थान-प्रवृत्तात् ॥ ॥

शेषाणाम् ॥

अल्प-बहुत्वम् ॥ नञ् अस्ति ।

--[विश्वसंयमी उपरुम सम्यग्दर्शनवालोसे] असंयमी [उपश्रुम]

--सम्यग्दर्शनवाले असंख्यात गुणे हैं । पष्ठान्तरमें का अन्य ओर में

--एक एक गुणस्थान का (मिथ मिथ) मान लेनेसे वा विवक्षित एक एक गुणस्थान होने से

--बचे हुए (मिथ्यात्व-मातादन-मिथ-असंगत सम्यग्दृष्टिवालेनिके-

--घांटा और अविकल्पना नहीं है (क्याकि अब एक प्रकार की वस्तुमें कब स्थानों में हों तब छूते हैं कि अमुक स्थानकी वस्तुमें इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत्व है । मिथ्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान में ही है ॥ मातादन सम्यग्दृष्टि दूसरे में ही है सम्यग्मिथ्यादृष्टी मिथ सतिर गुणस्थान में ही है और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अवित गुणस्थान में ही है इसलिये इन चारों गुणस्थानों में सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व नहीं है परन्तु अनयमकी अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम ज्ञान से) है और तब असंयमकी अपेक्षा से अल्प बहुत्व इस प्रकार है कि असंयमिभिर्मि मयसे बोहे मातादन सम्यग्दृष्टी है । इनसे मिथगुणस्थानकी संख्यात गुण है । इनसे अवित सम्यग्दर्शन वाले असंख्यात गुणे हैं । इनसे मिथ्यादर्शनवाले अनंत गुणे हैं । (विशेष ज्ञानन के लिये पृष्ठ ३१० ३११ देखो ।

(१३) संज्ञा अनुवादेन : संज्ञिनाम् ॥ बहुवर्णनिवत्

--(१३) संज्ञा की अपेक्षासे सैनीनिका (अल्प बहुत्व) पष्ठदर्शनवालों के सम हैं और बहुवर्णनवालों का अल्प बहुत्व मन योगी क ममान है और मनयोगियों का

नमः निगमिणी अगणगणहाय शब्देन इतः पञ्चमेन-और विभक्त्यर्थं साधितः सर्वोभसिद्धिः शब्दः दिशि अनुपादः । अत्र १ सूत्र ८

तत् संयतास्यता संस्येयगुणा । असंयतसम्पददृष्टयोऽसंस्येयगुणा ॥ क्षायोपशमिक्रमम्यग्नष्टिषु सर्वे
स्तोका अप्रमत्ता । प्रमत्ता संस्येयगुणा । सम्यक्तासंयताः असंस्येयगुणा । असंयतसम्पददृष्टयोऽसंस्येयगुणाः
ओपशमिक्रमम्यग्नष्टिनां सर्वे स्तोकाश्चत्वारः उपशमकाः अप्रमत्ताः संस्येयगुणा । प्रमत्ता संस्येयगुणा
भयतामयता संस्येयगुणा ॥

तत् मयता मयता ॥

मस्येय-गुणाः ॥ असंयत-सम्पददृष्टः ॥

असंयतसम्पददृष्टः ॥ क्षायोपशमिक्रमम्यग्नष्टिः ॥

प्रमत्ताः ॥ मयतामयता ॥

मयतामयता ॥

असंयतसम्पददृष्टः ॥

असंयत-सम्पददृष्टः ॥ असंयतसम्पददृष्टः ॥

ओपशमिक्रमम्यग्नष्टिनां सर्वे स्तोकाः ॥

प्रमत्ताः ॥

अप्रमत्ताः ॥

मस्येयगुणाः ॥

प्रमत्ताः ॥ मस्येयगुणाः ॥

मयतामयताः ॥ असंयतसम्पददृष्टः ॥

॥ असंयत (अप्रमत्ता संयमिणी) से देश संयमी [क्षायिक सम्पददृष्टि]

= संस्येय गुणे हैं । [उन संयमासंयमिणीसे] असंयमी सम्पदादृष्टि

= असंयतागुणे हैं । वैदक सम्पददर्शनवालोंसे

= सर्वसे थोड़ा अप्रमत्त संयमी [सातयागुणात्पानवर्ती] हैं [उनसे]

= प्रमत्ता संयमी [वैदक सम्पददर्शनवाले] संस्येयगुणे हैं

= [उन प्रमत्ता संयमी वैदक सम्पददर्शनवालोंसे] संयमा संयमी

= [वैदकसम्पददृष्टि] असंयतागुणे हैं । [विद्य संयमी वैदक सम्पददृष्टिसे]

= असंयत सम्पदादृष्टि असंयता गुणे हैं ।

= उपशम सम्पदादर्शन [१] वालों में सब से थोड़ा

= चार [अपूर्व कृत्वा-अनिष्टविकरण-यस्य सोपराय-उपदेशकज्ञाय ।

= उपशम भेगी वाले हैं । (चार उपशम भेगी वालों से] अप्रमत्ता संयमी

= संस्येय गुणे हैं । [अप्रमत्ता संयमी उपशम सम्पदादृष्टियों से]

= प्रमत्ता संयमी [उपशम सम्पददर्शन वाले] संस्येय गुणे हैं

= [प्रमत्ता संयमी उपशम सम्पददर्शन वालों से] संयम संयमी असंयता गुणे हैं

● यहाँ बड़े विमर्श सम्पत्ति विमर्श के अर्थ हैं अतः दिशि अनुपाद "गल्लि" त्यागने "वालोसे" किंवा हैं "प्रा विपत्ति गुण १३८ ।

पदानिवासी अगदपदवाय बलीक दृढ पदुद्येव और विरजयय संहित सार्वाथ सिद्धिका शब्दका हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र =

असंयतसम्यग्दृष्टयोः सस्येयगुणा । शेषाणां नास्त्यत्यनहुत्वम् । विपक्षे एतेकगुणस्थानग्रहणात् ॥ (१३)
सङ्गानुवाचिन-साक्षिना चक्षुदर्शनिवत् ।

असंयत

सम्यग्दृष्टयः १ । असंयत्येयगुणाः ॥ विपक्षे ३ ।

एक-एक-गुणस्थान-ग्रहणात् ३ ॥

शेषाणाम् ३ ।

अल्प-बहुत्वम् ॥ नः अस्ति १

-[विपक्षयमी उपक्रम सम्यग्दर्शनवात्सि] असंयमी [उपक्रम]

-सम्यग्दर्शनवासे असंयस्यात् गुणे ई । पक्षान्तरमें वा अन्य ओर में

-एक एक गुणस्थान का (मित्र मित्र) मान लेनेसे वा विवाचित एक एक गुणस्थान होने से

-बने हुए (मित्र्यात्व-सासादन मित्र-असंगत सम्यक्छिवालोकित-

-बाढा और अविकल्पा नहीं है (क्योंकि जब एक प्रकार की वस्तुएं कई स्थानों में हों तब कहते हैं कि आयुक्त स्थानकी वस्तुएं इतर स्थान की वस्तुओं से अल्प बहुत है । मिष्यादृष्टि एक प्रथम गुणस्थान में ही है ॥ सासादन सम्यग्दृष्टि इससे में ही है सम्यग्मिष्यादृष्टी मित्र नीतरे गुणस्थान में ही है और असंयमी सम्यग्दृष्टी एक अविकल गुणस्थान में ही है इसलिये इन चारों गुणस्थानों में सम्यक्त्वकी अपेक्षा से अन्य बहुत नहीं है परन्तु अर्भव्यक्ती अपेक्षा से प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ तक (असंयम होने से) है और वह अर्भव्यक्ती अपेक्षा से अल्प बहुत इस प्रकार है कि असंयमियामें सबसे थोड़े सासादन सम्यग्दृष्टी है । इससे मित्रगुणस्थानकर्ता संख्यात् गुणे ई । इससे अविकल सम्यग्दर्शन वाले असंयस्यात् गुणे ई । इससे मिष्यदर्शनवाले अनंत गुणे हैं । (विज्ञाप जानने के लिये पृष्ठ ३१० ३११ देखो)

-(१३) सङ्गा की अपेक्षासं सैनीनिका (अल्प बहुत) चक्षुदर्शनवालों के सम है और चक्षुदर्शनवालों का अल्प बहुत मन योगी के यमान है और मनयोगियों का

(१३) सङ्गा अनुवादेन १ । संज्ञितान् ३ । चक्षुदर्शनिवत्

पद्यानिवासी अगकगसहाय वहील हत पण्छेव और विमलपर्य सखित सर्वार्थसिद्धि का शब्ददाता; दिव्यी अनुयाय । आपाग १ सूत्र ८

अनाहारकाणां सर्वत स्तोका सयोगकेवलिन । अयोगकेवाञ्चिन मख्येयगुणा । सागारात्मग्दृष्टयो
 ऽपख्येयगुणा । अस्मैपतसम्यग्दृष्टयोऽपख्येयगुणा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा ॥ एव मिथ्यादृष्ट्यादीनाम गत्यादिपु
 मार्गणा कृता सामान्येन ॥ तत्र सूक्ष्ममेद आगमाविरोधनानुस्मर्तव्य ॥

अनाहारकाणाम् ॥ सर्वतः * स्तोका ॥ सयोग-
 केवलिनः ॥

-अनाहारकों में सब से बोड़े सयोग-
 केवली है (अर्थात् यद्यपि सयोग केवलियों की संख्या ८९८५०२ तक
 उत्तराकारि होसक्ती है और अयोग केवलियों की संख्या ५९८ वा ६००
 ६०८ तक हो सक्ती है परंतु सयोगकेवलियों की अनाहारक अनस्या
 प्रतरसमुद्घात और लोकपूर्ण समुद्घात में ही होती है दंड समुद्घात और
 क्वटसमुद्घात में आहारक ही अनस्या होती है इस अपेक्षा से सयोग
 केवली अनाहारकों की संख्या सर्व से अल्प है ॥ जीवों की अनाहारक
 अवस्था मिथ्यात्व-सासादन-असंपत और अयोग केवली गुणस्पर्शों में ही
 होती है । सयोग केवली उक्त समुद्घातों में ही अनाहारक होते हैं ।

अयोगकेवलिनः ॥ संख्येयगुणाः ॥

सासादन-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येयगुणाः ॥

असंख्य-सम्यग्दृष्टयः ॥ असंख्येय गुणा ॥

मिथ्यादृष्टयः ॥ अनन्त-गुणा ॥

एवम् * मिथ्यादृष्टि-आदीनाम् ॥ गति-आदिपु ॥

सामान्येन ॥ मार्गणा ॥ कृता एव * यक्ष्म मेदः ॥

आगाम-अविरोधनः ॥ अनुस्मर्तव्यः ॥

=(सयोग केवलि अनाहारकों से) अयोग केवली संख्यात गुण हैं
 =(अनाहारक अयोगकेवलियों से) सासादन सम्यग्दृष्टी असंख्यात गुण हैं
 =(सासादन सम्यग्दृष्टियों से) असंख्यी सम्यग्दृष्टि असंख्यात गुण हैं
 =(असंख्यी सम्यग्दृष्टि वाले से) मिथ्यादृष्टी अनन्तगुण हैं
 =येसे मिथ्यादर्शन वाले आदिकनिकं गति आदिकों में
 =संख्येय कथन करि मार्गणा (निर्देश की गई) तहां (इनके) सूक्ष्ममेद
 =आश के अनुसार करि अंगीकारकरना वा अनुस्मरण करना योग्य है

पञ्चमिनी श्री अण्कनमात्र पदीन इत एव पृष्ठ १ और विमलकथ सहित मर्यादाभिहित गणेश दिदी अनुवाद । अगस्त १ म ८

अभि न। नास्त्यलः नहुत्सम् । तदुभयव्यगदरहितान्, केन न निमित्तम् ॥ (१४) जागरानुव देन माशरक्वण।
पाययोपि नत् ।

मित्रिभाम् ; अन्त्य-यदुराम् न अस्ति ।
[उमस-न्यसरस-रहितानाम् ; केचिद्विद्वानि
। ०

(१४) आशरक्त-प्रनुवादेन । अशरक्तानाम् ;
य पायिरम् ०

अन्त्ययदुत्त्व पंचत्रियवत् है (पृष्ठ ३११ और पृष्ठ ३०१ ३०२ को क्रम से देखो)
इसलिये संज्ञियों का अल्प बहुत्व पंचेन्द्रियों क सदृश हुआ (सभी मिथ्यात्व प्रथम
गुणस्थान स धीनकपाय पारद्वयो गुणस्थान तक होते है) पंचन्द्रिया का अल्पबहुत्व
गुणस्थानसारद्व है इसलिये अंत्ये संज्ञियाका अल्पबहुत्व मिथ्यात्व गुणस्थान स क्षीण कपाय
गुणस्थानवर्ती जीवा क अल्प बहुत्व क सदृश हुआ ॥ चार अपूर्व वर्ण पृष्ठ २९८
से २९९ कोअंत तक ॥

- मन रहित जीवा क अल्प-बहुत्व नहीं है (क्योंकि य सत् मिथ्यादृष्टी है)
- उन (मैनी अर्जनी) दाना नामों स वर्जित (जीव) निके कवल ज्ञानियों क
- ममान (अल्प-बहुत्व) है अर्थात् अयागकवलिया स सयोगकेवली संख्यातसुभे
है अयाग कवली उत्कृष्टपरि ५९८ या ६०० वा ६०८ है और सयोग कवली उत्कृष्ट
करि आठलाख अठानेहजार पावसो दो है

- (१४) आहारक की अपवा से आहारकों का (अल्प-बहुत्व)
- काय यागिया क सदृश है (और काययोगिया का अल्प-बहुत्व गुणस्थानम्) है अतः
आहारकों का अल्पबहुत्व गुण स्थान सदृश हुआ। काययोगी प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान
स सयोग कवली सारद्वो गुणस्थान तक है अतः अयाग केवलियां को छोड़ कर पृष्ठ २९८
में चार अपूर्व करण से २९९ पृष्ठ क अंत तक द्रव्यद्वः पड़लो वो वही आहारकों
का अल्पबहुत्व होयेगा ।

पञ्चमिषागरी उग्ररुद्र महादेव दत्तं नृपुत्र पञ्चमिषागरी और विष्णुपदस्य महिम्न सर्वार्थसिद्धिदा दधत्त हिरी अनुवाच । आचार्य १ सुप्र ८

तत्र मय्यर्दशनस्यादाशुद्धिस्तु लक्षणोत्पत्तिरवाभिविषयन्यासाधिगोपाया निर्दिष्टा । तत्सम्बन्धेन च जीवार्दना सञ्ज्ञापरिणामादि निर्दिष्टम् । तदनन्तर सम्यग्ज्ञान विचारार्हमित्याह

प्रथमं चाने । उच्यते ॥॥ सम्यग्ज्ञानस्य ॥॥

उत्पत्ति

उत्पत्ति

प्रथमं विचार

न्याय

प्रथमं उपाया ॥

निर्दिष्टा । पञ्चमिषागरी दत्तं नृपुत्र । अक्षिप्तोऽनाम ॥

सञ्ज्ञापरिणाम-आदि ॥॥

निर्दिष्टम् ॥॥

नृ ॥॥ प्रथमम् ॥॥ सम्यग्ज्ञानम् ॥॥ विचार

प्रथम् ॥॥ इति आदि

(२) एतद् एतदनुपपत्तिरिति हेतुर्महात्म्य

एतद्विचार

एतद्विचार ॥॥ महत्त्वम् ॥॥

= इत्यप्रकृत प्रथमं उपदेश किया गया सम्यग्ज्ञानका

-लक्षण (देखो सूत्र २ पृ० ३१)

= (२) म मय्यर्दशनका उप न ह का निर्मित (देखो सूत्र ३ पृष्ठ ३६)

= (मय्यर्दशनका) अधिपति (जीव); (मय्यर्दशनका) विषय (सूत्र ४ पृष्ठ ४०)

= (मय्यर्दशनका) याम वा निक्षेप वा लोक-यवहार (सूत्र ५ पृष्ठ ४४ देखो)

= (मय्यर्दशनका) ज्ञान या स्वस्व (जानन) क उपाय

(सूत्र ६ पृष्ठ ५४, सूत्र ७ पृष्ठ ५८, सूत्र ८ पृष्ठ ८१ को देखो)

= व ह द य ह । और (च) उम (मय्यर्दशन) क मय्यर्दकरि जीवाधिक (तत्त्वा) के

= नाम (देखा सूत्र ४) परिणामात्मिक अथवा भावादिक (देखो सूत्र ६, ७, ८)

= कह गय ह

= तिम (मय्यर्दशन) के निकट वा मयीप सम्यग्ज्ञान (देखो) विचारने

= योग्य है । या (आचार्य) इत्यप्रकार करते ह कि

= परम्पर वा आपत्तर्म मिली हुई (स्थितिहीन) यद्यपि अर्थ

= अ उनके मय्यर्दशनमें (प्राप्त) हुए हैं या मय्यर्द

एतानि नाग्री जगत्संप्रदाय कर्मिण्यहं पश्येत्तु और विषयवर्त्य सहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ९

ज्ञानशब्द प्रत्येकं परिसमाधत्ते । मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवाधिज्ञानं मन पर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ।।

इन्द्रियैर्मनमा च यथास्वमय न्मन्यते अनया मनुते मननप्रात्र वा मति ।।

ज्ञानशब्दः । शब्देभ्यः ।।
परिगमाप्यत त मतिज्ञानम् ।।। ध्यमानम् ।।।

मतिज्ञानम् ।।। मन पर्ययज्ञानम् ।।।
ज्ञानज्ञानम् ।।। इति शब्दः ।।। मनसा ।।। च

यथान्तरं पर्यायः ।।। मन्वन्ता

मनसा ।।। मनुते ।।
तान्मनमायम् ।।। मति ।।।

ज्ञानशब्दः प्रत्येक (मति श्रुत-अवाधि-मन-पर्यय-केवल) को

= उभाया गया है । (सब) मतिज्ञान-श्रुतज्ञान

= अवाधिज्ञान-मन-पर्ययज्ञान

= केवल ज्ञान देते हैं । पांच इन्द्रियाहरि और (च) मनकरि

= अपनी (व्यक्ति) के अनुदल (= यथास्वम्) पदार्थोंको जानता है अर्थात् पांच इन्द्रियोंकरि और मनकरि अपने योग्य वेश में स्थित वर्तमान पदार्थ को जो पहचानता है वा जानता है सो मतिज्ञान है

= (अथवा) विसरकरि जानता है (= मनुते)
= (सो) मतिज्ञान है) वा जानने मात्र मतिज्ञान है ।।

(१) परिगमाप्यत यह शब्द आधु (= प्राप्त हुआ) स्थिति शब्दों गणने परस्पर प्राप्त होने पर और 'यत्कर्मणि प्रयात' रूप और न अन्य पुराण, पूर्वमानकाज, आत्मनेपद परस्परवचनके प्रत्ययका आह्वार देते बना लेते हैं कि परिगमाप्यत आधु + त + ने = परिगमाप्यते

(२) मनुते मन = जानना, विचारि चतुष्पादके आत्मनेपदी सकर्मक, अतिरु धातुमें य चतुष्पादगणका विकरण बोधकर मन्वन्ता सिद्धा परस्पर ने पूर्वमानकाजका प्रत्ययचन अथ पुरुष, आत्मनेपदी प्रत्यय आह्वानेसे (मन्वन्ते) मनुते (= जानता है) बन गया ।।

(३) मनुते मन्वन्त = जानना, (वर्धन) तथापि आठवें गणका आत्मनेपदी, सकर्मक सेरु धातुमें व आठवें गणका विकरण आह्वानेसे (मन्वन्त) = मनुत बन गया पीछे न बान्वाय काटका परस्परवचन, आत्मनेपदी आत्मनेपदी प्रत्यय, आह्वाने से मनुते (= जानता है) बन गया ।। मानपते मन्वन्त = आह्वार करना पुरादि इतने गणका आत्मनेपदी अकर्मक सेरु धातु है । इस गणके अथ विकरण धातुमें लगाने से वरिसे आयेके स्वर और वपाद अ की इन्द्रि संका बाजती है मत मान् + अय प्राप्त हुआ ते ठक आत्मनेपदी वर्तमानकाजकरि मानपते हुआ ।। मनुति मन्वन्तादि प्रथमगणका धातुपुरुष करने के कार्य में सकर्मक परस्पर है । और अह्वार करने के कार्य में अकर्मक आह्वारण परस्पर है ।।

प्रतिनिर्गामी ज्ञानरूपमात्र परस्मैपद और निमित्तार्थ सहित सर्वव्यापिका शब्दः । अर्थात् १ गद्य १

तद्वारणरक्षणोपदामे मति निरूपमाण श्रुते अनेनेति तत् श्रुणोति श्रवणमात्रं वा श्रुतम् ॥ अनयोः
प्रत्यामन्त्रनिर्देश इत कार्यकारणभावात् । तथा च वक्ष्यते “श्रुत मतिपूर्वमिति” ॥

नृ आरारण ध्यापदम् । मति ।
निरूपमाणम् ॥ अनन्त ॥ ध्येत ॥ इति ॥

नृ ॥ ध्याति ॥
वा ॥ ध्यायाम् ॥ ध्येतम् ॥
कार्यकारण भावात् ।
अनन्त ॥ अस्यामन्त्र निर्देश । कुतः ।
न्या ॥ ध्यायत ॥
यु ॥ मतिपदम् ॥ इति ॥

= उम (ध्रुव शान) भावणीयकर्मके ध्योपशम होने पर (= सवि)
= स्थित वस्तु का नाम (= निरूपमाण) जिससे सुनकरि जाना जाता है ऐसा
(ध्रुवज्ञान) है ।
= वा उम (निरूपमाण वस्तु) को (= हत) सुनकरि जानता है (तो ध्रुवज्ञान है)
= अथवा (= वा) जो सुनकरि जानन मात्र (तो) ध्रुवज्ञान है ॥
= (दोनों मतिज्ञान और ध्रुवज्ञान का आपस में) कार्य-कारणभाव होने से
= इन दोनों (मतिज्ञान और ध्रुवज्ञान) का अति निष्ठ उपपेक्ष किया गया है ॥
अर्थात् मतिज्ञान कारणरूप है और ध्रुवज्ञान कायरूप है ।
= वैषा कि (= तथा च आगे इसी अर्थात् के पीछे वा युग्म में) कहेगे
(टिप्पणी पृष्ठ ४१)

= ध्रुवज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है ध्रुवज्ञान मतिज्ञान के पश्चात् होता है ।
अर्थात् ध्रुव शान फ उत्पन्न होने से मतिज्ञान कारण है । और ध्रुवज्ञान कार्य है

(१) मति—न्यायमें मत् शब्द निर्दिष्ट है । यहाँ पर श्रोतृगण स्वामी धिमादि मत् शब्द पुनर्निर्देश है अतः मति शब्द भी स्वामी परस्मैपद
पुनर्निर्देश ही है । यहाँ पर विधायकता अर्थ है । मत्प्राप्ति, धृग्य बहुत उत्पन्न, यथार्थ (ठीक) तथ्य इन अर्थों की आता है (देखा हिं पृष्ठ ८)
अन्त (१०) ध्येयपदार्थ पृष्ठ ४७९ में आशय मत्पद = ध्याय मत् (आशय) वद् (= वत्) पद (= सत्) (१०)

(२) ध्रुव—आदि प्रमाण गलत परस्मैपद जाना या हिलना अर्थ में आता है । इस गलते ध्यातु का अतिम स्वर और ध्यातु का उपात्त स्वर
ध्यायन क रिक्तव अ के पक्षिने पहिले गुण लोका का प्राप्त ॥ आता है । अतः ध्रुव = ध्या धी = ध्ये + म (विकरण आङ्गक रिप्पणी पृष्ठ १३ द्वाप)
= ध्याति, ध्याय धृग्य पद रूप । परस्मैपद यत्प्रमाणधत्वा का ति प्रत्यय आङ्गुने स ध्य + ति = ध्येति (आता है) बन गया प यदि ध्रुव = ध्रुव विकरण
वर्गा ६ ध्याय गलत वा ध्यातु में आङ्गु आब ता वह ध्यातु वीर्या स्थिति गलत हो जाता है और ध्रुव का ध्रुव ही आता है । ध्रुव + ध्रु (= ध्रु) देखा
रिप्पणी पृष्ठ ४५ ॥ ध्रुव = ध्याता (पृष्ठ ५१) अतः ति आङ्गु = ध्याति = ध्यायति आता है । ध्रुव + ध्रु ३ १-३४ यह स्वर १३ व १८ व ३२ स्वरों से
अनुवर्तिता जाता ध्रुव १ ३२ । च (सार्वभौमिके कर्षति धा) ध्रु के स्थान में ध्रु हो और उसके पश्चात् एव विकरण हो यदि कर्षा में सार्व भ्यातु क

एतानिगामी नगरप्रमहोय वसिष्ठकृत पदच्छेद और विभिन्नतर्क सहित सार्वभौमसिद्धिका श्रवणः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ९

ज्ञानज्ञानं प्रत्येकं परिसमाप्यते । मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवाभिज्ञानं मन पर्ययज्ञानं केवलज्ञानमिति ।।

इन्द्रियेर्भेनमा च यथास्वयन्मन्यते अनया भनुते मननभात्र वा मति ।।

मानद्वन्द्व । श्रत्येकम् ।।

परिगमाप्यत T मतिज्ञानम् ।। ध्वनज्ञानम् ।।।

मतिज्ञानम् ।। मन पर्ययज्ञानम् ।।।

कान्तज्ञानम् ।। इति० इन्द्रिये ।। मनसा ।।। च

यथागव० भर्षात् ।। मन्थतT

अनया T मनुत T

वा० मननभात्रम् ।।। मति' ।।

॥१॥ परिगमाप्यत यह इन्द्र आत्मा (= मात इत्यादि) तथापि वाच्ये गणके परस्परपक्ष धातुमें परि और सत् उपसर्ग लगाते से और 'परिगम' प्रकाश

प्रत्यय और ने अत्र पुण्य, वर्तमानकाल, आत्मनेपद पदप्रत्ययके प्रत्ययका आक्षेप येसे बना लेते है कि परि+मन्-आप्+भते = परिस्माप्यते

(१) मन्ते मन - जानना, विचारि धातुगणके आत्मनेपदी सार्धम् इ, अभिद्र धातुमें य धातुगणका विकरण आक्षेप सम्य बना लिया

परकार ने वर्तमानकालका पक्षप्रत्यय अत्र पुण्य, आत्मनेपदी प्रत्यय जोड़नेसे (मन्य+ते) मन्थते (= जानता है) बनगया ।।

(१) मनुते मन्= जानना, (वर्धोपर) तथापि मातर्दे गणका आत्मनेपदी, मन्थम् इ सेट् धातुमें य लाठव गणका विकरण जोड़नेसे (मन्+उ)=मनु

बनगया पीछे ते धनधान कालका पक्षप्रत्यय, अत्रपुण्य आत्मनेपदी प्रत्यय, जोड़ने से मनुते (= जानता है) बनगया ।। मानयते-मन्= आक्षेप करवा

पुनर्गति इतने गणका आत्मनेपदी सार्धम् इ सेट् धातु है । इस गणके अत्र विकरण धातुमें समाप्ते से वसिष्ठे काव्येके स्वर और उपपन्न अ की वृद्धि

संज्ञा वा जन्ती है मन् मान्+अप् प्रत्य धुजा ते उच्च आत्मनेपदी वर्तमानकालाक्षरि मानयते हुआ ।। मन्ति मन्वन्वादि प्रथममनका धातुपुत्रा करने के

अर्थ में सार्धम् परस्परपक्ष है । और आक्षेप करने के अर्थ में अकर्मक आदिगण परस्परपक्ष है ।।

पदान्वासी अकारसङ्ख्याय वहील्लुक्त पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वावसिद्धिका लक्ष्यः। हिंदी अनुवाद । अप्याय १ पृष्ठ ९
परकीयमनोगतौर्ज्यो, मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययणं परिगमनं मन पर्ययः । मतिज्ञानप्रसंग इति
चन । अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमशक्तिमात्रविजम्भित तत्केवल

- परसम्बन्धी (= परकीय) वा अन्यके (= परकीय) मनमें प्राप्त वा तिष्ठे हुये
= रूपी पदार्थ (= अर्थ) की साहचर्यात्ति-अनुरूपतासे-समवायसे वा समागमसे
= मन ऐसा (नाम) कहा गया है अर्थात् तिस (अन्यके मनमें चित्तमन किये हुये) पदार्थका
= ज्ञान वा जानना (= पर्ययणम् = परिगमनम्) सो मनः पर्यय है अर्थात् जो मनः
पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमसे परके मनमें तिष्ठे हुये रूपी पदार्थको जाने
सो मनः पर्यय ज्ञान है ॥

= (मन पर्यय ज्ञानके) मतिज्ञानका संयोग वा मेल होता है ऐस सर्वैदम् (= चेत)
= (उत्तर है कि) नहीं क्योंकि (मन पर्यय ज्ञानमें मन) अपेक्षामात्र है कार्य कारण
भाव नहीं है अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण मन नहीं है वैसाकि
मतिज्ञान के उत्पन्न होने का कारण मन है ।

= (मन पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी दृष्टि मात्रसे
= विकसित वा प्रकाशित (= विवृण्मिमतम्) हुआ है ॥ वह (मनः पर्यय ज्ञान) केवल

= देखते हैं । ऊपर कहा था जोका देखते हैं ।

= अपना विमान भ्रष्टा ईद पर्यंत (देखते हैं) ऐसा अभिप्राय है ।

= सावधिष्ठन विपश्यत स्मरित अवधि ३ म है (इस वाक्यका) क्या अर्थ है ।

= कभी कलकलवाला (पदार्थ) है किन्तु किन्तुका स्तो अवधि ज्ञान है ॥

(१) विवृण्मिमत, (वि०) विवृण्मि + च । विकसित । बिना हुआ । मावेक ॥ प्रकाश । प्रकाश । पश्यन्तम् काठ पृष्ठ ३५२ देखो ॥

परकीय-मनस-गतः ३।

अर्थः, साहचर्यात् ३॥

मनः, १० इति उच्यते १ तत्त्व ३।

पर्ययणम् ॥॥ परिगमनम् ॥॥ मनः पर्ययः ३।

मतिज्ञान-संयोगः, इति च चेत ३

नञ् अपेक्षामात्रत्वात् ३॥

क्षयोपशम-शक्ति-मात्र-

विवृण्मिमतम् ॥॥ तत् ३॥ केवलम् ३॥

पश्यन्ति १ उपरिः स्तोत्रम् ३। पश्यन्ति १

मिन्नविमान-भ्रष्टा दृष्ट पर्यन्तम् ३॥ इति ३ अर्थः ३।

अवधिष्ठन-विपश्यतत्वात् ३॥ अवधिः ३। का ३। अर्थः ३।

कल्पित-कलकल विपश्यतत्वात् ३॥ अवधिः ३।

एतान्निवासी जगरूपसहाय करील्लुत पक्षच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाधिकारिका सम्पन्नः । द्विती अनुवाद । अध्याय १ पत्र ९
परकीयमनोगतोऽर्थो मन इत्युच्यते साहचर्यात्तस्य पर्ययण परिगमन मनःपर्यय । मतिज्ञानप्रसग इति
व्रन । अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमशक्तिमात्रविजम्भित तत्वेनलं

परकीय-मनस-गत ।
= रूपी स्वार्य (= अर्थ) की साहचर्यात्ते अनुसृष्टात्ते-समवायत्ते वा समागमत्ते
= मन ऐसा (नाम) कहा गया है अर्थात् जिस (अन्यके मनमें चितमन किये हुये) पदार्थका
= ज्ञान वा जानना (= पर्ययण = परिगमनम्) सो मन पर्यय है अर्थात् जो मनः
पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमत्ते परके मनमें तिष्ठे हुये रूपी पदार्थको जाने
सो मन पर्यय ज्ञान है ॥

= (मनः पर्यय ज्ञानके) मतिज्ञानका संयोग वा मेल होता है ऐस संवेदपर (= वेत्त)
= (उत्तर है कि) नहीं क्योंकि (मन पर्यय ज्ञानमें मन) अपेक्षामात्र है कार्य कारण
भाव नहीं है अर्थात् मनः पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति का कारण मन नहीं है वैसाकि
मतिज्ञान के उत्पन्न होने का कारण मन है ।

= (मन पर्यय ज्ञानावरणीय कर्मके) क्षयोपशमकी शक्ति मात्रसे
= विकसित वा प्रकाशित (= विद्युम्भितम्) हुआ है ॥ वह (मनः पर्यय ज्ञान) केवल
विद्युम्भितम् ॥ । तत् ॥ केवलम् ॥ ॥

क्षयोपशम-शक्ति-मात्र-

पश्यन्ति T उपरि० स्तोत्रम् । पश्यन्ति T
निप्रयिमान-पश्यन् पश्यन् पर्ययम् ॥ ॥ शक्तिः अर्थः ।
अप्यदिष्टत्वं विपर्ययम् ॥ ॥ अप्यदिः । का । अर्थः ।
कृषिक-सहाय विपर्ययम् ॥ ॥ अप्यदिः ।

= वैकल्य है । ऊपर काल या थोड़ा वैकल्य है ।
= अपना विमान ध्वजा ईड पर्यंत (देखते हैं) ऐसा अभिप्राय है ।
= शक्तिच्छत्र विपर्ययम् स्मृति अर्थः ॥ है (इस वाक्यका) क्या अर्थ है ।
= रूपी सहायका (पदार्थ) है विषय शिक्का सो अवधि ज्ञान है ॥

(१) विद्युम्भित, (वि०) वि+जुम्भि + ण । विकसित । लिखा हुआ । मायेण ॥ प्रकाश । पश्यन् विपर्यय कोश पृष्ठ ३५२ देखो ॥

परातिगामी जगत्सर्वमहाय रक्षितकृत्यंश्चेष्टे और विभक्त्यर्थं तस्मिन् सर्वार्थसिद्धिर्वा शब्दः हिंदी अनुवादे ॥ अर्थाय १ सूत्र ९
स्वपरमनोभिर्यगदिश्यते । यया अग्रे चन्द्रमसं पश्यति ॥ वाद्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो
मार्गं केचनते मेवन्ते तत्तेवलम् । असहायिमिति वा ॥

रा-पर मनोभिः ॥॥ यगदिश्यत T

=अपन और परके मनो (की अपेक्षा) करि निर्देष्ट किया गया है । अर्थात्
इसकी मन पर्यायज्ञान संज्ञा इस हतुसे रखी है कि इसमें अपने और
परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मस्तिष्कानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और)
मनके द्वारा रूपीपदार्थका ज्ञान होता है ॥

यथा१ प्रभ । गन्धममम् । पत्यनि T इति॥

=जैसे बादलोंमें चंद्रमा हो देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शब्द केवल
अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलोंसे उत्पन्न नहीं हुआ है वैसे मन पर्यय
वाक्यमें मन शुद्ध अपेक्षामात्र है मन पर्ययज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥
=बाद और (=च) अंतरंग तपकरि जिस वस्तुको (=यद् अर्थम्)

मागम् ॥ अर्थिनः ॥ केतन्व T सेवन्त T

=जिस वस्तुको तपस्वी उपासना करते हैं (केवन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

तत् ॥॥ सन्तम् ॥ या० अमहायम् , इति॥

=सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) असहाय ऐसा है

धाम किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मस्तिष्कान और भुक्तान
इन्द्रियों और प्रकाशादिककी महायत्नासे पदार्थको जानते हैं वैसे यह ज्ञान नहीं है तथा अवधि ज्ञान और मना पर्यय
ज्ञान अपनी अपनी उत्पत्तिमें यथासंख्य अवधिज्ञानावरण और मना पर्यय ज्ञानावरण कर्मकी अपेक्षा रखते हैं वैसे भी
हवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मासे ही प्रवर्तता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) कहते हैं ॥

यगदिश्यते-यह ताम्र पिंडा मुखादि पठनमन्त्रे उपाय परसेपम् ओट आत्मनेपव सकर्मक जगिद घातुस वि और अय उपसर्गके जोकेसे वि+अप+दिश्य
हय हय १५५ चर्मवि जगव जोइकर और ते अयपुष्टय, पक्षयचम, बर्तमानकाळ, आत्मनेपदी प्रत्यका आत्मनेपसे वयपदिश्यते बनाडिता ॥ ६५५ यामु
त्रितय अर्प सेवा करवा है "केवल" शब्द निकला है ॥

एतानिवासी अगलपहाय फकीलकृत पदच्छेद और विमर्त्यार्थ सहित सर्वाधिविद्विषा छन्दः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ मंत्र ९
तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे भन पर्ययग्रहणम् । कुत प्रत्यासत्तिः ? ।
संयमैकाधिकरणत्वात् । तस्य अवधिर्विप्रकृष्टः । कुतः ! विप्रकृष्टतरत्वात् ॥

उत्तर ! ॥ अन्ते १ प्राप्यते इति अन्ते १ क्रियते १
तस्य १ ॥ प्रत्यासन्नत्वात् १ ॥ तत्-समीपे १
मन्तः पर्यय-ग्रहणम् १ ॥ कुतः १
प्रत्यासत्तिः ॥ एक
संयम-अधिकरणत्वात् १ ॥

पर्ययज्ञान और केवलज्ञान अन्तमें भास किया जाता है सो इस (युक्त) अन्तमें लाया गया है
= विस (केवलज्ञान) के निकट उत्पन्न होनेसे उस (केवलज्ञान) के पास में
= मन्तः पर्यय (ज्ञान) का ग्रहण है । (ग्रम) कदांसे (= कुतः) वा क्योक्तर (कुतः)
= (मन्तः) पर्यय ज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट है । केवल (= एक)
= संयमके आश्रयपना से (मन पर्ययज्ञान केवल ज्ञानके अति निकट) है अर्थात् मन्तः
पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों संयमी मुनिके होते हैं अतः मन्तः पर्ययज्ञानके
संयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है
= विस (केवलज्ञान) के अवधिज्ञान इत है (अतः इतको मन्तः पर्ययज्ञानके समीप कहा)
= (ग्रम केवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योक्तर (= कुतः) इत है - उत्तर
= क्योंकि (केवलज्ञानकी अपेक्षासे) इतकी (सीनज्ञानों)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है

(१) केवलज्ञानापेक्षा विप्रकृष्टेषु मतिभुतावधिज्ञानस्तत्प्रभावात् ।

केवलज्ञान-प्रत्येस्या ! १ विप्रकृष्टेषु १ मति भुता-
अवधिषु । मन्तगतत्वात् १ ॥

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये आया है क्योंकि यही मन्त पर्ययज्ञानके लिये आता सो वृत्तिकर्ता प्रत्यासत्ति वा इसी अर्थ का कोई शब्द देते
(२) 'समीपे' = 'बिदिगी शब्द' है यहाँ पर इसको समीप एक यजन पुरहिण में वा समीप एक यजन मनुसक सिंग में मान सकते हैं ।

एतानिवासी दगलपसंदाय पक्षीलकुलसंच्छेद्म और विमत्स्यस्य संहित सर्वार्थसिद्धिर्वा शुद्धका हिंदी अनुवादे ॥ अध्याय १ सूत्र ९
स्वपरमनोभिर्द्वयपदिश्यते । यथा अग्रे चन्द्रमस पश्यति ॥ बाह्येनाभ्यन्तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो
मार्गं केचन ते सेव ते तत्केवलम् । असहायमिति वा ॥

स्व-पर मनोभिः ॥॥ न्यपदिश्यत ॥

यथाऽ अत्र १; चन्द्रमसम्, १ पश्यति ॥ इतिः

शामन ॥॥ अभ्यन्तरम् ॥॥ वाऽ तपसा ॥॥ यदु-अर्थम् ॥॥ स्व-अर्थम् ॥॥ चन्द्रमसम् ॥॥ सेवन्त ॥॥
मार्गम् ॥॥ अर्थिनः ॥॥ केचन्ते ॥॥ सेवन्त ॥॥

तत् ॥॥ केवलम् ॥॥ वाऽ असहायम्, ॥ इतिः

=अपने और परके मनो (की अपेक्षा) करि निर्देश किया गया है । अर्थात् इसकी मनःपर्यायज्ञान संज्ञा इस हेतुसे रखी है कि इसमें अपने और परके मनकी अपेक्षा मात्र है नकि मतिज्ञानकी भांति इसमें (इन्द्रिय और) मनके द्वारा रूपीस्पर्शके ज्ञान होता है ॥

=मैंसे बादलमें चंद्रमाभी देख अर्थात् जैसे इस वाक्यमें बादल शुद्ध केवल अपेक्षामात्र लाये हैं चंद्रमा बादलसे उत्पन्न नहीं हुआ है वैसे मनः पर्यय वाक्यमें मन शुद्ध अपेक्षामात्र है मनः पर्यायज्ञान मनद्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है ॥
=बाह्य और (=च) अंतर्ग तत्परि विस वस्तुको (=यदु-अर्थम्)
=जिस पदको तपसी उपासना करते हैं (केचन्ते=सेवन्ते) सेवन करते हैं

=सो (तत्) केवल (ज्ञान) है अथवा (यह केवल ज्ञान) अस्वाभाव ऐसा है बाह्य किसीका सहाय नहीं चाहता है अर्थात् जैसे मतिज्ञान और मयज्ञान ज्ञान अपनी अपनी पदार्थको जानते हैं वस यह ज्ञान नहीं है तथा अविधि ज्ञान और मनः पर्यय केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मास ही प्रकृता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) करते हैं ॥

इन्द्रियों और प्रकाशादिककी सहायतासे पदार्थको जानते हैं अर्थात् जैसे मतिज्ञान और मयज्ञान ज्ञान अपनी अपनी पदार्थको जानते हैं वस यह ज्ञान नहीं है तथा अविधि ज्ञान और मनः पर्यय केवल ज्ञान नहीं है यह ज्ञान एकमात्र आत्मास ही प्रकृता है इसीसे इसको केवल (ज्ञान) करते हैं ॥
पणदियते-यह ज्ञान सिद्ध दुरादि छेदगणके उभय परस्पर और अत्यंतपद सकर्मक अतिवृत्त धातुस वि और अप उपसर्गोके जोकनेसे वि+अप+विष्+रूप बना यह पदार्थवि प्रत्यय जोड़कर और ठे अग्यपुण्य, एकवचन, चर्तमनकाल, आत्मनोपवी प्रत्ययको बाहुल्यसे अपणदियते बनालिया है इ-इ अणु त्रितया अर्थ सेवा करना है "केवलम्" एवम् निकला है ॥

एगनिवासी अग्रहणसहाय फलककृत फलककृत और विमलस्यै सहित सर्वाधिकारिका अग्रहणः सिद्धी अनुवादः । अध्याय १ मूत्र ९
तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तत्समीपे मन पर्ययग्रहणम् । कुत प्रत्यासत्तिः ? ।
संयमैकाधिकरणत्वात् । तस्य अवधिर्विप्रकृत । कुतः ! विप्रकृष्टतरत्वात् ॥

तत् ॥ अन्ते १, प्राप्यते २ इति ३ अन्ते १, क्रियते २, अन्ते ३, क्रिया जाता है सो इस (अन्ते) अन्तमें लाया गया है
तस्य ॥ प्रत्यासन्नत्वात् ॥ तत्-समीपे १
मनः पर्यय-ग्रहणम् ॥ कुतः ॥
प्रत्यासत्तिः ॥ एक
संयम-अभिलक्षणत्वात् ॥

पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये दोनों संयमी मुनिके होते हैं अतः मनः पर्ययज्ञानको
संयमकी अपेक्षा से केवल ज्ञानकी निकटता प्राप्त है
=विश (केवलज्ञान)के अवधिज्ञान दूर है (अतः हमको मन पर्ययज्ञानके समीप कहा)
=(प्रम कवलज्ञान से अवधिज्ञान) क्योंकि (दूर है - उत्तर)
= क्योंकि (केवलज्ञानकी अपेक्षाते) इत्कर्त्ती (सीनज्ञानों)मेंसे (यह अवधिज्ञान) एक है
विप्रकृष्टतरत्वात् ॥

(१) केवलज्ञानापेक्षा विप्रकृष्टेषु मरिमुताश्चिष्यन्तमात्रम् ।

केवलज्ञान-अपेक्षया १ विप्रकृष्टेषु २ मति श्रुत-
अवधिषु । अतस्तत्त्वत्वात् १॥

= क्योंकि केवलज्ञानकी अपेक्षा से श्रुतार्थी मतिज्ञान श्रुतज्ञान
= अवधिज्ञानों में से (यह अवधिज्ञान एक है)

(२) 'तस्य' = 'केवलज्ञानस्य' के लिये जाया है क्योंकि यदि मन पर्ययज्ञानके लिये जाता तो श्रुतिकर्त्ता प्रत्यासत्ति या इत्सी अर्थ का कोई ज्ञान देते
(२) " समीपे " निजिगी तस्य है यहाँ पर इसका सत्तमी एक पक्षन पुष्टिग में या सत्तमी एकपक्षन मनुष्यक लिंग में मान स रहते है ।

पणनिासी जगरूपमहाय एकीलुदृष्ट एवंच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित सर्वाधिसिद्धिका अष्टदश । अध्याय १ सूत्र ९
 प्रयश्चात्तरांशे पूर्वमुक्तं सुगमत्वात् । श्रुतपरिचितानुभूता हि मातिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्राय
 प्राप्यते यत ॥ एवमेतत्तच्चविषय ज्ञानम् ॥ तद्वेदादयश्च पुरस्ताद्व्यपन्ते ॥ प्रमाणन्यैरधिगम इत्युक्तम् ।
 प्रमाण च केषाञ्चित्तं ज्ञानममितम् । केषाञ्चित्तं सन्निकर्ष ।

प्रत्ययात् ॥॥ परोक्षम् ॥॥

सुगमत्वात् ॥॥ एवम् ॥॥ उक्तम् ॥॥

यत भूतनरिचिन्ता अनुसूता ॥॥ हि ॥

मति भूतपद्धतिः ॥॥ सर्वेण ॥॥ प्राणिगणेन ॥॥ प्रायस्क ॥

प्राप्यत ॥

एवम् एतत् ॥॥ पञ्च-विषयम् ॥॥ ज्ञानम् ॥॥ च तत् ॥

यद आदयः ॥॥ पुरस्ताद्व्यपन्त ॥

प्रमाण-नयेः ॥

अधिगमः ॥॥ इतिउक्तम् ॥॥

प्रमाणम् ॥॥ चक्षेयाञ्चित्तंज्ञानम् ॥॥ अभिसरम् ॥॥

यथाञ्जित्तस्यधिकर्षः ॥॥

=प्रत्यक्ष (अवधि-भन-पर्यय-केवलज्ञानोंसे परोक्ष (मति-भुत्खान)

=स्पष्ट वा सुगमपणेने (के हेतु) से (इस नवमें सूत्रमें) प्रथम कक्षेगये हैं

=क्योंकि (-यत्) धृतकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवविभागया ही ।

=मतिज्ञान और भुत्खानका मार्गे (=पद्धति) सबजीवोंके समूहद्वारा बहुधा

=प्राप्त किया जाता है । भावार्थ मति-भुत्खान परित्यक्त किये जाते हैं,

अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंके

बाहुल्यपनेकरि वा बहुलापत्करि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-भुत्खान)

सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान तीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे पहिले कक्षे हैं

=इस प्रकार यह पाँच भांति ज्ञान है । और उस (=तत्-ज्ञान) के

=मेव आदिक आगे कक्षे कार्यगे ॥

= (सम्यग्दर्शन-ज्ञान-धारित्र और जीव-जीनिवादि सात सर्वों का) प्रमाण-नयोंसे

=ज्ञान होताहै ऐसा (सूत्र ६ में) कक्षगया है

=और(=च) क्लृप्तकरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिसरम्)

= कियेकक्षे (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् कियेक मताचार्य

विषय और इन्द्रियका समन्वय वा व्यापार को प्रमाण मानते हैं

(१) श्रुतपरिचितानुभूता = श्रुतेन परिचिता सा च अनुभूता च

यतः ॥॥ परिचिता ॥॥ सा ॥॥ च ॥॥ अनुभूता ॥॥ च ॥॥

=जा धृतकरि जानाजाता है और अनुभव विभागया है सो श्रुतपरिचितानुभूता है

एतानिवासी जगत्प्रेमदायकं प्रकृत्युत्तरं सति सर्वार्थसिद्धिं प्राप्नुयान् । अथापि १ सूत्र ९
 के योगिनिद्रियमिति । अतोऽधिकृतानामेव मत्यादीनां प्रमाणत्वस्यापनार्यमाह-
 ॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥
 तद्वचनं किमर्थं ? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिवृत्त्यर्थम् । सन्निकर्षं प्रमाणमिन्द्रिय प्रमाणमिति केचित्कल्पयन्ति
 केमेवमित्येव इन्द्रियम् ॥ इति ॥
 अतः अधिकृतानाम् ।
 मति-आदीनाम् । एकम्
 प्रमाणत्व-स्वापन अर्थम् ॥ आह १
 तत्प्रमाणे ॥१०॥
 त्वेवमेव इन्द्रिय एवेति (प्रमाण माना गता) है—इस सबका साधारण है
 कि सुगत (बुद्धदेव) के मानकेवासे ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और योग
 मत वाले इन्द्रिय और पर्यायका जोवरूप सन्निकर्षको प्रमाण मानते हैं और
 सांख्य मत वाले इन्द्रियको प्रमाण मानते हैं । इत्यादि ज्ञानके संबन्धमें भिन्न
 भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनाएँ हैं
 —इस हेतुसे (=अतः) अधिकार कियेगये वा प्रकरणमें लायेगये
 —मति-भुत अर्थात् मता पर्यय-केवलज्ञानोंके ही (=एव)
 —प्रमाणत्वकी प्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि
 ॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥
 त्वेव (मतिज्ञान भुतज्ञान-अवचिद्वान्त मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान)
 त्वो (परम और प्रत्यक्ष) प्रमाण है । उन ज्ञानोंको ही प्रमाण संज्ञा है । अर्थात्
 उपर्युक्त पांच ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परम प्रमाण हैं । अन्य प्रकार नहीं है ॥
 तद्वचनं किमर्थम् ?
 प्रमाणान्तर-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ॥
 सन्निकर्षः । प्रमाणम् ॥ इन्द्रियम् ॥ प्रमाणम् ।
 इति केचित् कल्पयन्ति ॥
 तद्वचनम् किमर्थम् ?
 प्रमाणान्तर-परिकल्पना-निवृत्ति-अर्थम् ॥
 सन्निकर्षः । प्रमाणम् ॥ इन्द्रियम् ॥ प्रमाणम् ।
 इति केचित् कल्पयन्ति ॥

गठानिगी जगरूपसहाय कशीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाधिसिद्धिका श्रद्धालुः । इदी अनुवाद । अ व्याप १ ख ९

प्रत्यक्षात्परांशं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात् । श्रुतपरिचितानुभूता हि मातिश्रुतपद्धतिः सर्वेण प्राणिगणेन प्राय प्रायते यत् ॥ एवमेतदुच्चविष्य ज्ञानम् ॥ तद्विद्वत्पुत्रश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते ॥ प्रमाणनयैरधिगम इत्युक्तम् । प्रमाणं च केषाञ्चित् ज्ञानमभितम् । केषाञ्चित् सन्निकर्षः ।

प्रत्यथात् ॥॥ परोक्षम् ॥॥ उक्तम् ॥॥
 सुगमत्वात् ॥॥ एवम् ॥॥ उक्तम् ॥॥
 यत् भूत-परिचिता-अनुभूता ॥॥ हि ॥
 मति-भूतपद्धतिः ॥॥ सर्वेण ॥॥ प्रावि-गणेन ॥॥ प्रापसु ॥
 प्राप्यते ॥॥
 =अथस्य (अधि मनापर्यय-केवलज्ञानों)से परोक्ष (मति-मुक्त्वा)
 =स्पष्ट वा सुगमगोने (के हेतु) से (इस नकमें खत्रमें) प्रथम कहेगये हैं
 =स्वोक्ति (यत्) युक्तकरि जानागया (=परिचिता) और अनुभवविभागया ही ।
 =मतिज्ञान और भूतज्ञानका मार्ग (=पद्धति) सबजीवोंके सबद्वारा बहुत
 =प्राप्त किया जाता है । मावार्थ मति-मुक्त्वा परित्यक्त किये जाते हैं,
 अनुभवमें आते हैं इसकी पद्धति सुनी जाती है समस्त प्राणियोंके
 प्राप्यतेकरि वा बहुलापत्करि पायेजाते हैं और (मतिज्ञान-मुक्त्वा)
 सुगम है अतः ये दोनों परोक्षज्ञान हीन प्रत्यक्ष ज्ञानोंसे परिछे कहे हैं
 =इस प्रकार यह पाँच भाँति ज्ञान है । और उस (=उप-ज्ञान) के
 =मेव अधिक आगे कहे जायेंगे ॥
 = (सम्पदार्थ-ज्ञान-चारित्र्य और जीवि प्रमीवादि सात तत्वों का) प्रमाण-नयोंसे
 =ज्ञान होवार्थ ऐसा (ख ६ में) कहागया है
 =और(=च) किंकिंकरि प्रमाण ज्ञान माना गया है (अभिमत्य)
 = किंतुकिं (प्रमाण) सन्निकर्ष (मानागया है) अर्थात् किंकिं मताचार्य
 विषय और इन्द्रियका सम्यक् वा व्यापार को प्रमाण मानते हैं

एवम् गतम् ॥॥ एवम् विषयम् ॥॥ ज्ञानम् ॥॥ च ख
 भेद आदयः ॥॥ पुरस्तादुक्तस्य च ॥
 प्रमाण-नयः ॥॥
 अपिपण ॥॥ इतिउक्तम् ॥॥
 प्रमाणम् ॥॥ चक्षुष्यमित्युक्तं ज्ञानम् ॥॥ अभिमत्यम् ॥॥
 तानिन्द्रियस्यसिद्धयः ॥॥

(१) भूतच रचितानुभूता = भूतेन पदरचिता सा जानुभूता च = भूतेन परिचिता सा च जानुभूता च
 भूतम् ॥॥ परिनिम्न ॥॥ सा ॥॥ कक्षीमनुभूता ॥॥ चक्षु
 (२) सौमिकानाम्

पदादिनामी स्वरूपसम्प्राप्य स्वीकृत्य पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका श्रवणः द्विती अनुवादः । अन्वयाय १ सूत्र ९

केपाञ्चिद्विन्द्रियमिति । अतः ३ धिक्कुतानामेव मत्यादीना प्रमाणत्वस्यापनार्थप्रामाह-

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद्वचनं किमर्थं ? प्रमाणान्तरपरिवक्त्यनानिवृत्त्यर्थम् । सन्निकर्षं प्रमाणाभिन्द्रिय प्रमाणाभिमिति केचित्कल्पयान्ति

केपाञ्चिद्वक्तृः इन्द्रियम् ॥॥ इति ॥

=केचेकके इन्द्रिय ऐसे (प्रमाण माना गया) है—इस सक्ता सवार्थ है कि सुगत (पुत्रदेव) के माननेवाले ज्ञानको प्रमाण मानते हैं और योग मत वाले इन्द्रिय और पदार्थका जोवरूप सन्निकर्षको प्रमाण मानते हैं और सांख्य मत वाले इन्द्रियोंको प्रमाण मानते हैं । इत्यादि ज्ञानके संसन्धमें भिन्न भिन्न मतावलम्बियोंकी भिन्न भिन्न अनेक कल्पनायें हैं

अतः अधिकृतानाम् ।

=इस इतसे (=अतः) अधिकार कियेगये वा शक्यमें लायेगये

मति-आदीनाम् । एवम्

=यदि भुवत अवचि-यतः परेष-केवलज्ञानोंके ही (=एव)

प्रमाणत्व-स्यापन अर्थम् ॥॥ आह T

=प्रमाणताकीप्रसिद्धिके लिये कहते हैं कि

॥ तत्प्रमाणे ॥१०॥

तद

प्रमाणे ,

ज्ये (मतिज्ञान इतज्ञान-अवचिज्ञान मन पर्यवज्ञान और केवलज्ञान)

=दो (प्रमेय और प्रत्यक्ष) प्रमाण हैं । उन ज्ञानोंको ही प्रमाण सत्ता है । अर्थात्

तर्प्युक्त पात्र ज्ञान ही दो प्रत्यक्ष और परमेय प्रमाण हैं । अन्य प्रकार नहीं है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः द्विती अनुवाद ॥

तद्वचनम् , किमर्थम्

=तद्व पद (इस दशमें दशमें) किस लिये है ? ॥

प्रमाणान्तर-परिवक्त्यनानिवृत्ति-अर्थम् ,

= (इस दशमें तब पद) दूसरे दूसरे प्रमाणोंकी अनक कल्पनाओंके निषेध करनेके लिये है

सन्निकर्षः , प्रमाणम् ॥ इन्द्रियम् , प्रमाणम् ; ॥

= सन्निकर्ष प्रमाण (अर्थात् इन्द्रिय और पदार्थोंका संसन्ध) और इन्द्रिय प्रमाण

इति केचित् इत्ययान्ति T

= ऐसे कितनेक (मतधारी) कल्पना करने

एता निमासी अकारुणस्य क्लीसकृत पण्ड्येय और विषयस्य सहित सर्वाथसिद्धि का सम्यक्का हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १०
अप्राप्यकारित्व च उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ यदि ज्ञानं प्रमाणं, फलाभाव । अधिगमो हि फलप्रमिष्टं न
भावान्तरम् । स चेत्प्रमाणं, न तस्यान्यत्फलं भवितुमर्हति । फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम् ॥

सारांशः—इन्द्रियको प्रमाण मानै तो (१) इन्द्रियोंका विषय अद्वय और परिस्थि है । ऐसे पदार्थ अनंत और
अपरमित हैं अतः असंख्यता दोष आता है (२) सन्निकर्षको प्रमाण मानें तो अंतरित-सत्त्व-सूक्ष्मी
पदार्थोंका इन्द्रियद्वारा सन्निकर्ष न होनेसे असंख्यता दोष आता है (३) नेत्र और मन (पदार्थके साथ)
भिन्न न होने से नेत्र और मनके साथ सन्निकर्ष नहीं बनता ॥

अप्राप्यकारित्वं ॥॥ च०
उत्तरत्र० वक्ष्यतं ऽ
यदि० ज्ञानं ॥॥ प्रमाणं ॥॥ फल-अभावः ॥॥ हि०
अधिगमः ॥॥ फलम् ॥॥ इदं ॥॥ न०
माधान्तरम् ॥॥ सः ॥॥ चेत्० प्रमाणं ॥॥
सत्यं ॥॥ अन्यत्० फलम् ॥॥ भवितुम-न अर्हति ऽ
फलवता ॥॥ च० प्रमाणं ॥॥ भवितव्यम् ॥॥

=और (नेत्र तथा मनको) अप्राप्यकारित्व (वस्तुओंके साथ भिन्न न होनेमें भी ग्रहण)
=ज्ञाने (उभिसर्वां सूत्र "न चक्षुरनिन्द्रियाम्याम्" में) कदा वाक्या
=प्रम) जो ज्ञान प्रमाण होगा तो फलका अस्तित्व नहीं होगा क्योंकि -हि)
=ज्ञान वा अधिगम ही प्रमाणका फल है नकि
=अन्यवस्तु मात्रान्तर (बोद्धि फल) है यदि (=चेत्) अधिगम (=सा) प्रमाण हो तो
=तिस (अधिगम) का दूसरा फल होनेको (=भवितुम्) समर्थ नहीं है
=(अधिगमका अन्यफल नहीं हो सका है) और प्रमाण फलसहित होना चाहिये

(१) न चक्षुर निन्द्रियगमिमिति सूत्र व्याख्याकारसरे ।

(२) अज्ञप्तस्य ॥॥ अवगद ॥॥) चक्षुसं—

अनिन्द्रियाम्याम् ॥॥ न०

= (१) अज्ञप्तस्य अवगदः) न चक्षुस् अनिन्द्रियाम्याम् इति सूत्र-स्य व्याख्यान-अवसरे

= (२) अप्रागदृश्यं शब्दाधिक पदार्थोंका अवगच्छरूप ज्ञान) नेत्र और

= गम्यसे नहीं होता है । इसलिये उनका ईहा आवाय आरजाकर ज्ञान भी नहीं हो सका है

क्योंकि जिस पदार्थ का अवगद नहीं होता है उससे ईहादि भी नहीं होते हैं

अग्य (चार स्थानों तक-ज्ञान मात्र) इन्द्रियोंसे व्यंजन (अप्रागदृश्य वस्तुओं) का केवल मात्र अवगच्छरूप

ज्ञान ही होता है । ईहा आवाय आरज्या नहीं होता है ।

= इस प्रकार (उपर्युक्त) सूत्रके अर्थपर पर " अगम्य-व्यवस्थिते " कहा है ।

इति० सूत्र-व्याख्यान-अवसरे ।

ज्यानितामी जगत्प्राप्त्यर्थं कर्तुं कष्टं पश्येत् और विमर्शार्थं संहित त्वार्थसिद्धिका शब्दः हिंदी अनुवाद । अर्थात् १ अर्थ १०

तानि त्रयार्थं तादित्युच्यते । तदेवं मत्यादि प्रमाण नान्यदिति ॥ अथ सन्निकर्षप्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोषः ? यदि सन्निकर्ष प्रमाण, सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृतानामर्थानामग्रहप्रसंग । नहि ते इन्द्रियैः सन्निकृष्यन्ते । अतः सर्वज्ञत्वाभाव स्यात् ॥ इन्द्रियमपि यदि प्रमाण, स एव दोष । अत्यविषयत्वात् चक्षुरादीना । द्वेयस्य च परिमाणत्वात् । सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च चक्षुर्मनसो प्राप्यकारित्वाभावात् ।

तत् निश्चिन्तयाम् ॥ तद् इति
उच्यते १ तत् ॥ एव मति आदि ॥ प्रमाणम् ॥
नञ्जयदञ् इति अयमसिद्धिर्प्रमाणम् ॥ सति ॥
वाच्येन्द्रिये ॥ तत् ॥ दोषः ॥ यदि सन्निकर्षः
प्रमाणम् ॥ अयम्-
व्यवहित-
विप्रकृतानाम् ॥ ज्ञानानाम् ॥
अग्रदण-पुष्पम् ॥
तत् ॥ इन्द्रियम् ॥ नञ् इति
नमिष्ठयन्त १ अतः सर्वस्य प्रमाणम् ॥ स्यात् १

अन्तरित-दूरीकर्त्री पदार्थों को जानना नहीं अतः सर्ववशी न जान सकेंगा अतः अस्तित्व हुआ)
इन्द्रियम् ॥ अथि प्रमाणम् ॥
पदार्थ-आदीनाम् ॥ अत्यविषयत्वात् ॥ १० व द्वेयस्य ॥
अपरिमाणत्वात् ॥ १० स ॥ एव दोषः ॥
चक्षुः मनसो ॥ प्राप्यकारित्व अभावात् ॥
सत् इन्द्रिय-मन्तिक-अभावात् ॥ चक्षुः

- उन (मन्तिकर्ष प्रमाण और इन्द्रिय प्रमाणादि) के निषेध के लिये तद् ऐसा शब्द = रुढागत्य है । चोही (= एव) मतिज्ञान आदिक ज्ञान प्रमाण है ।
- इसरा कोई प्रमाण नहीं है । अथ (- अथ) सन्निकर्ष के प्रमाण होने पर = प्रथम इन्द्रिय (प्रमाण) मानने में क्या दोष है ? जो (= यदि) सन्निकर्ष = प्रमाण हो तो अत्यविषय (परमाणु आदिक) निका = अन्तरित वा पहिले (= अवग्रह) पदार्थ (राम-रावणादिकों का)
- = दूरवर्ती पदार्थ (मेरु-पर्वतादिक) निके (सन्निकर्षके प्रमाण माननेमें)
- = अग्रण का अवसर नहीं आता है । क्योंकि
- = वे (अत्यविषय-अन्तरितपदार्थ-दूरवर्ती पदार्थ) इन्द्रियों द्वारा नहीं = सन्निकर्ष वा स्पष्ट किये जा सकते हैं ॥ इसलिये सर्ववशी का अभाव होगा (क्योंकि सन्निकर्ष जब प्रमाण होगा, वही प्रमाण सर्ववशी मानना पड़ेगा, सन्निकर्ष अत्यविषय निका)
- = इन्द्रिय प्रमाण होतो भी (वही अत्यविषयका रूपण आता है)
- = क्योंकि नेत्र आदिका योवा विषय होने (क इतु)से चक्षुःमनके ग्रहण करने योग्य पदार्थोंका = अपरिमित होनेसे (वा अनन्त होनेसे) वो (= स) एव (= ही) दोष (अत्यविषयका) आता है (अत्यविषयका दोष होनेके अतिरिक्त यह बात भी कि)
- = अत्र मनके पदार्थोंको प्राप्त होनेके अभावसे (= चक्षुःमनके साथ मिलन न होनेपरभी अग्रण) = अग्रण (ही) इन्द्रियों के पदार्थसे स्पर्शन वा सन्निकर्ष भी (= चक्षुः) नहीं है ।

एतानिवासी जगरूपस्थाय क्रीडन्तु पश्यन्ते और विमलसूर्य सहित सर्वाधिकसिद्धिदा कृप्यन्ते: हिदीजनुवास् अन्त्याय १ क्ख १०

आत्मनश्चतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । इस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । इस्वभावाभ्युपगमे वा

आत्मन । स्वमतविरोधः स्यात् ॥

(अथ यह सिद्धिका है कि अभिर्वाको प्रमाण माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युपरमे अन्यवादी कहता है कि)

= प्रालम्बो चेतन होनेसे यहाँ (आत्मामें) ही (ज्ञानका) नित्यसंमन्व (=समवाय) है

(अथ जब पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)

= ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उपरमें करते हैं कि यह सुन्दारी युक्ति ठीक) नहीं

= क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपताका अभाव होनेमें स्व (आत्मा और अन्य पदार्थों) को

= जड़ता (समानरूपसे आबादी) है । और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपस्व

= मानने पर भाप के (अर्थात् नैयायिकोंके)

= सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विशेष हो जावेगा ॥

आत्मनः १। चेतनत्वात् १। उक्तं एव० समवायः १।

इति० चेत्० न०

इ-स्वभाव-अभावः १। सर्वेषाम् १।

अचेतनत्वात् १। वा० आत्मनः १। इस्वभाव-

अभ्युपगमे १। स्व

मताविरोधः १। स्यात् १

(१) नैयायिक लोग करते हैं कि आत्मा चेतन होनेसे इसमें ज्ञानका नित्य संबन्ध वा समवाय रहता है इसलिये आत्मके अतिरिक्त जब पदार्थके ज्ञानका प्रसंग नहीं आसक्य परंतु यह कथन जल्दा ठीक नहीं है क्योंकि इनके सिद्धान्त (मता)में किसी पदार्थको स्वयं ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सर्व पदार्थ अचेतन ही ठहरते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किन्तु प्रकार कहा जा सक्य है । यदि नैयायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वयं इनके सिद्धान्त का (कि गुण सर्वत्र गुणीसे भिन्न रहते हैं) ध्यापात (भाव) हो जावेगा । क्योंकि आत्माको यहाँपर वस्तुसे स्वयं ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर दिया है ॥ योग = सांख्य अर्थात् सांख्यमतवाले ॥ योग = नैयायिक (मतवाले) ॥

७८। निवासी अंगरूपसिद्धीय वकीलनृत्त ५६८।६ और विभक्त्यर्थ सारित सर्वाधिकारिका कृन्तकः हिंदी अनुवर्तकः । अन्वयः १ सुत्र ९ सन्निकर्ष इन्द्रिये वा प्रमाणे सति, अधिगम' फलमर्थान्तरयुत युज्यते इति तदयुक्तम् ॥ यदि सन्निकर्ष प्रमाण, अर्थोधिगम पले, तरय द्विष्टत्वात्तत्वेनाधिगमेनापि द्विष्टेन भवितव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगम प्राप्नोति ।

मावर्षे यदि ज्ञानको प्रमाण मानोगे तो उस प्रमाणका कुछ फल नहीं होगा क्योंकि यदि अधिगम फल फलोगे तो ज्ञान प्रमाण-अधिगम सब एकार्थवाची होनेसे कुछ फल वा लाभ नहीं है और प्रमाणका फल अवश्य होना ही चाहिये सन्निकर्षे १ इन्द्रिये १, वा प्रमाणे १, सति ॥॥ अधिगमः १, =सन्निकर्षे वा इन्द्रिय के प्रमाण होते सत्वे अर्थका ज्ञान-वस्तु का ज्ञान = (अधिगम) (उस प्रमाण का फल है । जो (फल) पदार्थ वा द्रव्यसे विभक्त्यर्थ (=अर्थान्तर)

= हुआ (=वस्तु) ऐसा युक्त उचित वा ठीक है । वो युक्त नहीं है ॥ = क्योंकि जो सन्निकर्ष प्रमाण हो (और) पदार्थ का ज्ञान (=अधिगम)- = (उस सन्निकर्ष का वा ऐसे प्रमाण का) फल हो तो उस (सन्निकर्ष) के = छिष्टपना से अर्थात् इन्द्रिय और स्वयं हुये पदार्थ दोनों में छिष्टने से = उस (सन्निकर्ष) का फल पदार्थ का ज्ञान भी

= प्रमाणा और प्रमेय (पदार्थ) दोनों को ज्ञान चाहिये (अर्थात् सन्निकर्ष छिष्ट होने के कारण प्रमेय को भी पदार्थ का ज्ञान होना चाहिये) = ऐसे पदार्थ आदिकों को भी (जो अचेतन हैं) अधिगम वा वस्तु का ज्ञान = प्राप्त होता है । भावार्थ यह है कि सन्निकर्ष से पदार्थ का ज्ञान होता है और सन्निकर्ष इन्द्रिय और पदार्थ के जोड़ रूप है । तब उक्तपदार्थ का ज्ञान इस इन्द्रिय और पदार्थके जोड़रूपसे हुआ, इस प्रकार सन्निकर्ष वाले पदार्थ को भी अन्य पदार्थ का ज्ञान होना, यह दोषरूप है ॥ क्योंकि जड़ रूप पदार्थ को दूसरे पदार्थ का ज्ञान मानना दोषरूप है अतः सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता ।

भूतम् ॥॥ युज्यत इति तद् ॥॥ अयुक्तम् ॥॥ यदि सन्निकर्षः १ प्रमाणम् १, अर्थ-अधिगमः १,

फलम् ॥॥ तस्य १,

छिष्टत्वात् १॥

नान्यत् ॥॥ अधिगमनः १, अपि ॥

छिष्टम् १, यत्किञ्चन १॥

१८० अर्थादीनाम् १, अपि ॥ अधिगमः १,

प्राप्नोति १

एटानिवासी अगहस्मराय यद्विलकुप फच्छेद् और विगहपर्यं सहित सर्वाभिसिद्धिका सम्पदाः हिदीअनुवाद अभ्यास ? सूत्र १०

आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रैव समवाय इति चेन्न । इत्स्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । इत्स्वभावाभ्युपगमे वा आत्मन । स्वमतविरोधः स्यात् ॥

(असर यह सिद्धकिम्मा है कि शुभिकर्मको प्रभाव माननेमें अन्य अचेतन पदार्थ के भी अर्थ का ज्ञान आता है इसके प्रत्युत्तरमें अन्यवादी कहता है कि)
=द्रात्माको चेतन होनेसे नहीं (आत्मामें) ही (ज्ञानका) नित्यसम्बन्ध (=समवाय) है (अन्य भव पदार्थ के वस्तुका ज्ञान नहीं होता है)
=ऐसी युक्ति देने पर (=चेत्) (उत्तरमें कहते हैं कि यह तुम्हारी युक्ति ठीक) नहीं
=क्योंकि (आत्माके) ज्ञानस्वरूपाका अभाव होनेमें सब (आत्मा और अन्य पदार्थों) को
=जड़ता (समानरूपसे आबावी) है । और (=वा) आत्माके ज्ञानस्वरूपत्व
=मानने पर आप के (अर्थात् नैवायिकोंके)
=सिद्धान्तका (कि गुण गुणीसे भिन्न है) विरोध हो जावेगा ॥

इति० चेत्० न०

इत्स्वभाव-अभावे ? सर्वेषाम् ?

अचेतनत्वात् ? ॥ वा० आत्मनः ? इत्स्वभाव-

अभ्युपगमे । स्व-

मतविरोधः । स्यात् T

(१) नैवायिक लोग कहते हैं कि आत्मा चेतन होनेसे वस्तुमें ज्ञानका गति स्वंध वा समवाय पड़ता है इनछिये आत्माके अतिरिक्त जड़ पदार्थोंके ज्ञानका प्रसंग नहीं आसक्य परंतु यह कथन शक्य ठीक नहीं है क्योंकि उनके सिद्धान्त (मत)में किसी पदार्थको स्वयं ज्ञानरूपता नहीं मानी है ऐसी अवस्थामें सर्व पदार्थ भवेत्तल ही उधारते हैं तब आत्मामेंही ज्ञानका समवाय किन्तु प्रकार कहा जा सक्य है । यदि नैवायिक लोग आत्माको ज्ञानस्वरूप मानेंगे तो स्वयं उनके सिद्धान्त का (कि गुण सर्वैव गुणीसे भिन्न रहते हैं) व्यापात (नाश) हो जावेगा । क्योंकि आत्माको यहाँपर उन्नीमें स्वयं ज्ञान गुणसे अभिन्न अङ्गीकार कर दिया है । योग = सौकर्य अर्थात् सौख्यप्रलम्बे ॥ योग = नैवायिक (मतवादी) ॥

एतानिपक्षी जगत्सदाय कक्षीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वांशसिद्धिका शब्दशः । अर्थात् अदुवाद । अध्याय १ पृष्ठ १०
ननु, चोक्तं, ज्ञाने प्रमाणे सति फलाभाव इति । नैप दोषः । अर्थाधिगमे प्रीतिदर्शनात् । इत्स्वभावस्यात्मनः
कर्ममलीमसस्य करणाल्पवन्दार्थानिश्चये प्रीतिरुपजायते । सा फलमित्युच्यते । उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम् ॥
रागद्वेषयोरप्रणिधानमुपेक्षा । अन्वयकारकस्याज्ञानाभाव अज्ञाननाशो वा फलमित्युच्यते ॥ प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन

ननु च उक्तम् ॥१॥

=पुनः प्रश्न कदा जायुका है कि (अर्थात् फलाकार कदा है कि मैं कबलुकाईकि)

ज्ञान ॥१॥ प्रमाण ॥१॥ सति ॥१॥ फल-अभावः ॥१॥ इति ॥ ज्ञानको प्रमाण होने पर फलका अभाव होगा अर्थात् फलाकार कदा है कि मैं पहले

कब जुका है कि ज्ञान को प्रमाण मानने में उसका कुछ भी फल न होगा (उत्तर)

एव ॥ दोषः ॥ न च प्रपञ्च-अधिवामः ॥ प्रीति-दर्शनात् ॥१॥ =यह रूपण नहीं है क्योंकि पदार्थ के ज्ञानमें प्रीति उपजती है । (अर्थात्) पदार्थ का यथावत्

ज्ञान होने पर आनन्द (= प्रीति) और सन्तोष (= प्रीति) होता है यह आनन्द, संतोष ही फल है ।

प्र-नपमावस्य ॥ कर्ममलीमसस्य ॥ आत्मनः ॥ फलम् ॥ उपसृज्यते ॥ अवलम्ब्य या आधयसे वस्तुके ज्ञानमें प्रीति उपजती है ॥

आत्म-नान् ॥ अर्थः ॥ प्रीति ॥ उपसृज्यते ॥ उपेक्षा ॥१॥ =सो (यह प्रीति ठाम प्रमाणका) फल है ऐसा कहा गया है । मयस्य भाव (उपेक्षा)

मा ॥ फलम् ॥ इति उच्यते ॥ उपेक्षा ॥१॥ =और (= वा) अज्ञानका लोप, अज्ञान का नाश (उस प्रमाणका क्रमसे दूसरा तीसरा)

अज्ञान-नाश ॥ वा ॥

फलम् ॥ =फल वा परिणाम है । (उपेक्षा और अज्ञाननाशका विवरण नीचेकी पंक्तियों में ऐसेही)

राग-द्वेषो ॥ अग्रणिपानम् ॥ उपेक्षा ॥१॥

उपसृज्यते ॥

अज्ञान-अभावः ॥ अज्ञान नाशः ॥ वा ॥

फलम् ॥ इति उच्यते ॥

=अन्वयकार की प्रलय (= कल्या अर्थात् अज्ञानका फिलाना) अज्ञानका न होना

=अज्ञानका च्युत, अज्ञानका मिटवाना वा अज्ञानकी प्रत्युत्था

= (प्रमाण का तीसरा) फल ऐसे कहा गया है ।

प्रमिणोति ॥ प्रमाणम् ॥१॥ सारांश इस सत्का यह है कि प्रीति-उपेक्षा-अज्ञानका नाश ये तीन प्रमाण के फल हैं ।

प्रमीयते ॥ अनेन ॥ प्रमाण ॥१॥

= (पदार्थ का) सत्का ज्ञान करता है सो प्रमाण है (कहीं प्रयोग वा कर्तु साधन है)

= निरसते सत्का ज्ञान (वस्तुओं का) किया जाता है सो प्रमाण है ।

(यहाँ पर कर्मभि प्रयोग वा फल साधन हुआ)

एतानिवासी जगत्सहाय बलीलक्ष्म्य पदच्छेद और विषक्षय सहित सर्वाधिकारिका सुधृष्टः विही अनुवादः । अस्याम १ दृश्य १०

प्रमितिमात्र वा प्रमाणम् ॥ किमनेन प्रमीयते ? जीवादिरर्थः ॥ यदि जीवादरधिगमे प्रमाण, प्रमाणाधिगमे अन्यप्रमाण परिहृत्यतितव्यम् । तथा सत्यनवस्था । नानवस्था । प्रदीपवत् ॥ यथा घटादीना प्रकाशने प्रदीपो हेतुः, तत्स्वरूपप्रकाशनेऽपि स एव, न प्रकाशान्तरमस्य युग्य, तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चेतदभ्युपगन्तव्यम् ॥ प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनाया स्वाधिगमभावात् स्मृत्यम, व. ।

वा० प्रमितिमात्रम् । ॥ प्रमाणम् ॥ ॥

= अथवा (पदार्थका) सथा ज्ञान मात्र ही प्रमाण है

(यहाँ मायेपूयोग वा भावसाधन वा क्रिया साधन हुआ)

किम् ॥ अनेन ॥ प्रमीयते T जीव-आदिः ॥ अर्थाः ।

यदि जीव-आदेः अधिगमः प्रमाणम् ॥ प्रमाण-

मधिगमः अन्यत् ॥ प्रमाणम् ॥ परिकल्पितव्यम् ॥ ॥

तथा सतिः अनवस्थाः ॥

न अनवस्थाः ॥

प्रीतिवत् यथा घट आदीनाम् ॥

प्रकाशने, प्रदीपः । हेतुः । तत्-स्वरूप-प्रकाशनेः ।

अपि सः । एवम् अस्य ।

प्रकाशान्तरम् ॥ न मृम्यम् ॥ ॥

यथा एतत् ॥ प्रमाणम् ॥ अपि शक्यम् ॥ ॥

अभ्युपगन्तव्यम् ॥ इति प्रमेय

यत् प्रमाणम् ॥ प्रमाणान्तर-परिकल्पनायाः ॥

एव अधिगम अभावात् । स्मृति-अभावात् ।

= त्वत्त प्रकाश (= तथा) होने पर अबस्थाका अभाव होगा (अर्थात् अनवस्था दोष आवेगा)
= (अवस्था पूर्वोक्त तर्कका अन्त न होगा) (उत्तर) अनवस्था (दोष) न होगा
= (क्याँकि) दीपक (के प्रकाश) के समान (अवस्था) है (अर्थात्) जैसे घटादिकके प्रकाशने में दीपक (= प्रदीप) कारण है उस (दीपक) के रूप प्रकाशने में = मी वह (दीपक) ही (कारण) है । इस (दीपक) के (= अस्य) (प्रकाशके लिये)
= अन्य प्रकाश (= प्रकाशान्तर) नहीं अपेक्ष किया जाता है (= न मयम्)
= और (= च) यैसेही (= तथा) यह (= एतत्) प्रमाण मी अवश्य
= (स्व परस्वरूपका प्रकाशक) मानना योग्य है । यदि प्रमेय (= सामान्य विशेषात्मकवस्तु)
= सदा प्रमाण को अन्य प्रमाणकी (= प्रमाणान्तर) कल्पना करने पर
= (प्रमाणके) अपना (स्वरूपके) ज्ञाननेके अभावसे स्मरणका अभाव होजावेगा ॥ ३५

पगनियागी जगत्प्रसहाय यक्षीलकृतदण्डेद और विमत्त्यर्थे संहित स्वार्थशिक्षिका दण्डशः हिंदी अनुवाच ॥ अध्याय १ सूत्र १०
तदभावाद् व्यवहारलोप स्यात् ॥ वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देशः । वक्ष्यते हि “आद्येपरोक्षं प्रत्यक्षमन्य
निति” म च द्विवचननिर्देश प्रमाणान्तरसख्यानिवर्थः ॥

तत् अभावाद् ॥ व्यवहारलोपः ॥

स्यात्

प्रत्यमाण-येद् अपेक्षया ॥ द्विवचन

निर्देशः ॥ द्विवक्ष्यते

आद्यः ॥ परोक्षम् ॥ अन्यत् ॥ इति

प्रत्यक्षम् ॥

सः ॥ च द्विवचन

निर्देशः ॥ प्रमाणान्तर

संख्या-

निर्दिष्टम् ॥

- = उस (स्मृति) की शून्यतासे व्यवहार वा लोक की पृथुचि वा लोकाचार का अभाव
- = होगा (अतः प्रमाणको अपना प्रकाशक और अन्यका प्रकाशक मानना योग्य है
- = आगे कहेखाने वाले (प्रमाणके) मेवोंकी विवक्षासे (“प्रमाणे”) ऐसा) दो वचन
- = उच्चारण वा उपदेश है । क्योंकि (= हि) (अग्रिमसूत्र दशमं म्पारह्वमं) कहे
- = कि पहिले दो = आद्ये-(सतिष्ठान भुवश्चान) परोक्ष (प्रमाण) है । अन्य वा वचनेदु
- = प्रत्यक्ष प्रमाण (हीन अवधिज्ञान-मत्ता पर्यवधान-कैवल्यज्ञान) है ॥
- = और (=च) वो (प्रमाणे दण्डका नवमं सूत्रमं प्रथमा विभक्ति) दो वचनमं
- = उपपेक्ष वा उच्चारण क्षान्तकी भिन्न (भिन्न) (=प्रमाणान्तर)
- = गणना (वैक-दो तीन-चार-छ आदि अन्य मतावलम्बियों स्वीकृत प्रमाणोंके)
- = निषेधके लिये भी है अर्थात् इस नवमं सूत्रमं “प्रमाणे” दण्ड दोवचनमं
- (१) दशमसूत्र आद्ये परोक्षमूकं आद्ये (दण्ड को दो वचनमं है उस)के लिये है
- (२) अन्यवादियेकि कल्येदुये वा मानेदुये परदो तीन, चार, छ इत्यादिक प्रमाणों
- की संख्याके निराकरणके लिये है

(१) “परोक्षं तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण ही माने है । बहुत ही और वैशेषिक प्रत्यक्ष अनुमान ये दोय प्रमाण माने है संक्षिप्त प्रत्यक्ष, अनुमान, आत्म
हीन मानने है बहुत वैशेषिक प्रत्यक्ष, अनुमान, आत्म, उपपन्न पेरिं व्यापारि प्रमाण माने है । बहुत ही सीमांतकचारि तीय अथ अर्थापत्ति प्रमाण, पेरिं छ
प्रमाण माने है । सा प्रत्यक्ष परोक्ष प दोय संक्षिप्त आद्ये दो २ ३ ४ प्रमाण इतिमं गमित दोय है ॥ १० अपर्याप्तकी वचनिका मुद्रित पृष्ठ १८८

पूरा निवामी जगत्सहाय धर्मलक्ष्मण पदच्छेद और विमलसूर्य सहित सर्वार्थसिद्धिका श्रद्धाः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ १०

उपमानार्थपत्यादीनामत्रैवान्तर्भावदुक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्तर्गतत्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पनानिबृथार्थमाह—

उत्पन्न-अर्थापत्ति-

अर्थापत्ति उत्पन्न (—सादृश्यज्ञान) अर्थापत्ति अर्थापत्ति न कहे गये अर्थक्रे समझना (अंसे देखकर जीवा है पर धर्मों नहीं, जो समझ सकते हैं बाहर अवश्य है) —आदिका यहाँ (अर्थापत्ति सप्रमाण—अर्थपत्ति पत्त्यक्षमन्यतमे) ही गमित है —कहे हुए पाँच प्रकारके ज्ञानका दो प्रमाणों —अर्थित (—अन्तर्भावित्य) करनेमें (—प्रतिपादिते) प्रत्यक्ष और अनुमानादि —अर्थित (—अन्तर्भावित्य) करनेमें (—प्रतिपादिते) प्रत्यक्ष और अनुमानादि (अन्य प्रकारके) दो प्रमाणोंकी कल्पनाके निषेधके लिये

आदिनाम् । अत्र ७ एवं ७ अन्तरभावात् ।
उक्तस्य १॥ पञ्च विधस्य १॥ ज्ञानस्य १॥ प्रमाणद्वय
अन्यार्थापत्ति १॥ प्रतिपादिते १॥ प्रत्यक्ष-अनुमानादि
प्रमाणद्वय-कल्पना-निवृत्ति अर्थम् १॥

प्रत्यक्ष अनुमानं च व्याप्यं चोपपत्त्या साह । अर्थापत्तिरप्यावश्यं यद् प्रमाणाभि र्भेदिते, ॥ उचिते, यद् प्रमाणाभि र्भेदिते । नृविषय्य श्रीवि
पाण्यानि य पंशरिक्त नोपपा, १ ॥ इत्यप्यधिक पाठः शास्त्रपुस्तके वर्तते ॥ (= च
प्रत्यक्षस्य १॥ च अनुमानस्य १॥ च शास्त्रस्य १॥ च
उपपत्त्या १॥ साह १॥ अर्थापत्तिः १॥
य ७ समाया १॥ यद् १॥ प्रमाणाभि १॥ भेदिते ॥
भेदिते, १॥ यद् १॥
प्रमाणाभि १॥ यथापि १॥
न्यायगदिनः १॥ सांख्यस्य १॥
श्रीवि १॥
पाठ्याभि १॥ ये १॥
वेदोदित-नोपपा, १॥
इति ७ अपि ७ मधिकः १॥ पाठ १॥ तामप्युक्तके १॥ वर्तते = ऐसा भी अधिक पाठ पाठ पुर के पृष्ठों की (से कही हुई) पुस्तक में वर्तता है ॥

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्द प्राथम्य (प्रथम) वचन । आद्यो भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयोः प्रथमत्वं ?

(अर्थात् बौद्ध और वैशेषिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निषेधात् तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्पन करने के लिये)
=स्वरूप है कि

आद्यौ परोक्षम् ॥ ११ ॥

आद्यम् च आद्यम् च आद्ये मतिबुद्धे ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् भवतः

आद्यम् ॥॥ च० आद्यम् ॥॥ च०

माद्य ॥॥ मति-बुद्धे ॥॥ ज्ञाने ॥॥

परोक्षम् ॥॥ प्रमाणम् ॥॥ भवतः ॥॥

=(पक्ष ज्ञानों में) आदि में जो दो तथा प्रारम्भ में जो दोनों

=दो आदि वाले (=आद्ये) अथवा पहिले दो (=आद्य) मतिज्ञान भुक्ता

=परोक्ष (इन्द्रिय मन तथा परका उपवेश प्रकाश आदि ज्ञान) प्रमाण है अर्थात् वह मतिज्ञान नेत्र आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मन इनसे उत्पन्न होता है । वह आत्मा से भिन्न निमित्त की अपेक्षा रखता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोक्षेष्ट ज्ञान होनेसे भुक्ताजान मी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि व्युत्पत्ति का शब्दशः हिंदी अनुवाद

आदिशब्द ॥ प्राथम्य-वचनाः ॥ आद्यौ ।

=(एक पक्ष में) आदिशब्द पहिलेका (=प्राथम्य) वाचक है । आरम्भ में (=आद्यौ)

प्राथम्य ॥ आद्यम् ॥ प्रथमत्वम् बुद्ध्या है सो आद्य है । दोहों के आदिपदा (=प्रथमत्व) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम या

पहिला ये शब्द आरम्भ को प्रकट करते हैं और एकही वस्तु को

(शुद्धों में से) प्रथम या पहिली कह सकते हैं यहाँ आद्ये दो रूपन में छाये हैं जो दो

वस्तुओं के प्रथमता कैसे जासका है । सारोक्ष—पक्ष ज्ञान स्वयं प्रथम कैसे है आद्य

भवतः ॥ मति-बुद्धे ॥ ज्ञाने ॥ प्रमाणम् ॥ न भी कैसे जासका ॥

पटानिवासी अंगरूपस्वाभ कर्तृकृत फलकृत और निमस्त्वर्ग सहित सर्वाभिषिद्धा क्षयका हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सू. ११

मुख्योपचारपरिकल्पना । मतिज्ञानं तावन्मुख्यकल्पनाया प्रथमम् । श्रुतमपि तस्य प्रत्यासत्तया प्रथममित्युपचर्यते । द्विवचननिर्देशसामर्थ्यादगोणस्यापि ग्रहणम् । आद्यं च आद्यं च आद्यं मतिश्रुते इत्यर्थः । तदुभयमपि परोक्षं प्रमाणमित्यभिसम्बध्यते ॥ कुतोऽस्य परोक्षत्वं । परायत्तत्वात् ॥

मुख्य-उपचार-परिकल्पनाया ॥ = मुख्य उपचार या व्यवहारके मानलेनेसे (दोनों के आदिपना कदा है क्योंकि)

मतिज्ञानम् ॥ वाक्मुख्य-कल्पनाया ॥ प्रथमम् ॥ = मतिज्ञान तो (=वाक्) प्रथम माने जानेसे आदिमें व प्रथम है

प्रथमम् ॥ अपिकल्पम् ॥ प्रमासत्तया ॥ प्रथमम् इति = प्रत्यक्षान मी उस (मति ज्ञान) के अतिनिष्ठ होनेसे प्रथम ऐसा उपचर्यते ॥

द्विवचननिर्देश-सामर्थ्यात् = दो कल्पनेके निरूपण वा उच्चारणकी शक्तिके अग्रधान (मुख्यज्ञान) का भी

ग्रहणम् ॥ = ग्रहण है । (प्रथम आद्य वाक्यका समास यह है कि)

आद्यम् ॥ च, आद्यम् ॥ च, आद्यम् ॥

मति-प्रथम ॥ इति अर्थः ॥

प्रथम-उचर्यम् ॥ अपिकल्पम् ॥ प्रमाणम् ॥

इति अभिसम्बध्यते ॥

कुतोऽस्य ॥ परोक्षत्वम् ॥

पर आद्यत्वात् ॥

(१) केवल का मत है कि उभय का मिलन नहीं होता है किन्तु पं० हरदत्त और पूरणराय स्वामी के मत में तो यत्न होता है ।

(२) पर-अपेक्षत्वात् ॥ इति अपेक्षत्वात् (= अपेक्षा का) ॥ पर अपेक्षत्वात् (= अपेक्षा का) ॥ ऐसा भी उच्यते वा मिति पाठ है

(३) केवल का मत है कि उभय का मिलन नहीं होता है किन्तु पं० हरदत्त और पूरणराय स्वामी के मत में तो यत्न होता है ।

॥ आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिशब्द प्राथम्य (प्रथम) वचन । आदौ भवमाद्यम् ॥ कथं द्वयोः प्रथमत्वं ?

(अर्थात् पौद् और वैज्ञानिक प्रत्यक्ष तथा अनुमान ऐसे दो प्रमाण मानते हैं उनके निपेक्षार्थ
तथा अपने माने हुये दो प्रमाण समर्पन करने के लिये)
=कहेते हैं कि

आदि T

आद्ये परोक्षम् ॥ ११ ॥

आपम् च आपम् च आये मतिमुते ज्ञाने परोक्षम् प्रमाणम् यवतः

आपम् । ॥ १॥ च आपम् । ॥ ॥ च ॥

आय । ॥ ॥ मति-मुते । ॥ ॥ ज्ञाने । ॥ ॥

परोक्षम् । ॥ ॥ प्रमाणम् । ॥ ॥ भवतः T

=(पौच ज्ञानों में) आदि में जो दो तथा प्रारम्भ में जो दो

=दो आदि वाक्ये (=आद्ये) अथवा परिच्छेदों (=आद्य) मत्किन्तु भुक्तान

=परोक्ष (इन्द्रिय मत तथा परका उपलब्ध प्रकारादि अन्य) प्रमाण है अर्थात् वह मत्किन्तु नैत्र
आदि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय मत इनसे उत्पन्न होता है । वह आत्मा से भिन्न निमित्त
की अपेक्षा रहता है अतः परोक्ष है और मति पूर्वक होनेसे तथा परोपपेक्ष अन्य होनेसे
भुक्तान भी परोक्ष ही है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर स्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद

आदिशब्दः । प्रथम-वचना । आदौ ।

मपम्, T आपम् । ॥ रूपम् इयोः । ॥ प्रथमत्वम्-बुद्ध्या है सो माद्य है । दोहों आदिपत्ता (=प्रणपत्त) कैसे है अर्थात् आदि प्रथम या

परिच्छेद ये शब्द प्रारम्भ की प्रणट करते हैं और एकही वस्तु को

(शुद्धों में से) प्रथम या परिच्छेद कह सकते हैं यहाँ आये दो वचन में लाये हैं जो दो

वस्तुओं के प्रणमपत्ता कैसे प्राप्तका है । सारोक्ष—पौच ज्ञान अपने छत्रमें कहे है आप

वचन में मत्किन्तु आलुका है भुक्तान भी कैसे प्राप्तका है ॥

पद्यानिभासी सगुरुसंशोभः पदोच्छेदः पदच्छेदः और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाव्ययिका सम्यक् । इवी अनुसर्गः । अर्थात् पद्य १२

अभिहितलक्षणात्परोच्चादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह—
॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

वक्ष्योति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तक्षयोपशमं प्रक्षिणावरण वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात् ॥ परोच्चात् ॥ इतरस्य ॥
सर्वस्य ॥ प्रत्यक्षत्व-प्रतिपादन-अर्थम् ॥ आह ॥

पदच्छेद और घटार्थ-अन्य ॥
प्रत्यक्षम् ॥

=कथित वा कहे हुये (=अभिहित) उसका सहित परोक्ष (ज्ञान) से अन्य
=सब (ज्ञान) के प्रत्यक्षता के करने के लिये (आचार्य) करते हैं कि
प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

=(संस्क्रियान और सुप्रज्ञान से) निम्न अथवा अवशेष (=अन्यत्)
=(अवविज्ञान मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात्
आत्मा के ही आधाय से चित्त (=चिन्ता) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता

से उत्पन्न होते हैं । अतः वे दोनों ज्ञान अतीन्द्रिय हैं । तत्क चीनों ज्ञानों से अवविज्ञान और मन्ता पर्यवज्ञान को
परिमित वस्तु विषय करने से किञ्च (=सीमावद्ध) प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पर्यायको ग्रहण करने से
सकल (=सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्र पर सर्वोर्थसिद्धि दृष्टिका शब्दज्ञा. हिन्दी अनुवाद ॥

अस्योति ॥ व्याप्नोति ॥ जानाति ॥
इतिक-अर्थ ॥ आत्मा ॥ प्राप्त-क्षयोपशमम् ॥ वा
प्रक्षिण-आवरणम् ॥ सम ॥ पदच्छेद
प्रतिनियतम् ॥ प्रत्यक्षम् ॥
=प्रधानता है वा बोध करता है (अस्योति) व्याप्त होता है जानता है ।
=ऐसा अब (अर्थात्) भाषा है वा वेतन है । कर्मका क्षयोपशम प्राप्त अथवा
=कर्मके आवरण के नाश प्राप्त चित्त (आत्मा) के ही (=एव)
=आश्रय से (चिन्ता किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो तो प्रत्यक्ष
है अर्थात् कर्मके लयोपशम और क्षय के अनुसार चिन्ता किसी इन्द्रिय, मन,
प्रकृत्य, पर उपप्रेक्षादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आधाय से ही उत्पन्न ही
और विशेष रूप से पदार्थों को जाने व प्रत्यक्ष (अवधि-मनः पर्यव-केवलज्ञान) है । उनमें

प्राणिनामी नगरपमदाय यकीलकृत पदार्थ और गमकपर्य सहित सर्वाधिदिका कृच्छः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ११

गति ज्ञानमिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तमिति वक्ष्यते श्रुतमनिन्द्रियस्येति च । अतः पराणीन्द्रियाणि मनश्च प्रशशोषेन्शादि च बाह्यनिमित्त प्रतीय तदावरणवर्धमक्षयोपशमापेक्षस्यात्मन उत्पद्यमानं मतिश्रुत परोक्ष मित्याभ्यायते । अत उपमानागमादीनामत्रैवान्तर्भाव ॥

मनिष्ठानम् ॥ इन्द्रिय अनिन्द्रिय-निमित्तम् ॥

इति० वक्ष्यते ॥ च० अतस् ॥

अनिन्द्रियस्य ॥ (अप ॥)

इति०

अतः० पराणि ॥ इन्द्रियाणि ॥ च० मनस् ॥

प० प्रकाश-उपवेद्यादि ॥ बाह्यनिमित्तम् ॥

प्रतीय - तत् आवरण-रम-

क्षयोपशम अपेक्षस्य ॥ आत्मनः० उत्पद्यमानम् ॥

मतिश्रुतम् ॥ परोक्षम् ॥ इति० आस्थापयते ॥

अतः० उपमान-आगम-आदीनाम् ॥ अन्तर्भावः ॥

अतः० पर०

= मतिष्ठान (बाह्येण पक्षे) इन्द्रिय (और) मन ऊच, निमित्तक वा कारणक है अर्थात्

मतिष्ठान पक्ष इन्द्रिय और अंत कारण छद् बाह्य निमित्तोत्से उत्पन्न होता है

= ऐसा (मतिष्ठानानिन्द्रिय निमित्तम्) । चोददवा क्षमं) कहेंगे । और बुद्धिमान

= मनका विषय वा अर्थ है अर्थात् बुद्धिमान मनसे उत्पन्न होता है

= ऐसा (दूसरे अध्यायके श्कीसर्वाद्युक्त "बुद्धमनिन्द्रियस्य" में कहेंगे)

= इस हेतुसे (=अत) पर जे पक्षों) इन्द्रिय और (=च) मन (=अतःपरम्)

= और (=च) प्रकाश उपवेद्यादिक बाहिरके कारणको

= सदाय छेकर (=प्रतीय) उन (मतिष्ठान और बुद्धिमान) के टुकने वाले क्रमेके

= क्षयोपशम स्थित (=अपेक्षस्य) जीवके उत्पन्न हुये

= मतिष्ठानमान परोक्ष है ऐसा कहा गया है अर्थात् जीवके मतिष्ठान और

बुद्धिमान उत्पन्न होनेकेलिये बाहिरंग कारण इन्द्रिय-मन-प्रकाश और पर

उपवेद्यादिक है इससे इन दोनों ज्ञानोंको परोक्ष कहते हैं और अंतर्ग कारण

इनदोनों ज्ञानोंके उत्पन्न होनेका आत्माके मतिष्ठानावस्थायी और बुद्धिमाना

वस्थायी कर्माका क्षयोपशम ही है ॥ (प्रतीय=सम्बन्ध घटक फलकृदन्त है) ।

= इसलिये उपमानग्रमाण, आगम (=शाब्द) प्रमाण आदिका गर्मित होने

= इस(परोक्षमान) में ही (=पर) है (अन्योके मानेछुये प्रमाण इतमें गर्मित है) ॥

पटानिवासी कात्स्न्यसहाय क्लीलकृतं पदच्छेद और विमलसर्वार्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका सर्वदशः । अध्याय १ छन्द १२

अभिहितलक्षणात्परोच्चादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह-

॥ प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

अक्ष्णोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तसंयोगशम प्रक्षीणावरण वा प्रतिनियतं प्रत्यक्षम् ॥

अभिहित-लक्षणात् १ ॥ परोक्षम् १ ॥ इतरस्य १ ॥

सर्वस्य १ ॥ प्रत्यक्षत्व-प्रतिपादन-अर्थम् १ ॥ आह १

प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

पदच्छेद और सूत्रार्थ-अन्यत् १ ॥

प्रत्यक्षम् १ ॥

= (अभिज्ञान और बुद्धिज्ञान से) मिश्र अथवा अवशेष (= अन्यत्)

= (अवधिज्ञान मनाः पर्यवधान और केवलज्ञान) प्रत्यक्ष प्रमाण है अर्थात्

आत्मा के ही आश्रय से किन् (= बिना) मन और किसी इन्द्रिय की सहायता से उत्पन्न होते हैं । अतः ये तीनों ज्ञान अतीन्द्रिय हैं । उक्त तीनों ज्ञानों से अवधिज्ञान और मन पर्यवधान को परिमित वस्तु किन् करने से विच्छेद (= सीमावद्ध) प्रत्यक्ष है और केवलज्ञान समस्त द्रव्य व पदार्थको ग्रहण करने से सफ़ल (= सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

पदच्छेद और विमलसर्वार्थ सहित इस सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिश्च शब्दज्ञः हिन्दी अनुवाद ॥

अत्योति १ व्याप्नोति १ जानाति १

सर्व-अर्थः १ आत्मा १ प्राप्त-संयोगशम १ वा

प्रक्षीण-आवरणम् १ तम् १ एवम्

प्रतिनियतम् १ प्रत्यक्षम् ॥

= अवधाना है वा बोध करता है (अत्योति) व्याप्त होता है जानता है ।

= ऐसा अव (अर्थात्) आत्मा है वा चेतन है । कर्मका संयोगशम प्राप्त अववा

= कर्मके आवरण के नाश प्राप्त किन् (आत्मा) के ही (= एव)

= आश्रय से (बिना किसी अन्य की सहायता लिये हुये) उत्पन्न हो सो प्रत्यक्ष

है अर्थात् कर्मके लययोगशम और व्यय के अनुसार बिना किसी इन्द्रिय, मन, प्रकाश, पर उपपेक्षादिक की सहायता लिये हुये आत्मा के आश्रय से ही उत्पन्न ही और विशेष रूप से पदार्थों को जाने वे प्रत्यक्ष (अवधि-मनः पर्यय-केवलज्ञान) हैं । उनमें

प्रतिनिधिगी नगम्पमहाय मरील्लुल पदच्छेद और विमल्यर्थ सहित सा। भौतिकी का छन्दः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ अंश १२०
 अवधिदर्शन केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । नैप दोष । ज्ञानमित्यनुवर्तते,
 तेन दर्शनस्य व्युदा । एवमपि विभगज्ञानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । सम्यगित्यधिकारात् ।
 ततस्तान्निगति ॥ सम्यगीत्यनुवर्तते, तेन ज्ञानं विशिष्यते,

अवधिज्ञान और मनः पर्यय ज्ञान तो विफल (=अधूरा-अधूरा) प्रत्यक्ष है और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है ॥

=(यस्य) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन भी (=अपि) आत्मा (=अक्षम)

=भी जनित वा आश्रित (=प्रतिनियत) वा व्यवस्थित (=प्रतिनियत) है इसलिये

=विस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का भी ग्रहण प्राप्त होता है

(अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन भी प्रमाण उठाने ऐसा प्रस है)

=(उपर) यह दोष नहीं है । (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अधिकार-प्रकरण है

=विस (मानके अनुवर्तनेसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहाँ ज्ञान

का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है

=(प्रभ) ऐताही (=अपि) कुअवधिज्ञान भी (=अपि) व्यवस्थित वा (आत्मके) आश्रित है

=इस लिये इस (कुअवधिज्ञान) का भी प्रसंग वा ग्रहण प्राप्त होता है अर्थात् प्रस

का आशय यह है कि यदि ज्ञान का प्रकरण है तो तो कुअवधिज्ञान को भी यहाँ

ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रमाण कहना चाहिये क्योंकि कुअवधिज्ञान भी आत्मासे

विना किसी इन्द्रिय-मन-प्रकाश और पर उपपेक्षादिक द्वारा उत्पन्न होता है

=(उपर) सम्यक् (प्रवृत्त) ऐसा प्रकरण होनेसे यहाँ (=ततः) उस (विभगज्ञान) का

=निषेध है ॥ सम्यक् ऐसा (पद) अनुवर्तता है उपस्थित है

=मिष (सम्पन्न पदकी अनुवृत्ति) से ज्ञान विशेषित किया गया है

अवधिदर्शनम् ॥ केवलदर्शनम् ॥ अपि अक्षम् ॥॥

प्रत्यक्ष प्रतिनियतम् ॥॥ अतः

तस्य ॥॥ अपिः ग्रहणम् ॥॥ प्राप्नोति ॥

न च । दास । मानम् ॥॥ इति अनुवर्तते ॥

ततः ॥॥ दर्शनस्य ॥॥ व्युदासः ।

एतत् अपि विमत मानम् ॥॥ अपि प्रतिनियतम् ॥॥

अतः अस्य ॥॥ अपिः ग्रहणम् ॥॥ प्राप्नोति ॥

सम्यक् ॥॥ इति अधिकारात् ॥॥ एतत् सत्

निर्गुण ॥॥ । सम्यक् ॥॥ इति अनुवर्तते ॥

ततः ॥॥ मानम् ॥॥ विशिष्यते ॥

एतानिवासी जगत्सुखाय कभीलुप्तं पदच्छेदं और विमर्शस्यै सहित सर्वावसिद्धिका श्रवणः विही भवुवाह । अध्याप १ ख १२
ततो विभङ्गज्ञानस्य निवृत्तिं कृता । तद्विमर्शार्थोद्देशाद्विपरितार्थविषयमिति न सम्यक् ॥ स्यान्मत
मिन्द्रियव्यापारजनित ज्ञान प्रत्यक्ष, व्यतीतोन्द्रियविषयव्यापार परोक्षमित्यतदविसर्वादिः श्रवणमभ्युपगन्तव्य
मिति । तदुक्तम् । आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रपञ्चः ॥ यदिद्विन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञान प्रत्यक्षमिष्यते, एव प्रसक्त्या
आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञान न स्यात् । नहि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थोधिगमः ॥ अथ तस्यापि कारणपूर्वकणैवज्ञान कल्पते तस्या
सर्वज्ञत्वं स्यात् ॥ तस्य मानस प्रत्यक्षमिति चेत् मनः प्रणिधान पूर्वकत्वात्

स्तः विमर्शज्ञानस्य ॥ निवृत्तिः ॥ कृता ॥
= तिसरे कुञ्जवर्धनका (प्रत्यक्ष ज्ञानमें प्रवृत्त करनेका) निषेध किया गया ।
तत् ॥ हि० मिथ्यादर्शन उद्घात ॥ विस्तीर्ण
= क्योंकि (= हि) वह (= उद्घात) मिथ्यादर्शनके उदयसे प्रतिकूल
अन्यविषयम् ॥ इति० न० सम्यक् ॥
= पदार्थका ग्रहण करता है । ऐसे (कुञ्जवर्धन) प्रवृत्त (= ज्ञान) नहीं है
स्यात् मतम् ॥ इन्द्रिय-व्यापार
= (वैशेषिकके मतानुसार-अर्थ) मत है (= स्यात्) कि इन्द्रियके व्यक्तायसे-उद्योगसे
जनितम् ॥ ज्ञानम् ॥ प्रत्यक्षम् ॥
= उत्पन्न हुआ ज्ञान प्रत्यक्ष है
व्यतीति-इन्द्रिय विषय-व्यापारम् ॥ परोक्षम् ॥ इति
= इन्द्रियोंके विषयके उद्योग (= व्यापार) वर्जित (ज्ञान) प्रोक्ष है ऐसा
एतत् ॥ अस्तिवादि-उक्तम् ॥ अभ्युपगन्तव्यम् ॥ इति
= यह आधारहित स्वरूप मानना योग्य है
आप्तस्य । प्रत्यक्ष-ज्ञान अभाव-प्रसक्त्या ॥
= (उत्तर) आप्तके प्रत्यक्ष ज्ञानके लोपका पूर्ण जाने (कि हेतु) से
तत् ॥ अपुक्तं ॥ यदि इन्द्रिय-निमित्तम् ॥ एवम्
= वह (= इन्द्रियजनित ज्ञानको प्रत्यक्ष मानना) ठीक नहीं है । जो इन्द्रिय जनित ही
ज्ञानं ॥ प्रत्यक्षम् ॥ इत्येता एव प्रसक्त्या ॥
= ज्ञान प्रत्यक्ष (प्राप्त) माना जाय तो ऐसे पूर्वगत से
आप्तस्य ॥ प्रत्यक्ष ज्ञानं ॥ न स्यात् ॥
= आप्तके प्रत्यक्षज्ञान नहीं होता (= होगा) ।
नदि० तस्य ॥ इन्द्रिय-पूर्वः, अर्थ अधिगमः ॥
= क्योंकि नहीं है तिस (आप्त) के इन्द्रिय पूर्वक वा इन्द्रिय जनित वस्तुका ज्ञान
अप० तस्य ॥ अपि० करम-पूर्वकम् ॥ एवम्
= यदि (= अब) तिस (आप्त)के भी इन्द्रिय पूर्वक वा इन्द्रिय निमित्तक ही
ज्ञानं कल्प्यते ॥ तस्य ॥ असंख्यत्वम् ॥ स्यात् ॥
= ज्ञान माना जाय तो तिस (आप्त)के असंख्यता होगी ॥
तस्य ॥ मानसम् ॥ प्रत्यक्षम् ॥
= तिस (आप्त) क मानसिक वा मनसा (= मानस) ज्ञान प्रत्यक्ष माना जाय 'कल्प्यते'
इति० चेत्० मनस् प्रणिधान-पूर्वकत्वात् ॥
= ऐसी भुंका होनेपर (उत्तर है कि) मनके चित्तन वा उद्योग जनित होनेसे

ज्यानिगी अग्रमहाय श्रीसुत पदच्छेद और विमर्शार्थ सहित सदाधिशिक्षा क्षुब्धः हिंदी अनुवाद । अष्टमा १ अंश १२०

अवधिदर्शन केवलदर्शनमपि अक्षमेव प्रतिनियतमतस्तस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । नैप दोष । ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युदा । एवमपि विमर्शानमपि प्रतिनियतमतोऽस्यापि ग्रहण प्राप्नोति । सम्यगित्यधिकारात् । ततस्तन्निगति ॥ सम्यगित्यनुवर्तते, तेन ज्ञान विशिष्यते,

अवधिज्ञान और मनः पर्यव ज्ञान तो विफल (= अधूरा-अपूरा) प्रत्यक्ष है और केवल ज्ञान सकल (सम्पूर्ण) प्रत्यक्ष है ॥

अवधिदर्शनम् ॥ केवलदर्शनम् ॥ अपि अयम् ॥॥

परः प्रतिनियमम् ॥॥ मनः ॥

मस्य ॥॥ अपिः ग्रहणम् ॥॥ प्राप्नोति ॥

नः ॥ १ । दोषः । ज्ञानम् ॥॥ इति अनुवर्तते ॥

मनः ॥ मनस्य ॥॥ व्युदासः ॥

एवम् ॥ अपि विमत ज्ञानम् ॥॥ अपि प्रतिनियमम् ॥॥

अतः ॥ अस्य ॥॥ अपिः ग्रहणम् ॥॥ प्राप्नोति ॥

= (प्रश्न) अवधिदर्शन (और) केवलदर्शन मी (=अपि) ज्ञाना (=अक्षम)

= मी ज्ञानित या आधित (=प्रतिनियत) वा व्यवस्थित (=प्रतिनिष्ठ) है इसलिये

= तिस (अवधिदर्शन-केवलदर्शन) का मी ग्रहण प्राप्त होता है

(अर्थात् अवधिदर्शन और केवलदर्शन मी प्रमाण उत्प्रेरि ऐसा प्रश्न है)

= (उत्तर) यह दोष नहीं है । (क्योंकि इस सूत्र में) ज्ञान ऐसा अविकार-प्रकरण है

= जिस (ज्ञानके अनुवर्तनसे) दर्शन का निराकरण वा निवारण है अर्थात् यहाँ ज्ञान

का प्रकरण होनेके हेतुसे ज्ञानका ग्रहण किया है दर्शन का निषेध है

= (प्रश्न) ऐसाही (=अपि) कुत्रवचिज्ञान मी (=अपि) व्यवस्थित वा (आत्मिके) आधित है

= इस लिये इस (कुत्रवचिज्ञान) का मी परमाण ---

पटुनिवासी जगत्प्रसास्य कसीसकृत् शरच्छेद और नियन्त्रण शरच्छेद । अथवा १ घट १२
आगमतस्तत्सिद्धिरिति चेन्न । तस्य आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ॥ योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञानं दिव्यमप्य
स्तीति चेत्, न तस्य प्रत्यक्षत्व इन्द्रियनिमित्ताभावात् । अक्षमक्षं प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात् ॥

आगमः तत्सिद्धिः ॥ इति चेत् न च

सर्वः आगमस्य प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ॥

नोयिन् प्रत्यक्षम् ॥ अन्यत् ॥ ज्ञानम् ॥

दिव्यम् ॥ अपि अस्ति इति चेत् न

तस्य ॥ प्रत्यक्षत्वम् ॥ न च

इन्द्रियनिमित्त अभावम् ॥ असम् ॥ असम् ॥

प्रति यत् ॥ वर्तते इति तत् ॥ प्रत्यक्षम् ॥

इति अमुपगमात् ॥

=असत्से उस (सर्वप्रमाण) की सिद्धि है ऐसी शंका (=चेत) है । (उत्तर) यह ठीक नहीं है ।
=क्योंकि उस क्षात्र को प्रत्यक्ष ज्ञान निमित्त वा कारण है अर्थात् वही आगम
माना जाता है जो प्रत्यक्षप्रमाण अन्य है भावार्थ यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञानी ही
प्रमाणवत् आगम कह सकता है परंतु इन्द्रिय जनित प्रत्यक्ष ज्ञान तब प्रमाणवत्
अन्य नहीं कर सकता, नहीं जानसत्ता तब उससे स्नाहुआ आगम भी सर्व प्रमाणों
का ज्ञान कैसे करा सकता है जिस (आगम) से आपने ज्ञानको सर्वज्ञता मानीथाव ॥

=(बौद्धस्तबाले) योगिप्रेक्षा प्रत्यक्ष एक जुदा ज्ञान (=अन्य ज्ञान)

=अलौकिक (=दिव्य) ही (=अपि) है यदि (=चेत) ऐसा है ?

(उत्तर) =तो विस (भौतिक) ज्ञान को साक्षात्कृता नहीं हो सकैगा

=क्योंकि वह इन्द्रियों के निमित्तसे नहीं होता है । (और आपने) इन्द्रिय इन्द्रिय

=श्रुति जो पूर्वज्ञता है जो (ही) प्रत्यक्ष अथवा साक्षात् है

=ऐसा माना है (अतः) अलौकिक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता भावार्थ अलौकिक
ज्ञान वही है जिसका इन्द्रियों से कुछ किसी प्रकारका संबंध नहीं है और प्रत्यक्ष
प्रमाण वही माना गया है जो इन्द्रिय अन्य है अतः दिव्यज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है ॥

मम एक साय सर्व पदार्थों का ग्रहण नहीं कर सकता है और कामकर्मि सर्व पदार्थों का ज्ञान करता नहीं । क्योंकि पदार्थ अनन्त है युगपत् उपलब्ध
अनन्त पदार्थों को न जाने केवल सर्वज्ञ नहीं इसलिये मन्त्राद्य युगपत् सर्व पदार्थों के ज्ञानमेवाका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सके इसलिये सर्वज्ञता का
अभावही हुआ

(१) तस्य और आगमस्य शब्दों के पुच्छि और मनुस्क किंग दोनों हो सके है ॥

प्रार्थनावासी जगत्पतिराय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शुद्धः। हिंदी अनुवाद । अध्याय १ ॥ १२

ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभावात्

प्रश्नस्य १॥ सर्वज्ञत्व-अभावः । एव ●

= ज्ञानके सर्वज्ञत्वाका लोप ही [=एव] आता है अर्थात् यदि मनजन्य ज्ञान
पूर्ण माना जाय तो भी सर्वज्ञता नहीं बनता है
[निम्नटिप्पणीमें विशेष है]

(१) युगलव क्षान्तानुगतिमत्सो विद्वदिति परस्परुपपत्तिसर्वस्तु पुण्यमभः प्रविधान न घटते । तदा सर्वज्ञत्वाभावः । एकं ज्ञानमनेकार्यं न
अन्तर्नीति । प्रतिक्रान्तापाद्य क्रमेण सर्ववस्तुज्ञानं च न घटते । वस्तुनामभ्यावेक्यस्तु परिज्ञानव्यसरे अन्यस्तुपदिक्रान्ताभावाच्च सर्वज्ञत्वाभावः
सुगुणः ॥

युगलव ● क्षान्त-अनुगतिः १ ।

मत्तः १ । लिङ्गव १ ॥ इति परः १ । अभि-उपपत्तयः १ ।

मय परस्परु १ ॥ युगलव ● मत्त-व्यवधानव १ ॥

न घटते १

तदाः स्पष्टाव ज्ञानावः १ । एक्य १ ॥ क्षान्तव १ ॥ अनेक-

कर्त्तव्य १ । न आगति १ इति प्रक्रिया सम्प्रदावा १ ।

क्रमेण १ गवतस्तुल्यव १ । च न घटते १

वस्तुनाय १ आगत्याय एक वस्तु-परिज्ञान व्यवसरे १ ।

न ● अन्य वस्तु परिज्ञान-अभावात् १ ।

सर्वज्ञत्व समाप्तः १ । सुगुणः १ ।

= एक बार ही न एक साथ (= युगलव) क्षान्तत्व सम्बन्ध वा सङ्गत न होना

= मत्तका लक्षण येना है । वृत्तों करि मानने से

= समस्त पदार्थों में एक साथ मत्तका विवर्तन वा उद्याग वा इ. पाद

= नहीं बनता है अर्थात् अग्रभूतके सिद्धान्त अनुसार भी मन सर्व पदार्थों को एक साथ
ग्रहण नहीं कर सकता है ।

= तिसरे सर्वज्ञत्व के अभाव है । (और) एक ज्ञान अनेक का ज्ञान

= पदार्थों को नहीं जानता है । ऐसी प्रक्रिया को विद्यमन्ता से अर्थान्त

= अनुक्रमसे सब पदार्थों का ज्ञान होना भी नहीं बनता है

= पदार्थों के अन्त होने (के हेतु) से एक पदार्थ के ज्ञानके प्रत्यक्ष में

= और सिद्ध पदार्थ के परिज्ञान की शृङ्खलासे सर्वज्ञता का अभाव

= मते प्रकार घटता है वा बनता है आचार्य यह है कि

एगानिचामी नगरूपेमाय यक्षैलकृत पञ्चोद और विमलतर्प संहित सत्रार्थसिद्धिका सम्बन्धः विदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १२

किञ्च सर्वज्ञत्वाभाव प्रतिज्ञादानिर्वा । तस्य योगिनो यज्ज्ञान तत्प्रत्यर्थवगवर्ति स्यात् । अनेकार्थग्राहि
 वा ? यदि प्रत्यर्थवगवर्ति, सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिन, ज्ञयस्यानन्त्यात् ॥ अथानेकार्थग्राहिया प्रतिज्ञा
 “विजानाति न विज्ञानमेकमर्थद्वयम् यथा । एकमर्थं विजानाति न विज्ञानद्वय तथा” इति सा हीयते ॥
 अथवा शणिका मर्वसंस्कारा इति प्रतिज्ञा हीयते । अनेकक्षणवत्येकविज्ञानाम्युपममात् ॥

- मर्मज्ञत्व अभाव । किञ्च •
- वा • प्रतिज्ञादानि ॥ तस्य ॥ योगिनः ॥ यत् ॥
 - ज्ञानम् ॥ तत् ॥ प्रति-मर्थ-वदवर्ति ॥ सा स्यात् ॥
 - वा • अनेक-अर्थग्राहि ॥ यदि •
 - प्रति अर्थ-अग्रवर्ति ॥ सर्वज्ञत्वम् ॥ अस्य ॥
 - योगिनः ॥ न अस्ति ॥ द्वयस्य ॥
 - अनन्त्यात् ॥
 - अथ • अनेक-अर्थ-ग्राहि ॥
 - या ॥ प्रतिज्ञा ॥
 - विजानाति ॥ न • विज्ञानमकमर्थद्वयम् ॥ यथा •
 - एकमप्यम् ॥ विजानाति ॥ न विज्ञानद्वय ॥ यथा •
 - इति • सा ॥ इति ॥ अथवा • सर्वसंस्काराः ॥
 - प्रणिताः ॥ इति • प्रतिज्ञा ॥ इत्येते ॥ अनेक-
 - सप्तवर्ति एक-विज्ञान अभ्युपगमात् ॥
- = (अलौकिक ज्ञानको प्रत्यक्ष स्वीकार करनेमें) सर्वज्ञताका अभाव, मी (= किञ्च) है
 = अथवा प्रतिज्ञा भंग वा प्रणक्ती छति हो जावेगी क्योंकि द्वितिस योगीके जो (= यत्)
 = ज्ञान है सो एक स्वार्थ के (= अत्यर्थ) वक्षीयुत है । अर्थात् योगीश्वर का यह
 ज्ञान एक एक स्वार्थ अथवा एक एक वस्तुको क्रमानुसार ग्रहण करेगा
 = अथवा बहुत स्वार्थोंका ग्रहण करने वाला होगा । जो (योगीश्वर का ज्ञान)
 = एक वस्तु का ग्रहण करने वाला हो तो सर्वज्ञता इस
 = योगीके नहीं (होसका) है । क्योंकि ज्ञानमें ग्रहण होने योग्य स्वार्थके (= द्वयस्य)
 = अनन्ता है (और सर्वज्ञ तबहीं हो जब सब स्वार्थों को एक कालमें जान सके)
 = जो (= अथ) (इस योगीश्वरका ज्ञान) अनेक पदार्थका जाननेवाला हो वा ग्राही हो तो
 = (निम्नलिखित श्लोकमें) जो (= या) प्रण अथवा नियम है कि
 = जैसे (= यथा) एक विज्ञान दो स्वार्थोंको नहीं जानता है (= विजानाति)
 = तैसे (= तथा) दो विज्ञान एक अर्थ वा वस्तुको नहीं जानते हैं
 = ऐसी प्रक्रिया (= सा) छति की जाय है । अथवा सब संस्कार (= ज्ञानफल)
 = एक समयतहीं हैं ऐसा प्रण वा नियम क्या जाय है क्योंकि अनेक
 = क्षणतहीं एक विज्ञान माना गया है वा स्वीकार किया गया है ।

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निरिक्त्वा (= निग्रहपरहित तथा भेद विचाररहित) मानते हैं । अतः उसके द्वारा किसी भी पदार्थका निग्रह नहीं होसक्ता तब स्वयम् उसयोगीके ज्ञानका भी निग्रह न होनेसे उक्त (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग आता है । क्योंकि किसी भी पदार्थका अस्तित्व निग्रह आत्मक ज्ञानके बिना सिद्ध नहीं हो सका है ॥

= भाषित्वा कदं हुये दोनों (स्रोत्र तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके

= प्रथम (परोक्ष ज्ञान) के भेदों के विशेष ज्ञानके लिये कहते हैं कि

अभिहित-उभय-प्रकारस्य ॥ प्रमाणस्य ॥ आह ।

द्वयं विद्वदो (= विद्यातरुणक ज्ञानों) से नहीं आता आ मध्य है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सका है अतः

विद्वानाद्वैतादी योगाचार बोद्धोका मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद —

कनो ॥ निशुब्दं ॥ सत्त्वे ॥ निष्कली ॥ (अतीतम् ॥) = (यद विद्याम्) तब संपूर्ण कल्पनाओं (भेदों)से रहित (= कर्तृत्वम्) विनिरूप वा विभाव है

अर्थात् विद्वानां माहृत्य माहृत्य, वाच्य वाचक, वेद्य वेद्यक और वाच्य वाचक कल्पनाओं नहीं होनेसे वह निशुब्द वे निर्मल है ।

= तस्य (= यिष्य) (यच्छाशकि वास्त्रेकी) इच्छाही (= अभिलाषा) धोमस्तावे (= आरम्भत्वाव)

रहित है अर्थात् निष्कल तत्त्व संसार में अनिर्वचनीय है या अवच्छेद

= (यह विद्वान तथा) ज्ञाने का नहीं जानता है (= वेद्यम्) अर्थात् ज्ञाना भी वेद्य नहीं है ।

गङ्गा स्यम् ॥ वेद्यम् ॥

गङ्गा स्यम् ॥ निगाद्यम् ॥

दुपुति-अवस्था ॥

गङ्गा-अवस्था ॥

= शून्य (= सुपुति) वास्थ्यात्मा है (= अपरूपम्) अर्थात् स्वभावज्ञानों रखनेवाले चैतन्य के मध्य है

= सत्त्वात्के दुःख (और विकल्पोंसे) रहित है (= यावत्) ॥ १ ॥ समस्त रूपाका मायार्थ यह

है कि वह विद्वान्मध्य संपूर्ण फलगतियोंसे रहित होनेसे विशुद्ध है तथा विद्वत्का कोर भी

वर्ण कथन करने का मार्ग नहीं है (= अनिर्वचनीय है) अतः नहीं जानता है अर्थात् स्वरूपमें ज्ञान वेद्य माय रहित है

और तब यह कथन निगेद्योति गात्र है । स्वातन्त्र्यात् तत्त्वेषाम् चैतन्यके सहचर्य । रीत्यात्मरूपी स्मृ ह्युत्तम रहित है या वर्जित है

इति यथा ॥

इति यथा ॥

एगनिगामी जगुरुपमाय वकीलकुल पद हे- और निमक्षर्य सक्षि सयोर्यसिद्धि का द्रव्यदाः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ १२

त्वात्तस्य शून्यताप्रमदुःश्र ॥

प्रदीपान् #

=दीपक (के प्रकाश) मरुत (विज्ञान) है अर्थात् शोध करते हैं कि किसानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परस्परिका प्रकाश वा बोध करा देना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें बन जायेगी

समयमें इन बायेगी
=नेसी (शवि) बुद्धा (होने) पर (=नेत) ; (उपर है कि उत्कंठा ठीक) नहीं है
=नेसी (शवि) बुद्धा (होने) पर (=नेत) ; (उपर है कि उत्कंठा ठीक) नहीं है

पठानितामी चारपयदाय यकीलकृत पद-पद और भिमकण्य संहित सत्यार्थसिद्धिका क्षुब्धका हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ १२
 प्रतीपचदिति चेन्न । तस्याप्यनेन क्षणविययाया सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युत्थमात् ॥ विकल्पातीति
 त्वात्तस्य शून्यताप्रमङ्गश्च ॥

प्रतीपान ०

=दीपक (के प्रकाश) गच्छ (विगान) है अर्थात् यौद्ध करते हैं कि प्रिगानकी दीपकहैं
 समान उत्पत्ति ॥॥ परपदार्थका प्रकाश या योग करा देना दोनों पाँहें युगपत् एकही
 समयमें बन जायेगी

इति ० पा ० १ ०

=तेनी (इति) मुंडा (दोने) पर (=चेत) : (उपर है कि उत्कर्षका ठीक) नहीं है
 तय ॥ अति अने इच्छन्-विपत्ताया ॥ मार्ग ॥ ज्व=क्योंकि उग (दीपक) या भी अनेकश्रवती होने पर (=यत्याश्र) भी (=एव)

प्रकाश प्राप्तिन श्रयुत्पत्तामात् ॥

=प्रकाश किये जाने योग (पदार्थ) का प्रकाशन कर देना माना जाता है ॥ प्रभापर
 का सारांश, दीपकहैं समान प्रानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय प्राश्रवणा
 मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवती होकर पदार्थों का प्रकाश
 करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार युक्ति हैं) भंग (दोष) पना रहता है
 =और (=च) विता (विगान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अधिकतम आत्मक होनेसे)
 =अभावका प्रसंग (भी) जाता है अर्थात् यौद्ध प्रत्यक्ष प्रानको

च ० तरय ॥॥ निज्ज अतीनिगान ॥॥
 गुत्थना-अगान् ॥

(१) गतिकारकत्ववि कलाभावात्तान्द्वयविकल्पाविपत्ताया गतिकारकत्वय शून्यतासंगतः ॥ तान्ने विगाने नकदेविदिह्ये ॥ पदपानिकाकस्व-
 रतामतीया ॥ अ स्वस्य वेदं अ य तद्विगाने ॥ शून्यतासंगतं यगमुः स्वभावात् ॥ १ ॥ इति गयमात् ॥
 =क्योंकि दोनों के अनुगार-विपत्ता अन्ते स्वकार में संयुक्त विपत्ताया पा में से रहित है
 =और (=च) (दुसरे) संयुक्त विपत्ताया जात (यत् विपत्ता) विगान या प्रत्यक्ष किये जाने योग्य
 नहीं है अर्थात् और विपत्ता वातेय उत्तरका प्रत्यक्ष और निश्चय नहीं कर सके
 = (अगएव) गोभीके प्रत्यक्ष जानको शून्यता या अवियमानता का प्रसंग जाता है तात्पर्य यह है
 कि अब गोभी का ज्ञान स्वयं अन्ते स्वयम् में विषय रहित है गय

गतिस्वरताय ॥॥ शून्यता-प्रमङ्ग ॥

अभिहितोभयप्रश्नरस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

निर्विकल्प (=निष्परहित) क्या मेद विधारित) मानते हैं। अतः उसके द्वारा किसी भी फ़ार्मका निषय नहीं होता।
तब स्पष्ट उसपोगीके ज्ञानका भी निषय न होनेसे इस (विज्ञानकी) शून्यताका प्रसंग भावा है। क्योंकि किसी भी
फ़ार्मका अस्तित्व निष्पक्ष आत्मक ज्ञानके बिना सिद्ध नहीं हो सकता है॥

अभिहित-उभय-युक्तस्य ॥॥ प्रमाणस्य ॥॥
=भाषि वा कहे इये दोनों (प्रेष तथा प्रत्यक्ष) प्रकारके प्रमाणके

आदि प्रकार विशेष प्रतिपत्ति-पर्यन्त । आह T
=प्रथम (प्रोथ ब्रान) के मंदों के विशेष ब्रानके लिये कहते हैं कि

दूसरे विषयों (— निवारणायक बातों) से नहीं ज्ञान आ सख है तब उसका अस्तित्व कैसे माना जा सका है अतः

विज्ञानाद्वैतवादी योगाचार बौद्धों का मत शून्य ही है ॥ उपर्युक्त श्लोकका अनुवाद —

तत्तत् ।।। विमुक्तं ।।। सच्छ्रेयः ।।। विद्वन्मोक्षं ।।। (अतीतम्) ।।। (बद्ध विद्यान) त्वत् संपूर्णं कल्पनात्मकं (मेधा) से रहित (— अतीतम्) विमुक्त वा विद्या है अर्थात् विद्वन्मोक्षं प्राप्त्य प्राप्त्य वाचक, वेद वेदक और ब्रह्म ब्रह्मार्थ नहीं होनेसे वह विमुक्त है निर्मल है ।

निमिष अगिलाग-आस्वरागृ०॥ असीसम् ,॥॥

गङ्गा स्नात्वा ॥॥ लेखम् ॥॥

न० ४५ भा० ॥॥ निगासन् ॥॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

भगवत् सायम् ॥॥

— मय (= विश्व) (वर्णमन्त्रि बल्लभजी इच्छांकी (= अमिकाया) योग्यतासे (= भारप्रदान) परितः अर्थात् विद्यालय ताल सभार में आनिर्षकनीय है वा सचकम्प है

— (यह विज्ञान तथ्य) अपने का नहीं ज्ञास्ता है (— वेदम) अथात् अपना भी बिय नहीं है।

■ सौर (= स) व द (= तप = विष्णुसत्त्व) (किसी शब्दार्थ) को ज्ञान याग (भी) कहा है

* शान (= सुपुति) आस्थाका है (= अपस्थानम्) अर्थात् स्वप्नवशान् रज्जुनेयादे घेतव्य के समान है

५५ समाखे युक्त (और यिकनोसे) रहित है (१० पाक्ष) ॥१॥ समस्त भुक्तका माभाये यह

है कि यह पिछलागत संपूर्ण फलनाओंसे रहित नमिसे किशव है तथा यिद्वका कोई भी

इति पञ्चमः खण्डः

एतानि नामी अगुरुपदस्य दलीलकृत पद-६-० और भिन्नस्वरूपे सहित सर्वार्थसिद्धिका उपपत्त्या हिंदी अनुवाद । अध्याय १ खण्ड १२
प्रदीपवदिति चेन्न । तस्याप्यनेन क्षणविषयताया सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाभ्युपगमात् ॥ विकल्पातीत
त्वान्तस्य शून्यताप्रमद्वैध ॥

प्रदीपत ० = दीपक (के प्रकाश) सदृश (विज्ञान) है अर्थात् बौद्ध कहते हैं कि विज्ञानकी दीपकके समान उत्पत्ति तथा परंपराकेका प्रकाश या बोध करा देना दोनों बातें युगपत् एकही समयमें वन जावेगी

इति ० मत ० न ० = ऐसी (इति) श्रुति (होने) पर (=चेत) ; (उत्तर है कि उक्तशंका ठीक) नहीं है तत्पर १, अत्रि अनेकक्षण-विषयताया १, सत्या १, एवं=न्योकि उस (दीपक) का भी अनेकक्षणवर्ती होने पर (=सत्याय) ही (=एव)

प्रकाश प्रकाश किये जाने योग्य (पदार्थ) का प्रकाशन कर देना माना जाता है ॥ प्रमोचर का सारांश, दीपकके समान ज्ञानकी एक ही समयमें उत्पत्ति और विषय ग्राहकता

मानना ठीक नहीं है दीपक भी स्वयम् अनेक समयवर्ती होकर पदार्थों का प्रकाश करता है अतः पूर्वोक्त नियममें (कि सब संस्कार क्षणिक हैं) मंग (दीप) बना रहता है

= और (=च) सिस (विज्ञान) के निर्विकल्पता होनेके हेतुसे (=अनिश्चय आत्मक होनेसे)

य ० तस्य ॥ निरुक्त प्रतीतिवाग ॥॥

शून्यता-प्रमद्वैध ॥

= अभावका प्रसंग (भी) आता है अर्थात् बौद्ध प्रत्यक्ष ज्ञानको

(१) स्वतिसाग-स्वरूपि क्षणमापात-विकल्पविषयताया यागित्यस्य शून्यताप्रसंगः ॥ तस्यै विदुषं सफलैर्विकल्पैः । अवधारणायास्व-दप्राप्तरीत्य ॥ न स्वस्य वेदं न च वदित्वा ॥ सुपुण्यस्यैव मगदुःखाभावात् ॥ १ ॥ इति यथार्थम् ॥

रगमित ॥॥ मन्त्र विद्वत्-प्रमाणात् ॥

न मन्त्रविद्वत् अभिगच्छन् ॥॥

= क्योंकि बौद्धों के अनुसार-विज्ञान) अपने स्वल्प में संपूर्ण विकल्पों का ये १ से रहित है

= और (=च) (पुस्तके) संपूर्ण विकल्पों काट (बद्ध विज्ञान) विषय का प्रकाश किये जाने योग्य

नहीं है अर्थात् और विद्वत् वाग्म्य उसका प्रकाश और विषय नहीं कर सके

= (अतएव) धार्मिक प्रत्यक्ष ज्ञानकी शून्यता का अविषयमानता का प्रसंग आता है तत्पर्यं यह है कि अब योगी का ज्ञान स्वयं अपने स्वल्प में निश्चय रहित है तथा

यादियन्यस्य ॥॥ शून्यता-प्रमद्वैध ॥

तर्क करते हैं, और अभिनामाव सम्बन्ध को व्याप्ति करते हैं ॥ अहां जहां साधन (=वस्तु) होय, वहां वहां साध्य (=सिद्ध करने की इच्छा-किया गया वा साधने योग्य वस्तु,) का होना, और जहां जहां साध्य नहीं होय, वहां वहां साधन के भी न होने को अभिनामाव सम्बन्ध करते हैं । जैसे जहां वहां घूम है, वहां वहां अग्नि है और जहां वहां अग्नि नहीं है वहां वहां घूम भी नहीं है ॥ अब वा "व्याप्तिज्ञान को तर्क कहिये है । अहां अन्वय व्यतिरेकवि नियम होय सो व्याप्तिज्ञान है । यह याहूँ होते सतेहोई सो तो अन्वय अर नहीं होते संत नहीं होय ऐसा व्यतिरेक ऐसे दोस्त्रितै व्याप्तिज्ञान होय है ॥ जैसे अग्नि के होते सते ही घूम होय अर अग्नि का अभाव होतै घूम नाहीं होय इत्यादि नियम करने का नाम तर्क है सो प्रमाण है" ॥ अर्थ प्रकाशिका में इसी सूत्र को देखो =अभिनिबोधविक्रान्त वा "स्वार्थानुमान" (ज्ञान) व्य० वचनिका पान १४० वा "अनुमान" (ज्ञान-अर्थप्रकाशिका) अर्थात् अनुसृत लिगादि (=चिन्हादिक) देखकर उस लिगी वा चिन्हावाले आदिका नियम करना सो अभिनिबोध है ॥ जैसे घूम को देखकर अग्नि का नियम करना कान्चली देखकर सर्पका बोध करना साधन करिये लिग चिन्ह तातै साध्य करिये जानन योग्य वस्तु लिगचिन्हवान् ताका निश्चय करना सो स्वार्थानुमान है । तहां साधन ताहूँ करिये, जाकी जहां साध्य वस्तु न हो सहां प्राप्ति न होय "जैसे जहां साध्य वस्तु (अग्नि न हो) तहां घूम (अग्निके साधनकी प्राप्ति न होगी) "तया जहां साधन होय तहां साध्य होवही होय" जैसे जहां जहां घूम (अग्निका साधन) होगा वहां २ अग्नि (घूमका साध्य) अवश्य ही होगा ॥ देखो सर्वार्थसिद्धि वचनिका पृष्ठ १४२ १४३ ॥

अभिनिबोधः ३।

(१) अभिनिबोधिका--संज्ञामें प्रत्यय निष्ठाकर अर्थ बदल देते हैं उसीको तद्वित करते हैं। यहाँ सम्बन्धके अर्थमें अभिनिबोधमें उक्त (=अक्ष) प्रत्यय आकर और उसे (शब्द) से बदलकर जाति में वृद्धि कर देते हैं जैसे अभिनिबोध शब्द = अभिनिबोध+उक्त शब्द+उक्त = अभिनिबोध+इक शब्द+इक, वृद्धि करने से अभिनिबोधपिण्ड और शाब्दिक रूप बनाये ।

मति स्मृति सद्भा चिन्ताभिनिवोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

मति स्मृति सद्भा चिन्ताभिनिवोध इत्यनर्थान्तरम् ॥१३॥

=मति ॥ स्मृति ॥ सद्भा ॥ चिन्ता ॥ अभिनिवोध ॥ इति-अनर्थ-अन्तरम् ॥१३॥

सूत्रार्थ— मति=मति अर्थात् मन और इन्द्रियोसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थको अवग्रहादि रूप साक्षात् जानना सो मति (ज्ञान) है ॥ स्मृति ॥ =स्मृतिमान अर्थात् अनुमति पदार्थोंका कालान्तरमें वा और समयमें स्मरण होना वा सुधि जाना सो स्मृति (ज्ञान) है ॥ सद्भा ॥ =सद्भा ज्ञान अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह बरी है जो पहिले देखा था इस प्रकार जोड़ रूपका ज्ञान होना सो सद्भा-ज्ञान है वा प्रत्यभिज्ञान है उसके अनेक भेद हैं उनमेंसे मुख्य चार हैं । अर्थात् (१) एकत्व प्रत्यभिज्ञान (२) सारद्व प्रत्यभिज्ञान (३) तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान (४) तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान ॥ एकत्व प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयज्ञ पदार्थमें एकता दिखाते हुये जोदरूप ज्ञान जैसे किसी पुरुषको देखकर जानले कि वह प्रथम देखा था सो ही पुरुष है ॥ सारद्व प्रत्यभिज्ञान स्मृति और प्रत्यक्षके विषयगत पदार्थों में सारद्व दिखाते हुये जोदरूपज्ञान जैसे किसीने वनमें गवयनामा विषय, नीलगाव, रोष, देखकर जाना सो यह गौको देखा था तैसा है । तद्विलक्षण प्रत्यभिज्ञान-स्मृति और प्रत्यक्षके विषय यत् पदार्थों में विलक्षणता दिखाते हुये जोदरूपज्ञान-जैसे किसी भैंसेको देखकर जानना कि प्रथम जो देखा था उससे विलक्षण ये भैंसा है ॥ तत्प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान किसी वस्तुको निकट देखकर अन्य किसी वस्तुको ऐसा जानना जो यह इससे दूर है ॥

चिन्ता ॥ =चिन्तित्व ज्ञान अर्थात् किसी चिन्तको देखकर “ यद्यपि इस चिन्त पाला अवश्य होगा ” ऐसा विचार सो चिन्तन ज्ञान है । इससे उद्भूत, उद्भा, उर्क वा व्याप्ति ज्ञान भी कहते हैं ॥ व्याप्तिके ज्ञानको—

(१) विगर्भर जैन मतानुसार जैन सत्याधार द्वाभों इस सूत्रका पाठ और अर्थ एकता है ॥

(२) उग्रिस शास्त्रके पीछे ५ पद्य चिन्त आब उस शास्त्रके अन्तर्मेंसे एक अकार ली जाती है । जैसे उग्रर चिन्ता शब्दसे एक अकार ली जावेगी तबसे ५ चिन्त हो ता पद्य चिन्तोंके पहिले ५व्यके अन्तर्से वा अकार ली जावेगी ॥ अथे शब्दरूपसौख्यस्वोक्तयस्येत्यादिनामेवमचउत्था ५५५तो पाठवस्तुतः ॥ अथवाय ५ सूत्र २४ यहाँ आतव शब्द छायाके पक्षान्त है ॥

अनुमान - "साधनतो साध्यके ज्ञानका अनुमान फलसं है" जैन सिद्धान्त प्रवेदिका पृष्ठ ८॥ "साधन कहिए हेतु ताँते गाल्य कहिए गाधने योग्य वस्तु साका विद्वान सो अनुमान प्रमाण है" साध्यके तीन विशेषण हैं (१) अबाधित वा दस्त - "तदा प्रमाणकरि अत्रा घन पणानरि साखिक्क अक्य होय सोही साध्य होय है जामें साधने की योग्यता नहीं गो गाल्य नाही । जेतो आकाशका फल साधनेकू अक्य नाही ।" अगि का उदाणन प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है इस कारण यह उदाणन गाल्य नहीं हो सका है ॥ (२) अभिप्रेत वा इष्ट - यादी जिसको सिद्ध करना चाहै अथवा जिसको साधनेशाला पुराय अभिप्रायस ने, सो ही साध्य है विषय अभिप्रेत विना जगतमें अनक वस्तु हैं वे साध्य नहीं हैं ॥

(३) असिद्ध - जो प्रविवादीको दूजरे प्रमाणसे सिद्ध न हो अथवा जिसका निधाय न हो अर्थात् जो पहिले सिद्ध नहीं हुवा है सो साध्य है जो प्रथमही सिद्ध हो चुका है उसको क्या साधना ? सिद्ध हुए को साधन निष्फल है निधायें कुछ सौदादिक हो सो असिद्ध है गो ही साधने योग्य है । इस प्रकार के विशेषण युक्त साध्य के सन्मुख जो पूर्वाक्त साधनकरि नियमरूप ज्ञान होय ताँते थारु अभिनियोग करिये ॥ साधनके संशेपसे दो भेद हैं (१) उपलब्धि (२) अनुपपन्नत्व ॥ अभावके प्रहरणको अनुपलब्धि कहते हैं ॥ इन्द्रियमनकरि वस्तुके सद्भावका अवश्य हो सो उपलब्धि है उसके तीन प्रभेद हैं क्षणोपलब्धि जैसे इस पक्षमें अग्नि है क्योंकि अधिका कार्य धूम दीखे है । (२) "कारणोप लब्धि" जैसे वर्षा होगी जाँते याका कारण बादल सघन दीसे है" ॥ (३) स्वभावोपलब्धि जैसे वस्तु उत्पादन्यय प्रोक्त्य स्वरूप सहित है ॥ (अर्थात् यस्तु उत्पत्ति-विनाश अस्तित्व वा विद्यमानता स्वभाववाली है अध्याय ५ सूत्र ३०) वयोक्तिमत्व साम्य है । मत्तका साम्य ऐसी है । इत्यादिक साधनके प्रत्येक भेद श्लोकार्थिक में कहे हैं ॥

पटानिवासी जगरूपसहाय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित स्वर्यासिद्धिका मन्त्रालय हिंदी अनुवाद । अप्पाय १ मंत्र १३

आदौ यदुद्दिष्टं ज्ञानं तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्याः । मतिज्ञानवरणक्षयोपशान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयो गविपयत्वात् । एतेषां श्रुतादिष्वप्रवृत्तेः ॥ मननं मतिः । स्मरणं स्मृतिः । सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा । चिन्तनं चिन्ता ।

“ऐतं स्मृति आदिक प्यार करे ते सर्व मतिष्ठान है सो परोक्ष प्रमाण है” बहुरि आगमनामा परोक्ष प्रमाण है सो बुद्धिमानरूप है ॥ “बहुरि इहां अन्यवादी अर्थपस्यादिक प्रमाण न्यारा माने हैं ते सर्व इस मतिष्ठानमें अन्तर्भाव होय है” ॥ अर्थपक्षादिका मुद्रित प्रस ४३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (तैरहर्वै) सुत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

माने , यह , उदिष्टम् ॥ धानम् ॥
= विले जो (इस तेरावा अन्न में) उपवेदक्षियागवाहान (अर्थात् मन्त्रिज्ञान)

तस्य ॥॥ पयापञ्चदा ॥
एन ॥ पदित्तया ॥ : मन्त्रिजान-

दयापद्मम् अन्तरंगनिमिष-

अनिन उपयोग-विषयत्वात् ॥

आदिष्टं ॥५॥ मननम् ॥॥॥

मनिं ॥ स्मरणम् ॥ स्मृतिः ॥
नञ्जानम् ॥

मुञ्जा ।॥ पित्रम् ।॥

विद्या ॥३॥

=परिले ओ (इस तेरहवां सूत्र में) उपवेदश्रियागयाप्तान (अर्थात् मतिज्ञान)

=तिस (मतिज्ञान) के पारपरिदृष्ट-नामान्तर-अनन्यान्तर-भा-वमिवैपर्यायवाची

= ये (स्मृति-संग-पिता-अभिनिषेध) ज्ञानने धारिये । मल्लिमान

=आवरणीय कर्मका

= षयोपक्षम अन्तरंग कारणसे

२० = कल्प वा उत्पत्त्य हुआ जो उपयोग जिस सम्बन्धी (ये मन्त्रि-स्मृति-संग्रह-चिन्ता-प्रभिनितोच) हैं

= जर (=च) क्याकि इन (मति-स्मति-स्था-रिक्वा अभिनिर्गोच) की अपवृत्ति अतद्धान

= आदिदक्षानामि है ॥ गान्ना (=गन्त) अर्थात् मन, और इन्द्रियोसे स्वमानकाल्पनी पदार्थ के अवग्रहादिरूप साधार ज्ञानना सो)

=मतिमान है। सुष (=स्मरण) (अर्थात् अनु-

□ मोक्षरूपज्ञान वा प्रत्यभिज्ञान (स्युति और प्रत्यक्षके विषयवस्तु पदार्थोंमें जोद्विरूप ज्ञान)

अथार्थ वतमानम् किं पदार्थको यस्मिन् यद् यद् नो पद्विदे येषां वा ऐसावोदरूपान् (अथार्थ वतमानम् किं पदार्थको यस्मिन् यद् यद् नो पद्विदे येषां वा ऐसावोदरूपान्)

बसो पिता ना तर्क ना व्याख्यान ना उद्या ना ऊन बाल है ॥
बसो सन्नागन है ॥ चितवन (=कम) चित्तो दूधक पता इस चित्त

एतानिवासी अगुरुस्तदाय फललुप्त्य और विषमस्वर्य सहित सर्वार्थसिद्धिका दृग्दशः द्विर्वाचतुयाह अन्त्याय १ छत्र १३

अभिनिवोद्यन्त्याभिनिवोद्यः । इति यथासम्भवं विग्रहान्तरं विद्वेषम् ॥ सत्यपि प्रकृतिभेदे रुढिवल्लभाभात पर्यायशब्दत्वम् । यथा-ईदं शक्रः पुरन्दर इति, इन्दनादिक्रियाभेदपि शचीपतरेकस्यैव संज्ञा । सम भिरुद्धनयापेक्षया तेषामर्थान्तरकल्पनायां

अभिनिवोद्यन्त्याम् ॥॥

अभिनिवोद्यः १ ।

इति यथासम्भवं १ ॥॥ विग्रह-अन्तरम् ॥॥

विद्वेषम् १ ॥॥ प्रकृतिभेदे ।

इति १ अपि रुढि-कल्प-भावात् १ ।

पर्याय-शब्दत्वम् १ ॥॥ यथा-इदं इन्द्रः १ ।

शक्रः १ । पुरन्दरः १ ।

इति इन्दन-

आदि क्रिया-भेदे १ । अपि १

एकस्य १ । शची-पतेः १ । एव संज्ञा १ ॥ समभिरुद्धनय

अपेक्षया १ । तेषाम् १ । अर्थ-अन्तर-कल्पनायाम् १ ॥

=साधन (- लिङ्ग ॥ चिन्त वा हेतुसे साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु) का ज्ञान (अर्थात् समुदा विस्तरादिक देखकर उस चिन्तवालेका निश्चय करलेना सो)

=अभिनिवोद्यज्ञान वा स्वार्थादुपान ज्ञान वा अनुमान ज्ञान है

(यहां भूति-स्रुति-संज्ञा-विज्ञा अभिनिवोद्य शब्दोंका भाव साधनमें अर्थ किया है)

=येसे योग्यता पूर्वक वा योग्यतादुसार (- यथासम्भवं) अन्य विग्रह

(समासके अर्थको बनानेवाले अन्यथास्य जैसे इनके द्वारा साधन कर्तुं साधन)

=ज्ञानना योग्य है । (भूति-स्रुति-संज्ञा विज्ञा-अभिनिवोद्यके) अर्थ (- प्रकृति) भेद

=होनेपर (- सति) भी (- अपि) रुढि (- प्रसिद्ध) की सामर्थ्य प्राप्तिसे

=(भूतिके) पर्यायशब्द वा नामान्तर है । जैसे इन्द्र (- ऐश्वर्य विभावाला शचीपति)

=शक्र (शक्तिरूप क्रियावाला शचीपति) पुरन्दर (- पुरके फाटनेवाला शचीपति)

=येसे (इन तीन इन्द्र-शक्र-पुरन्दर शब्दोंमें) ऐश्वर्य होनेरूप

=शक्ति होनेरूप, फाटने (अपारंख्य) क्रियायोंके येद होनेपर भी

=एक शची भूतिके ही नाम समभिरुद्धनय

(नाना अर्थको छोड़कर एक ही अर्थमें स्थापित करनेवाली नीति वा रीति) की

अपेक्षया १ । तिन (इन्द्र-शक्र-पुरन्दर)के भिन्न भिन्न अर्थ माननेमें

पठानिमासी जगत्पदहाय पक्षीलच्छा पदच्छेद और विभक्त्यर्थं सारित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ अध्याय १३
आदौ यदुद्दिष्ट ज्ञान तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्या । मतिज्ञानावरणक्षयोपगमान्तरुनिमित्तजनितोपयो
गविषयत्वात् । एतेषां श्रुतादिव्यप्रवृत्तेष्व ॥ मनन मति । स्मरणं स्मृति । सज्ज्ञान सज्ज्ञा । चिन्तनं चिन्ता ।

“ऐसे स्मृति आदिक प्यार कद वे सर्व मतिज्ञान है सो परोस प्रमाण है” यहुरि आगमनामा
परोस प्रमाण है सो भूतज्ञानरूप है ॥ “यहुरि इहां अन्यवादी अर्थापत्त्यार्थिक प्रमाण न्यारा माने है
वे सर्व इस मतिज्ञानमें अन्तर्भव होय है” ॥ अर्थश्रुतादिका मुद्रित पृष्ठ ४३ ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस (लेखमें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि द्युत्तिका शब्दशः हिन्दीअनुवाद ॥

भार्तौ । पद ॥ उद्दिष्टम् ॥ ज्ञानम् ॥
तस्य ॥ पर्यायशब्दा ॥
एते ॥ यदित्था ॥ ; मतिज्ञान-
आवरण-
द्वयोपपन्नम अन्तर्गमनमिष-
अनित उपयोग-विषयत्वात् ॥
च धर्मा ॥ अग्रवृत्त ॥ भूत-
आदिषु ॥ मननम् ॥
मति ॥ स्मरणम् ॥ स्मृतिः ॥
नान्नम ॥
सुप्ता ॥ चिन्तनम् ॥
चिन्ता ॥

= योपपन्नम अन्तर्गम कारणसे
= कन्य वा उत्पन्न हुआ जो उपयोग विस सम्बन्धी (ये मति-स्मृति-संज्ञा-चिन्ता अभिनिबोध) हैं
= और (=च) क्योंकि इन (मति-स्मृति-संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध) की अभिवृत्ति भूतज्ञान
= आदिकज्ञानमें है ॥ मानना (=मनन) अर्थात् मन, और इन्द्रियोंसे वर्तमानकालवर्ती पदार्थ
के अवग्रहादिरूप साधारण जानना सो)

= मतिज्ञान है । सुष (=स्मरण) (अर्थात् अनुभवित पदार्थोंका कालान्तरमें स्मरण होना) सो स्मृति है
= जोद्वारूपज्ञान वा ग्रन्थमिज्ञान (स्मृति और ग्रन्थके विषययुक्त पदार्थोंमें जोद्वारूप ज्ञान)
(अर्थात् वर्तमानमें किसी पदार्थको देखकर यह सरी है जो पहिले देखा था ऐसाजोद्वारूप ज्ञान)
= सो सज्ज्ञान है ॥ चितवन (=चिन्ता) चिन्तनको देखके यहां इस चिन्तबाधा अवश्य होगा ऐसा चिन्तार
= सो चिन्ता वा लक्ष वा व्यापिज्ञान वा लक्ष वा लक्ष ज्ञान है ॥

पुननिगामी जगत्पुनरावर्तन पर्यन्त और विमर्शपूर्ण संहिता सर्वाधिकार शब्दः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ अध्याय १३

मत्यादिपि म क्रमो विद्यत एव । किंतु मतिज्ञानावरणाक्षयोपशमनिमित्तोपयोगं नातिवर्तत इति
अयमत्रार्थो विवक्षित । इतिशब्द प्रकारार्थ । एवप्रकारा अस्य पर्यायशब्द इति । अभिव्यायों वा ।
मति स्मृति सज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतैर्ध्वजभिप्रायते स एक एव इति ॥

मति आदित्यः । अधिः मः । क्रमः । विप्लवः ।

१३ किंतु मति-ज्ञान-आवरण—

प्रोपशमनिमित्त-उपयोगम् । नः अनि रतेन ।

=मति आदिक्रमं मो वह नियम रीति-ज्ञानय (=क्रम) विद्यमान

=ही है क्योंकि (=किंतु) (मति-स्मृति सज्ञा-चिन्ता अभिनिबोध) मतिज्ञानावरणक्रमके

=उपयोगप्रशम जनिन उपयोगको उल्लेख करी नहीं करते हैं वा नहीं छोड़ते हैं अर्थात्

इन पाँचोंके अर्थ तो भिन्न हैं परंतु मतिज्ञानावरणक्रमके उपयोगसे ये सब उपलब्ध

हैं । अतः सब मतिज्ञान के ही पर्याय वाची शब्द वा नामान्तर माने जाते हैं ॥

सारांश—जैसे इन्द्र-शक्र-पुंरंवर न्यारी न्यारी क्रियाके करनेवालेको प्रगट करने

पर भी सममित्यन्यकी अपेक्षा से श्रुतिपति के ही नाम हैं वैसेही मति स्मृति

संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध अन्य अन्य अर्थोंके लोचक होनेपरभी एक मतिज्ञानकेही

नाम उक्तनमसे हैं क्योंकि पाँचों मतिज्ञानावरणीय क्रमके क्षयोपशमसे उत्पन्न

होते हैं ॥

निः शब्दः अपम् । अर्थः । निवर्धितः

निवर्धितः । प्रकारः ।

१३ अस्य १ प्रकाराः । पर्याय-शब्दः । इतिः

१३ अभिप्रेतः अपः ।

निः । स्मृतिः । मया । चिन्ता । अभिनिबोधः ।

नेः ज्ञेयः । यः । अपः । अभिधीयत ।

१३ परः । परः इतिः

=ऐसे यहां यह अर्थ अपेक्षा से किया गया है (विशेषित)

=इस सूत्रमें इति शब्द प्रकारके निमित्त (=अर्थ) है अर्थात् मेदोंका वाचक है

=ऐसे (=एवम्) इस (मतिज्ञान) के (=अस्य) मेद हैं (=प्रकारा) नामान्तर हैं

=अथवा (=वा) (इति शब्द सूत्रमें) अभिप्रेत अर्थवाची है अर्थात्

=मति स्मृति संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध

=इस प्रकार इन (शब्दों) करि जो अर्थ कहा गया है (अभिधीयते) । सो (अर्थ)

=एक ही है अर्थात् मतिज्ञान-उपयोग-शब्द वा नामान्तर हैं ॥

एतानिमासी अगस्तसंशयं वसीर्लकुल पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाभेदिदिका खण्डका हिंदी अनुवाद । अध्याय १ छत्र १४,

अयास्यात्मलभे किं निमित्तिमित्याह ॥

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रयानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

इन्दतीति इन्द्र आत्मा तस्य स्वभावस्य तदावरणक्षयोपशमे सति स्वयमर्थान् गृहीतुमसमर्थस्य यदर्थोपलब्ध
निमित्तं लिङ्गं तदिन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमित्युच्यते ॥

अप० अस्म १॥ आत्म-स्वामे १, किम् १॥ निमित्तम् १॥ =अप (अप) इह (मतिष्ठान) के स्वरूपके (=आत्म) उपार्जन में क्या हेतु है
इति० आह १

तदिन्द्रियाऽनिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥ तदिन्द्रयानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

एव (पूर्वोक्त मति-सुवि-संज्ञा चिन्ता-अभिविबोध इत्यादि शुब्दरूप मतिष्ठान)
= (विहरण में) पांच इन्द्रिय और मनमिषिक, वा मनबन्ति वा मनकन्य है
अर्थात् उस मतिष्ठानके उत्पन्न होनेके लिये स्वर्धन-रसन-ग्राण-घुः श्रोत्र मन ये
छे वास्तु कारण हैं पर अंतरंग मतिष्ठानावरण कर्मका क्षयोपक्षम है ॥ मनः, अंतः
करण, अनिन्द्रिय (=किञ्चित् वा ईषद् इन्द्रिय, न कि इन्द्रिय रहित) है ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (चौदहवें) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥
इति १ इतिन्द्रः १, आत्मा १।

वस्- १, स्वभावस्य १, तद् भावरण-क्षयोपक्षमे १।

सति १, स्वयम् अर्थान् १, गृहीतुम् १।

असमर्थस्य १, यद् अर्थ-उपलब्धि निमित्तम् १॥

लिङ्गम् १॥ त्द-इन्द्रस्य १, लिङ्गम् १॥ इन्द्रियम् १॥

इति० उच्यते १

=इन्द्र (आत्मा) के (ज्ञान) स्वभाव को उस ज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपक्षम
=होनेपर आपसी आप (=स्वयम्) पक्षार्थों को ग्रहण (करने) के लिये
=असमर्थ (आत्मा) को जो पदार्थ को जनाबने का कारण है
=जो लिङ्ग वा किन्तु है । वह आत्मा का चिन्त इन्द्रिय
=ज्ञा जाता है ॥ भावार्थ यह है कि चेतनके अंतरंग मतिष्ठानावरणीय कर्मके
क्षयोपक्षम से पक्षार्थों के जाननेकी अंतरंग वृत्ति तो

अथवा लीनस्य गमयतीति लिङ्गम् । आत्मनः सूक्ष्मस्यारिसत्त्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमो गन्ते ॥ एवमिदं स्पृशनादिकरणं नासति कर्तर्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरीस्तत्त्व गम्यते ॥ अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन स्पृशमिन्द्रियमिति । तत्स्पृशनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रिय मनःअतःकरणमि त्यनर्थान्तरम् ॥

आत्मामे प्रगट् दुरि परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण विना ज्ञाननेको समर्थ नहीं हो सकता है अतः पदार्थोंके ज्ञाननेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥
 = अथवा गुरु वस्तुको ज्ञाता है (— गमयति-बोधयति) ऐसा
 = लिङ्ग या विद् है । चेतनकी गुरु वा ऋदु विद्यमानता ज्ञाननेमें
 = चिद् या लिङ्ग है सो इन्द्रिय है । जैसे यहां (= इह) अनलका घूम (लिङ्ग) है
 = ऐसे यह सर्वज्ञ आदिक (पांच इन्द्रिय) करण वा साधन हैं सो चेतन
 = क्वाकि न होने पर अस्तित्व वा होनेको (= भवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
 = ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा विस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है
 अर्थात् सर्वज्ञ-रसन-ग्राहण-बन्धु-श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि
 आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कर्ता है और पांचों इन्द्रियें
 करण हैं कर्ता बिना करण नहीं हो सकता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियें
 ज्ञाता जो आत्मा हैं विसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
 = अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
 = विस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो सर्वज्ञ
 = रसन-ग्राहण-बन्धु-श्रोत्र यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
 = अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
 = अन्य पदार्थ नहीं हैं (स्पर्शपात्री वक्ष्य है, एकाने शक्ती वक्ष्य है, समानार्थक है)

प्रपञ्चः सीनम् । अयम् । गमयति । इति
 लिङ्गम् ॥ आत्मनः । एष्यस्य । अस्तित्व-अधिगमे ।
 लिङ्गम् । इन्द्रियम् ॥ यथा । इह । अग्रे ।
 पूर्व । इदम् ॥ सर्वज्ञ-आदि-करणम् ॥ आत्मनि ।
 अवति । कर्तारि । भवितुम्-अर्हति । न
 इति । शब्दः । अस्तित्वम् ॥ गम्यते ।

प्रपञ्चः इन्द्रः । इति नामकर्म ॥ उच्यते ।
 तन । स्पृशम् ॥ इन्द्रियम् ॥ इति शब्द
 स्पृशन आदि ॥ उत्तरम् । वक्ष्यते ।
 अनिन्द्रियम् ॥ मनसः । अंतःकरणम् ॥ इति ।
 अन्तःप्रत्यय-मनः ॥

एतानिवासी जगत्सदाय कर्त्तव्यस्यैव परमेश्वर और भिन्नस्वरूप सहित सर्वाभिलषिका सुखदशा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ १४

कथं पुनरिन्द्रियप्रतिपेयेन इन्द्रियेण एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्तिः । ईषदर्थस्य नञ् प्रयोगात् ।

ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति । यथा अनुदरा कन्या इति ॥ कथमीषदर्थः । इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश विषयाणि कालान्तरावस्थापीनि च । न तथा मनः इन्द्रस्य लिङ्गमापिसत्प्रतिनियत

पुनः * इन्द्रिय-प्रतिपेयेन ; अनिन्द्रिय-शब्दस्य ;
प्रवृत्तिः ।। इन्द्र लिङ्गे ॥ एक* मनसि ॥ कथम् *

ईषत् *

अर्थस्य * नञःप्रयोगात् ।

ईषत् * इन्द्रियम् ।। अनिन्द्रियम् ।। इति* यथा *

अन् उदरा ।। कन्या ॥ इति *

= (प्रप्त) और (=पुनः) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
= यद्यपि आत्माका चिन्त मन (अर्थ) में ही कैसे है अर्थात् जो इन्द्रिय न हो सो
अनिन्द्रिय है तो मन अनिन्द्रिय कैसे है ।

= (उत्तर) (इन्द्रिय रहित वा वर्जित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अस्य वा किञ्चित्
= अर्थमें (इन्द्रिय सुषुप्तके) नञ् (=अतः) समासके प्रयोग से

= ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है । कैसे

= अन्-येत वाली कुमारी ऐसे

(यद्यपि अन्-नञ्समास निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषत् वा किञ्चित् अर्थमें है
अनुदरा उस कन्या को नहीं कहते हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को
कहते हैं जिसका पेट फूलाहो, लीपहो, कुछहो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)

= (प्रप्त) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उत्तर) ये (=मानि) (पांचौ) इन्द्रिय

= नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करती हैं और (=वत्)

= कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) उदरनेवाली हैं अर्थात् स्पर्शन-रसन-ग्राह-वस्तु
और पांचो इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न
विषय हैं और भिन्नकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हो उसकालमें भी
अवस्थित रहती हैं

तथा * मनम् ।। इन्द्रस्य ।। लिङ्गम् ।। प्राणिनियत-

= वैस मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिङ्ग होने पर भी (सर्व-अपि) प्राणिनियत

अथवा लीनस्यै गमयतीति लिङ्गम् । आत्मनः सूक्ष्मास्यास्तत्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमो
 ग्ने ॥ एवमिदं स्पर्शनादिकरणं नासति कर्तार्यात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरास्तत्त्व गम्यते ॥ अथवा इन्द्र
 इति नामकमौच्यते । तेन स्पृष्टमिन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रिय मनःअतःकरणमि
 त्यनर्थोन्तरम् ॥

आत्मामेव प्रगट् गुरे परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण विना खाननेको समर्थ
 नहीं हो सकता है अतः एवार्थके अनावनेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥
 =अथवा गुरु वस्तुको ज्ञाता है (- गमयति-वेषयति) ऐसा
 =लिङ्ग या चिह्न है । चेतनकी गुरु वा अदृष्ट विद्यमानता जाननेमें
 =चिह्न वा लिङ्ग है तो इन्द्रिय है । जैसे यहां (=इह) अनलका धूम (लिङ्ग) है
 =ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) करण वा साधन हैं सो चेतन
 =कहाकि न होने पर अस्तित्व वा होनेको (=भक्तिसुख) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
 =ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है
 अर्थात् स्पर्शन-रसन-ग्राह्य-वस्तु मोक्ष इव पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि
 आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कहां है और पांचों इन्द्रियों
 करण हैं कहां बिना करण नहीं हो सकता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रियों
 ज्ञाता जो आत्मा हैं तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
 =अथवा इन्द्र ऐसा नामकमें कहा गया है
 =तिस (नामकमें) करि रचीगई है तो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ सो स्पर्शन
 =रसन-ग्राह्य-वस्तु-भोग्य यहांसे आगे (अध्याय २ सूत्र १९में) कहेंगे
 =अनिन्द्रिय-मन, अंतःकरण ये
 =अन्य स्पर्शने नहीं है (एवार्थवाची वक्ष्य है, एकार्थ वाची वक्ष्य है, समानार्थक है)

प्रथमा लीनम् । अथम् । गमयति । इति
 लिङ्गम् ॥ आत्मनः । तत्त्वस्य । अस्तित्व-अधिगमे ।
 लिङ्गम् ॥ इन्द्रियम् ॥ यथा । इह धूमः । अत्र ।
 एवं । इहम् ॥ स्पर्शन-आदि-करणम् ॥ आत्मनि ।
 अस्मि । स्तरि । भवितुम्-अर्हति । न
 इति ज्ञातुः । अस्तित्वम् ॥ गम्यते ।

अथवा इन्द्रः । इति नामकम् ॥ उच्यते ।
 तनः । स्पृष्टम् ॥ इन्द्रियम् ॥ इति त्व
 स्पर्शन आदि ॥ उत्तरत्र वक्ष्यते ।
 अनिन्द्रियम् ॥ मनः ॥ अंतःकरणम् ॥ इति
 अन् अन्तरम् ॥

एतानिवासी कालस्तराय प्रकीर्तकत फलप्रेष्य और विमर्षस्य सहित स्वार्थसिद्धिका कृष्यः हिंदी अनुवाद । अन्त्य १ घट १४
 कथं पुनरिन्द्रियप्रतिपेक्षेण इन्द्रियेण एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य प्रवृत्तिः ? । ईषदर्थस्य नञ प्रयोगात् ।
 ईषदिन्द्रियमनिन्द्रियमिति । यथा अनुदरा कन्या इति ॥ कथमीषदर्थः । । इमानीन्द्रियाणि प्रतिनियतदेश-
 विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च । न तथा मन इन्द्रस्य लिङ्गमीपसत्यतिनियत

पुनः * इन्द्रिय प्रतिपेक्षेण ; अनिन्द्रिय-शब्दस्य ;
 प्रवृत्तिः ॥ इन्द्र-लिङ्गः ॥ एकं मनसि ॥ कथम् *
 ईषत् *
 अर्थस्य ; नञप्रयोगात् ;
 ईषत् * इन्द्रियम् ॥ अनिन्द्रियम् ॥ इति * यथा *
 अन् उदरा ॥ कन्या ॥ इति *
 (=शून्य) और (=पुनः) इन्द्रियका निषेध करनेसे अनिन्द्रियशब्दकी
 =प्रवृत्ति आत्माका चिन्त मन (अर्थ) में ही कैसे है क्योंकि जो इन्द्रिय न हो सो
 अनिन्द्रिय है तो मन अनिन्द्रिय कैसे है ।
 (=उदर) (इन्द्रिय रहित या वर्धित अनिन्द्रिय नहीं है किन्तु) अल्प वा किञ्चित्
 =अर्थमें (इन्द्रिय कृष्यके) नञ् (=अणु) समासके प्रयोग से
 =ईषत् इन्द्रिय सो अनिन्द्रिय है । कैसे
 =अन्-पेट वाली कुमारी ऐसे
 (=बाहर परान-असमाप्त निषेध अर्थमें नहीं है किन्तु ईषद् वा किञ्चित् अर्थमें है
 अनुदरा उस कन्या को नहीं कहे हैं जिसके पेट न हो परन्तु उस कन्या को
 कहे हैं जिसका पेट फटाहो, सीन्को, कुदरो और जो गर्भधारणमें असमर्थ हो)
 (=शून्य) किञ्चित् अर्थ कैसे है (उदर) ये (=इमानि) (पाँचों) इन्द्रिये
 =नियमित स्थान वाली (वस्तु को) विषय करती हैं और (=व)
 =कालान्तरमें (=अन्य २ कालमें) उदरनेवाली हैं अर्थात् स्पष्टन-रसन-ग्राह्य-बहुः
 ओष पाँचों इन्द्रियोंके एक दूसरे से भिन्न भिन्न स्थान हैं और भिन्न भिन्न
 विषय हैं और जिसकालमें अपने अपने विषयों से उपयुक्त न हों उसकालमें भी
 अवस्थित रहती हैं
 =वैसे मन आत्मा का (=इन्द्रस्य) लिङ्ग होने पर भी (सप्त-भूषि) प्रविनिषय
 वषा * मतम् ॥ इन्द्रस्य ॥ लिङ्गम् ; प्रविनिषय-
 कथम् * ईषत् * अर्थः ; इमानि ॥ इन्द्रियाणि ॥
 प्रति नियत-देश-विषयाणि ॥ वञ्
 कालान्तर-अवस्थायीनि ॥

अथवा लीनस्य गमयतीति लिङ्गम् । आत्मन सूक्ष्मस्यास्तत्त्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह धूमो
 ग्ने ॥ एवमिदं स्पर्शनादिकरण नासति कर्तार्यात्मानि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरीस्तत्त्व गम्यते ॥ अथवा इन्द्र
 इति नामकर्मोच्यते । तेन स्पृष्टमिन्द्रियमिति । तत्स्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ॥ अनिन्द्रियं मनःअतःकरणमि
 त्यनर्थान्तरम् ॥

आत्मामेव प्रगट् दुरे परन्तु वही आत्मा बाह्य उपकरण विना ज्ञाननेको समर्थ
 नहीं हो सकता है अतः पदार्थको ज्ञाननेके लिये बाह्य कारणको इन्द्रिय कहते हैं ॥

=अथवा गुरु वस्तुको ज्ञाता है (- गमयति-बोधयति) ऐसा
 =लिङ्ग या चिह्न है । चेतनकी गुरु वा श्रुत विद्यमानता ज्ञाननेमे
 =चिह्न वा लिङ्ग है सो इन्द्रिय है । जैसे यात्रा (=इह) जन्मका द्रुम (लिङ्ग) है
 =ऐसे यह स्पर्शन आदिक (पांच इन्द्रिय) कल्प वा साधन हैं सो चेतन
 =क्योंकि न होने पर अस्तित्व वा होनेको (=मवितुम्) समर्थ नहीं है (न-अर्हति)
 =ऐसे ज्ञाता (जो आत्मा तिस) की विद्यमानता इन्द्रियों करि जानी जाती है
 अर्थात् स्पर्शन-रसन-ग्राह्य-चक्षुः श्रोत्र इन पांचों इन्द्रियोंका अस्तित्व यदि
 आत्मा न हो तो असम्भव है क्योंकि आत्मा कहाँ है और पांचों इन्द्रिये
 कल्प हैं कहाँ बिना कल्प नहीं हो सकता है ॥ इस प्रकार ये पांचों इन्द्रिये
 ज्ञाता जो आत्मा हैं तिसका अस्तित्व प्रकट करती हैं
 =अथवा इन्द्र ऐसा नामकर्म कहा गया है
 =तिस (नामकर्म) करि रचीगई है सो इन्द्रिय इसप्रकार है ॥ तो स्पर्शन
 =रसन-ग्राह्य-चक्षुः-श्रोत्र यहाँसे आगे (अध्याय २ छत्र १९में) कहेंगे
 =अनिन्द्रिय-मन, अतःकरण ये
 =अन्य पदार्थ नहीं हैं (पर्यायवाची छत्र हैं, एकाग्र वाची छत्र हैं, समानार्थक हैं)

प्रथमाः लीनम् । अथम् । गमयति T इति
 लिङ्गम् ॥ आत्मनः । अस्तित्व-अधिगमे ।
 लिङ्गम् ॥ इन्द्रियम् ॥ यथाः इह द्रुमः । अग्रेः ।
 पूर्वः इहम् ॥ स्पर्शन आदि-करणम् ॥ आत्मनि ।
 अस्ति । इतरि । मवितुम्-अर्हति T न
 इति प्रगट् । अस्तित्वम् ॥ गम्यते T

अपराः इन्द्रः । इति नामकर्म ॥ उपपत्तेः
 तेन । स्पष्टम् ॥ इन्द्रियम् ॥ इति सत्
 स्पर्शन आदि ॥ उत्तरम् । वस्तुते T
 अनिन्द्रियम् ॥ मनस् ॥ अतःकरणम् ॥ इति
 अन्य अर्थ-अन्तरम् ॥

इदार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपयायश ५५१९८५

वायधारणा इति । इतरथा हि प्रथम मत्यादिशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा द्विन्द्रयानिन्द्रियनिमित्त श्रुतम् ।

तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्यते ॥

इदं अर्थम् ॥ य • उच्यते

अर्थम् ॥ तद् ॥ इति •

उच्यते ॥ यद् ॥ मति आदि पर्यायं शब्द

वाच्यम् ॥ ज्ञानम् ॥ तद् ॥ इन्द्रिय

अनिन्द्रिय निमित्तम् ॥ तद् ॥

एव • अवग्रह-ईहा-आवाय-धारणा • ॥ इति •

इतरथा • हि • प्रथमं ॥ मति-आदि

शब्द-वाच्यम् ॥ ज्ञानम् ॥ इति • उक्तवा-

इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ॥ श्रुतम् ॥

तद्-एव • अवग्रह-ईहा आवाय-धारणा • ॥ इति •

अनिष्टम् ॥ अगिगमन्त्येत ॥

- = (उत्तर) यहाँके लिये अर्थात् इस शब्दके लिये और (=च) पश्चात् वा विच्छेदे
- = (यत्र) के लिये (अर्थात् कहे जाने वाले शब्दोंवां शब्द के लिये) तद् (शब्द) है ॥ येषां
- = कहा गया है (कि) जो मति स्मृति संज्ञा चिन्ता प्रमितिभ्योऽप्यसमानार्थक शब्दोंपर
- = वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है सो (ज्ञान) इन्द्रिय
- = तथा अन्तःकरण जनित है (और) बोध्य (समिधान)
- = ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा रूप (वेखो, श्रुत १५) है क्योंकि (= हि)
- = अन्यथा (तत् शब्द न लाया जाय तो) यदिहै-मति स्मृति-स्वप्न-चिन्ता अभिनिवोच
- = शब्दोंपर वाच्य (= कहेजानेवाला) यत्किन्तुहै ऐसा कहकर वा कथन कर
- = इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं (= इन्द्रिय और मत्त चिन्ता) श्रुत ज्ञान है ऐसा सम्भव होजाता
- = तावद (युक्तज्ञान) ही अवग्रह-ईहा-आवाय धारणा (श्रुत १५) रूप है ऐसा
- = किन्तु वा प्रतियुक्त सम्बन्ध वा प्रसंग हो जाता यदि इस श्रुतमें तद् शब्द न लाते)
- सारंशः—“इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं” ऐसा श्रुत होता तो तद् शब्द का काम होजाता
- (उपर) चादिके दो मतिज्ञान और युक्तज्ञान पर्योक्त हैं (वेखो श्रुत ११) मति-स्मृति-
- संज्ञा चिन्ता अभिनिवोच ये मतिके पर्यायशब्द हैं (श्रुत १३) अब यदि तत् शब्द न
- लाते तो (यथा संख्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं का संबंध ध्येयज्ञान
- तो ११वां श्रुतमें है) उससे होकर यह अर्थ होजाता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय अन्य
- श्रुतज्ञान है यथात

प्रगतिवासी जगत्प्रसाधय वहीलकृत पदच्छेद और शिक्त्यर्थ सहित सर्वाधिकारक शब्दों की हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १४

देशविषयं कालान्तरावस्थायि च । तदन्त करणमिति चोच्यते । गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु
इन्द्रियानोऽज्ञावधुरादिवद् चक्षुरनुपलब्धेऽथ अन्तर्गत करणमित्युच्यते ॥ तदिति किमर्थम् ? । मतिज्ञान
निर्देशार्थम् ॥ ननु च तदनन्तर अनन्तरस्य विधिवी भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहण भवति ।

देशविषयं ।।। च कालान्तर

अवस्थाय । नञ् तद् ।।।

अन्तःकरणम् ।।। इति च उच्यते ।

गुणदोष विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु । इन्द्रिय-

अन्तःप्रवृत्तात् ।।। च चक्षुरादि-वत्

वदितम् । अन्तःकरणम् । अन्तर्गतम् ।।। करणम् ।।

अन्तःकरणम् ।।। इति उच्यते ।

तद् ।।। इति किमर्थम् ।।। मतिज्ञान निर्देश

मर्थम् । ननु च तद् अनन्तरम् ।।।

=स्नानवाला (और प्रतिनियत) विषयवाला और कालान्तरमें वा अन्य अन्य कालमें

=अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन वंचल है । वत् (=सबू=अनिश्चित=मन)

=अन्तःकरण या अन्तर्गत इन्द्रिय ऐसा मी (नाम) है ।

=गुण-दोषके विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय वा उपयोगमें इन्द्रियोंकी

=अपेक्षा न होनेसे तथा (=च) नेत्रादिकके सङ्घ (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)

=आघाते न वेत्ते जानेसे (=अनुपलब्धे) वा न ज्ञानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय

=(वा) अंतःकरण वा मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईषत् मर्थ अन्य सम्भव है)

=इस दृश्यमें तद् ऐसा शब्द किस लिये है । (तत् शब्द) मतिज्ञानके रूपनके

=लिये है । और (=च) प्रस (=ननु) । वत् (मतिज्ञान शब्द इस दृश्यके) लगाता ही है

(अर्थात् इस दृश्यके अत्यन्त समीप लगाता ही मतिस्मृतिलब्धाचित्ताभिनिबोध इत्यादि

सूत्र कह चुके हैं तिस दृशका मति शब्द इस दृश्यके लगाता ही है जब एक दृश

के पीछे दूसरा दृश आवै तो दूसरे दृश्यसे पहिले दृशकी)

=अत्यन्तसमीपकी (वस्तु) का विधान होता है वा निषेध ऐसा (परिमाण सूत्र) है

=अतः इस दृश्यमें किन्ना तत् शब्द लाये हुये) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान

=होता है (इसलिये इस दृश्यमें तत् शब्द निरर्थक ही है)

अनन्तरम् ।।। निधिः । वा भवति । प्रतिषेधः ।।

नस्य ।।। पदः प्रकरणम् ।।

भवति ।

एतानि श्रुत्वा प्रगल्भसहायं यकीकृतं प्रच्छेदं और विमत्स्वर्यं सहितं सर्वोपसिद्धिं तां शब्दस्य भिन्नी अनुवादः । अन्त्याय १ घट १४,
इदं यमृत्तरार्थं च तदित्युच्यते ॥ यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्यं ज्ञानं तद्विद्वत्प्रतिनिद्रियनिमित्तं तदेवावप्रहेहा
वायधारणा इति । इतरथा हि प्रथमं मत्यादिशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा द्विन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं अतः ।

तदेवावग्रहेहवायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्यते ॥

इति ॥ अर्थम् १॥ य ॥ टस्य

अर्थम् १॥ त्व ॥ इति ॥

उच्यते ॥ यद् ॥ मतिं त्रिदि-पर्यायं शब्द

वाच्यम् १॥ ज्ञानम् ॥ त्व ॥ इन्द्रिय

अनिन्द्रिय निमित्तम् ॥ त्व ॥

एव ॥ अवग्रह-रहा-आवाय-धारणा ॥ इति ॥

इतरथा ॥ हि ॥ प्रथमं ॥ मति-आदि

शब्द वाच्यम् ॥ ज्ञानम् ॥ इति ॥ उक्त्वा-

इन्द्रिय-अनिन्द्रिय-निमित्तम् ॥ इत्यम् ॥

उद-यव ॥ अवग्रह-रहा आवाय-धारणाः ॥ इति ॥

अनिष्टम् ॥ अभिमम्बयेत ॥

- = (उत्तर) यहाँ कि लिये अर्थात् इस शब्दके लिये और (=च) पञ्चात वा पिच्छे
- = (घट) के लिये (अर्थात् कहे जाने वाले शब्दों का सूत्र के लिये) तद् (शब्द) है ॥ ऐसे
- = कहा गया है (कि) जो मति स्मृति संज्ञा र्विज्ञा अभिविशेष समानार्थक शब्दों पर
- = वाच्य (कहे जाने वाला) ज्ञान है तो (ज्ञान) इन्द्रिय
- = तथा अन्य रूप जनित है (और) बोध (संज्ञा)
- = ही अवग्रह-रहा-आवाय धारणा रूप (देखो-शब्द १५) है क्योंकि (= हि)
- = अन्यथा (यदि शब्द न लाया जाय तो) बहिले मति स्मृति-स्वा-चित्ता अभिविशेष
- = शब्दों पर वाच्य (= कहे जाने वाला) मति-ज्ञान है ऐसा संकेत हो जाता
- = इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं (= इन्द्रिय और मन दोनों) श्रुत ज्ञान है ऐसा संकेत हो जाता
- = शेष (श्रुतज्ञान) ही अवग्रह-रहा-आवाय धारणा (घट १५) रूप है ऐसा
- = विलम्ब वा प्रतिच्छेद सम्बन्ध वा प्रसंग दो बातों यदि इस घटमें तद् शब्द न लाते)
- सारांशः—“इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं” ऐसा शब्द होता तो वह शब्द का नाम हो जाता
- (उत्तर) आदिके दो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान परीक्षित हैं (देखो सूत्र ११) मति-स्मृति
- संज्ञा चित्ता अभिविशेष ये मतिके पर्यायशब्द हैं (अतः १३) अब यदि तद् शब्द न
- लात तो (यथा संस्य के नियम से) इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं का संबंध श्रुतज्ञान
- तो ११ वा सूत्रमें है) तमसे होकर यह अर्थ हो जाता कि इन्द्रिय और अनिन्द्रिय अन्य
- श्रुतज्ञान है पञ्चात

एतन्निगामी जगत्सदृशाय धर्मीकृतं पदं ॥ और विषयस्यैव संहितं सर्वार्थसिद्धिं का कथं ॥ हिंदी अनुवाद । अर्थात् १ छंद १४

ने अविषयं कालान्तरावस्थायि च । तदन्त करणमिति चोच्यते । गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारेषु
इन्द्रियानोपेक्षाबधुरादिवद् वहिरनुपलब्धेश्च अन्तर्गतं करणमित्युच्यते ॥ तदिति किमर्थम् ? । मतिज्ञान
निर्दिगार्थम् ॥ ननु च तदन्तर अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वेति, तस्यैव ग्रहण भवति ।

नेन्द्रियम् ॥ च कालान्तर

अवस्थायि । न तत् तत् ॥

प्रत्यक्षम् ॥ इति च उच्यते ।

गुण-दोष विचार-स्मरण-आदि-व्यापारेषु । इन्द्रिय-

अन् अपवृत्तम् ॥ च चक्षुरादि-वदम्

वहिसम् । अन् पलम् ॥ अन्तरादि-वदम् । करणम् ।

अन्तरादि-वदम् ॥ इति उच्यते ।

तत् ॥ इति किमर्थम् ॥ मतिज्ञान निन्दितं

मथम् । ननु च तत् अनन्तरम् ॥

= स्थानवाला (और प्रतिनिधित्व) विषयवाला और कालान्तरमें वा अन्य अन्य कालमें

= अवस्थित रहनेवाला नहीं है अर्थात् मन केवल है । वह (= तत् = अतिशय = मन)

= अन्तरादि-वदम् वा अन्तर इन्द्रिय ऐसा भी (नाम) है ।

गुण-दोष विचारण और स्मृति आदि व्यवसाय वा उपयोगमें इन्द्रियोंकी

= अपेक्षा न होनेसे तथा (= च) नेत्रादिकके सारथ (मन अन्य मनुष्यों द्वारा)

= वाससे न वेसे जानेसे (= अनुपलब्धे) वा न जानेजानेसे अन्तर्गत इन्द्रिय

= (वा) अन्तरादि-वदम् वा मन ऐसा कहा गया है (ऐसे ईश्वर अर्थ अनर्थ सम्भव है)

= (इस धर्ममें) तत् ऐसा कथ्य किस लिये है । (तत् अन्तः) मतिज्ञानके कथनके

= लिये है । और (= च) प्रश्न (= ननु) । वह (मतिज्ञान कथ्य इस धर्मके) लगता ही है

(अर्थात् इस धर्मके अत्यन्त समीप लगता ही यथिस्मृतिसम्बन्धाधित्वाधिनित्योक्त इत्यादि

धर्म कह चुके हैं तिस धर्मका मति कथ्य इस धर्मके लगता ही है अब एक धर्म

के पीछे दूसरा धर्म आवे तो दूसरे धर्मसे परिले धर्मकी)

= अत्यन्त समीपकी (वस्तु) का विधान होना है वा निषेध ऐसा (परिभाषा धर्म) है

= अतः इस धर्ममें बिना तत् कथ्य कथ्ये (धर्म) तिस (मतिज्ञान) का ही आदान

= होना है (इसलिये एव धर्ममें तत् कथ्य निर्वर्णक ही है)

अन्तरादि-वदम् । निषि । वा । भवति प्रतिषेधः ।

तस्य । एव । प्रमाणम् ।

मति ।

विषयविषयिसन्निगतसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रहः । विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तर-
मयस्य ग्रहणमवग्रहः ।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्रेष्ठ है ॥ (२) भ्रुरि श्रेष्ठ रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकांक्षा जो यह श्रेष्ठ है तो सकृत्कि होना चाहिये अथवा श्रेष्ठ हुआ होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मस्तिमान है । ऐसी ही कृष्णादिकोमें अन्य इन्द्रियों द्वारा ईहा होती है ॥ (३) ईहाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेसे जैसा पदार्थ हो तिसमें वैसा ही निश्चय होना सो अवाय मस्तिमान है ॥ जैसे बगुला (=बगला-भग-क)की पंक्तिमें बगलोंकी पंक्तिहीकी आन्तेरूप इच्छा थी परंतु धराका निषेध नहीं किया था ऐसा तो ईहा ज्ञान था । अब ऊंचा नीचा आबना पंखोंका इछावना इत्यादि किया बिन्दुकरि ऐसा निश्चय हुआ जो ये वक्र पंक्तिही है अन्य धुबार्दिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अवाय है (४) अवायकरि निश्चय वा निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृढज्ञान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमें सुलना नहीं सुकनी रहे उसको धारण ज्ञान वा धारणा मस्तिमान कहते हैं ॥

पदच्छेद और विमर्शपर्यं सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका अब्दश हिंदी अनुवाद ॥

विषय-विषयि-
सन्निपात-समय-अन्तरम् ॥

आद्य-ग्रहणम् ॥ अवग्रहः ॥

विषय-विषयि-
सन्निपाते ॥ सति ॥ दर्शनम् ॥

मवति ॥ तद-अन्तरम् ॥

अवस्य ॥ ग्रहणम् ॥ अवग्रहः ॥

=विषय (कृष्णरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी वा विषयवाले (पांशुइन्द्रिय और मन) निके

=संबंध होनेके सम्वसे लगताही (=अनन्तर)

=अथम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवे (सो) अवग्रह है (अर्थात्)

=(स्पष्ट-रस-गंध-रूप-स्पर्श-चै) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पांच इन्द्रिय और मन ॥

=संबंध वा संयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सच्चा था होने मात्रका ग्रहण दर्शन

=होना है । उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यंत निकट (अनन्तर)

=पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है ॥

॥ ध्रुवकी अनुश्रुति १५वें सूत्रमें जाकर इस १५वें सूत्रका अर्थ होजाता कि अवग्रह ईशा-
अवाय-धारणारूप ध्रुवज्ञान है, ऐसे अर्थ विरुद्ध हो जाता अतः त्व शब्द लाये हैं ॥
= ऐसे (मस्तिष्कान्तके) उत्पन्न होने का हेतु जानागया (परन्तु मतिज्ञानके)
= भेद वा विधान नहीं जाने गये इस प्रकार (ग्रन्थ होने पर) उस (मतिज्ञान) के
= भेदोंको जाननेके लिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कहते हैं कि

अवग्रहहावायधारणा ॥ १५ ॥

(पूर्वोक्त पांच इन्द्रिय और अनिन्द्रिय जनित मतिज्ञानके एक होने पर भी)
= अवग्रह (पदार्थके सचामात्र जाननेके पीछे श्वेत कृष्णादि विशेष विकल्परूप ज्ञान)
= ईशा (अवग्रह से जाने हुये पदार्थके विशेष जाननेकी आकांक्षा रूप ज्ञान)
= अवाय वा अपाय (ईशासे जानी हुई वस्तुका अवधारकत्व वा निश्चयरूप ज्ञान)
= धारणा (अवायसे जानेहुये पदार्थको अन्य कालमें न भूलना, सुच रखना (ये चार भेद) हैं

मागार्थ — जो इन्द्रिय और इन्द्रियके ग्रहण योग्य विषय के संयोग होते ही जो वस्तु के
मत्तानाय का ग्रहण सो दर्शन है जैसे दृष्टिके पढ़वे ही वस्तुका प्रकाश मात्र निर्विकल्प स्वरूपमें आया सो चक्षुर्दर्शन है ।
तेसेही कर्मादिक चार इन्द्रियोंके द्वारा सामान्य विकल्प रहित ग्रहण होय सो अक्षुर्दर्शन है ।
समता ही जो देखेहुये पदार्थ का कल्पन संस्थानादिक विशेष ग्रहण में आवे सो अवग्रह नामा मतिज्ञान है ॥

एतत् निज्ञात-उत्पत्ति निमित्तम् ॥

अनिर्णीत-भेदम् ॥ इति ॥ त्व

भेद प्रतिपत्ति-अर्थम् ॥ आह ॥

सूत्रम्

यथाय

अग्रद

ईशा

अवाय-

धारणा ॥

- (१) इतनाग्रह आसारेके "समाप्त्य तत्पार्याधिगम्य सुखेन" अवाय और अपाय' दोनों पाठ हैं। होय पाठ श्रुति आसारायोंमें पढ़ा है अथ भी एक है।
- (२) ऐतिहिक ज्ञान किता अपग्रह के नहीं हा मन्त्रके किन्तु अवग्रह पूर्ववर्ती श्रुति है इसलिये अवग्रह आदि श्रुतों में स्वयंसे पहिल अपग्रह का उल्लेख है अपाय और धारणा ईशा पूर्वक श्रुति है इस लिये अवग्रहके पश्चात् ईशाका कथन है धारणा ज्ञान अवाय पूर्वक श्रुति है इस लिये श्रुतिके पीछे अवायका कथन है । धारणा ज्ञान तत्पश्चात् अवग्रह अतमें धारणा ज्ञान उत्पन्नगम्य है । इतनाग्रह आसारेके कामकी अपेक्षा है अवग्रह आसारेका ज्ञान ही है ॥

विषयविषयिसन्निपातसमयानन्तरमाद्यग्रहणमवग्रह । विषयविषयिसन्निपाते सति दर्शनं भवति तदनन्तरं मर्यास्य ग्रहणमवग्रहः ।

जैसे नेत्र इन्द्रियके ग्रहणमें आया जो ये श्रेष्ठ है ॥ (२) बहुत श्रेष्ठ रूप जाने हुये पदार्थ में विशेष जाननेकी आकांक्षा जो यह श्रेष्ठ है सो कर्णकि होना चाहिये अथवा श्रेष्ठ हुआ होना चाहिये इस प्रकार इच्छा होना सो ईहा मसिद्धान है । ऐसी ही शब्दादिकोमें अन्य इन्द्रियों द्वारा ईहा होती है ॥ (३) शिवाकरि जाने हुये पदार्थका विशेष निर्णय होनेसे जैसा पदार्थ हो तिसमें तैसा ही निश्चय होना सो अवाप मसिद्धान है ॥ जैसे बगुला (=बगला-नग-क)-की पक्तिमें बगलोंकी पक्तिहीकी जाननेरूप इच्छा की पंथु जन्माका नियेय नहीं किया वा ऐसा तो ईहा ज्ञान था । अब ऊंचा नीचा जानना पंखोंका हलानना इत्यादि किया प्तिन्करि ऐसा निश्चय हुआ जो ये एक पंक्तिही है अन्य धुआदिक कुछ भी नहीं है ऐसा निश्चय ज्ञान अथाव है (४) अवाककरि निश्चय वा निर्णय किया जो वस्तु उसका ऐसा दृष्टिमान होना जो भिन्न भिन्न कालमें वा कालान्तरमें श्रुतना नहीं सुकन्ती रहे उसको धारण ज्ञान वा धारणा मसिद्धान कहेते हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका अष्टदश द्विती अनुवाद ॥

- विभक्त्यर्थः
सन्निपात-समय-अनन्तरम् ॥
आद्य-ग्रहणम् ॥ अवग्रहः ॥
विषय-विषयि-
सन्निपाते ॥ सति १० दर्शनम् ॥
भवति १ त्व अनन्तरम् ॥
अर्थस्य १ । अग्रहः १ ।
- =विषय (शब्दरूपादि) अथवा इन्द्रियार्थ और विषयी वा विषयवाले (पौध इन्द्रिय और मन) निके
=संबंध होनेके समयसे लगाही (=अनन्तर)
=धरम ग्रहण अथवा जो पहिलेही ग्रहणमें आवै (सो) अवग्रह है (अर्थात्)
=(स्पष्ट-रस-गंध-रूप-शब्द जे) विषय और विषयको ग्रहण करने वाले पांच इन्द्रिय और मन ॥
=संबंध वा संयोग होने पर (=सति) (किसी वस्तुके) सत्ता वा होने मात्रका ग्रहण दर्शन
=बोला है । उस (दर्शन)के लगता ही अथवा अत्यंत निकट (अनन्तर)
=पदार्थका ग्रहण सो अवग्रह है ॥

पचयः श्रुतिवाग्वारविषयेषु ३।

ममत्-विषये ३, बन्ध

अवग्रहशुद्धी १, यथावद्विषयस्य ३।

विशेषस्य 'आकारादुपायः' इति ३, इति ३, विवेकस्य ३।

मतिमान्-आयत्तवत्तयागमस्य ३। आरम्भमेवेन ।

अवग्रह श्रुति-ज्ञानयोः ३। मेवसंभवत् ३। अस्मिन् ३।

सम्यक्प्रत्यक्षत्वेन ३, बन्धका ३। वाक् प्रकाश ३।

वाक् इति संशयस्य ३। वः बन्धकाया ३।

पराकथा ३। मवित्त्वस्य ३। इति विवेकस्य ३।

मिथ्याज्ञानस्य ३। स्व-अवतरात् ३।

- इस प्रकार ज्ञान (सर्वज्ञान रसम, ज्ञान मोन) इन्द्रियों के विषयोंमें
- और (- व) अभिप्रेत विषयोंमें वा ज्ञानः कारण गोचर (वस्तु) में
- अथवा ज्ञानसे प्रत्यक्ष किये हुये या जाने हुये (पदार्थ) में यथा अवस्थित (पराधी) के
- व्यक्ति (आत्मने) की वाञ्छाकार ईहा ज्ञान है इस प्रकार निश्चय किया जाना चाहिये (वा)
- मतिज्ञानाधारणीय कर्मिक क्षयोपशान्ति के भूमीविषय मेवकति
- अथवा ईहा ज्ञानके मेव संभव है इस
- सुज्ञानके अविचार में बहुकोंकी पंथी है अथवा व्यवसाय है
- येसे संशय की तथा बन्ध केभी में
- प्रकाश होने चाहिये येसे विषय
- मिथ्या ज्ञानका अकार (प्रसंग) नहीं होतक ॥ प्रत्यक्ष और उपरका सारांश यह है कि

जन्म है वा बन्ध पंथि है-यह दो संशय ज्ञान हुआ ॥ उपर में कहते हैं

कि ईहा ज्ञान के दो उदाहरण दिये हैं श्रुतिज्ञानवाला जन्मको देखाकर यह नहीं कहता है कि ज्ञान है वा बन्ध पंथि है यह यह कहता है वा विचारता है कि यह जन्म वस्तु ज्ञाना होता चाहिये, बन्ध पंथि ज्ञाना चाहिये ॥ जन्मका ज्ञान दो ओर नहीं जाया है कि न जाने ज्ञाना है कि न जाने बन्ध पंथि है उक्त दो ओर जाने वाले ज्ञानको संशय ज्ञान कहते हैं धृष्टा होता चाहिये, बन्ध पंथि ज्ञाना चाहिये येसी दृष्टाको ईहा कहते हैं (२) दूसरी बात यह है कि यहाँ सम्यक्ज्ञान का प्रकरण है और ईहा सम्यक्ज्ञान का मेव है, संशय जो मिथ्याज्ञान है उसका अकारण का प्रसंग नहीं जाता ॥

(४) अरण्य तौ कि अग्नि पृष्ठ ३६८ में ज्ञान और अथाव दोनो अकार के पाठोंके मालते में कोई दोष नहीं क्योंकि 'यह पुरुष वसिष्ठो नहीं है' जिस समय ऐसा ज्ञान नियम किया जाता है उससमय 'कृती है' इस बर्णसे अथाव ज्ञानसे प्रमाण होता है और जिस समय 'यह उचरी है' इस बर्णसे पदार्थका प्रमाण होता है बन्ध समय 'यह यद्विधी नहीं है' इस पदार्थ का नियम हो जाता है इस क्रिये अथाव और अथाव यह दोनो प्रकार का पाठ है ३ और यह भी स्पष्ट है कि जिस पदार्थ को ज्ञाना जाता है वह विषय है और जिसके द्वारा ज्ञाना जाता है वह विषयी कहा जाता है इन्द्रियोंके द्वारा पदार्थ जाने आते हैं इस क्रिये यहाँ विषयी ज्ञानसे इन्द्रियों का प्रमाण है और जिस का कार्य यह पद ज्ञानविषय है ३।

तथा ॥ च ॥ नि ॥ ॥ १॥ १॥ इति ॥ अत्र ॥ दसाक्षया ॥॥
मरितव्यम् ॥॥ इति ॥ तालपत्रम् ॥॥ ॥ च ॥ क्रिय ॥॥
पताका ॥॥ इति ॥ अत्र ॥ पतकया ॥॥ मरितव्यम् ॥॥
इति ॥ तालपत्रम् ॥॥

दण्डम् ॥ पत्रम् ॥॥ मर ॥ गिति ॥॥ इति ॥ केम् ॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

मरुतपत्रम् ॥॥ १॥ १॥ १॥ मरुतपत्रम् ॥॥ मरुतपत्रम् ॥॥

- जैसा कि (= तथा च) क्या बहुओं की पकि येसा है यहाँ बहूपकि
- अवश्य होनी चाहिये (= मरितव्यम्) येसा जायय है । लौर (= च) क्या
- ध्याना येसा है यहाँ पताका अवश्य होनी चाहिये ।
- येसा आनाय है भावार्थ जो बहुओं की पकि है तो इसकीभी आने की इच्छा है जो पताका है तो उसकीकी जानकेकी बाक्य है येसा पक्षयस प्रह्व ईशाबानम है ।
- हमे यह विद्वान हो (कि ईशा बान पक्षयस प्रह्व करता है) येसा संवेद है ॥
- (उत्तर) प्रह्वण प्रथम बान मागणा यियँ मरिबाल के
- बाल के प्रसंग ॥ श्रीमद् अमरसुरि संघ द्वारा
- तैसा ही व्यक्त्यास वा बणल किये जाते से (प्रतीत होती है) जैसा कि बहु
- शास्त्र है । अमरप्रह्वण करि ॥ १॥ १॥ १॥ है येसा
- विवित्त या जानकेसे पर मर्यमें वा स्वयमें विशेष बह केपी रूपकी
- मायना (विशेष) व्यजा रूप की अवस्था के अनुसार (आने की) इच्छा
- सो बडाका होनी चाहिये । येसी (एक पक्ष) की संभावनामक
- प्रतीतिरूप है, बहुका की पंथी होने पर ही उत्पद्यमान (= संजायमान) वा
- उपजने वाला
- ईशा नम (= आकाश) दूसरा बाल होता है ॥
- अथवा व्यजाकर विषय को प्रह्व करि वा अवस्थान करि
- संजायमान यह पताका होनी चाहिये येसी
- संभावना की प्रतीतिकर अभिजाया (= अर्द्धाक्ष) है
- सो ईशा पक्षक दूसरा बाल है ॥

पयः० इन्द्रियाभ्युत्थितेषु ३।

मनस-विषये ३। वाक्०

अवयववृद्धिः । यथावस्थितस्य ३।

सिद्धेरस्यः। आर्वाहाक्याः। ईहाः३। इति० निवेद्यव्यर्थः॥

मतिमान्-आयतनस्योपपत्त्यस्य ३। आरम्भस्योपपत्त्यस्य ३।

अवयववृद्धिः-मानयोः ३॥ अवयवस्य ३। आरम्भस्य ३।

सम्यक्त्वप्रकरणे ३। वृत्ताका ३॥ वाक्० पृष्ठाका ३॥

वाक्० इति० संशयस्य ३। वाक्० वृत्ताका ३॥

पृष्ठाका ३॥ अवयवस्य ३॥ इति विवर्धकस्य ३॥

इन्द्रियाभ्युत्थितेषु ३॥ अवयवस्य ३॥

— इस प्रकार भाष्य (सर्वाभ्युत्थितेषु) इन्द्रियों के विषयों में

— और (= वा) अभिव्यक्ति विषयों में वा भाष्यः करण गोचर (वस्तु) में

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

— अवयव भावने प्रमाण किये हुये वा जाने हुये (व्याप्य) में यथा अवस्थित (पराधी) के

कालान्तरे विस्मरणकारण धारणा । यथा-सर्वेय वलाका पूर्वाद्धि यामहमद्राक्षमिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्या
सक्रम उत्पत्तिक्रमतः कृता ॥

विशेष निशानाद् ॥

यापारय अगमनम् ॥॥ अयाय ॥

उत्पत्तन निपत्तन-यविशेष आदिदि ॥

यनाका ॥ एवम् इयम् ॥ न० पताका ॥ इति०

अयम् एतस्य ॥॥ काल-अन्तरेऽवविस्मरण-

कारणम् ॥॥ धारणा ॥

यपा० मां ॥ एवम् इयम् ॥ पलाका ॥॥ याम् ॥

इतः प्र० ॥ अयम् ॥ अद्राक्षम् ॥ इति०

यशम् ॥ अग्रर आदीनाम् ॥ उपन्यास-क्रम ॥

उत्पत्ति क्रम-० कृता ॥

= (इहासे जाने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
= आस्ताविक वा ज्योंका त्यों स्वरूपका (व्याप्यात्म्य) निमित्त ज्ञान सो अवाय है ।
= ऊँचा चढ़ना (उत्पत्तन) नीचे आबना (= निपत्तन) पक्ष फँसना शिलाबना आदिसे
= एगुलोंकी पत्तीरी (= एव) यह है पताका नहीं है ॥

= उपरान्त, पश्चात् वा पीछे (= अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न भूलनेका
= कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अवाय ज्ञानकरि निषय की हुई कसुका ऐसा चढ़
ज्ञान होय ओ उत कसुको अन्य अन्य कालमें भूलने न देंवै सो धारणा है

= जैसे यो (= सा) ही (= एव) यह (= इयम्) एक पंक्ति है जिसको (= याम् ॥॥)
= पाठ कालमें वा प्रसङ्गमें मने देखा या । (इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है) ॥

= इन अवग्रह आदिदोषका कहेनेका (= उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
= उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं

उसी उसी क्रमसे ये जीव के उत्पन्न होते हैं ॥ इस सकका भावार्थ यह है कि
उो रतु सामान्य विदोष स्वरूप है उस (वस्तु) के और इन्द्रियों के संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार
इदम होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विदोष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह कहते हैं । जिस के पीछे
उक्त वस्तुमें विदोष पटुत हैं उन विदोषों से किसी एक विदोषरूप ज्ञानकी अभिलाषारूप ओ ज्ञान प्रवर्तता है जो यह असुक्त
विदोष होना चाहिये निमित्त ईहा कहते हैं । पश्चात् उसी विदोषकी क्रिया चिन्ह वेद्युक्त यह निषय हुआ कि जो यह अभिलाषामें
ग्रहण हुई थी सो ही है । सो अवाय है । पश्चात् उस विदोष में ऐसा ज्ञान-चढ़ हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं बूले उस
को धारणा कहिये ॥ (१) अवाय वा अवायक संख्या में दोहो टिप्पणी (१) पृष्ठ ३६७

उक्तानामवग्रहादीना प्रभेदप्रतिपत्ययमाह ।।

बहुबहुविधक्षिप्राब्जनि संताऽनुक्तत्रवाणा सेतराणाम् ।। १६ ।।

उक्तानाम् १। अवग्रह-आदीनाम् ।। प्रभेद

= वर्णित अवग्रह, ईशा, अवाय धारणा के (आदीनाम्) विशेष भेदोंकी

प्रतिपत्ति अयम् ।। आह १

= प्राप्ति (-प्रतिपत्ति-यद् अर्थ ५०) अक्षरद्वीने किया है) के लिये (अगले सूत्रमें) बताते हैं कि

सूत्रम्—

बहु बहुविधं क्षिप्राब्जनि-सुताऽनुक्तत्रवाणां सेतराणाम् ।। १६ ।।

पक्षच्छेद— बहु-बहुविध-क्षिप्रा-अनिस्त-अनुक्त-त्रवाणाम् सेतराणाम्

(अवग्रह-ईशा अवाय-धारणा भवन्ति एतद्वा एते इन्द्रिय अविन्द्रियै प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते) ।।

(१) इस सूत्र का दोनों इत्येताम्पर और विमलर आज्ञाओं में एक अर्थ है । इत्येताम्पर सम्प्रसार में इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि 'बहुबहुविधक्षिप्राभिभि-
तादुक्तम् प्राणां मेहराम्पय ॥ अर्थात् निवृत्त के स्थान में निष्प्रिष्ठ' है ५ ऐसे दो स्थानों में स्थित नहीं है वीर पाठ एक है ।

(२) अर्थात्काम पाठों में हमारे यहाँ 'केलराणी' भी पाठ है वह प्रायुक्त गाविलि-शाब्दायाम और अनेक प्रक्षिपा के रचयिता के मतानुसार अनुब्र है
महत्त्व किया है ।। (देखो पृष्ठ ३५०)

(३) विनाओं के पक्षान्तर शून्य अगवा म् आये जो इस विमर्माका विमर्माही बना रहता है अथवा वह विस्मा शू शून्य में यथामह्य परिवर्तन होजाता है
अतः हमारे यहाँ कहीं 'निः' नहीं पाठ है और कहीं कहीं 'निःस्वतः' जो पाठ है ।। (इस अनुब्रान्त के पृष्ठ ४८ में जो शरी नियमदिया है)

(४) किसी किसी प्रप्ति में हमारे यहाँ 'केलराणी' भी पाठ है वह प्रायुक्त गाविलि-शाब्दायाम और अनेक प्रक्षिपा के रचयिता के मतानुसार अनुब्र है
परन्तु कर्तव्यरूपमात्मा ध्याकरण का अनुसार शुद्ध है ऐसा कि हम इस पुरतः के कारण में स्थित कर चुके हैं ।। (देखो दिव्यजी पृष्ठ ५ और ६)

(५) यहाँ जहाँ बहु-बहुविध-क्षिप्रा-अनि-सुता-अनुक्त-त्रवाणां सेतराणाम् में यही विमर्मा है तो प्रत्येक समासके होनेसे अतःके पाव् ध्रुव में और उनके प्रतिपत्ति और
ध्रुव में समर्थ गार् है अर्थात् गणका, बहुविधिका, विमर्माका अनिस्तवृत्ताका, अनुक्तका प्रवृत्ता (अवग्रह-ईशा-अवाय और धारणा होता है) और इनके
प्रतिपत्तियों अन्तका अर्थात् विमर्मा-अनिस्तवृत्ताका-अनुक्तका-अवग्रह-ईशा-अवाय धारणा होता है) ।। इस सूत्रमें 'बहु' शब्द (१) संख्या,
गणना का निमित्त के अर्थ में है जैसे एक वंश-नील-वार-पांच यह इत्यादि बहुत ये तो मरकया हुई हमने विपुल वायवा समुद्ररत्ना के अर्थमें आया है
जैसे मात बहुत है बाल बहुत है यहाँ विपुलताही कहीं । सूत्रमें बहु-शब्द दोनो जगहों में है ।

(६) बहुविध—बहुल प्रकार (के पदार्थों) का, अनेक प्रकार (की परतुओं) का, गणनामिति (की प्रत्ययों) का जैसे देनामें इल्ली, घोड़े, कट, बेल,
मैसा इत्यादि के अनेक जातिका महत्त्व करनेवाला बहुविध है ।।

मालान्तरेऽविस्मरणकारण धारणा । यथा-सेवय वलाका पूर्वाद्धे यामहमद्रक्षामिति ॥ एषामवग्रहादीनामुपन्या-
मक्रम उत्पत्तिक्रमतः कृत ॥

विप्य निशानात् ॥

याथावत्प्र अगमनम् ॥॥ अवायः ॥

उत्पन्न निपलन-यवविशेष आदिभिः ॥

वलाका ॥ परः इयम् ॥ नः फलाका ॥ इति ॥

मपः पनस्य ॥॥ फाल-अन्तरेः अविस्मरण-

धारणम् ॥ धारणा ॥

यपाः ना ॥ परः इयम् ॥ वलाका ॥ याम् ॥

इ-अ-इ ॥ मरम् , अदावम् इ इति ॥

याम् ॥ अग्रह आदीनाम् ॥ उपन्यास-क्रमः ॥

उत्पत्ति क्रमः कृतः ॥

= (रिहासे आने हुये पदार्थका) अधिक निर्णय (होने) से
= यास्तविक या ज्योंका त्यों स्वरूपका (=याथात्म्य) निश्चित ज्ञान से अवाय है ।
= ऊँचा चढ़ना (=उत्पन्न) नीचे आवना (=निपलन) फल फेंकना हिलासना आदिसे
= फणुलोंकी पंतीथी (=यव) यह है फलाका नहीं है ॥
= उपरान्त, पश्चात् वा पीछे (=अथ) इस (अवाय ज्ञान) के अन्यकालमें न चलनेका
= कारण धारणा ज्ञान है अर्थात् अवाय ज्ञानकरि निश्चय की हुई वस्तुका ऐसा बढ़
ज्ञान होय जो उस वस्तुको अन्य अन्य कालमें चलने न देंवे सो धारणा है
= जैसे वो (=वा) ही (=यव) यह (=इयम्) एक वक्ति है जिसको (=याम् ॥)
= पात-कालमें या प्रभातमें भेजे देखा था । (इसप्रत्यभिज्ञानका कारण धारणा है) ॥
= इन अग्रह आदिकोंका करनेका (=उपन्यास) अनुक्रम (इनके)
= उत्पत्तिके क्रमानुसार किया गया है अर्थात् जिस जिस क्रमसे ये सूत्रमें वर्णित हैं

उसी उसी क्रमसे ये जीव के उत्पन्न होते हैं ॥ इस रूपका मावार्थ यह है कि
जो शब्द सामान्य विशेष स्वरूप है उस (वस्तु) के और इन्द्रियों के संबंध होने पर प्रथम तो सामान्य अवलोकनरूप निराकार
दयन होता है । पश्चात् उसी (वस्तु) का सामान्य विशेष रूप साकार ग्रहण होता है उस को अवग्रह करते हैं । जिस के पीछे
उक्त शब्दमें विप्य बहुत हैं उन विप्यमें से किसी एक विप्यरूप जाननकी प्रमिलापारूप जो ज्ञान मर्त्यता है जो यह अमुक
विप्य होना पारिसे जिसको ईहा करते हैं । पश्चात् उसी विप्यकी क्रिया विन्दु घेसकर यह निश्चय हुआ कि जो यह प्रमिलापारूप
ग्रहण हर भी सो ही है । सो अवाय है । पश्चात् उस विशेष में ऐसा ज्ञान-रूप हुआ जो अन्य काल में उसका नहीं बल्के उस
को धारणा करिये ॥ (१) अवाय वा अवायके स्वरूप में देखो टिप्पणी (१) पृष्ठ ३६५

प्रदानिवासी आगरूपसहाय वकीलकुल प्यच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाधिकारिका शुद्धश" हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १६

उक्तानामवग्रहदीना प्रभेदप्रतिपत्त्यर्थाह ॥

बहुबहुविधक्षिप्राजनि संतानुक्तधवाणा सेतराणाम् ॥ १६ ॥

उक्तानाम् १, अवग्रह आदीनाम् ॥ प्रभेद

=वर्णित अवग्रह, ईहा, अवाय धारणा के (आदीनाम्) विशेष मेदोंकी

प्रतिपत्ति-मयम् ॥ आदि T

=प्राप्ति (-प्रतिपत्ति-यह अर्थ प०-व्यपदेशीने किया है)के लिये (अगले सूत्रमें) कहते हैं कि

सूत्रम्— बंधु बहुविधं क्षिप्राजनि संतानुक्तधवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥

पदच्छेद— बंधु-बहुविध-क्षिप्राजनि-संतानुक्त-धवाणाम् सेतराणाम्

(अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणा भवन्ति यदका एते इन्द्रिय अनित्यै-प्रत्येकं प्रादुर्भावन्त्ये) ॥

(१) इस सूत्र का हमों सेवताम्बर और विगतम्बर आज्ञायों में एक अर्थ है । सेवताम्बर सम्मन्वाय में इस सूत्रका पाठ ऐसे है कि ' बंधुबहुविधक्षिप्राजनिभि-
राजुक्तय धाणां सेतराणाम् ० अर्थात् निवृत्त के स्थान में निवृत्त ' है ५ ऐसे दो स्थानों में किन्हीं नहीं है शेष पाठ एक है ।

(२) अपिक्तम पाठों में हमारे यहाँ 'सेतराणां' भी पाठ है वह धामुल पाणिनि-शाब्दकायण और जेनेम् प्रक्रिया के स्थितिता के मतानुसार अनुवृत्त है
महत्त्व किया है ॥ (देखो पृष्ठ ३५०)

(३) विमर्ग के पञ्चाल दू-य अणवा न् आये तो इस विमर्गका विमर्गाही बना रहता है जयया यह विमर्ग द्वा 'न्' में यथामक्य परिवर्तन होजाता है
अतः हमारे यहाँ कहीं 'नि, म्ल' वात है और कहीं 'निस्वृत' से पाठ है ॥ (इस अनुवाद के पृष्ठ ४८ में से यही नियमदिया है)

(४) किसी किसी प्रति में हमारे यहाँ 'सेतराणां' भी पाठ है वह धामुल पाणिनि-शाब्दकायण और जेनेम् प्रक्रिया के स्थितिता के मतानुसार अनुवृत्त है
परन्तु कर्तव्यमत्तला प्याकरनक अनुसार नुक्त है जैसा कि हम इस पुरस्क के आरम्भ में सिम्ब कर चुके हैं ॥ (देखो टिप्पणी पृष्ठ ५ और ६)

(५) यहाँ छोटे बंधु-बहुविध-क्षिप्राजनि संतानुक्त धुय शायों में यही विमर्ग है जो प्रत्येक समासके हाथसे आते हैं और उनके प्रत्येकी इतर
शब्द में लगाने गै है अर्थात् बन्धु, बहुविध, क्षिप्राजनि, संतानुक्त, धवाणा, सेतराणा, अवग्रह-ईहा-अवाय और धारणा होता है । और इनके
प्रतिपत्तीयों अन्यथा अल्पविषय-अक्षिप्राजनि-स्वृतका उक्तका-अवग्रह (अवग्रह-ईहा-अवाय धारणा होता है) । इस सूत्रमें 'बन्धु' शब्द (१) संख्या,
जलना वा गिनती के अर्थ में है जैसे एक-श-तीन-चार-पाँच वद इत्यादि बहुत से तो संख्या हुई दूसरे विपुल जयया सम्मलना के अर्थमें आया है
जैसे मात्र बहुत है शान बहुत है यहाँ विपुलवाही बढ़ी । सूत्रमें बन्धु 'न्' दोनो व्यर्थों में है ॥

(६) बहुविध — बहुत प्रकार (के प्रकारों) का, अनेक प्रकार (की प्रकारों) का, गणनायि (की प्रणियों) का जैसे सेनामें इस्ती, घोड़े, ऊँट, बैल,
मैसा इत्यादि अनेक जातिका प्रत्येक करेजाला बहुविध है ॥

पदं नृनिय = (१) जनेन (पदानां) ना अथवा ठेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के वा नाना मति के (पदार्थों) का,
 विप्र प्रनिमृत = (३) ग्रीष्म गमन करते हुये (पदार्थ) का (=विप्रत्स) (४) छिये हुये (पदार्थ), का वा अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थ) का
 प्रमुक्त (=प्रवृत्त) = (५) किता बह हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थ) का वा वचनसे सुने किता (अभिप्राय म ही पदार्थ) का
 प्रगणाम् ॥ = (६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक अस्तित्वाका तितना निश्चलरूप (पदार्थों) का
 न इतराणाम् ॥ = (७) उदने छोटोसे विरुद्धोक्ति प्रतिपक्षीयों के वा विपरीतों के सहित अर्थात् (७) एक पदार्थका वा अन्य (पदार्थ) का
 = (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अधिकका वा मंद गमन करते हुए (पदार्थ) का (१०) निश्चित का
 वा समस्त वास्तु निकाले हुये (पदार्थ) का (११) उक्त पदार्थ का, कहे हुये (पदार्थ) का, वा अल्प सुलभर के
 (पदार्थ) का (१२) अधिका, अस्थिर (पदार्थ) का, चलायमान (पदार्थ) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने
 वाले (विजली सरल) का-इन चारों में से—

गण अथप्रद ईहा अयाय = दसरेके या मित्र निकके वा पृथक् पृथक् के (उक्त पारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और भावाय (=अनाद)
 पारणा, १ भवन्ति गण, १ = और घाण होते हैं और (इन अठ्ठालीस में से)

कये १, इन्द्रिय अन्द्रिय ॥ = प्रत्येक सृष्टन-गमन ग्राण धनु-भोग्य और ईष्ट इन्द्रिय (मन, अनिन्द्रिय) द्वारा

प्रादुर्भायन्त ग = (समुदाय होकर दोसो अठाली मति ज्ञानके मोट) प्रगट किये जाते हैं वा प्रकाश किये जाते हैं कि

(१) स्यादेन (अथवा स्यादेन इन्द्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान

(२) स्यादेन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) स्यादेन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(४) स्यादेन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५) स्यादेन विप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६) स्यादेन अधिप्र पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) स्यादेन अनिमृत् पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(८) स्यादेन निमृत् पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९) स्यादेन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१०) स्यादेन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) स्यादेन प्रवृत्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१२) स्यादेन अधुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान ॥

- (१३) रासन शुद्ध्यकार्यका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (१५) रासन शुद्ध्यविषय पदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (१७) रासन क्षिप्रपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (१९) रासन अनिमित्तपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (२१) रासन अनुक्तपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (२३) रासन ध्रुवपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (२५) प्राणज शुद्धपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (२७) प्राणज शुद्ध्यविषय पदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (२९) प्राणज क्षिप्रपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (३१) प्राणज अनिमित्तपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (३३) प्राणज अनुक्तपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (३५) प्राणज ध्रुवपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (३७) चाक्षुष शुद्ध्यकार्यका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (३९) चाक्षुष शुद्ध्यविषय पदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (४१) चाक्षुष क्षिप्रपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (४३) चाक्षुष अनिमित्तपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (४५) चाक्षुष अनुक्तपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान
 - (४७) चाक्षुष ध्रुवपदार्थका अवग्रहस्य मतिज्ञान

(१) तेरह भेदसे बौदीस भेद तक रामानं' शब्दोंक स्थानमें 'रसनेन्द्रिय अथ (रसु पदार्थका अवग्रहस्य मतिमान) ऐसा मी शक्य नासके हैं इसी प्रकार शब्दीस शब्दसे उर्ध्वसिद्ध और खोर सेवसिद्ध अद्वान्दीस तक 'मगश' के स्थानमें प्रणेन्द्रिय अथ और 'धातुपद' स्थानमें धातुपन्द्रिय अथ नासके हैं।

पद गुरुपि = (१) अनेक (पदार्थों) का अथवा ढेर (पदार्थ) का (२) अनेक प्रकार के वा नाना भाँति के (पदार्थों) का,
 धिप्र-प्रतिभूत = (३) शीघ्र गमन करते हुये (पदार्थों) का (=धिप्रस्य) (४) छिपे हुये (पदार्थों) का वा अल्पभाग दीखते हुये (पदार्थों) का
 प्रसुप्त (=अत्र उक्त)- = (५) बिना कह हुये (अभिप्राय से ही) (पदार्थों) का वा वचनसे सुने बिना (अभिप्राय म ही पदार्थों) का
 प्रमाणम् ॥ = (६) स्थिर (पदार्थों) का, निश्चल (पदार्थों) का, अथवा बहुत काल तक निरन्तरता तिरना निश्चलरूप (पदार्थों) का
 म प्रमाणम् ॥ = (७) उद्योग प्रतिपक्षीयिक वा विपरीतों के सहित अर्थात् (७) एक पदार्थका वा अल्प (पदार्थ) का
 (८) एक प्रकार के (पदार्थों) का (९) अधिकका वा मंद गमन करते हुये (पदार्थों) का (१०) निरन्तर का
 वा समस्त काम निकले हुये (पदार्थों) का (११) उक्त पदार्थों का, कहे हुये (पदार्थों) का, वा शब्द सुनकर के
 (पदार्थों) का (१२) अधुक्का, अस्थिर (पदार्थों) का, चलायमान (पदार्थों) का, अथवा क्षणमात्र स्थिर रहने
 वाले (बिजली सद्यः) का-इन चारों में से—

पञ्च-प्रमाणम् ईहा अत्राप = श्लोकक या मिय निष्कर्षे वा पृथक् पृथक्के (उक्त चारह प्रकारके पदार्थोंके) अवग्रह और ईहा और आवाच (=अवाच)
 पात्वा, मयलि उपव, । = और धारण होते हैं और (इन अज्ञातीस में से)

प्रत्येक इन्द्रिय = प्रत्येक स्पृश-संज्ञ-ग्राह्य-श्रोत्र और पितृ इन्द्रिय (मन, अन्तिन्द्रिय) द्वारा

प्रादुर्भास्यन्त = (मनुष्य होकर दोसो अठ्ठासी मति ज्ञानके भेद) प्रगट किये जाते हैं वा प्रकाश किये जाते हैं कि

(१) साधन (अथवा स्वर्णमन्त्रियजन्य) बहु पदार्थ (=अर्थ) का अवग्रहरूप मतिज्ञान

(२) साधन अल्पपदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (३) साधन बहुविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(४) साधन अल्पविध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (५) साधन विध पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(६) साधन अधिग पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (७) साधन अनिश्चित पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(८) साधन निश्चित पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (९) साधन अनुक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१०) साधन उक्त पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान (११) साधन ध्रुव पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान

(१२) साधन अग्र्य पदार्थका अवग्रहरूप मतिज्ञान ॥

- (५४) श्रावण यद् पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान
(५१) श्रावण यद् पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान
(५२) श्रावण निप्रपदायका भवप्रहस्य मतिज्ञान
(५५) श्रावण अनिस्तत पदायका अग्रहस्य मतिज्ञान
(५७) श्रावण अनुन पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान
(५९) श्रावण ध्रुव पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान
(६१) मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान
(६३) मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान
(६५) मानस निप्रपदायका भवप्रहस्य मतिज्ञान
(६७) मानस अनिस्ततपदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(६९) मानस अनुन पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(७१) मानस ध्रुव पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान

मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान

मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान

मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान

(५९) मानस अनिस्तत पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान

(६१) मानस अनुन पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान

(६३) मानस ध्रुव पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान

मनो मे अर्थाग्रहस्य मतिज्ञान एतत्तु है क्योंकि अग्रहस्य मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान एतत्तु है । ईशा
पारवा मानस पदार्थस्य अग्रहस्य मतिज्ञान एतत्तु है । ईशा
अन्यके नहीं । तिसरार भी मतिज्ञान यह कि व्यंजनका अग्रहस्य मतिज्ञान एतत्तु है । ईशा
१ ॥

- (५०) श्रावण अत्य पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान ।
(५२) श्रावण अत्यविध पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान ।
(५४) श्रावण अतिप्रपदायका अग्रहस्य मतिज्ञान
(५६) श्रावण निस्तत पदायका भवप्रहस्य मतिज्ञान
(५८) श्रावण उक्त पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(६०) श्रावण अध्रुव पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(६२) मानस अत्यपदायका अग्रहस्य मतिज्ञान
(६४) मानस अत्यविध पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(६६) मानस अतिप्रपदायका अग्रहस्य मतिज्ञान
(६८) मानस निस्तत पदायका अग्रहस्य मतिज्ञान
(७०) मानस उक्त पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(७२) मानस अध्रुव पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(७४) मानस अत्य पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(७६) मानस अत्यविध पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(७८) मानस अतिप्रपदायका अग्रहस्य मतिज्ञान
(८०) मानस निस्ततपदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(८२) मानस उक्त पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान
(८४) मानस अध्रुव पदार्थका अग्रहस्य मतिज्ञान

- (८५) रासन बहु पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (८६) रासन अल्प पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (८७) रासन बहुविध पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (८८) रासन अल्पविध पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (८९) रासन विप्र पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९०) रासन अधिप्र पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९१) रासन अनिस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९२) रासन निस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९३) रासन अनुक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९४) रासन उक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९५) रासन द्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९६) रासन अम्ल पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान

८५-९६-००-००-००

- (९७) घ्राणज बहु पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९८) घ्राणज अल्प पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (९९) घ्राणज बहुविध पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१००) घ्राणज अल्पविध पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०१) घ्राणज विप्र पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०२) घ्राणज अधिप्र पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०३) घ्राणज अनिस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०४) घ्राणज निस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०५) घ्राणज अनुक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०६) घ्राणज उक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०७) घ्राणज द्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१०८) घ्राणज अम्ल पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान

१०७-१०८-००-००-००

- (१०९) चाक्षुष बहु पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११०) चाक्षुष अल्प पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१११) चाक्षुष बहुविध पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११२) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११३) चाक्षुष विप्र पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११४) चाक्षुष अधिप्र पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११५) चाक्षुष अनिस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११६) चाक्षुष निस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११७) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११८) चाक्षुष उक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (११९) चाक्षुष द्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१२०) चाक्षुष अम्ल पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान

(५७) भाषण अन्य पाठार्थका अवग्रहस्य मणिधान ।

[illegible]

(पर) आपण अद्यापच कोरापूर जिल्ह्यात राहिल्या आहात.

(५४) थावण आसुप्रपदायका अवप्रहृत्य नापक्षान

(५६) भावण निःसृत पदायका अवग्रहरूप भावधान

(५८) भाषण उक्त पदार्थका अवप्रारूप मतिधान

(६०) भावण अघ्न पद्मायका अयग्रहण मविज्ञान

(६३) मानव अन्वेषणायाका अध्यालय मतिमान

(१६) मागत अरुपिद्विजानां योऽपहृष्टः । योऽपहृष्टः ।

(६४) मानस अत्यावय कदायका जयनरुक्ष भापनाम

(६६) मानस आसप्रदायका प्रथमरूप भावज्ञान

(६८) मानस निःसृत पदार्थका अवगृह्यम् मातृज्ञान

(७०) मानस दत्त पर्यायका अक्षररूप मतिप्रदान

(७२) मानस अथवा पदार्थका अन्वयार्थस्य मतिज्ञान

(१७५) आर्य समाज के संस्थापक श्री सूर्यदास

(७४) स्नानेन अक्ष कदापि न दृष्टात्तत्र भावनाम् ।
 (७५) सर्वं तस्मिन् समुद्रायै नृणां भूषणम् ।

(७५) स्थापित अवस्थावध पदायका इष्टान्य भावमान

(७८) स्वामिन आद्यप्रपदायका इहास्य मातृदान

(८०) सान्निध्यं निपुणपर्यायका इदाल्प मतिज्ञान

(८२) सार्धेन वृक्ष पर्यार्यका ईदाव्य मतिमान

(८४) स्थापन अथवा पदार्थका निर्माण यनिधान

(१) जलधर के २२ मठों में अर्थांगमदत तालमय रक्षता है क्योंकि अधमाह शाल वृक्ष पक्काय और बज्जल (अप्यार) पक्काय वालोंका होता है । ईसा ३७२, जराण्डीत, पाण्डा माग से वृक्ष पक्काय की जाती है वृक्षन पक्कायके मठों जाती है इसलिये अबगूह प्रामेकेही अर्थांगमद और न्येजनागमद केसे से मेग होते है जन्मे के मठों ॥ तिसपर भी रुपरण रही कि धर्मप्रमथा जवगूह सेत्र और मनके प्रवार्थ से सिफन न होमेके हेतु से केवचबाद एन्दुले जाग होता है ॥

(१५७) रासन बहु पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१५८) रासन अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१५९) रासन बहुविध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१६०) रासन अल्पविध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१६१) रासन विप्र पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१६२) रासन अतिप्र पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१६३) रासन अनिस्तुत पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१६४) रासन निश्चय पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१६५) रासन अलुक्क पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१६६) रासन उक्त पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१६७) रासन अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१६८) रासन अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान

(१६९) प्राणज बहुपदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१७०) प्राणज अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१७१) प्राणज बहुविध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१७२) प्राणज अल्पविध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१७३) प्राणज विप्र पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१७४) प्राणज अतिप्र पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१७५) प्राणज अनिस्तुत पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१७६) प्राणज निस्तुत पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१७७) प्राणज अलुक्क पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१७८) प्राणज उक्त पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१७९) प्राणज अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१८०) प्राणज अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान

—अष्टादश—

(१८१) चाक्षुष बहुपदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१८२) चाक्षुष अल्प पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१८३) चाक्षुष बहुविध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१८४) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१८५) चाक्षुष विप्रपदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१८६) चाक्षुषअतिप्र पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१८७) चाक्षुष अनिस्तुत पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१८८) चाक्षुष निस्तुत पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१८९) चाक्षुष अलुक्क पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१९०) चाक्षुष उक्तपदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(१९२) चाक्षुष अल्पपदार्थका अवायव्य मतिज्ञान	(१९२) चाक्षुष अल्पपदार्थका अवायव्य मतिज्ञान

- (१२२) श्रावण यदु पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२२) श्रावण अल्प पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान ।
 (१२३) श्रावण यदुविषय पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२३) श्रावण अल्पविषय पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान ।
 (१२४) श्रावण सिद्धिपदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२४) श्रावण अक्षिप्रपदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१२५) श्रावण अनिस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२५) श्रावण निस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१२६) श्रावण अनुक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२६) श्रावण उक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१२७) श्रावण प्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२७) श्रावण अध्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१२८) मानस यदुपदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२८) मानस अल्पपदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१२९) मानस यदुविषय पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१२९) मानस अल्पविषय पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१३०) मानस सिद्धिपदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१३०) मानस अक्षिप्रपदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१३१) मानस अनिस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१३१) मानस निस्तुत पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१३२) मानस अनुक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१३२) मानस उक्त पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१३३) मानस प्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान (१३३) मानस अध्रव पदार्थका ईश्वरूप मतिज्ञान
 (१३४) स्यादेन यदुपदार्थका अवायक्य मतिज्ञान (१३४) स्यादेन अल्प पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान
 (१३५) स्यादेन यदुविषय पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान (१३५) स्यादेन अल्पविषय पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान
 (१३६) स्यादेन सिद्धिपदार्थका अवायक्य मतिज्ञान (१३६) स्यादेन अक्षिप्रपदार्थका अवायक्य मतिज्ञान
 (१३७) स्यादेन अनिस्तुत पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान (१३७) स्यादेन निस्तुतपदार्थका अवायक्य मतिज्ञान
 (१३८) स्यादेन अनुक्त पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान (१३८) स्यादेन उक्त पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान
 (१३९) स्यादेन प्रव पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान (१३९) स्यादेन अध्रव पदार्थका अवायक्य मतिज्ञान

(१५७) रासन बहु पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१५८) रासन अल्प पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१५९) रासन बहुविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१६०) रासन अल्पविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१६१) रासन क्षिप्र पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१६२) रासन अक्षिप्र पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१६३) रासन अनिस्तृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१६४) रासन निस्तृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१६५) रासन अनुक्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१६६) रासन उक्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१६७) रासन शून्य पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१६८) रासन शून्य पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान

(१६९) द्राणज बहुपदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१७०) द्राणज अल्प पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१७१) द्राणज बहुविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१७२) द्राणज अल्पविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१७३) द्राणज क्षिप्र पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१७४) द्राणज अक्षिप्र पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१७५) द्राणज अनिस्तृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१७६) द्राणज निस्तृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१७७) द्राणज अनुक्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१७८) द्राणज उक्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१७९) द्राणज शून्य पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१८०) द्राणज शून्य पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान

—ॐ३३३३३३३३—

(१८१) चाक्षुष बहुपदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१८२) चाक्षुष अल्प पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१८३) चाक्षुष बहुविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१८४) चाक्षुष अल्पविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१८५) चाक्षुष क्षिप्रपदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१८६) चाक्षुषअक्षिप्र पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१८७) चाक्षुष अनिस्तृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१८८) चाक्षुष निस्तृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१८९) चाक्षुष अनुक्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१९०) चाक्षुष उक्तपदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१९१) चाक्षुष शून्यपदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान (१९२) चाक्षुष शून्यपदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान

(१९३) भावणवद् पदार्थका अवायरूप मतिमान
(१९५) भावणमूर्तिष पदार्थका अवायरूप मतिमान
(१९७) भावणमूर्तिष पदार्थका अवायरूप मतिमान
(१९९) भावणमूर्तिष पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२०१) भावणमूर्तिष पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२०३) भावणमूर्तिष पदार्थका अवायरूप मतिमान

(२०५) मानसबद्ध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(२०७) मानसबद्धविय पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(२०९) मानसविय पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(२११) मानसअनिस्मृत पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(२१३) मानसअनुक्त पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान
(२१५) मानसबुद्ध पदार्थका अवायव्य मतिज्ञान

(२१७) साधनबहु पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१९) साधनवहुविषय पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२१) साधनविषय पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२३) साधन अनिस्तुत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२५) साधन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२७) साधनपञ्च पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(१९४) भाषणअन्य पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(१९५) भाषणअन्यविष पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(१९६) भाषणअसिप्र पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(२००) भाषणनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(२०२) भाषणउक्त पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(२०४) भाषणअध्रुव पदार्थका अवायरूप मतिद्वान

(२०६) मानसअल्य पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२०८) मानस अल्यविष पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२१०) मानसअसिप्र पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२१२) मानसनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२१४) मानसतत्त्व पदार्थका अवायरूप मतिमान
(२१६) मानसअधुव पदार्थका अवायरूप मतिमान

(२१८) सार्धनअल्य पदार्थका धारणारूप मतिद्वान
(२२०) सार्धनअल्यविष पदार्थका धारणारूप मतिद्वान
(२२२) सार्धनअसिप्र पदार्थका धारणारूप मतिद्वान
(२२४) सार्धननिगमृत पदार्थका धारणारूप मतिद्वान
(२२६) सार्धनउक्त पदार्थका धारणारूप मतिद्वान

(२२९) रासन वाइपदार्थका धारणास्य मतमान

(२३०) रासन अल्प पदार्थका घाण्यारूप मतिशान

(२३१) रासन यद्विष पदार्थका घारणारूप मति

(२३२) रासन मन्त्रविषय पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२३३) रासन धिय पदार्थकाधारणारूप मतिश

(२३४) रासन अक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२३५) रासन अनिस्तुत पदार्थकाधारणारूपमण्डित

(२३६) रासन निष्ठुत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(२३७) रासन अनुक्त पदार्थका धारणारूप मतिश

(२३८) रासन रुक् पदार्थका घाणारूप्य भविषान

(२३९) रासन घृत पदार्थका धारणाकूप भविषान

(२४०) रासन अघुष प्यायिका घारणारूप मातशान

(२४१) प्राणज ब्रह्मदेवार्थका धारणारूप मस्तिष्कान

(२४२) घाणञ्ज खन्स पदार्थका धारणाख्यमतिशान

(२४३) प्राणञ्च बहुविध पदार्थका धारणारूप मतिः

(२४४) घ्राणज व्यस्यविष पदार्थका धारणाऽप्य मतिज्ञान

(२४५) ब्राह्मण क्षिप्र पदार्थका घाणारूप भविष्या

(२४६) द्वाणच मखिण पदार्थका धारणाख्य मतिज्ञान

(२४७) घाण्ड्य भनिस्तृषदार्थका घाणारूपम वि

(२४८) घ्राणञ्च नि सृत् पदार्थका घ्राणाभ्य मतिना

(२४९) घाणम् अनुक्तं पदार्थका घाणारूप मतिश्च

(२५०) घ्राणञ्च उक्तं पदार्थिका घ्राण्यास्य मतिमान

(२५१) घ्राणज प्रवृत्त्यर्थका घ्राणान्त्र मतिमान

(२५२) घ्राणज अध्रव पदार्थका घ्राणाख्य मतिज्ञान



२५३) चासुप बहुपदार्थना घाणाय मतिमान

(२५४) चाक्षुष अन्त्य पदार्थका धारणास्य मतिमान

२५५) वाक्षुप बहुविध पदार्थका घाणारूप मतिह

(२५६) बाधुप अल्पविध पदार्थका धारणावप मतिमान

२५७) चाक्षुष सिन्धुदर्पका धारणाभ्य मतिमान

(२५८) चातुपअसिप्र पदार्थका धारणाक्य मतिमान

२५९) चाक्षुषं अग्निं स्मृतं पदार्थं का वारणा रूपं मयि

(२६०) चाक्षुष निस्सप्त पदार्थका धारणा-प मतिग्रान्

२६१) चाक्षुष भनुक्त पदार्थका धारणान्तर मतिप्र

(२६२) वासुप तत्कपदार्थका धारणास्य मतिमान

२६३) चाशुप प्रवण्प्रदायका पारणारूप मन्त्रान

(२६४) चाक्षुष आध्रवपदार्थका धारणस्य मतिमान

(१९३) भाषणबद्ध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१९५) भाषणबद्धविषय पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१९७) भाषणध्वित पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(१९९) भाषणअनिरस्युत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२०१) भाषणअनुक्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२०३) भाषणप्रवृत्त पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान

(२०५) मानसपदु पदार्थका अवायल्प्य मतिद्वान
(२०७) मानसचतुर्विध पदार्थका अवायल्प्य मतिद्वान
(२०९) मानसधर्म पदार्थका अवायल्प्य मतिद्वान
(२११) मानमभिनस्तृत पदार्थका अवायल्प्य मतिद्वान
(२१३) मानसभक्तु पदार्थका अवायल्प्य मतिद्वान
(२१५) मानसमुद पदार्थका अवायल्प्य मतिद्वान

(२१७) साधनपट्ट पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२१९) साधनपट्टविषय पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२१) साधनविषय पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२३) साधन अनिस्तुत पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२५) साधन अलुक्त पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान
(२२७) साधनभूय पदार्थका धारणारूप मतिज्ञान

(१९४) भावणअल्य पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(१९६) भावणअल्यविष पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(१९८) भावणअसिप्र पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(२००) भावणनिःसृत पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(२०२) भावणतक्त पदार्थका अवायरूप मतिद्वान
(२०४) भावणअध्व पदार्थका अवायरूप मतिद्वान

(२०६) मानसबल्य पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२०८) मानस अत्यविध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२१०) मानसअसिद्ध पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२१२) मानसनिःसृत पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२१४) मानसतत्त्व पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान
(२१६) मानसअधुव पदार्थका अवायुरूप मतिज्ञान

(२१८) स्यादेनअल्प पदार्थका धारणारूप मतिष्ठान
(२२०) स्यादेनअल्पविध पदार्थका धारणारूप मतिष्ठान
(२२२) स्यादेनअक्षिप्र पदार्थका धारणारूप मतिष्ठान
(२२४) स्यादेनिनिःसृत पदार्थका धारणारूप मतिष्ठान
(२२६) स्यादेनठक्त पदार्थका धारणारूप मतिष्ठान
(२२८) स्यादेनप्रपुत्र पदार्थका धारणारूप मतिष्ठान

पटानियादी अकारूपसाधय क्लीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ साहित सर्वांशसिद्धि का अन्वयः । अथवाय १ अन् १६, बहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । सख्यावाची यथा--एक द्वौ बहव इति । वैपुल्यवाची यथा--बहुरोदनो बहुः सूप इति । विघञ्च प्रकराची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्त्यर्थम् । आनि सूतग्रहणं असक्त्पुद्गलश्रमार्थम्

॥ इह ब्रह्मस्य ॥ संस्मर्यैवैतन्मयापिना ॥

अविशेषात् ।। ग्रहणम् ॥॥

सस्यावापी । गयाः एकः । शौ । स्वाः । इति ।

वैपुल्यवाची, यथाऽवहः, अदिन । यहः ।

मृगः । इति । विषयम् । प्रकाशवाचीः ।

शिप-ग्रहणम् ।॥ अक्षि-प्रतिपत्ति अर्धम् ।॥

अनि'सुव-ग्रहणम् : ।। असकल-पुद्गल-उद्गम

अर्थम् ॥॥

=चंद्र छद्मका (जो) गणना वा गिनती तथा समूह का वाचक है (=वाचिन्)

अजयदेवना से ग्राहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और हेर (समुद्र) में भेद नहीं

माना है सामान्य रूप से सख्या तथा ढेर अर्थों में यह शब्द को प्रक्या है ।

गणना वाचक जैसे एक दो बहुत इस प्रकार हैं

—समूह वाचक जैसे अधिक मात्र बहुत

बदाल (=शुभ) ऐसे है ॥ विष शब्द प्रकार वाची है वा भेद वाचक है

(जैसे हस्ती-चंद्र, घोड़ा, बैल, गाय, स्त्री, पत्थर इत्यादि अनेक ज्ञाति का

ब्राह्मण करने वाला षड्विध अयस्य, षड्विध ईशा, षड्विध अवाय, षड्विध धारणा है)

= (ग्रन्थों) क्षिण (गुप्त) का लाना क्षीयता (व्यपिचर) के प्राप्ति के लिये है

वर्णात् शीघ्रता से पदार्थका अवप्रहरण ज्ञान होना, ईश्वरूप ज्ञान होना, अत्रारूप ज्ञान

होना, धारणारूप ध्यान होना तो विप्र प्रश्न है

=(धन में) अनिस्तुत (खब्द) का ग्रहण दासमात् पुद्गल वा असमास्त शरीर के प्राण्टके

—लिंगे है अर्थात् समस्त वस्तु धातु प्रगट नहीं निकली हो

जैसे क्लम इय हुये हस्ती मनुष्यादिक का एक देश जानने से संपूर्ण प्याथका अवग्रह

सत्यं ज्ञानं ब्रह्म, इन्द्रात्मकं ज्ञानं ब्रह्म, अथायत्नं ज्ञानं ब्रह्म, धारणात्मकं ज्ञानं ब्रह्म, प्रज्ञा

आनिःसृत ग्रहण इ ॥

(२६५) धारणमदु पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२६७) धारणमदुविष पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२६९) धारणमधि पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७१) धारणमनिस्मृत पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७३) धारणमदुक्त पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७५) धारणमय पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७७) मानमदु पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७९) मानममदुविष पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८१) मानममधि पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८३) मानममनिस्मृत पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८५) मानममदुक्त पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८७) मानममय पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान

पदार्थ और विभक्त्यर्थ सहित हम (गोल्डवॉ) म

ब्रह्मा ॥ भगवद्

आदयः ॥ क्रिया-विशेषः ।

गुडरात ! मयम् !!

इम-निर्देश, १३४

आदीनि ॥ मन्तराणां ॥

ॐ

(२६६) श्रावणअल्य पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२६८) श्रावणअल्यविष पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७०) श्रावणअग्निप्र पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७२) श्रावणनि मृत पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७४) श्रावणउक्त पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७६) श्रावणअधुव पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२७८) मानसअल्य पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८०) मानस अल्यविष पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८२) मानसअग्निप्र पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८४) मानसनि मृत पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८६) मानसउक्त पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान
(२८८) मानसअधुव पदार्थका धारणास्य मतिज्ञान

पदत्रये और विभक्त्यर्थ सहित इम (मोलहवा) सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश भाषानुनाद

॥आश्रयतु वा आश्रयकार म लाय गय ययवा पूर्वकथित अवग्रह

—इरा अवाय तथा घारणा (जानना रूप अथवा प्रानरूप) क्रिया के विशेष वा मेद है ।

ॐ नमः शिवाय ॥

कर्मका निदय अथवा उपदेन किमा गगा है (अर्थात्) चह

आदिको नया इन्त उल्लेख (गणप्रत्यज्ञाना-श्वरूपज्ञाना अवागम्यज्ञाना घारणा रूपज्ञाना बोला हे

चरुण प्रकार (पठि पयमन्तफरि कननन निर्दु या उपदेग किया गया) हे

(१) 'तल्लु गन्डु' हम्पेटो प्रामाणिकि छद्मरूपेण गुप्तिणि दे । और 'इल्लु' नाम्ने भो त्रय 'तल्लु-गन्डु' काला गुप्त शक्ति किमि दे । तल्लु मे तल्लुवटो यतो क प्रत्य में लिता दे

पटानिवासी अगारूपसहाय वकीलशुभ पदच्छेद और विमत्सर्य सहित सर्वाभिसिद्धि का लक्ष्यः हिंदी अनुवाद । अगारूप १ पृष्ठ १९, वहुशब्दस्य संख्यावैपुल्यवाचिनो ग्रहणमविशेषात् । सख्यावाची यथा--एक द्रो वहव इति । वैपुल्यवाची यथा--चहुरोदनो वहुः सूप इति । विघञ्द प्रकारवाची । क्षिप्रग्रहणमचिरप्रतिपत्त्यर्थम् । आनि सुतग्रहणं असक्त्पुद्गोद्गमार्थम्

बाह्यं व्युत्पद्यते । संख्यायैपुन्य-शास्त्रिनः ॥

अविशेषाव । ग्रहणम् नाह

संस्थावाची. यथाऽ एकः शी. षडः। इति०=गणना वाचक जैसे एक दो शत इस प्रकार है

वैपुल्यवाची । यथाऽवह । मोदना । पद्म ।

सुपः । इति॥ । विषयः । प्रकारवाचीः ।

सिप-ग्रहणम् ।॥ अक्षि-प्रतिपति अर्थम् ।॥

असकल-गुदल-उदम

पर्यम् ॥

→ पाठ्य पुस्तक (बो) गणना का गिनती तथा समूह का वाचक है (वाचिन्)

=अभेदपना से ग्रहण किया गया है अर्थात् दोनों गणना और ढेर (समूह) में भेद नहीं

माना है सामान्य रूप से संस्था तथा ठेक अर्थों में यह शब्द प्रयोग है ।

—गणना दाचक ऐसे एक दो बार इस प्रकार है

—समग्र वाक्य कैसे अधिक मात्र प्राप्त

—बाल (=अप) ऐसे है ॥ विष अमृत प्रकार बापी है पा मेद बाचक है

(ॐ) ह्रीं हूं घोषः घलः गायः कसी पदमरुत्यादि अनेक जाति न

गणपत कर्तुं वाता वाहविष आधगाह वाहविष दिवा पाहविष अद्याय वाहविष

=(अप्रमै) विप्र (गच्छ) का लाना प्रीयणा (प्यञ्जि) के प्रसि के लिये है

अर्थात् शीघ्रता से फटाईका अन्वार्कण बान होना निम्नरूप बान होना

होना धारणारूप प्राप्त होना ही स्थिर अवस्था है

३(मूल में) अतिमूल्य (गुण) का मूल्य समान मात्र में है —

एतान्नासी जगत्संसाराय केवलं कृतं पश्येत् और निगमस्वर्यं साक्षि सत्वायै सिद्धिका केवल्यः हिंदी अनुवाद । अन्वय १ वम १६,
 क्षिप्रमवग्रहः । चिरेणावग्रहः । अग्नि सृतस्यावग्रहः । निःसृतस्यावग्रहः । अनुकृतस्यावग्रहः । उक्तस्यावग्रहः ।
 अवस्यावग्रहः । अधुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियाद्वारैर्मनसा
 च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

=क्षिप्र अवग्रह अर्थात् क्षीप्रया से पदार्थका अवग्रहरूप ज्ञान होयाना
 =क्षी से या चिक्कालक्षरि वा बहुत कालक्षरि अवग्रह अर्थात्
 वस्तुका क्षीरे क्षीरे बहुत कालमें मानना (सो चिर अवग्रह है)

अग्निःसृतस्यः॥ अवग्रहः॥ निःसृतस्यः॥ अवग्रहः॥

अन् उक्तस्यः॥ अवग्रहः॥ उक्तस्यः॥ अवग्रहः॥

धुवस्यः॥ अवग्रहः॥ चः॥ अधुवस्यः॥ अवग्रहः॥

इतिः॥ अवग्रहः॥ द्वादशविकल्पः॥ एवग्रहः॥

ईहाः॥ आदयाः॥ अपिः॥

ये । एते ॥

प्रत्येकम् ॥ पञ्चभिः॥ इन्द्रियैः॥ मनसाः॥ चः॥

प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

=सर्व प्रगट न हो सका अवग्रह, साक्ष निकले हुये प्रगटकर्म का अवग्रह

=विना कहे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कही हुई वस्तुका अवग्रह

=प्रवृत्ता मत्तवग्रह और (=च) अधुवका अवग्रह वा अधुवका ग्रहण

=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है । (और) इस भाँति (=एकम्)

=ईहा अवाय-वारणा (=आस्यः) भी (अपि) (बारह बारह प्रकार) है

अर्थात् सब मिलकर अद्वालीस येद हुये

ज्वे (अवग्रह बारह प्रकार और) ये (ईहा, अवाय, वारणा छवीस प्रकार में से)

=प्रत्येक पाँच इन्द्रियों द्वाराक्षरि और (=च) मनसे

=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाये हैं अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, वारणा

प्रत्येक के बारह बारह येद हैं सो इन अद्वालीस येदों को पाँच और छठा मन पर

लगाने से सप्त दोसों अठाली येद हुये

दृष्टाव वा अवग्रह का यों भी के सत्य है कि बहुत जायों में काही स्वेत-कावरी-काही मुंढी अनेक प्रकार
 की है बहुविध ता इस जायों में से माना । कावरी जायों का माही है और एकविध केवल एक यकदी जायका
 मध्य करने वाला है । यह किम और भाषि में यही भेव या सत्वर है य

प्रातिपदी अगस्त्यसंहार्य वहीलकृत पञ्चदश और विषयस्यैव सहित सर्वाधिकारिका शब्दशः हिदा अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १६

वहूनामनुक्तमभिप्रायेण ग्रहणम् । प्रव निरन्तर यथार्थग्रहणम् । सेतरग्रहण प्रतिपक्षसंग्रहार्थम् ॥ वहूनामवग्रह । अत्यस्यावग्रह । बहुविधस्यावग्रह । एकविधस्यावग्रह

प्रदानम् १, अभिप्रायेण १, ग्रहणम् १, ॥

अनु उक्तम् ॥

निरन्तरम् ॥ यथार्थम् १, ग्रहणम् १, ॥ प्रवम् ॥

=बहुतों का (बिना कहे हुये) अभिप्राय अथवा प्रयोजन से ग्रहण सो
=अनुक्त है अर्थात् वचन से सुने बिनाही अभिप्राय से जान लेना अनुक्त (ग्रहण) है
=अमीम या लगातार जैसा का वैसा (=यथार्थ-ठीक ठीक पदार्थ का) ग्रहण प्रव है
अर्थात् निरन्तर पदार्थ के सत्य स्वरूप का निश्चलरूप से ज्ञान होते रहना
सो प्रव ग्रहण है

स-इतग्रहणम् ॥

प्रतिपक्ष-संग्रह मयम् ॥

वहूनाम् १, अवग्रहः १, अवग्रहः १

बहु विधस्य १, अवग्रहः १

एक विधस्य १, अवग्रहः १

=इस मुख्य सेतर (वाक्य) का ग्रहण (इन बहु-बहुविध आदिक के)
=प्रतिपक्षियों के वा विरुद्धों के सचये के लिये हैं (अर्थात्)
=बहुत (पदार्थ) निका अवग्रह और थोड़े (पदार्थ) निका अवग्रह
=बहुविध वा अनेक प्रकार के (पदार्थ) निका अवग्रह (और)
=एकविध अथवा एक माँति के (पदार्थ) निका अवग्रह

(१) २६ वक विषयवार्तिबदाय इति न प्रत्यक्षम् । बहु मयग्रह इत्यत्र बहुवचन सङ्गात् मुख्यतया ग्रहेण एक विषयस्यावग्रह इत्यर्थः ।

बहु पक्षविषयः १, अवग्रहः १, इति न प्रत्यक्षम् ॥ — पणु विषय (और) एक विषय में सेव न १ है ऐसा न समझना चाहिये (दोनों न सेव है)

बहुवचनम् ॥ अवग्रहः १ इति अत्र बहुवचन सङ्गात् ॥ — बहुतों का अवग्रह ऐसा यहाँ बहुत गणना की

मुख्यतया १, अवग्रहः १ इति अत्र बहुवचन सङ्गात् ॥ — प्रधानता से ग्रहण इति एक प्रकार की (वस्तु का) अवग्रह है

एक विधस्य १, अवग्रहः १ इति अत्र बहुवचन सङ्गात् ॥ — ऐसा अर्थ है । जैसे पणुओं में हाथी पादा ऊँच, बैल सेना हाथीदि अनेक प्रकार के हैं इसका ग्रहण सा बहुविध वा अनेक प्रकार ग्रहण है और इतसे हाथी वा पादा वा ऊँच वा बैल वा सेना एक माँति के पणु १ का ग्रहण सा एकविध अवग्रह इति ॥ है अथवा इति

एतान्निमी जगत्संसारीषु केवलकृष्ण परब्रह्म और विमलस्वरूप सहाय सर्वोपसिद्धिका सुखदा हिंदी अनुवाद । अंग्रेजी १ अत्र १६,

शिप्रमवग्रहः । विरेणावग्रहः । निःसृतस्यावग्रहः । अनुक्तस्यावग्रहः । उक्तस्यावग्रहः ।
प्रवस्यावग्रहः । अधुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्पः ॥ एवमीहादयोऽपि । ते एते पञ्चभिरिन्द्रियाद्धारैर्मनसा
च प्रत्येकं प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

विग्रहः ॥ अवग्रहः ॥

विरेण ॥ अवग्रहः ॥

अतिःसृतस्यः । अवग्रहः । निःसृतस्यः, अवग्रहः ।

अनु उक्तस्यः । अवग्रहः । उक्तस्यः, अवग्रहः ।

अधुवस्यः । अवग्रहः । च ॥ अधुवस्यः, अवग्रहः ।

इति ॥ अवग्रहः । द्वादशविकल्पः । एवग्रहः

ईहा ॥ आदयः । अपि ॥

वे । एवे ।

प्रत्येकस्य ॥ पञ्चभिः । इन्द्रियादयः ॥ मनसा ॥

प्रादुर्भाव्यन्ते ॥

=सिप्र अवग्रह अर्थात् क्षीयता से पदार्थका अवग्रहरूप ध्यान होवाना

=भीरी से वा चिरकालकरि वा बहुत कालकरि अवग्रह अर्थात्

वस्तुका चीरे चिर बहुत कालमें जानना (सो चिर अवग्रह है)

=सर्व प्रगट न हो सका अवग्रह, बाध निकले हुये प्रगटरूप का अवग्रह

=किना कबे हुये (पदार्थ) का अभिप्राय से अवग्रह, कबी हुई वस्तुका अवग्रह

=धुवका अवग्रह और (=च) अधुवका अवग्रह वा अधुवका प्राण

=इस प्रकार अवग्रह बारह प्रकार है । (बीरे) इस भाँति (=एवम्)

=ईहा अवाय-वारणा (=अन्वयः) भी (अपि) (वारह बारह प्रकार) है

अर्थात् सब मिलकर अद्वैतीय येद हुये

=वे (अवग्रह गारह प्रकार और) ये (ईहा, अवाय, वारणा छीस प्रकार में से)

=अत्येक पाँच इन्द्रियों द्वाराकर्त्तरी और (=च) मनसे

=आविर्भाव वा प्रगट वा प्रकाश किये जाते हैं अर्थात् अवग्रह, ईहा, अवाय, वारणा

प्रत्येक के बारह बारह येद हैं सो इन अद्वैतीय येदों को पाँच और छठा मन पर

लगाने से सब दोहों अठ्ठासी येद हुये

छाया वा अवग्रह को यों भी से सत्य है कि बहुत गावों में काही खेत-कावरी-काही मुँही बनेक ५ खर
की है बहुतविष ठो इस गावों में से बाला । एकास्की गावों का प्राणी है और पक्षविष केवल एक वर्षकी गायका
मरण करने वाला है ५ एक विष ओद गाविय में पानी येद वा अन्तर है ॥

पठानिवासी जगत्प्रादाय क्लीलकृत पदः॥ और विमर्त्यार्थं सहित सर्वाधिसिद्धिका शुद्धः॥ हिंदी अनुवाद । अध्याय १ अथ १६

तत्र ब्रह्मवग्रहादय मतिज्ञानावरणक्षयोऽशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति । नेतर इति । तेषामभ्यर्हितत्वादादौ ग्रहणं क्रियते ॥ बहुवहुविधयो क प्रतिविशेषः । यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमास्ति ।

तत्र० यद् अयमद आदयः ।

मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात् ।

प्रभवन्ति T इतरे ।

० इति०

० तस्मै ० अभ्यर्हितत्वात् ॥

आदौ । प्रहणम् । कियते T बहु-बहुविधयो

क । प्रतिविशेषः । यावता । बहुषु ।

बहुविधेषु । अपि० बहुत्वम् । अस्ति T

=वहाँ (यूत्रमें) बहु अद्यग्र आदि (=बहु विध, विप्र, अमिःसुत, अनुक्त, प्रुव)

=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अधिकतासे वा उत्कर्षतासे

=उपजै है । अन्य वा अक्षेप अर्थात् अल्प, एकाविध, विप्र, निःसृत, उक्त, अशुच

=ऐसे नहीं है अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से

नहीं होते हैं बरन जोड़े क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छे पीछे कहे गये हैं

=तिन (बहु, बहुविध, विप्र, अनिःसृत, अनुक्त, प्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे

=आदि में वा प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है । (प्रभ) बहु और बहुविध में

=क्या भेद का अन्तर है (क्योंकि) ययार्थ में (=यावता) बहु में और

=बहुविध में भी (=अपि) बहुत्वमा है

(१) आदि शब्देन बहुविधावग्रहादयो सूक्ष्मत्वे ०
आदि-शब्देन । बहुविध गत्वम् आदयः । आदि शब्दसे बहुविध अग्रग्रह आदि अर्थात् विमर्षग्रह, अनिःसृतअग्रग्रह, अनुक्तअग्रग्रह, प्रुवअग्रग्रह सूक्ष्मत्वे T

(२) यत्ने इतराद्यप्युहीताऽ यद्यत्राश्रयः ॥

=प्रहणं क्रिये गये है

यत्ने ॥ इतराद्यप्युहीताः । अवद् अयमद्

मादयः ।

=इत सौकरतां सूत्रमें इतर शब्दसे क्रिय गये है अवद् अग्रग्रह

=आदि० अर्थात् अग्रअग्रग्रह (या अवद्अग्रग्रह) अत्यविप्रअग्रग्रह, अतिप्रअग्रग्रह

निःसृतअग्रग्रह, उक्तअग्रग्रह, अशुचअग्रग्रह ॥

एतानिवाही उगारूपसहाय एकीकृत पञ्चदेव और निमन्त्रण सहित सर्वाभिहितका शब्दशः विदितबुद्ध्या अप्याय १ धृम १६

एक प्रकारानाप्रकारकृतो विशेष ॥ तद्वनि सुतयो क प्रतिविशेष ! । यावता सकलनिःसरणाभि सुतम् ।
तत्क्रम्येवविधमेव ॥ अयमस्ति विशेष - धन्योपदेशपूर्वक ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहण निःसृतम् ॥ अपरेयां
क्षिप्रनिःसृत इति पाठः ॥ त एव वर्णयन्ति-श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाण मयूरस्य वा कुररस्येति कश्चि
प्रतिपद्यते । अपर स्वरूपमेवानिःसृत इति ।

एक प्रकाराना प्रकार कृताः १। विशेषः १।

उक्त-निःसृतयोः २ कः १। प्रतिविशेषः २।

यावताः सकलनिःसरणात् १॥ निःसृतम् १॥

उक्तम् १॥ अपिः एवम् १ विषय १॥ एवम् १॥

अयम् १। अस्ति १ विशेषः १। अन्य-उपदेश-

पूर्वकम् १॥ ग्रहणम् १॥ उक्तम् १॥ स्वतः १ एवम् १

प्रत्यम् १॥ निःसृतम् १॥ नपरेयम् १। विप्र-

निःसृतः १। इति १ पाठाः १।

वे १ एवम् १ वर्णयन्ति १ श्रोत्र-इन्द्रियेण १॥

शब्दम् १। अस्तुष्टमाणं १। मयूरस्य १। वा कुररस्य १। वाः १

इति १ कश्चित् १ प्रतिपद्यते १

अपरः १ स्वरूपम् १। एवम् १ अनिःसृतः १। इति १

=एक प्रकार अनेक प्रकार से किया हुआ येव अथवा अंतर है

=उक्त और निःसृत में क्या निम्नता (=प्रतिविशेष) है

=ज्योंका त्यों समस्त प्रगट होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति जो सो निःसृत है

=उक्त भी इसी (=एवम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगटवा है

=(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह येव है कि दूसरे क उपदेश

=निमित्तक ग्रहण सो उक्त है । अनेमाप (=स्वतः) ही

=ग्रहण सो निःसृत है । अन्य वा दूसरे (आचार्य) निका क्षिप्र

=निःसृत पाठ है अर्थात् सोलशवां छत्र बहु बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानिःसृत" के

स्वानमें क्षिप्रानिःसृत पढ़ते हैं अत निःसृत शब्द पढ़ते छे शब्दों में आता है

=वे (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्ण इन्द्रिय से

=अग्रग्रह किया हुआ शब्द मोरका वा कुररि (कुरर-मूत्र) पक्षिका (शब्द) है

=येसा कोई प्रतिपादन करते हैं (=कश्चित् प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)

=दूसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् छत्रमें अब प्रथम छे शब्दोंमें निःसृत माना सब उससे

भिन्न अथवा उल्टा शब्द अनिःसृत सोलशवां छत्र बहुबहुविध इत्यादिमें ग्रहण होनेवा

गणानिवासी जगत्प्रसादाय वकीत्स्फुट पद-॥ और विषयस्वर्य सहित सर्वार्थसिद्धिका सम्पन्नः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ १६

तत्र उद्धवग्रहादय मतिज्ञानावरणक्षयोऽशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति । नेतर इति । तेषामभ्यासितत्वादादौ प्रहणं प्रियते ॥ बहुबहुविधयो क प्रतिविशय ! ! यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमस्ति ।

तत्र यद् अत्र प्रत्ययः ।

मतिज्ञान आवरण-क्षयोपशम-प्रकर्षात् ।

प्रभवन्ति त इत्ये ।

न इति०

=वर्ग (मन्त्रे) ग्रा अवग्रह आदि (=बहु-विध, विप्र, अनि-सुत, अनुक्त, प्रुव)

=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपशमकी अविकलासे वा उत्कर्षतासे

=उपजे हैं । अन्य वा अवशेष अर्थात् अत्य, एकविध, चिर, नि-मृत, उक्त, अनुव

=ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपशमकी उत्कर्षता से

नहीं होते हैं वरत थोड़े क्षयोपशमसे होते हैं अतः ये छे पीछे कहे गये हैं

=तिन (बहु, बहुविध, विप्र, अनिस्तुत, अनुक्त, प्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे

=आदि में वा प्रारम्भ में ग्रहण किया गया है । (प्रश्न) बहु और बहुविध में

=क्या येद वा खन्तर है (क्योंकि) यवार्थ में (=यावता) बहु में और

=बहुविध में भी (=अपि) बहुत्वना है

(१) आदि शब्देन बहुविधप्रदायका एकान्ते ॥

आदि-शब्देन । बहुविध प्रत्यग्रह आक्षेपः । = आदि शब्दसे बहुविध अक्षय आदि अर्थात् सिद्धांतप्रदाह, अनिस्तुतप्रदाह प्रत्युक्तप्रदाह, प्रुवअक्षयप्रदाह एतान्ते ।

(२) यत्ने इत्यप्यपुष्टेता ऽ बहुबन्धप्रदायकः ॥

इत्ये । इत्यप्यपुष्टेताः । अत्र बहु अत्रग्रह

प्रदायः ।

= इस सोचकरवा सुषर्णे इतर शब्दसे किये गये हैं अत्र बहु अक्षयप्रह

= आदि क अर्थात् अत्यप्रदायक (वा अत्रबहुअक्षयप्रह) अक्षयविधप्रदाहप्रह, अनिप्रप्रदाह

मिःपुष्टप्रदायकः प्रुवअक्षयप्रह, अत्रबहुअक्षयप्रह ॥

एटानिवासी जगत्समाहास एकीकृत पद-च्छेद और विभक्त्यर्थे सहित सर्वाधिकारिका उपस्था विदेशानुवाद अभ्यास १ खण्ड १६

एक प्रकार नानाप्रकारकृतो विज्ञेयः ॥ उक्तनि सुतयो क प्रतिविज्ञेयः । यावता सकलनिःसरणाभि सुतम् ।
उक्तमप्येवविधमेव ॥ अयमस्ति विशेषः-धन्योपदेशपूर्वक ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहण निःसृतम् ॥ अपरेया
क्षिप्रनि-सृत इति पाठ ॥ त एवं वर्णयन्ति-श्रौतान्त्रियेण शब्दमवगृह्यमाण मयूरस्य वा कुररस्येति कश्चि
त्यतिपद्यते । अपरः स्वरूपमेवानि-सृत इति ।

एक प्रकार-नाना प्रकार कृतः । विज्ञेयः ।

उक्त-निःसृतयोः २ कः । प्रतिविज्ञेयः ।

यावता सकलनिःसरणात् । निःसृतम् ।

उक्तम् । अपि एकः विधम् । एकः

अयम् । अस्ति । विशेषः । अन्य-उपदेश-

पूर्वकम् । ग्रहणम् । उक्तम् । स्वतः एव

ग्रहणम् । निःसृतम् । अपरेयाम् । क्षिप्र-

निःसृतः । इति पाठः ।

ये । एकः कर्षयन्ति । श्रौतान्त्रियेण ।

शब्दम् । अकृतप्रमाणं । मयूरस्य । वा कुररस्य । वा

इति कश्चित् प्रतिपद्यते ।

अपरः । स्वरूपम् । एव अनिःसृतः । इति

=एक प्रकार अनेक प्रकार से किया हुआ यैद अथवा अंतर है

=उक्त और निःसृत में क्या भिन्नता (=प्रतिविज्ञेय) है

=ज्योंका त्यों समस्त प्रगत होनेसे निःसृत है अर्थात् पूरा व्यक्ति हो सो निःसृत है

=उक्त भी इसी (=एकम्) प्रकार ही है अर्थात् उक्तमें भी समस्त प्रगतता है

=(परंतु अनिःसृत और उक्त में) यह यैद है कि इसरे के उपदेश

=निमित्तक ग्रहण सो उक्त है । अपनेभाष (=स्वतः) ही

=ग्रहण सो निःसृत है । अन्य वा इसरे (आचार्य) निःसृत क्षिप्र

=निःसृत पाठ है अर्थात् सोलहवां सूत्र यह बहुविध इत्यादिमें "क्षिप्रानि-सृत" के

स्थानमें क्षिप्रानिःसृत पढ़ते हैं अतः निःसृत शब्द पहले छे शब्दों में आया है

=ये (आचार्य) इस प्रकार कहते हैं कि कर्म इन्द्रिय से

=अपवाद किया हुआ शब्द मोरका वा कुररि (कुरर-ईश्वर) पक्षीका (शब्द) है

=येसा कोई प्रतिपादन करते हैं (=कश्चित् प्रतिपद्यते) (सो निःसृत है)

=इसरा रूपही अनिःसृत है अर्थात् सूत्रमें अब प्रथम छे शब्दोंमें निःसृत माना तब उससे

भिन्न अथवा उल्टा शब्द अनिःसृत सोलहवां सूत्र यह बहुविध इत्यादिमें ग्रहण होवेगा

पठानिवासी जगद्गुरुदाय कवीलकृष्ण पद ३ औः विमलवर्ण सहित सर्वायसिद्धिदा सुखदा । विदी अनुवाद । वर्षायाम १ सुत्र १६
तत्र नक्षत्रग्राहय मतिज्ञानावरणक्षयोऽशमप्रकर्षात् प्राभवन्ति । नेतर इति । तेषामभ्यासितत्वादादौ प्रहरणं
क्रियते ॥ बहुबहुविधयोः क प्रतिविशेषः । यावता बहुषु बहुविधेष्वपि बहुत्वमास्ति ।

तत्र ३ बहु अथवा आदयः ॥

मतिज्ञान आवरण-अयोपक्षम-प्रकर्षात् ॥

प्रभवन्ति ॥ इतरे ॥

न ३ इति ३

वृत्तात् । अभ्यासितत्वात् ॥

मादौ ॥ प्रथमम् ॥ ॥ क्रियते ॥ बहु-बहुविधयोः

कः । प्रतिविशेषः । यावता । बहुषु ॥

बहुविधेषु । अपि ३ बहुत्वम् ॥ अस्ति ॥

=वहाँ (मयमें) बहु अथवा आदि (=बहु-विष, विप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव)

=मतिज्ञानावरणीयकर्मके क्षयोपक्षमकी अधिकतासे वा उत्कर्षतासे

=उपलब्ध है । अन्य वा अशेष अर्थात् अस्य, एकविध, विर, निःसृत, उक्त, अनुव

=ऐसे नहीं हैं अर्थात् ये मतिज्ञानावरणीय कर्मके क्षयोपक्षमकी उत्कर्षता से

नहीं होते हैं वरन जोड़े क्षयोपक्षमसे होते हैं अतः ये छं पीछे छोड़े गये हैं

=तब (बहु, बहुविध, विप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव) का प्रधान होनेके हेतुसे

=आदि में वा प्रारम्भ में प्रहरण किया गया है । (प्रम) बहु और बहुविध में

=क्या येद का अन्तर है (क्योंकि) यथार्थ में (=यावता) बहु में और

=बहुविध में भी (=अपि) बहुत्वना है

(११) आदि इतरे बहुविधायमादयो पृथगन्ते ॥

आदि-इतरे ॥

पृथगन्ते ॥

(१) भवे इत्यप्यप्युहीयाः ५ पदस्यहास्यः ॥

भवे ॥ इत्यप्यप्युहीयाः ॥

अप्यप्युहीयाः ॥

=इस सोचकरता सुनने इतर वाक्यसे किये गये हैं याबहु अथवा

=आदि-इतरे अप्यप्यप्युहीया (या अथवाअथवा) अत्यविधायमादयो, अतिप्रमममम

निःसृतअथवा बहु उक्तअथवा, अनुक्तअथवा ॥

पदानिवासी-भेदरूपसहाय कहीलकृत पदच्छेद और निमित्तस्वर्य सहित सर्वावसिद्धिका शुद्धता हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १६

ध्रुवब्रह्मस्य धारणायाश्च कः प्रतिविशेषः । उच्यते । क्षयोपशमप्राप्तिकाले विशुद्धपरिणामसन्तत्या प्राप्ता त्क्षयोपशमाभ्यामसमये यथावग्रहस्तथैव द्वितीयादिष्वपि समयेषु नानाम्याधिक इति ध्रुवब्रह्म इत्युच्यते ॥ यदा पुनर्विशुद्धपरिणामस्य संक्षेपपरिणामस्य च मिश्रणात्क्षयोपशमो भवति तत् उत्पद्यमानोऽब्रह्म कदाचिद्वृद्धो कदाचिदल्पस्य कदाचिद्वृद्धविधस्य कदाचिदेकविधस्य वेति न्यूनाधिक भावात् ध्रुवब्रह्म इत्युच्यते ॥ धारणा पुनर्गुं तीर्थोविस्मरणकारणमिति महदनयोरन्तरम् ॥

ध्रुवब्रह्मस्य १, कः धारणायाः ॥ कः ।
प्रतिविशेषः । उच्यते । उत्पद्यते । उत्पद्यते । उत्पद्यते ।
विशुद्धपरिणामसन्तत्या १, क्षयोपशमप्राप्तिकाले १,
प्राप्तात् १, प्रपत्समये १, यथा १, अवग्रहः १,
तथा १, इतिमादिषु १, समयेषु १, अपि १,
न १, न १, न १, न १, इति १,
ध्रुवब्रह्मस्य १, इति १, उच्यते । यदा १, पुनः १,
विशुद्धपरिणामस्य १, कः संक्षेपपरिणामस्य १,
निबन्धन १, क्षयोपशमः १, भवति । तदा १,
उत्पत्तमान १, अवग्रहः १, कदाचिद् १, यदुनाम् १,
कदाचिद् १, न्यूनस्य १, कदाचिद् १, बहुविधस्य १,
रा १, कदाचिद् १, एकविधस्य १, इति १, न्यून
अधिकभावात् । अधुना-अब्रह्म १, इति १, उच्यते ।
धारणा १, पुनः १, गृहीत अर्थ-मविस्मरण-कारण-
इति १, अनयोः १, महत् १, ॥ अन्तरम् ॥

=ध्रुव अवग्रहके और (=क) धारणाके क्या
=येद अथवा अन्तः कहा गया है । क्षयोपशमके लाभ कालमें
=विशुद्ध स्वभावके विस्तार वा सन्तानकरि क्षयोपशमकी
=उच्चि से पहिले समय में वैसा अवग्रह है
=वैसा ही दूसरे आदिक समयों में भी (होय)
=न हीन (होय) न अधिक (होय)
=ध्रुव अवग्रह ऐसा कहा गया है । और (=पुनः) अब
=विशुद्ध परिमाणका और (=च) संक्षेप परिमाणका
=मिलाप होने से वा संयोग से क्षयोपशम होता है । यहाँ से
=उत्पन्न होनेवाला अवग्रह कमी (=कटावित्) बहुतों का
=कमी योहों का कमी बहुत प्रकार का
=अथवा (=वा) कमी एक प्रकार का ऐसे हीन
=अधिकरूपा से (=अधिकभावात्) अधुनाब्रह्म इस प्रकार कहा गया है
=पुनः धारणा ग्रहण किये हुये पदार्थका न चलनेका रहत (रूपमान) है
=इस प्रकार इन दोनों (ध्रुव अवग्रह और धारणा) में बड़ा फेद है ॥

पटानिवासी वगरूपसहाय कभीलकृत परच्छेद और विपक्षत्वं सहित सर्वाधिकारिणां कृत्यः हिदां अनुवाद । अध्याय १ कृत् १७

अर्थस्येत्युच्यते । केचित्प्रवादिनो मन्यन्ते रूपादयो गुणा एव इन्द्रियैः सन्निकृत्यन्ते तेषामेव ग्रहणमिति । तदयुक्तम् । नहि ते रूपादयो गुणा अर्मुता इन्द्रियैः सन्निर्यमापद्यन्ते । न तर्हि इदानीमिदं भवति रूप मया दृष्टः गन्धो वा घ्रात इति भवति कथम् ।

अर्हस्य । इति उच्यते । केचित् प्रवादिनः । = 'अर्हस्य' ऐसा (अत्र) कहा गया है । (स्वर्णिक) केर्ष (= केचित्) अन्यवादी मन्यन्ते ह्य-आद्यः । गुणाः । एवम् इन्द्रियैः ॥ = मानते हैं (कि) रूपादिक गुण ही इन्द्रियैर्षरि = स्पष्ट जाते हैं वा ग्रहण किये जाते हैं (= सम्भूतयन्ते) । तिन (स्मादिक गुणों) का ही सम्भूतयन्ता तपास् । एवम् - अग्रपक्ष होता है (प्राज्यम) (नकि इव्योक्ता अग्रपक्ष इन्द्रियों से होय है) ॥

इति ॥ तद् ॥ अयुक्तम् ॥

=(ब्योडि परप्रत्ती अपोधाने) व्यादिक गण अवसिक्त (आकार रसि) है ।

[illegible][illegible]

वाइक्य विनामः०
= (व) बवादा (पर) भम करवा है (म) वा (= वाह) श्व घगम

इदम्॥॥ नः स्वात्तु हस॥॥ मयाः, दुः॥॥
=यह (कपल) नहा जाता है। कल्प मुक्त देखा गया।

गन्व' । वा० प्रात । इति० भवति० कश्मू० ॥ वा० गध युगसं युवा गया । एसा कस (प्रतात) हागा [द्वयः हासा ह] अया

घादी कृता है कि यदि आप रूपादिक गुणका इन्द्रियाँ सत्य संवेद न मानिये ता

(मैंने लप देखा और मैंने गंध सूंघा यह प्रतीति न होगी ॥ (उत्तर)

(१) नमः सुमेरुणा ॥ (परमार्थोक्तम्) ॥

‘परमेश्वरी मयेभावे’, ऐसा वाक्य दोमध्यमें वाचिष्ठ लिखारिष्ट है ॥

11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100 101 102 103 104 105 106 107 108 109 110 111 112 113 114 115 116 117 118 119 120 121 122 123 124 125 126 127 128 129 130 131 132 133 134 135 136 137 138 139 140 141 142 143 144 145 146 147 148 149 150 151 152 153 154 155 156 157 158 159 160 161 162 163 164 165 166 167 168 169 170 171 172 173 174 175 176 177 178 179 180 181 182 183 184 185 186 187 188 189 190 191 192 193 194 195 196 197 198 199 200 201 202 203 204 205 206 207 208 209 210 211 212 213 214 215 216 217 218 219 220 221 222 223 224 225 226 227 228 229 230 231 232 233 234 235 236 237 238 239 240 241 242 243 244 245 246 247 248 249 250 251 252 253 254 255 256 257 258 259 260 261 262 263 264 265 266 267 268 269 270 271 272 273 274 275 276 277 278 279 280 281 282 283 284 285 286 287 288 289 290 291 292 293 294 295 296 297 298 299 300 301 302 303 304 305 306 307 308 309 310 311 312 313 314 315 316 317 318 319 320 321 322 323 324 325 326 327 328 329 330 331 332 333 334 335 336 337 338 339 340 341 342 343 344 345 346 347 348 349 350 351 352 353 354 355 356 357 358 359 360 361 362 363 364 365 366 367 368 369 370 371 372 373 374 375 376 377 378 379 380 381 382 383 384 385 386 387 388 389 390 391 392 393 394 395 396 397 398 399 400 401 402 403 404 405 406 407 408 409 410 411 412 413 414 415 416 417 418 419 420 421 422 423 424 425 426 427 428 429 430 431 432 433 434 435 436 437 438 439 440 441 442 443 444 445 446 447 448 449 450 451 452 453 454 455 456 457 458 459 460 461 462 463 464 465 466 467 468 469 470 471 472 473 474 475 476 477 478 479 480 481 482 483 484 485 486 487 488 489 490 491 492 493 494 495 496 497 498 499 500 501 502 503 504 505 506 507 508 509 510 511 512 513 514 515 516 517 518 519 520 521 522 523 524 525 526 527 528 529 530 531 532 533 534 535 536 537 538 539 540 541 542 543 544 545 546 547 548 549 550 551 552 553 554 555 556 557 558 559 560 561 562 563 564 565 566 567 568 569 570 571 572 573 574 575 576 577 578 579 580 581 582 583 584 585 586 587 588 589 590 591 592 593 594 595 596 597 598 599 600 601 602 603 604 605 606 607 608 609 610 611 612 613 614 615 616 617 618 619 620 621 622 623 624 625 626 627 628 629 630 631 632 633 634 635 636 637 638 639 640 641 642 643 644 645 646 647 648 649 650 651 652 653 654 655 656 657 658 659 660 661 662 663 664 665 666 667 668 669 670 671 672 673 674 675 676 677 678 679 680 681 682 683 684 685 686 687 688 689 690 691 692 693 694 695 696 697 698 699 700 701 702 703 704 705 706 707 708 709 710 711 712 713 714 715 716 717 718 719 720 721 722 723 724 725 726 727 728 729 730 731 732 733 734 735 736 737 738 739 740 741 742 743 744 745 746 747 748 749 750 751 752 753 754 755 756 757 758 759 760 761 762 763 764 765 766 767 768 769 770 771 772 773 774 775 776 777 778 779 780 781 782 783 784 785 786 787 788 789 790 791 792 793 794 795 796 797 798 799 800 801 802 803 804 805 806 807 808 809 810 811 812 813 814 815 816 817 818 819 820 821 822 823 824 825 826 827 828 829 830 831 832 833 834 835 836 837 838 839 840 841 842 843 844 845 846 847 848 849 850 851 852 853 854 855 856 857 858 859 860 861 862 863 864 865 866 867 868 869 870 871 872 873 874 875 876 877 878 879 880 881 882 883 884 885 886 887 888 889 890 891 892 893 894 895 896 897 898 899 900 901 902 903 904 905 906 907 908 909 910 911 912 913 914 915 916 917 918 919 920 921 922 923 924 925 926 927 928 929 930 931 932 933 934 935 936 937 938 939 940 941 942 943 944 945 946 947 948 949 950 951 952 953 954 955 956 957 958 959 960 961 962 963 964 965 966 967 968 969 970 971 972 973 974 975 976 977 978 979 980 981 982 983 984 985 986 987 988 989 990 991 992 993 994 995 996 997 998 999 1000 1001 1002 1003 1004 1005 1006 1007 1008 1009 1010 1011 1012 1013 1014 1015 1016 1017 1018 1019 1020 1021 1022 1023 1024 1025 1026 1027 1028 1029 1030 1031 1032 1033 1034 1035 1036 1037 1038 1039 1040 1041 1042 1043 1044 10

पटाग्निमसी अगस्त्यसहाय वक्रोष्ठकृत पञ्चदश और त्रिमस्यार्थ सहित सवर्णसिद्धिका अष्टमः द्विती अत्रुवाद । अस्याप १ सत्र १७, १८ तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाद्रूपादिष्वपि सव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादयः सर्वे स्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

वस्तिन् १ ॥ इन्द्रियैः ॥ सन्निकृष्यमाणे १ ॥ रूपादिषु १ ॥ = विस (द्रव्य) में इन्द्रियों से संवच होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में अपि ॥ उरू अव्यतिरेकात् १ ॥ संव्यवहारः १ ॥ = भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकों) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार युन्यवे १ ॥ = प्रवर्तना है अर्थात् सब द्रव्य से और इन्द्रियों से संवच होता है तप (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रवर्तता है कि रूप में वेखा वा गंध में स्ने संवा इत्यादि

किम् ॥ इमं १ ॥ अवग्रह आदयः १ ॥ सर्वस्य १ ॥

इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य १ ॥ भवन्ति १ उक्तं कश्चित् १

विषय-विशेषः १ ॥ अस्ति १ इति १ अत्र १ आह १

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

व्यञ्जनस्य १ ॥ अवग्रहः १ ॥

एवम् भवति १ न ईहा-आदयः १ ॥

= अव्यक्त वा अग्रगट (जे छन्दादिक) पदार्थ है विसका अवग्रहरूपमान
= भी (व्यक्) होता है न कि ईहा अवाय और धारणारूप ज्ञान होते हैं अर्थात् इस प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त प्रगट वस्तुओं के संवच में इसरा अव्यक्त वा अग्रगट वस्तुओं के संवच में परंतु ईहा अवाय-धारणा ये तीन ज्ञान फेरल प्रकट वा व्यक्त पदार्थों के संयोग में होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक जानने योग्य होनावा है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त होनावा है तब व्यञ्जनावग्रह नहीं रहता है

एटानिवासी आरुणसहाय यकीसकृत परच्छेद और विषयार्थ सहित स्वार्थसिद्धिका श्रवणः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १७
 ह्यतिपर्यायोस्तेर्वार्यत इत्यर्थो द्रव्य ।

पर्यापान् । इति वा ३ । अथेति ।

= जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (= वा) तिन (पर्यायों) करि (= तो) जो प्राप्त किया जाता है ।

इति अर्थः । द्रव्यम् ॥

= ऐसा अर्थ अर्थात् फलार्थ वा वस्तु है (तो) गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है ।

- (१) इति—यह शब्द शुद्धेत्यादि शीघ्र पर्यवेक्ष्य (= आता गमन करना) धातुके प्रथम (अथ) पुरुष कर्त्तरि प्रथम परस्मैपद पर ३ पक्षम वर्तमान कालकी क्रियाका रूप है । यह रूप हम प्रकार बना है कि एतदियमप्यवे धातुकोकि अग्न इत्यादिमें धातु कुछ नियमोंके अनुसार बोधयत्ना जाता है । हम यह धातुमें “एकाका द्व प्रथमस्” १-१-१ आह्वानायी ॥ (धातुके) प्रथम एकाव (अथवा) को मिल हो अर्थात् वे धातु मिलनेमें एक स्वर हो ता उस शरका सुरत देते हैं (जैसे यह धातु का स्वर दोहराने से यह रूप देता रूप क्या) यदि धातुके प्रारम्भमें व्यञ्जन हो तो प्रारम्भिक व्यञ्जन मरिह स्वरको राहता देते हैं (जैसे पुन-पण्य का पुन रूप हो जाता है) ॥ धातु (शुद्धेत्यादि का विकरण) पर हा (एकास्मिं भावे) तो अति और निर्गति धातुकोकि अनप्राप्त को १ आदेश हो अन्य अर्थात् यह रूप देनेके प्रथम रूप के स्थानमें इ होवे अतः रूप न = इ रूप (७-४-७ अह्वानायी) = इ पू रूप (अभ्यासस्यानवर्त्ये = अभ्यासस्थ-असक्ये (धोरत्य-अवर्त्ये) = धातवर्त्तनं अर्थात् परे हो ता अभ्यासके रूप और उर्ध्व का रूप (= इय) उच्यते (= उच्यते) आपे हो ११-४-७ टिप्पणी पृष्ठ ५१ से इस रूप का गुण होकर इअर देता रूप हुआ इसमें प्रथम पुरुष कर्त्तरि प्रथम परस्मैपद एक काल वर्तमान कालकी क्रियाका ति प्रथम मोक्षनेसे इअर ति हुआ = इति ।
- (२) अर्थात्—धातु ही (अर्थात् द्वितीयाग्न आत्मने पदी) = सोम्य सुपान करना) के ई स्वरके स्थानमें किय संज्ञक मय्यके पहिले जिसके प्रारम्भमें व हो और धातु का (प्रथम और तीसरे गणका धातु परस्मैपदी = प्राप्त करना, जाना) और धातु (= आगता द्वितीयाग्न के) गुण होजाते हैं आत्मने परका है प्रथम कर्मणि प्रथानमें छात्रायो जाता है अतः ही द्वितीय गण आत्मनेपदी = छात्रते सुकावा जाता है धातु = द्वितीयाग्न परस्मैपदी आगते = आगता जाता है (ऐको धातु ऊन धेति का पृष्ठ ३१४) न = अर (गुण संज्ञा करानेसे) व कर्मणि प्रथान प्रथम आत्मनेसे अर्थ हुआ वधाय ने प्रथम पुरुष कर्मणि प्रथान आत्मनेपदी एक काल वर्तमान कालकी क्रियाका अगते से अर्थ = ने अर्थात् प्रतिक्रिया जाता है ॥

एतानिवासी जगद्रूपसहाय कक्षलङ्घन पञ्चदश गौर विभक्त्यर्थे सहित सर्वाधिसिद्धिका मन्त्रः ॥ १७, १८ ॥
तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाश्रयादिष्वपि सत्यवहारो युज्यते ॥ किमपि अवग्रहादयः सर्वे
स्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

वस्मिन् १॥ इन्द्रियैः ३॥ सन्निकृष्यमाणे ४, रूपादियः १ ॥
अपि ५ एव अव्यतिरेकात् ६, संख्यवहारः १ ॥
युज्यते ७

किम् १॥ इमं १ ॥ अवग्रह आदयः १, सर्वस्य १ ॥
इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य १ ॥ भवन्ति ७ उत ५ कश्चित् ५
विषय-विशेषः १, अस्ति ७ इति ५ अतः ५ आह ७

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

व्यञ्जनस्य १ ॥ अवग्रहः १॥
एव ५ भवति ७ न ईहा-आदयः १ ॥

वस्मिन् १॥ इन्द्रियैः ३॥ सन्निकृष्यमाणे ४, रूपादियः १ ॥
अपि ५ एव अव्यतिरेकात् ६, संख्यवहारः १ ॥
युज्यते ७

किम् १॥ इमं १ ॥ अवग्रह आदयः १, सर्वस्य १ ॥
इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य १ ॥ भवन्ति ७ उत ५ कश्चित् ५
विषय-विशेषः १, अस्ति ७ इति ५ अतः ५ आह ७

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥

व्यञ्जनस्य १ ॥ अवग्रहः १॥
एव ५ भवति ७ न ईहा-आदयः १ ॥

इयत्तिपर्यापोस्तेर्विज्यत इत्यर्थो द्रव्यं ।

पर्यायान्, १। इयत्तिः वा० तैः १। अयमेव ।

= जो पर्यापोको प्राप्त होता है उसका (=वा) तिन (पर्यापो) करि (=तैः) जो प्राप्त किया जाता है ।

इति० अर्थः १। द्रव्यम् ॥
= ऐसा अर्थ अर्थात् पदार्थ वा वस्तु है (तो) गुण पर्यापोका समुदाय) द्रव्य है ।

(१) इति—यह शब्द मुद्रेश्वर्यदि सीमर गणके शब्द (=आत्मा गणन करणा) धातुके प्रथम (अन्व) पुरुष कर्तरि प्रथम परस्मैपद व० कथन वर्तमान कालको क्रियाका रूप है । यह रूप हम अन्वद वना है कि एतदीपणके धातुको कि आग शालीमें धातु कुछ निबन्धके अनुकूल दोहराया जाता है । हम श्च धातुमें "एषाया द प्रथमस्व" १-१-१ अष्टांगशरी ॥ (धातुके) प्रथम पञ्चम (अक्षर) को द्वित्व हो अर्थात् वे धातु जिनमें एक स्वर हो वा अन्त स्वरको दुबल देते हैं (जैसे श्च धातु का स्वर दोहराने से श्च श्च येसा रूप बना) यदि धातुके प्रारंभमें व्यंजन हो तो प्रार्थित्य व्यंजन मरिच स्वरको दोहरा देते हैं (जैसे पुर—पौरव्य का पुपुर् रूप हो जाता है) ॥ श्चु (शुद्धेश्वरि का विकल्प) पर हो (व्यञ्जने आते) दो अर्ति और विपर्यय धातुको आवास को १ आदेश हो आग अर्थात् श्च आ रूपके प्रथम श्च के स्थानमें १ होने अतः श्च श्च = १ श्च (७-४-७७ अष्टांगशरी) = ६ श्च श्च (अन्व्यामस्यामर्थे = अन्व्यामस्यामर्थे (व्योदयन्-अवर्ज) = अवर्जन अन्व परै हो ता अन्व्यामके एषम और अवर्ज का इयत् (= इय) अवर्ज (= इय) आदेश हो ११-४-७८ द्वितीय पृष्ठ ५५से इत श्च का गुण दोहरा इयत् परेसा रूप हुना सम्यं श्रम पुरुष कर्तरि प्रथम परस्मैपद एक बलव वर्तमान कालको क्रियाका वि प्रथम आदेशसे इयत् इति हुना = इयत्ति ।

(२) अर्थात्—धातु शी (अर्थात् द्वितीयगण आत्मनेपदी) = सोमा श्रवण करण (के ई स्वरके स्थानमें किर संज्ञक प्रत्ययके पहिले जिनके प्रारम्भमें व हो और धातु श्च (प्रथम और तीसरे गणका धातु परस्मैपदी = प्राप्त करना, जाना) और आपु (= जाना द्वितीयगण के) गुण होजाते हैं आत्मने परका है प्रथम कर्मनि प्रदानमें लपया जाता है अतः शी द्वितीय गण आत्मनेपदी = श्रवते सुकाया जाता है उत्पु = द्वितीयगण परस्मैपदी आत्मनेपदी = ज्ञाता जाता है (देखो धातु ऊर्ध्व किरिका पृष्ठ ११४) श्च=अर् (गुण संज्ञा करतसे) य कर्मनि प्रथम प्रथम लपयके अर्थ हुना श्चान्त् है प्रथम पुरुष कर्मनि प्रथम आत्मनेपदी एक कथन वर्तमान कालको क्रियाका ज्ञान के अर्थसे प्रत्यक्षता जाता है ॥

एतास्मिन्मार्गोऽर्थासम्भवाय वकीलकृत प्रच्छेदः और विग्रहस्यैव संहित सवायसिद्धिका श्रवणः । हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र १७, १८ तस्मिन्निन्द्रिये सन्निकृष्यमाणे तदव्यतिरेकाभावाद्विषयि सव्यवहारो युज्यते ॥ किमिमे अवग्रहादयः । सर्वे स्येन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह ॥

व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८॥

तस्मिन् १॥ इन्द्रियैः ॥ सन्निकृष्यमाणे १, रूपादिषु १, = विस (द्रव्य) में इन्द्रियों से संबंध होने पर (= सन्निकृष्यमाणे) रूपादिकों में अपि ॥ तद् अव्यतिरेकात् १, संव्यवहारः १, = भी उस (द्रव्य) से (उन रूपादिकों) अभिन्न होने (के निमित्त) से व्यवहार

= प्रकृति है अर्थात् जब द्रव्य से और इन्द्रियों से संबंध होता है तब (क्योंकि रूपादिक गुण द्रव्य से सदा अभिन्न हैं) उन गुणों में ऐसा व्यवहार प्रकृति है कि रूप में देखा वा गंध में सूंघा इत्यादि

= (प्रश्न) क्या ये अवग्रह ईहा अवाय धारणा (= आदय) सब

= इन्द्रियों (तथा) मन्त्र के होते हैं अथवा (= उत) कोई (अभिव्यक्ति)

= विषयका मेद वा अन्तर है ? ऐसा (पहले पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि

॥ व्यञ्जनस्यावग्रहः ॥ १८ ॥ = व्यञ्जनस्यावग्रह (एव भवति नेहादयः)

= अव्यक्त वा अवग्रह (ये शब्दादिक) पदार्थ है विसका अवग्रहस्थान

न्ही (= एव) होता है न कि ईहा अवाय और धारणास्य ज्ञान होते हैं अर्थात् इस

प्रकार अवग्रह ज्ञान दो प्रकार का होता है एक तो व्यक्त प्रगट वस्तुओं के संबंध

में दूसरा अव्यक्त वा अवग्रह वस्तुओं के संबंध में फलु ईहा अवाय-धारणा ये तीन

ज्ञान केवल प्रकट वा व्यक्त पदार्थों के संयोग में होते हैं क्योंकि जब पदार्थ अधिक

जानने योग्य हो जाता है अथवा यों कहिये कि जब पदार्थ व्यक्त हो जाता है तब

व्यञ्जन-वग्रह नहीं रहता है

किन्तु ॥ इम १, अवग्रह आदयः १, सर्वस्य १, इन्द्रिय अनिन्द्रियस्य १, भवन्ति १ उत १ कश्चित् १ विषय विशेषः १, अस्ति १ इति १ अतः १ आह १

व्यञ्जनस्य १, प्रवग्रहः १, एव १ भवति १ न ईहा-आदयः १, ॥

एटानिवासी आरुणसहाय कबीरकृत पदच्छेद और निगलत्पर्ये सरित सर्वाभिसिद्धिका सम्पदा: हिंदी अनुवाद । अप्पाय १ सुन १७

हयतिपर्यायोस्तेर्विध्यंत इत्यर्थो द्रव्य ।

सर्वायान्, । इति वा० वै: ; अयेवा

= जो पर्यायोंको प्राप्त होता है अथवा (= वा) तिन (पर्यायों) करि (= वै) जो प्राप्त

किया जाता है ।

= ऐसा अर्थ आर्वात् पर्याय वा वस्तु है (सो गुण पर्यायोंका समुदाय) द्रव्य है ।

इति० अर्थ: । द्रव्यम् ॥॥

(१) इति—यह शब्द दुर्हस्वार्थि सीमार गत्ये क्त (= आना गमन करना) धातुके प्रथम (आत्) पुल्य कर्त्तरि प्रबल परस्मैपद व० वचन वर्तमान कालको कियकर क्य है । यह रूप इस प्रकार बना है कि एतस्मिन्पदके धातुबोधिके अंग बजानेमें धातु पुल्य नियमोंके अनुसार बोलराया जाता है । इस क्त धातुमें "यकावा ह प्रथमस्व" १-१-१ अष्टाश्रयी ॥ (धातुके) प्रथम पञ्चम (अवबध) को द्रित्य हो अर्थात् ये धातु तिनमें एक स्वर हो वा इस शब्दका गुरदा देव है (जैसे क्त धातु का स्वर दोहराने से क्त क्त देखा कम क्या) यदि धातुके प्रारंभमें व्यञ्जन हो तो प्रार्थनिक व्यञ्जन मरिह स्वरको दाहण देते हैं (जैसे पुन-पेल्ल का पुन रूप हो जाता है) ॥ क्तु (सुहृत्प्रादि का विकरण) पर हां (व्यञ्जनमें आने) से अर्ति और रिसर्ति धातुबोधिके अन्तराल को ह आदेश हो आय अर्थात् क्त क्त इसके प्रथम क्त के स्थानमें ह होवि अतः क्त क्त = इ क्त (०-४-०० अष्टाश्रयी) = इ य क्त (अभ्यासस्थानानर्थे = अङ्गान्तर-अन्तरार्थे (ज्योत्स्नक-रुक्मिणी) = अन्तरार्थे अथु परै हो तो अभ्यासके स्थान और उभय का। इयक (= इय) अयक (= रुक्) आदेश हो ॥ १-४-०८ तिप्पथी पृष्ठ ५३से इस क्त का गुण होकर इयकर देखा कम हुआ इसमें प्रथम पुनर्ग र्त्ति लाल परस्मैपद एक बचन वर्तमान कालको कियकर गि प्रथम ओङ्कारसे इयकर सि हुआ = इवति ।

(५)

(१) = सोम्या शयन करना (के ई स्वरके स्थानमें किय संज्ञक प्रत्ययके परिधे तिनके प्रारम्भमें

गरी = शयनसे सुझाया जाता है ३५ = द्वितीयात्म

(२) = य कर्मणि प्रधान प्रत्यय छप्पानेसे

= प्राप्त किया जाता है ॥

एतानिवासी जगत्प्राप्तय धर्मीकृत पश्येत् और विगम्यये सहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दः। रिती अनुवाद । अत्राप १ अत्र १०
स तद्धि एवकार कर्तव्यो न कर्तव्य ।। सिद्धे विधिरारम्यमाणो नियमार्थे इति अन्तरेणैवकार
नियमार्थो भविष्यति ॥ ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं द्रुतोऽय विशेषः ।।

सः ।। शर्हि एवकार ।।

कर्तव्यः ।।

= (प्रश्न-यह सूत्र यदि) नियमार्थे (=सः) है तो (=शर्हि) एवकार

= (इस सूत्रों) जाना चाहिये (कर्तव्यः)

भावार्थ—वो यह सूत्र निश्चय वाचक है तो इसमें अवग्रह शब्दके पश्चात् “यत्”

शब्द लाते और सूत्र ऐसा होता “व्यञ्जनस्यावग्रह एव” ।।

= (उत्तर—एव इस सूत्रमें) नहीं जाना चाहिये

= (सप्रज्ञानो सूत्रमें अवग्रह शब्दका) विधान सिद्ध होने (के हेतु) से

= (पुनि इस सूत्र में अवग्रह शब्दका) आरम्भ किया जाना नियमके लिये है

= बिना (=अन्तरेण) एवकार (अर्थात् इस सूत्रमें बिना एव शब्द लाये हुये ही)

= नियमके लिये (यह सूत्र) होगा । प्रश्न (=तुल्य) अवग्रहका लाना

= दोनों स्थानोंमें (अर्थात् अर्थमें तथा व्यञ्जनमें) समान है

= उस स्थानमें (=सूत्र-अर्थात् अवग्रह सूत्र १७ में और) यहाँ (=अप्य)

= अर्थात् (व्यञ्जनावग्रह सूत्र १८में) क्या विशेष, येव वा दन्तर किमागया है

(१) “अप्य (त्रि०) (अर्थ-पुनः) एवं स्त्री०; इत्-न०) यह किसी ऐसी चीज़को उतारता है जो कसुमे हारेके दिग हो ।। गत । यहाँ” पृष्ठ ७५ ।

यहाँके अर्थमें किया है ।

(२) विदोषमाये वद् विधिरात मतिवाम सक्या विवग्रहाविशेषिणः ।

विदोष-अभावे वद् विधिरात मतिवाम- । पदविधिरात मतिवाम-

सक्या विवग्रहाविशेषिणः ।। इति समिपणः ।। पूर्णपरिष्कारः ।। पृष्ठापरिष्कारः ।। यहाँके अर्थमें किया है ।

प्रातिपत्ती जयरूपसाराय नान्तकूल पक्षेष्टे और विभक्त्यर्थे सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दः हिंदी अनुवाद । अन्वय १ अथ १८,
 'यजनम यक्त शब्दादिजात तस्यावग्रहो भवति । किमर्थमिदं ! नियमार्थ, अवग्रह एव नेहादय इति' ।

अर्थावग्रह हो जाता है जैसे माटीके डेल अथवा नवीन मोतजा-मटक्का वा और कोई मिट्टीका नवीन भाजन लीजिये और उसमें जलके कण-धूँदें जालिये तबों दो तीन आदि कण तक सींचा हुआ गीला वा जाला नहीं होता है तब तक अव्यक्त है जिसको व्यंजन कहिये और वही उक्त भाजन जब घीरे घीरे (मंद मंद) गीला हो जाय तब व्यक्त होता है । तैसे ही कर्म आदिक इन्द्रियोंके अवग्रह में शब्दादिरूप परिणामें पुनरुक्त सक्तत्व दो तीन आदि समयमें प्रवण हुये प्रकट ग्रहण नहीं होते हैं व्यक्त ग्रहण में नहीं आते हैं तब तक व्यंजनावग्रह है ॥ पुनि पुनि उन पुनरुक्त स्तब्धोंके ग्रहण होनेपर प्रकट होते हैं तब अर्थावग्रह है इस प्रकार व्यक्त ग्रहणसे पूर्व पूर्व तो व्यंजनावग्रह है व्यक्त ग्रहण होने पर वही अर्थावग्रह है इसलिये अवग्रह वा अव्यक्तके ग्रहणमें अवग्रह ही होता है ईशा अवाय धारणा इन तीनोंमेंसे कोई भी नहीं होता है ॥

॥ पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित इस अठारहवां सूत्रपर संस्कृत सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद ॥

व्यंजनम् ॥ अव्यक्तम् ॥ अग्रद आदि जातम् ॥ = व्यंजन अर्थात् अवग्रहशब्दादिकों का समूह है
 तस्य ॥ अवग्रह ॥ भवति

स्मि ॥ अर्थम् ॥ इदम् ॥ नियम-अर्थम् ॥ = विस (व्यंजन) का अवग्रहरूप (ज्ञान) होता है

प्रवग्रह ॥ एव ॥ ईशा आदयः ॥ इति ॥ = (प्रभ) यह (अठारहवां सूत्र) किस स्थिति (कदाग्रथा) है । नियम के लिये है

प्रवग्रह ॥ एव ॥ ईशा आदयः ॥ इति ॥ = (अर्थात् व्यंजन का) अवग्रह (ज्ञान) ही होता है नकि ईशा अवाय धारणा ॥

एटाभिवासी अगुरुपहाय पकीरुक्त पञ्चेद और विस्मयार्थ सहित स्वाभिविदिका सम्बन्धः हिरी अनुवाद । अग्राय २ अन्-१८
 स तर्हि एवकार कर्तव्यो न कर्तव्यः । सिद्धे विधिरारम्यमाणो नियमार्थ इति अन्तरेणैवकारं
 नियमार्थो भविष्यति ॥ ननु अवग्रहग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽयं विशेषः ।

सा । तर्हि एवकारः ।

कर्तव्यः ।

= (प्रस-यह एव यदि) नियमार्थ (=सः) है तो (=सहि) एवकार

= (इस धर्म) लाना चाहिये (कर्तव्य)

मागार्थ—जो यह धर्म नियम वाचक है तो इसमें अवग्रह शब्दके पश्चात् 'एव'
 शब्द लावे और धर्म ऐसा होता "ज्वलनस्वाग्रह एव" ॥

= (उपर—एव इस धर्म) नहीं लाना चाहिये

= (सग्रहवा धर्म अवग्रह शब्दका) विधान सिद्ध होने (के हेतु) से

= (युनि इस धर्म में अवग्रह शब्दका) आरम्भ किया जाना निम्नके लिये है

= बिना (=अन्तरेण) एवकार (अर्थात् इस धर्म बिना एव शब्द लाये हुये ही)

= नियमके लिये (यह धर्म) होगा । प्रस (=ननु) अवग्रहका लाना

= दोनों स्थानोंमें (अर्थात् अर्थमें तथा व्यवहारेमें) समान है

= ७१ स्थानमें (=वच-अर्थात्वाह धर्म १७ में और) यहाँ (=अवग्रह)

= भाषा (अथवाग्रह एव १८में) क्या विशेष, येद वा अन्तर किमागया है

प्राप्तको प्राप्तमात्र दे ओ कदमे हारेके हिंग हो । यह । यहाँ पञ्च० पुष्ट ७१ ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

विधानः पुनर्विधानः ।

एतानिमासी अग्ररूपमाय वकीलकृत पञ्चेद और निमस्वर्य सहित सर्वाथिसिद्धिका शब्दशः हिंदीश्रुतवाद अभ्यास १ युद्ध १८

अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यक्ताव्यग्रहकृतो विशेषः । कथम् । अभिनवशरावर्दीकरणवत् । यथा जल
वर्णाद्वित्रिसिक्त शरावोऽभिनवो नार्दीभवति, स एव पुन पुन सिच्यमान शनौस्तिम्यते, एवं श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु
अन्त्यादियारिणता पुद्गला द्वित्र्यादियु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुन पुनरवग्रहे सति व्यक्तीभवन्ति ॥
अतो व्यग्रग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रहः । व्यग्रग्रहणमर्थावग्रहः । ततोऽव्यक्तावग्रहणादीहादयो न भवन्ति

अथ अवग्रहव्यञ्जन अवग्रहयोः १। व्यक्त अव्यक्त

कृतः १। विशेषः ॥

कथम् ० अभिनव

नगर आर्दीरंगनत् यथा ० जल-

कम-दि वि सित्क । दरावः १। अभिनवः १। न० आर्दी

भर्ता १। सः १। एव ० पुन ० पुन ० सित्यमाता १।

उन ० तिम्पत

एव ० धीव आदिपु १। इन्द्रियेषु १। शब्दादि-रिणता १।

पुद्गला १। दि वि आदिपु १। समयेषु १। गृह्यमाणाः १।

न व्यक्तीभवन्ति पुन ० पुन ०

अग्रह १। मति १। व्यक्ताभवन्ति १।

अग्र ० व्यक्त-ग्रहणात् १॥ प्राग्-व्यञ्जन अवग्रहः १।

व्यक्त-आलय १॥ अप्र अवग्रह १। तदा अव्यक्त-

अग्रग्रहणात् १॥ इति आग्रहः १. २ ग्रहन्ति १

० अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रहे प्रगट और अप्रगट

=कृत येद वा अन्तर है अर्थात् प्रगट पदार्थोंका ग्रहण हो सो अर्थावग्रह है

और अप्रगट वस्तुओंका ग्रहण हो सो व्यञ्जनावग्रह है

=(प्रम) फ़िर प्रकार है (उपरमें कहे हैं कि) नवीन (माटीका)

=कटोरा वा सक्कोराके भिन्नोने (गीला करने)के सख्त है । जैसे जलके

=दो तीन कप्तसे सींचा हुआ नवीन माटीका कटोरा गीला नहीं

=होता है (तबतक अव्यक्त है) वो (=सः) ही (=एव) फ़िर फिर सींचा हुआ

=धीरे धीरे (=धीनः) गीला होबता है (तब व्यक्त है)

=येसे कम आदिक इन्द्रियों (क अवग्रहमें शब्दादिक रूप परिणमा

=पुद्गलके स्तब्ध (=पुद्गला) दो तीन आदिक समयोंमें ग्रहण हुये (=गृह्यमाणाः)

=अकट नहीं होते हैं (तबतक व्यञ्जनावग्रह है) बार बार

=(उन पुद्गलस्थानोंके) ग्रहण (=अवग्रह) होनेपर प्रगट होते हैं (तब अर्थावग्रह होता है) ॥

=इसलिये प्रगट ग्रहणसे पहिले पहिले व्यञ्जनावग्रह है

=प्रगटका ग्रहण (है सो) अर्थावग्रह है । तिससे अप्रगटके

=...ने देहा-अवयव धारणा नहीं होते हैं

- (१३) रासन बहु व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (१४) रासन बहुविध व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (१५) रासन क्षिप्त व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (१६) रासन निस्तृत व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (१७) रासन उक्त व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (१८) रासन अष्टव्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (१९) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२०) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२१) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२२) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२३) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२४) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२५) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२६) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२७) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२८) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (२९) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३०) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३१) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३२) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३३) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३४) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३५) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३६) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३७) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३८) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (३९) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४०) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४१) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४२) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४३) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४४) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४५) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४६) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।
 (४७) रासन अल्प व्यंजन का अवयवरूप मतिज्ञान ।

मतिज्ञान के २८८ भेद पृष्ठ ३७० से ३७८ तक मिलते हैं ३७८ भेद पर सर्वार्थसिद्धि युक्तिका शब्दशः भाषानुवाद ।

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित इस (उद्गीर्णार्थ) सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि युक्तिका शब्दशः भाषानुवाद ।

नहीं होते । क्योंकि व्यंजन पदार्थ का अवधारक ज्ञान ही होता है ईश आभाय पारसा कदापि नहीं हो सकते । मयन-नेत्र इन्द्रिय और मन अनिन्द्रिय द्वारा व्यंजन वा अव्यक्त पदार्थ का अवधारक ज्ञान क्यों नहीं होता है ? उत्तरः— क्योंकि 'नेत्र इन्द्रिय और मन ए दोऊ पदार्थोंमें भिन्नकरि नार्हीं जानें हैं अपने विषय के दूरि ही हैं जानें हैं यातें ए दोऊ इन्द्रिय अप्रत्यक्षकारी हैं ॥ जैसे नेत्र आपके मध्य तिष्ठता अव्यक्त नार्हीं जानें हैं दूरि ही तिष्ठता पदार्थ क जानें हैं ॥ अर मन है सोह दूरि तिष्ठता पदार्थ के विचार में ले है । ऐसे नेत्र अर मन ए दोऊ अव्यक्तकारी हैं" अर्थ महाशिका पृष्ठ ४६ ॥ आत्मकारी = पदार्थों से भिन्नकरि नार्हीं जानतें हैं दूरि ही ते जानतें हैं ॥ इन दोनों सूत्रों का सार यह है कि 'अव्यक्त पदार्थों का अवधारक ज्ञान यी केवल स्वर्जन, रसन, घ्राण और श्रोत्र द्वारा होता है और इनका फल पर हुआ कि स्वर्जन, रसन, घ्राण, और श्रोत्र इन चार ही इन्द्रियों से व्यंजनावधार वा अव्यक्त पदार्थों का अवधारक ज्ञान होता है और व्यंजन वा अग्रगट पदार्थों के ईश, अवधारक, और पारसात्म ज्ञान नार्हीं होते हैं इसलिये स्वर्जन, रसन, घ्राण और भात इन मत्वेक इन्द्रियों से प्राप्त हुये व्यंजनावधार ज्ञान को बहु एक [अत्य] बहुविध, एकविध, विम, अस्मिन्, मान सत्, निःसृत, अनुक्त, उक्त भूद, अधुन, में से पृथक् २ पर लगावने से व्यंजनावधार [अवर्त अग्रगट पदार्थ के अवधारक ज्ञान] के तन्मन् स्थितिव प्रवृत्तकोस वेद होते हैं —

- (१) सार्धन बहुव्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (२) सार्धन बहुविध व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (३) सार्धन विम व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (४) सार्धन अनिस्तुत व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (५) सार्धन अनुक्त व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (६) सार्धन भूद व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (७) सार्धन अधुन व्यंजन का अवधारक भविष्य ।

- (८) सार्धन अत्य व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (९) सार्धन अत्यविध व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (१०) सार्धन अस्मिन् व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (११) सार्धन अनिस्तुत व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (१२) सार्धन अनुक्त व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (१३) सार्धन भूद व्यंजन का अवधारक भविष्य ।
- (१४) सार्धन अधुन व्यंजन का अवधारक भविष्य ।

पेटोनिवासी अगुरुसगण बहीमकृत पद्वेदेद और विषयवर्णनसहित सर्वाभिसिद्धि का मध्यशः सिद्धी अनुवाद । अर्थात् १ सूत्र १९

चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यजनावग्रहो न भवति । कुत ? अप्राप्यकारित्वात् ॥ यतोऽप्राप्तमर्थमवि
द्विधं युक्तसन्निकर्गविशेषेष्वस्थित बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते चक्षुः, मनश्चाप्राप्तमतो नानयोर्व्यजनाव
ग्रहोऽस्ति ॥ चक्षुषोऽप्राप्यकारित्व कथमव्यवसीयते ? । आगमतो युक्तितश्च ॥ आगमतस्तावत्—

चक्षुषा ३^म च अनिन्द्रियेण ३^म व्यजन-ब्रह्मर ३^म = नेत्र से और (= च) जन्तु करण से ब्रह्मर वस्तु का ब्रह्मरूप ज्ञान (भी)
नक्ष यद्वि १^म कुतः १^म अप्राप्यकारित्वात् ३^म = नहीं होता है । (यत्र) क्योंकर ? अव्यवस्थितता से अर्थात् नेत्र और मन
य दोनों दिना स्पर्श किये हुये वा बिना पिट हुये [दृष्टी से] स्पर्श को वास्तव करते हैं ।
= क्योंकि बिना स्पर्श हुये (वस्तु) को (अप्राप्य) कन्वुल भाये हुये को (अभिविक्त)
= उचित (= युक्त) भिन्नता के विशेष में, = सन्निकर्षविशेष ठहरे हुये (अवस्थित)
= [और] बाह्य वसासादर पण्ड किये गये को [= अविव्यक्त] नेत्र (इंद्रिय)
= जाने है (= उपलभते) और ब्रह्म-करण बिनास्पर्श हुये को वा दूर छिड़ हुये को
= (विचार में होता है) इसलिये इन (नेत्र और मन) दोनों में
= व्यजनावग्रह (= अव्यक्त स्पर्श का ब्रह्मरूप ज्ञान) नहीं होता है

चक्षुः ३^म अप्राप्यकारित्व ३^म कथं व्यवसीयते १^म = (यत्र) नेत्र के अप्राप्यकारीपणा कैसे निमित्त किया गया है ('अव्यवस्थित')
अव्यवस्थित युक्ति ३^म वं प्रामपता १^म वास्तव (= ब्रह्म) वास्तव से ज्ञान (= वास्तव) वास्तवारा येसे है कि

[१] अप्राप्य कारित्वात्—यह शब्द य + भवति, प्राप्य = गम्य, पटुबले योग्य, कारि (लीकिय) + कियते, एवं + एव वा के प्रकाशकारी गुणवत् है
वा है ज्ञान पक्षी निमित्त प्रमाण का किष्ट ओष्ठके से य + प्राप्यकारि + एवं + प्राप्य = अप्राप्यकारित्वात् = अव्यवस्थितता से निमित्त प्रमाण के
[३] अव्यवस्थित—यदि निमित्त—अवस्थित के 'अव्यवस्थित' शब्द के विरोध में एव कार्य के जारी करने में अव्यवस्थित का किंचित् प्रमाण है

पदा निवासी पदरूपसहाय पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सारिण सर्वार्थ सिद्धि का मुख्यशः हिंदी अनुवाच १ सूत्र १९

पुन सुयोदि सबह अपुठठ नेव (१) प्रसदे रुवम् । फाम् रसं च गन्ध वदठ पुठठ च (२) आर्योहि

युक्तिरश्च—अप्राप्यकारि चक्षुः स्पृष्टानवग्रहात् । यदि प्राप्यकारि स्यात् स्वगिन्द्रियवत्

पुठठ'। सुणोवि' सद्ध'। [= स्पृष्ट । शृणोति। शब्दः। = स्पर्श डुये शब्द को सुनना है

(अपुठठं चक्षैः एवम् (१) प्रसदे रुवम् ।।।

{ = और [= च] बिना स्पर्शे पुष्टी [= एव] अर्थात् बिना स्पर्श विद्युयेही रूपको देखा है

{ असृष्टः ।।। चक्षैः एवम् स्पर्शते रूपम् ।।।

पासः । रसं । च गन्ध । [= रसः । रसं । च गन्धः ।] = स्पर्शको रसको और गन्धको

वदठं । पुठठ । च (२) आर्यो हि' । वदठ । वृष्टं । च आनासि । = वयं [वयम्] से और [= च] स्पर्श से जानना है

युक्तिरश्च चक्षैः स्पृष्ट अन्वग्रहात् ।

= और अनुमान से स्पर्श डुये वा भिन्ने डुये [स्पर्श] को न जानने के हेतु से

= नेत्र [इन्द्रिय] अप्राप्यकारी है अर्थात् नेत्र बिना स्पर्श किन्ने डुये वा बिना भिन्ने

अप्राप्यकारीः ।।। चक्षुः ।।।

डुये [दूर ही से] पदार्थ को ग्रहण करता है

= जो [नेत्र इन्द्रिय] प्राप्यकारी होती [जो] लघा वा स्पर्श इन्द्रिय के सहश

यदि अप्राप्यकारि ।।। स्यात्' तन् इन्द्रियवत् ॥

(१) दग्धा पाठु स्यात् प्रकृत रक्षका हेतुका रूप कृत् रि प्रयोगस 'पश्य' होजाता है । अ विकरण वा किम्भ्यदिगणका हानासे 'पश्य हो

जाता है दग्धा पाठु रमस का मा २४ और २४ मी २४ है । प्रथमपुत्रय वा इत्यपुत्रय एकवचन आ मा २४ की कर्त्तरि प्रमाण वतमान भिन्नाका वे प्रत्यय

लगायसे पश्य + ति = पश्यति (= देखता है) बनजाता है । इसी प्रकारसे प्रथमपुत्रय एक वचन परस्मैपद कर्त्तरि प्रधान वतमानदिवा का ति

प्रत्यय लगायसे पश्य + ति = पश्यति बन जाता है परन्तु ध्यान रहे है कि कर्त्तरि प्रथम गत दग्धा इसी रूपमें यक् (= य) प्रत्यय लगायसे दृश्य हो

जाता है पुन त आत्मन पूर्व सङ्गत् दृश्य + ति = दृश्यते (= देखा गया है) बनजाता है । (वेको पाठुरूप चन्द्रिका पृष्ठ ५०१ जिसमें

'परयति' और पश्यते दोनों रूप दिये हैं) ॥

(२) आपाति- = वा (= जानना) न वाच्य अत्रमा दृष्टका पाठु है प्रत्ययसे प्रथम इत् गणके पाठु को न जाना जाता है । आ अनोर्न (शिति

०३ ७६ अपराधत्वो = शित प्रत्यय पर हो तो दा हीर उन् पाठु को आ आवेश हो (= शिति आसनः 'आ ९') ॥ परन्तु ना में आ

या है उक्त ध्यानमें है सत्ते हैं यदि व्यञ्जनद्विगुलक प्रत्यय मा के पश्चात् का हो दा + ना + ति = जानोति बन गया ॥

पटा नियातो अगुरुपराप कवीभूत पदगुहेद और शिष्यत्वर्य सवित सर्वार्थसिद्धिदा शब्दशः हिंदी अल्लाह । अल्लाह ? एम् २०

वर्त्मिन् ज्ञान विशेष वर्तते ॥ यथा कुशलजनक प्रतीत्या व्युत्पादिताऽपि कुशलशब्दो रुढिवशात्प
यद्यदाते वर्तते ॥ फ पुनरसौ ज्ञानावशुप इति अत आह "अस मतिपूर्वमिति" अतः प्रमाणात् प्रय
ताते पूर्व निमित्त कारणाभित्यनर्थात् ॥

परिमन्त्रितु ० ज्ञान-विशये । वक्ते १

= धर्म एक (= वस्मिन्निष्ठ) ज्ञानके विद्युपमं प्रवर्तता है अर्थात् श्रुतशब्द सुननेके
आरंभमें व्याकरणकी रीतस आता है तौभी रुढिवक्ते एक ज्ञानका नाम है

यथा पुनरनन कर्मप्रतीत्या '॥ व्युत्पादितः' ।
अपि, पुनरादयः' । रुढिवशात् । पर्यवर्तते ।
वक्ते १

= जैसे कुशल दाम वा वीश (= कुश) वादनेके विषयमें अनवय कर व्युत्पन्न हुआ है
= तौभी (= अपि) कुशलशब्द रुढिके वक्ते बहुत प्रवीण वा चतुर पुरुषकेअर्थमें
= प्रवर्तता है भावार्थ जैसे कुशलशब्द व्याकरण की रीतसे दामके वादनके २ धर्मों
आता है तौभी रुढिके वक्ते बहुत चतुर पुरुषके अर्थमें प्रयोग किया जाता है
तैसे श्रुत शब्द यद्यपि सुनने के अर्थ व्याकरणात्कुल आता है तौभी रुढिके
सामर्थ्यसे एक ज्ञानका नाम है

पुनरुक्तः ॥ असी । ज्ञान-विशयः । इति क्ताः आह १ = और यह श्रुत ज्ञानसा (= कः) ज्ञानविशेष है ऐसा (प्रमदने पर) अव वदते है
युक्तम् ॥ मतिपूर्वम् ॥ इति श्रुतम् ॥ प्रमाणतयः ॥ = श्रुत है सो मतिपूर्वक है ऐसे श्रुतके प्रमाणरूप ज्ञानपना है ॥
पुनरति १ इति पूर्व ॥ निमित्तम् ॥ कारणम् ॥ = जो पूर्व है उत्पत्ति वरे है ऐसा पूर्व होता है निमित्तवरे कारणक है
इति, अन अर्थ-अन्तरम् ॥

= इसप्रकार (इन तीनों पूर्व निमित्त-कारण सुप्रा में) अर्थम् नहीं है

(१) वस्मिन्निष्ठ - इसका म उब उसके पक्षान् म, घ, ग, य, शीर दू दू आये मो (यह म) अनुष्ठान शीर विसर्ग (धर्म)
पलट जाता है इसलिये वस्मिन् + स्मिन् - रुढिः स्मिन् यह विसर्ग परमाण् वशात् व्याकरणके निमित्तमित निदमाजुसार 'य' में पत्त्वित
हा जाता है - विसर्गके पक्षान् वदि म् घ् हा तो विसर्ग 'य' में पत्ति म् य् शीर मो म् घ् शीर वदि दू दू हा मो 'य' में पलट जाता है
इति इति वरति - इति वरति (- इति-जन्ता है) इसलिये वरति = वादवदवति (वाद वरति है वाद वाद है) । यथा वीकते - यथावीकते
(१) वाद विजता है । इति वरति - वरति (वरति = वादवदवति) वरति (वरति = वादवदवति) वरति (वरति = वादवदवति)

एतान्वत्ती जगत्प्राप्तयाय नवीलकृत पदच्छेद और निम्नस्वर्य सहित सर्वोपस्थितिका शब्दशः हिंदी पद्यवाद । अर्थात् १. सूत्र २०
मतिर्निर्दिष्टा । मति पूर्वमस्य मतिपूर्वं मतिकारणमित्यर्थ ॥ यदि मतिपूर्वं अत तदपि मत्पारमक
प्राप्ताति कारणसदृश हि लोके कार्यं दृष्टमिति । नेतदेकान्वितम् । दृष्टादिकाः शोध्यं घटो न दृष्टाया
रमरु । अपि च सति तस्मिन् तदभावात् सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यअतज्ञाननिमित्तसंश्लिष्यनेऽपि प्रबल

अतापरयोदयस्य अताभाव

मतिः ॥ निर्दिष्टा ॥ मतिपूर्वम् ॥ अस्य ॥ मति-
पूर्वम् ॥ मतिकारणम् ॥ इति ॥ अर्थः ॥
यदि ॥ मतिपूर्वम् ॥ अतः ॥ अर्थः ॥
अति-आत्मकम् ॥ मतिपूर्वम् ॥ अतः ॥ लोके ॥ कारण-
सदृशम् ॥ कार्यम् ॥ दृष्टम् ॥ इति ॥
दृष्टम् ॥ एकान्वितम् ॥ न ॥

= मतिज्ञान [परिले] क्या गया है । मति है कारण मितिका [= अस्य] सो मति
= पूर्व है । मतिकारणक वा मतिनिमित्तक है ऐसा कार्य वा अभिप्राय है ।
=[मत्त] ओ [= यदि] मतिज्ञान निमित्तक वा अन्य श्रुत्वा न है [तो] वह [अज्ञान] भी
= मतिस्वरूप को प्राप्त होता है । क्योंकि [= हि] वगत में कारण के
= समान कार्य ऐसा देखा जाता है ।
=[उत्तर] यह एकान्व वा अवरप होनेवाला नियम नहीं है ॥

यह भावार्थ है कि यह नियम कि कारण के समान ही कार्य होता है सर्वत्र ठीक नहीं है
क्यों कभी पर कार्य कारण के सदृश नहीं भी होता है जैसे

= यह घट वृक्ष [चाक] आदि निमित्तक है [परन्तु] दूध चाक आदिके
= स्वरूप [पूर्वोक्त घट] नहीं है अर्थात् घटके बनानेके लिये दूध चाक आदिक

कारण हैं परन्तु यह उत्पन्न हुआ घट दूध चाक आदिके समान नहीं है मितस्वरूप ही है
= और क्योंकि उस [मतिज्ञान] के अस्तित्वमें वा विद्यमानता में भी

उस श्रुत्वाको अभाव [रहता] है [अर्थात्] मतिज्ञान होने पर भी
वाह्यमें श्रुत्वाको [अन्य अन्य] निमित्त निकट होने पर भी [जैसे] दुग्धपदेशादि

= श्रुत्वाभावण कर्मका प्रबल उदय वाले [जीव] के श्रुत्वा नही होता है

अप्य ॥ घटः ॥ दृष्ट आदि-कारणः ॥ दृष्ट-आदि
आत्मकः ॥ न ॥

च ॥ दृष्टम् ॥ सति ॥ अपि ॥
दृष्ट अभावात् ॥ सति ॥ अपि ॥ मतिज्ञाने ॥
बाह्य-श्रुत्वा-निमित्त-संश्लिष्यने ॥ अपि ॥
प्रबल-श्रुत्वा-उदयस्य ॥ श्रुत-अभावः ॥

(१) सत्यार्थ सिद्धि संस्कारवृत्ति प्रथम संस्कारवृत्ति 'तदभावात्' के स्थानमें 'तदभावात्' अशुद्ध रूप गया है ॥

पदा निनासी दगलपसदाप नकीरपृष्ठ पदछेव और विषयत्त्वर्थ सदित सर्वार्थविधि का शब्दशः हिंदी अनुवाद । अङ्क १ सूत्र २०
 च हिंम ई उज्ञान विशेष वर्तते ॥ यथा कुशजननक प्रतीत्या व्युत्पादि ॥ अपि कुशजशब्दो रुढिवशत्
 र्धमदाते वर्तते ॥ क पुनरसौ ज्ञानावशप इति अत आह "अत मातिपूर्वाभिनि" अतएव प्रमाणत्वं पुरय
 ताते पूर्व निमित्त कारणमित्यनर्थात् ॥

परिभन्दिषु ० ज्ञान-विग्रहे ॥ वर्तते ॥

पदा पुनरन्यन कर्मप्रतीत्या ॥ व्युत्पादिता ॥
 अपि पुनरादयः ॥ रुढिवशत् ॥ पर्यवर्तते ॥
 वर्तते ॥

= कोई एक (= कस्मिंश्चित्) ज्ञानके विशेषमें प्रवर्तता है अर्थात् श्रुतशब्द सुननेके
 अर्थमें व्याकरणकी रीतिसे आता है तौभी रुढिवशसे एक ज्ञानका नाम है
 = जैसे कुशल ग्राम वा कांश (= कुश) काटनेकी विधायमें निरचय कर व्युत्पन्न हुआ है
 = तौभी (= अपि) कुशलशब्द रुढिके बलसे बहुत प्रवीण वा चतुर पुरुषकेअर्थ में
 = प्रवर्तता है मावार्थ जैसे कुशलशब्द व्याकरण की रीतिसे दांभके काटनेके २ र्थमें
 आता है तौभी रुढिके बलसे बहुत चतुर पुरुषके अर्थमें प्रयोग किया जाता है
 तैसी श्रुत शब्द यद्यपि सुनने के अर्थ व्याकरणानुकूल आता है तौभी रुढिकी
 सामर्थ्यसे एक ज्ञानका नाम है

पुनः अकः ॥ अतो ॥ ज्ञान-विग्रह ॥ इति अत आह ॥ = और यह श्रुत कौनसा (= क) ज्ञानविशेष है ऐसा (प्रसन्नेने पर) अतः कहते हैं
 श्रुत्म् ॥ मातिपूर्वम् ॥ इति श्रुतम् ॥ प्रमाणत्वम् ॥ = श्रुत है सो प्रतिपूर्वक है ऐसे श्रुतके प्रमाणरूप ज्ञानपना है ॥
 पुनरिति ॥ इति पूर्व ॥ निमित्तम् ॥ कारणम् ॥ = जो पूर्वी उत्पत्ति करे है ऐसा पूर्व होता है निमित्तव है कारणक है
 इति ॥ अन्य अर्थ-अन्तरम् ॥ = इसप्रकार (इन तीनों, पूर्व-निमित्त-कारण अर्थोंमें) अर्थभेद नहीं है

(१) कस्मिंश्चित् - कनका न जब उसके पदार्थ में, छ, त, ए, और द, द, आके सौ (यह न) अनुकार और विसर्ग (बन्ने)
 पद आता है इत्यन्तरे कस्मिन् + चित् - कस्मिन् जित यह विसर्ग कर्तव्यप कथाम व्याकरणके निश्चित निरन्तरात् 'श्रु' में परिणित
 हो जाता है - विसर्गके पदार्थ यदि न छ, छ, हा तो विसर्ग 'श्रु' में नित्य 'श्रु' में और यदि द, द, हो तो 'श्रु' में पद आता है
 जैसे इति इति - इतिरिति (= इति र्जन्ते है) यथा इति - इतिरिति (= इति र्जन्ते है) ॥ यथा इति - इतिरिति (= इति र्जन्ते है)
 ॥ या रिज्ता है ॥ इत्यन्तरे कनका चित् - कस्मिन् विसर्ग - इतिरिति (= इति र्जन्ते है) ॥

पिंजी खस्ता न । अल्पाय ? एवं २०

[illegible]

स्वयं प्राप्ताप्यप्रसंगात् ॥ आगत्यत्यं य आगत्यत्यं
 द्रव्यादि-सामान्य-वर्णनात् ; अथुम जनयि निधनयः ॥ = द्रव्यादिक सामान्य कौ अपेक्षा से यत्तु आवि अत रहित (= अनादिनिधन)
 दृश्यते ऽ दि ॥ केनचित् ॥ पुरपेण ॥ कश्चित् ॥ = माना गया है । क्योंकि (यह द्रव्यमान) किसी मनुष्य करि कभी वा किसी होत्र में
 = कभी वा किसी समय में (= कदाचित्) किसी प्रकार से (= कथञ्चित्)
 कदाचित् ॥ कथञ्चित् ॥

अथापि ॥ कथञ्चिद् ॥
न ॥ उन्मेषम् । इति । वेवात् । एव निस्तेष्व-अपेक्षया । न नील नहीं किया है उन (द्रव्य) क्षत्र, काष्ठ, माष, की ही भेद विज्ञप्ता से जादिः । अतः । च सम्मतिरिति ॥ यतिकुर्वन् = जादि अत मो (= च) सम्भव है ॥ इस प्रकार मविमान जनित वा जन्म (युक्तान है) इति ॥ उत्तरे र या अङ्कुरः । बीजपूर्वकः । देसा तदा गया है । जैसे अङ्कुरा बीज अनित है ताः । च सन्धान अपेक्षया । इति ॥ अनादिनिष्पन्नः । इति ॥ सन्तान की अपेक्षा करि भादि अवतरित ऐस ऐसे [चका आवै हो] न ॥ च सन्धान अपेक्षया । इति ॥ अनाद्यप्येवम् । प्रमाणतो [सत्यता] होने को हेतु नहीं है अर्थात् न ॥ च अपौरुषेयत्वम् । प्रामाण्यकारणम् । ॥

चौर्ध-आदि-उपदेशस्य । असमर्पमाण-कर्तव्यस्य ।

प्रमाणता होने के लिये इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वर
 पुरुष कृत न हो-कोई स्तुत मनुष्य कृत न होने से ही प्रमाण रूप नहीं करी जा सकती है
 = क्योंकि कि स्तोग वा चोरी आदिक के उपदेशों के दिनके कृतनेवाले को स्मरण नहीं
 [कि कब ऐसे उपदेश करतेलाथा हुआ और कब ऐसे उपदेश दिये और
 प्रितने ऐसे उपदेश दिये]

सौर्ध-त्रादि-चस्वेभ्यस्य ।। अस्यपर्यमाण-कर्तुवस्य ।।

प्रामाण्य-प्रसङ्गात् ॥ अनित्यस्य ॥ च ॥
प्रत्यक्ष-आदेः ॥ प्रमाण्ये ॥ कः ॥ विरोधः ॥

एगनिवासी जगत्प्रसादाय वसीछुल्ल पवच्छेद् और विषयार्थ सारित सवार्थसिद्धि का शुभ्यशः सिद्धी, अनुवाद अर्थात् १ सूत्र २०
 अतावरणययोपशमप्रकरणे तु सति अतज्ञानमुत्पद्यत इति मातृज्ञान निमित्तमात्र ज्ञेयम् ॥ आह अत-
 मनादिनिधनभिन्त्यते । तस्य मतिपूर्वकत्वे तदभाव । आदिमतोऽन्तवत्त्वात् । ततश्च पुरुषकृतत्वप्रामाण्य-

मिति, नैप दोष ॥

श्रुत-आरण-स्पोपशम प्रकरणे ॥ १ ॥ सति ॥ = परन्तु श्रुत्त्वानावर्णीयकर्मके क्षयोपक्षम के प्रसङ्ग होनेपर [= सति]
 श्रुत्त्वानम् ॥ १ ॥ उत्पद्यते ॥ इति० मत्त्वानम् ॥ १ ॥ = श्रुत्त्वान उत्पन्न होता है । इस प्रकार मत्त्वान
 निमित्तमात्रम् ॥ १ ॥ ज्ञेयम् ॥ १ ॥ = निमित्तमात्र (सहायक निमित्त) जानो ॥ भवार्थ ऐसा है कि सम्भव है कि श्रुत्त्वानके
 उत्पन्न होने के बिना बाह्यी कारण मत्त्वानादि वर्तमान भी हों तो भी श्रुत-
 ज्ञानावर्णीयकर्मका जीव के ऐसा प्रबल उदय हो कि श्रुत्त्वान न होने दे । जब
 श्रुत्त्वानावर्णीय कर्म का क्षयोपक्षम अन्तर ग कारण विद्यमान हो तबही
 जीव के श्रुत्त्वान होता है इसलिये मत्त्वान केवल नाममात्र बाह्य कारण
 श्रुत्त्वान के उत्पन्न होने को हुआ ॥ मुख्य और अन्तर ग कारण श्रुत्त्वान के
 उत्पन्न होने के बिना श्रुत्त्वानावर्णीय कर्म का क्षयोपक्षम ही है ॥

आह १ श्रुतम् ॥ प्रनादि + अनिपनम् ॥ १ ॥ इत्येते ॥ = पूछता है [आह] कि श्रुत आदि रहित अन्तरहित [= अनिपन] माना गया है
 तस्य ॥ १ ॥ मतिदुर्बलम् ॥ १ ॥ तदु श्रमाद्यः ॥ = तिस [श्रुत्त्वान] के मत्त्वान कारण होने में नित्यपने का वा अनादि निधनताका
 [= तब] अभाव जाता है प्रत्येक का सारांश यह है कि श्रुत्त्वान को अनादि निधन
 माना है और यदि श्रुत्त्वानको मत्त्वान उत्पन्न करता है तो श्रुत्त्वान नित्यपने का
 अभाव प्राप्त हुआ क्यों कि)

आदिमत् १ अन्तवत्त्वात् १ ॥ = आदि वाले का अन्त होने से अर्थात् भित्तिका आदि है उसका भंग भी है
 प्रामाण्यम् ॥ १ ॥ इति ॥ न ॥ एव ॥ १ ॥ दोषः ॥ = [पुरुषकृत होने से] अग्रमाण है ऐसा प्रत्येक होने पर उत्तर है कि यह दोष नहीं है

अनादिनिपन = अनादि (= स्मरितदिन) + अनिपन = नित्यपने का अभाव (इति श्री परमहंस्य भक्तानन्द पृ. १२३)

एता निगाती वामरुप्ताय कर्मरुक्ताय फलछेय और विमर्शस्यै साहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशा हिन्दी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०
 प्रव्यादिसामान्यार्पणात् असमनादिनिधनमिच्छते ॥ नहि केनचित्पुरुषेण कचिस्कदा विश्वथाश्चिदुत्प्रेक्षित
 मति । तेयोमेव विशेषायेषया आदिरन्तश्च सम्भवतीति मतिपूर्वमित्युच्यते ॥ यथाकुरो धीजपूर्वक स च
 सन्तानोपेक्षया अनादिनिधन इति ॥ न चापौरुषयत्वं प्रामाण्यकारणम् । योर्याद्यपदेशरथास्मयमाणाकर्तृक
 स्य प्रामाण्यप्रसंगात् ॥ अनित्यस्य च प्रत्यक्षादेः प्रामाण्ये को विरोध

प्रव्यादिसामान्य-अर्पणात् ; शुभ्र अनादि निधनम् ॥ = प्रव्यादिक सामान्य की अपेक्षा से शुभ्र आदि अत रहित (= अनादिनिधन)
 रूपते र हि ॥ केनचित् ॥ पुरेण ॥ कचित् ॥ = माना गया है । क्योंकि (यद् यत्मान) किसी मनुष्य करि कहीं वा किसी क्षत्र में
 कदाचित् ॥ कचिद्वत् ॥ = कभी वा किसी समय में (= कदाचित्) किसी प्रकार से (= कचिद्वत्)
 न ॥ उत्प्रेक्षितम् ॥ इति । तेषाम् ॥ एव विशेष-अपेक्षाम् ॥ = नहीं नहीं किया है उन (द्रव्य) क्षेत्र, काल, भाव, की ही भेद विवक्षा से
 आदि । अन्य । च ॥ सम्भवति र इति ॥ मतिपूर्वम् = आदि अत औ (= च) सम्भव है ॥ इस प्रकार मतिमान अनित वा अन्य (श्रुमान है)
 इति ॥ उच्यते र यथा ॥ अङ्कुरः । धीनपूर्वकः । = ऐसा कहा गया है । जैसे अङ्कुरा बीज अनित है
 सा । च ॥ सन्तान अस्मया । अनादिनिधनः । इति ॥ = तो (अङ्कुरा) ही [= च] सन्तान की अपेक्षा करि आदि अस्मरहित ऐसे [बला आवे है]
 न ॥ च ॥ अपौरुषयत्स्यम् ॥ प्रामाण्यकारणम् ॥ = और [= च] अपौरुषेयपना प्रमाणता [सत्यता] होने को हेतु नहीं है अर्थात्
 प्रमाणता होने के लिये इस बात की अवधारयकता नहीं है कि वह
 पुरुष हूत न हो-कोई वस्तु मनुष्य हूत न होने से ही प्रमाण रूप नहीं करी जा सकती है
 = क्यों कि स्वेम वा चोरी आदिक के उपदेशों के निनके करनेवाले को स्मरण नहीं
 [कि कब ऐसे उपवेश करलेवाला हुआ और कब ऐसे उपवेश किये और
 कितने ऐसे उपवेश दिये]

धर्म-आदि-उपवेशस्य ; अस्मयमाणा-कर्तृकस्य ;

प्रामाण्य-असङ्गात् ; अनित्यस्य ॥ च ॥
 प्रत्यक्ष-आदेः ॥ प्रामाण्ये ॥ कः । विरोधः ।
 = प्रमाण होने का [= प्रामाण्य] प्रसंग वा सम्बन्ध आता है ॥ अनित्य के और [= च]
 = प्रत्यक्ष आदि के प्रमाणता होने में क्या विरोध [आता] है अर्थात्
 संसार में अनित्य प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं ही कुछ विरोध नहीं है

(१) अर्पणात् - पञ्चमो विमर्श एक वचन पुर्णिग और ननु सक लिङ्ग है व (२) द्रव्य, आदि (= क्षेत्र, काल भाव) - प्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव

पटा निवागो नगरूपराप वहीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसादका कथशः विन्दी अनुवाद । अध्याय १ धृप्र २०

आह, प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ युगपज्ज्ञानपरिणामान्मतिपूर्वकस्य अतस्य नोपपद्यत इति । तदयुक्तं
सम्यक्त्वस्य तदपेक्षत्वात् । आत्मलाभस्तु क्रमवानिति मतिपूर्वकस्यव्याधाताभाव ॥ आह मतिपूर्वं
अतमित्येतच्चक्षणाभ्यापि अतपूर्वमपि अतमिष्यते । तथा

आह १ प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तौ ॥ युगपद् ॐ = पूछता है कि प्रथमसम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में एकवार वा एक काल [= युगपत्]
ज्ञान परिणामात् १ । अतस्य ॥ मतिपूर्वकत्वम् ॥ = [मतिश्रुत] ज्ञानके उत्पन्न होने से [= परिणामात्] श्रुतज्ञान के मतिनिमित्तपत्ता
न ॥ उपपद्यते १ इति ॐ त्व ॥ अयुक्तम् ॥ = उत्पन्न नहीं होता है । [उपर] सो [= त्व] [तुम्हारा कथन] ठीक नहीं है
सम्यक्त्वस्य ॥ तदपेक्षत्वात् ॥ = क्योंकि [ज्ञान के] सम्यक्त्वपत्ता उत्त [सम्यग्दर्शन] के प्रसंग से हैं अर्थात्
सम्यक्त्व के उत्पन्न होते ही क्रमज्ञान और क्रुत्यज्ञान का परिवर्तन

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान में हो जाता है ।

तु ॐ आत्मलाभ ॥ क्रमवात् ॥

= परन्तु [पूर्वोक्त परिवर्तन होने पर भी] ज्ञान के स्वरूप की लब्धि क्रमवादी है
अर्थात् प्रथम मतिज्ञान होता है उसके पश्चात् श्रुतज्ञान होता है

इति ॐ मति-पूर्वकत्वव्याधात-अभाव ॥

= इस प्रकार मति निमित्तपत्तने में विरोध नहीं है भावार्थ यह है कि मतिज्ञान प्रथम
होता है पश्चात् श्रुतज्ञान होता है । रावपि इन मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के
सम्यक्त्वपत्ता सम्यक्त्व ही उत्पत्ति होते ही एकसत्य वा एक काल में ही होता है
मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के सम्यक्त्वपत्ता एक साथ होने के कारण से उन मतिज्ञान
और श्रुतज्ञान की क्रमानुसार एक दूसरे के पश्चात् उत्पत्ति में कुछ अद्वयन नहीं है ।

आह पदगुणम् ॥ अतम् ॥ इति ॐ पदम् ॥

= पूछता है कि "मतिज्ञान जनित श्रुतज्ञान" ऐसा यह

' ॥ अत्रापि ॥

= उसका अध्य्यापक वा असर्वगत है अर्थात् सब श्रुतज्ञान में लागू नहीं है

तम् ॥ अपि श्रुत ॥ इत्यन्ते १ तथा ॐ = क्योंकि श्रुतज्ञान निमित्तक भी श्रुतज्ञान माना गया है । जैसे [= तथा] ॥

(१) १ उपर ३ व ४ पाठान में उपपत्त्य सम्यक्त्व न वा होता है अतः प्रथम १० अध्याय तदुक्तस्य ज्ञान है श्रुत सम्यक्त्व ज्ञान में होता है

एता निषत्ताः । कालरूपराय वकीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सार्यांशिका का श्रद्धाः रिक्ती अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०

शब्दपरिणतपुत्रलस्कन्धादाहिसवर्णपदवाक्यादिभावाच्चतुरादिविषयाच्च आथअतविषयभावमापन्ना—
दृढ्याभिचारिणः कृतसर्गातिर्जना घटाज्जलधारणादिकार्यसम्बन्धनतर प्रतिपद्यते धूमादर्वाग्यादिद्रव्य तदा
भतात् भूतप्रतिपादिरिति । नैय दोष । तस्यापि मत्तिपूर्व इत्वमुपधारत ॥ अतमपि काचिन्मातिपूर्वकत्वान्म
तिरिच्युपवर्णत इति ॥

शब्दपरिणत- पुत्रलस्कन्धात् १। आहिस- = क्योंकि शब्दरूप परिणये वा अन्यरूप अवस्थाको पहुँचे पुत्रलों के स्कंध स्थापित निर्मित
वर्णपदवाक्यादि ० भावात् १। वक्ताः आवि-विषयात् १। अथ = अस्मद् वचनादिक (रूप) होने हैं और (= चित्रेनादिक इन्द्रियों के विषय होते हैं
आद्यश्रुतिविषयमात्मन् १। आपन्नात् १। = (उन जसर पदवाक्यों को) प्रयमवा पहिला श्रुतज्ञानके विषयभावको प्राप्त होने में
प्रव्यभिचारिणः १। कृतसर्गातिर्जनः १। = (कृत्) व्यवधार वा दोष नहीं है । उन (अस्मद् वाक्यों) से तत्कालित पुरुष
घटात् १। जल-धारणादि— = (घट शब्द से गोचर होनेवाला) घट (नामा पदार्थ) में पानी रखने आदिक
कार्यसम्बन्धनतरम् १॥ मतिपद्यते १। तथा ० धृमात् १। = कार्य रूप अन्यसंयोग को मास होता है । वैते ही (तथा) धुवाँ (पदार्थ) से
एव अग्नि आदि द्रव्यम् १॥ श्रुतात् १॥ श्रुत— = ही अनल आदिक वस्तुको (मास होता है जानता है) ॥ श्रुत ज्ञानसे श्रुत्मानकी
प्रतिपत्तिः ॥ इति ० न ० ५५ १। दोष १। = मति (मति पति) इस प्रकार है । (उत्तर) यह दृष्टान नदी है
हत्वम् १॥ अपि ० मति- पूर्वकत्वम् १॥ उपधारताः ० = तिस (श्रुत्मान) का भी मतिज्ञान पूर्वक होता उपधार से है वा मानलेने से है
अर्थात् श्रुत्मान से जो श्रुत्मान उत्पन्न हुआ है उस श्रुत ज्ञान के उत्पन्न
होने को भी उपधार से मतिज्ञान ही कारण है

श्रुतम् १॥ अपि ० कचित् ० मतिः १॥ इति ० = श्रुत्मान को भी कहीं वा किसी स्थान में (= कचित्) मति ही का
उपपत्ति १। इति ० । मति पूर्वकत्वात् १॥ = उपधार कीजिये क्योंकि मति पूर्वक ही सोही पूर्वोक्त श्रुत्मान मया है सरासरी कि
श्रुत्मान को मति निमित्तक कहा है उत्तर परन है कि जय श्रुत्मान से भी श्रुत्मान होता है तब मतिजन्य श्रुत्मान कैसे रहा
मेरे पहिले घट शब्द को श्रोत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से सुनकर अर्थात् उसके रूप को नेत्र इन्द्रिय जनित मतिज्ञान से
देख कर घट को जानता है यह प्रथम श्रुत्मान है फिर उस ही निपत समझले घट से दूसरे संबंधी नल धारण आदि
का ज्ञान होता है तो श्रुत्मान पूर्वक ही श्रुत्मान हुआ—फिर मतिपूर्वक श्रुत्मान कैसे ? (उत्तर) उपयुक्त उदाहरण में प्रयाग

- [illegible]

इत्य	दीप	श्रोतम् स्वरः	व्यञ्जन	प्रयोग वाच्य रूप ये १३ संस्कार मं हे ।	ब्रह्म स्वर	शोर्ब स्वर	मृत स्वर	व्यञ्जन १४ मूल अक्षर	सूचना
अ	आ	अ ३	क १ ग २ क ३ ग ४	१ ब्रह्म	अ	भा	अ ३	कवर्ग-क ख ग घ ङ	
इ	ई	इ ३	च १ ग २ च ३ ग ४	२ शोर्ब	इ	ई	इ ३	खवर्ग-ख छ न म ण	
उ	उ	उ ३	ट १ ग २ ट ३ ग ४	३ अनुनासिक विष्णु	उ	ऊ	उ ३	टवर्ग-ट ठ ड ढ ण	
ए	ए	ए ३	त १ ग २ त ३ ग ४	४ और क ग ङ	ए	अ	ए ३	तवर्ग-त थ द ध ण	
०	०	० ३	प १ ग २ प ३ ग ४	और क ग ङ	ए	अ	ए ३	पवर्ग-प फ ब भ ण	
०	०	० ३	अ १ ग २ अ ३ ग ४	भट्टर । इनको	ए	अ	ए ३	यवर्ग-य र ल ष	
०	०	० ३	उ १ ग २ उ ३ ग ४	चार यस मो	ए	अ	ए ३	योगवाच्य अ म ः	क
०	०	० ३	उ १ ग २ उ ३ ग ४	कहते हैं ।	ए	अ	ए ३	प अनुस्वार विसर्ग	
०	०	० ३	अ १ ग २ अ ३ ग ४		ए	अ	ए ३	शिङ्गा मूल एतपध्यानीय	
०	०	० ३	अ १ ग २ अ ३ ग ४		ए	अ	ए ३	चार हैं ।	

एव निवासी जगत्प्रसादय कर्तृकृत पदच्छेद और विषयार्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०
भेदशून्य एतेक परिसमाप्यते द्विभेदनेन भेद द्वादशभेदगति ॥ द्विभेद तावत् - अङ्गवाद्यमङ्ग
प्र घटिति । अङ्गवाद्यमनेकविध दशभैरवलिफोचराध्ययनादि ॥

श्रुतान प्रतिज्ञानन्य हे दूसरा श्रुतज्ञान नयम श्रुतज्ञान से हुआ है लौ गो मतज्ञान पूर्वक उपचार से श्रुतज्ञान हुआ है
एसा फल में दूध नहीं क्योंकि श्रुतज्ञान नहीं साक्षात् मतिपूर्वक है काही परपरा मतिपूर्वक है अतः "श्रुत मति पूर्व" ऐसा कहा है ॥
भेदशून्य ॥ प्रत्यक्ष ॥ परिसमाप्यते द्वि-भेद ॥ = (इस सूत्र में) भेदशून्य प्रत्येक पर समाया गया है । (श्रुतज्ञानके) दो भेद हैं
प्र भेद ॥ ॥ तावत् ॥ = अनेक भेद हैं । बारह भेद हैं । प्रथम
'द्विभेद ॥ अङ्गवाद्यम ॥ अङ्गप्रतिष्ठ प्रकार है
= अङ्गवाद्य अनेक प्रकार वा बहुवचन रूप है । दशवैकालिक (साक्षात् प्रकीर्णक)
= उत्तराध्ययन (आज्ञा प्रकीर्णक) (१) आदिक (बारह प्रकीर्णक और हैं)
उत्तरा-व्ययन-आदि ॥

अयात् अक्षरात्मक श्रुतज्ञान में बारहअङ्ग और चौदह प्रकीर्णक समिलित हैं ।

५५ का ६" गद्य में (१) सामायिक प्रकीर्णक (२) सस्वन प्र (३) दधना प्र (४) प्रतिक्रमण प्र (५) विनय प्र (६) कृतिकर्म प्र ०
(६) कर्तव्यप्रकार प्र (७) कर्तव्यप्रकार प्र (११) महापुरुषप्रकार प्र (१२) महापुरुषप्रकार प्र (१३) निमित्तिका प्रकीर्णक निवेष्टित है
प्रकार (१४) नामादिक प्रकीर्णक = जिसमें नाम स्थापना प्रत्यक्ष क्षेत्र काल मारकति गद्य प्रकार सामायिक का वर्णन हो ।

(१५) दत्तनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें तीर्थकर्तों के संस्कारज्ञान कौतिस अतिशय अथ मां तथा परमेश्वरिक विषयबोध समस्तसत्य
पदों परादिक और तीर्थकर्तों के महापुरुष का प्रकट करनेवाला सूत्र का वर्णन हो ॥

(१६) परनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें एक ही तीर्थ करने के अर्थ में प्रतिमा भैरवाख्यादिके स्तवन का व्याख्यान हो ॥

(१७) प्रतिक्रमणनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें एक दिन सत्यवादी शेष के निराकरण के लिये वैश्विक प्रतिक्रमण लेसे हो रात्रिक पारिक
चतुर्मासिक मासिक ऐश्वर्यिक और सत्यास मरण के अवसर में संपूर्ण पर्यायों में उपलब्ध होयों के निराकरण के लिये प्रतिक्रम
प्रकार वर्णन हो

(१८) विनयनाम प्रकीर्णक वह है जिसमें भूतनाम पारिक रूप उपचार इन पञ्चप्रकार को विनय का कथन हो ॥

(१९) कृतिकर्मनाम प्रकीर्णक वो है जिसमें जिन पुरुषाधिक क्रिया के करने के विधान का वर्णन वा पञ्चप्रकारों में जिनपर अतिप्रतिमा
जिन परचन जिनमंडित के शब्दों के लिये तीन प्रकीर्णक तीन प्रकीर्णक काट किराती बारह आकर हाथा व और निरवैश्विक
क्रिया का प्रकीर्णक हो

एषा निवासी मगरूपसहाय वहीलहृत पदच्छेद्व और विमन्मयर्थे संहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०

दिव्यजो—ये बीसति मूल अक्षर अनादि निधन पर्यायाम में “सिद्धोपर्याः सप्त द्वायाः” सूत्र से प्रसिद्ध हैं । आधो मात्रा जिसके बोलने के कालपरिचय द्वारा विमन्मय शब्दजन कहते हैं । जिसको एक मात्रा हो उसको इत्थं वा मात्राओं उसको शतं तीनमात्रा ही उसको गुण कहते हैं इन द्वाय मूल न्वरों होते हैं । ध्रुतबान के दो मेरू हैं (१) अक्षरपरमक वा शुक्ल अथवा शुक्लध्व ध्रुतबान (२) अनक्षरपरमक, सिक्लध्व वा सिक्लध्व ध्रुतबान ।

(क) अनन्तम गृह्यते अ संख्यातम गृह्यते संख्यातगुणवृद्धि संख्यातगुणवृद्धि अनन्तगुणवृद्धि इत्येव परस्परानपत्तिवृद्धिको प्रत्येसा ते अनक्षरपरमक ध्रुतबान के सब सेवणम्य स्थान से लेकर उच्छ्रय स्थान पर्यंत अक्षरपरमक लाक प्रमाण मेरू होते हैं । अनक्षरपरमक ध्रुतबान के अक्षरपरमक मेरू हैं । सिक्ल आ सिक्ल धर्मे अक्षर मया भेसा अनक्षर मक ध्रुतबान से एके द्वित्ये लगाए पचोद्वित्य पर्यंत सवें आंतिनके है तथापि याने किछु व्यय २ गृह्यते नाहीं” तातेप्रधान नाहीं गाम्भटचार मुद्रित गृह १७३“इसै श्रावस पवन का स्पष्ट मया गद्दी श्रावस पवन अ जानना ही मतबान है यहुनि विसका धनकरि वापु को पकृति बाले को यह श्रावस पवन अनिष्ट है भेसा जानना वा ध्रुतबान है सा यह अनक्षरपरमक ध्रुतबान है । अक्षर के निमित्तवै मया गद्दी । मेरू हो सवें अनक्षरपरमक ध्रुतबान का स्वकप जानना” गाम्भटचार मुद्रित गृह १७४ ॥

(ख) “शब्द अक्षर अक्षरान् उदाहरण शब्दतं अपर मया आ अक्षरपरमक ध्रुतबान से प्रमुख कहिय मुख्य है प्रधान है जाते देना लेता मात्रा पठना तथादिक् सव व्ययवर्धनम मूल अक्षरपरमक ध्रुतबान है” गृह १७५ ॥

“तात ‘ओर’ मति’ भेसा शब्द कया गद्दी कयैरूप इतिप्र मतिबानअरि ओका अस्ति असे शब्दकी मया । अक्षर तीहि अक्षरकरि ‘अ’ इनामा पदपर है भेसा ओ बान मया से अ नबान है । शब्द बीर अर्थ के पाक्य याचक संलग्न है । अर्थ वाक्य है उच्च वाचक है, अर्थ है सा उच्च वाक्य है शब्द उस अर्थ का कदन श्राप है भेसा जो बान मया से ध्रुतबान है । तो इहां ‘ओर’ अस्ति’ भेसे शब्दका मतना ही मतबान है मर उमके भिमि नई अनेनामा पदपर का अस्तिअय जानना से ध्रुतबान है । मेरू हो सब अक्षरपरमक ध्रुतबान का स्वरूप मया । अनक्षरपरमक जो ३ हर गाल अपर मया आ बान नाको मो अक्षरपरमक कया । इहां कार्यभेदे काव्या का उपकार किया है परमार्थमें बान कोर अक्षर कहते गद्दी ॥ गृह १७६ ॥ अक्षरपरमक ध्रुतबान का एक बीर पच्छा उदाहरण भेसे अब कोर मनुष्य ‘भीका’ बीर

पूरा निवासी आकरूपसहाय बड़ीलहृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०

रिचयः—ये चीसटि मूल अक्षर अनादि नियम परमाणम में "सिद्धोक्त्याः सम स्यात्" सूत्र स प्रसिद्ध हैं । बायो मात्रा जिसके बोलने के कालपरि हाय तिमिर्य दर्शन कर रहे हैं । जिसको एक मात्रा हो उसको इस्य वा मात्रावा उसको चार्य तोमत्रा हो उसको गुण कहते हैं इत्यादि रूप धून नरते होते हैं । धुनवान के दो भेद हैं (१) असंसारमक वा शब्दक अथवा शब्दज्य धुनवान (२) अनसंसारमक, सिद्धन वा सिंगनर धुनवान ।

(अ) अनन्तम गृह्णित असंख्यातम गृह्णित संख्यातम गृह्णित संख्यातगुणगृह्णित असंख्यातगुणगृह्णित अनसंख्यातगुणगृह्णित इन पदस्थानपरिचित गृह्णितों को धरेखा से धन संसारमक धुनवान के मक से अथवा स्थान रा छेकर उत्पन्न स्थान पर्यंत असंख्यात साक प्रमाण में होते हैं । अनसंसारमक धुनवान के असंख्यात भेद हैं । "सिंग आ सिंग ता नें उत्पन्न स्या भेसा अनसंसार मक धुनवान सो एके त्रित्वै लगाइ पचेतिद्वय पर्यंत सर्व आयति के है तथापि याने किछु अन्यत्वं र प्रकृति मारी" तातेप्रधान नारी गल्मटसार मुद्रित गृह ६७३ "असंख्योक्त्यै शोतल पवन का स्वयं मया तदी शान्त पवन का जानना तो अनिधान है गृह्णित सिंसका धानकरि बायु को प्रकृति वाले को यह शोतल पवन अनिष्ट है सोसा जानना को धुनवान है सा यह अनसंसारमक धुनवान है । अक्षर के निर्मित्वे मया नारी । जैसे हो सर्व अनसंसारमक धुनवान का स्वयं जानना गोमटमार मुद्रित गृह ६७४ ॥

(ब) "उत्पन्न कश्चिद अक्षरात् उत्पन्निरूप शब्दनें उपर मया आ असंसारमक धुनवान सो प्रमुख कश्चिद शुक्ल है प्रमाण है आते रेना लेम शब्द पन्ना रणारिक सय उपपदादिना मूल असंसारमक धुनवान है" गृह ६७५ ॥

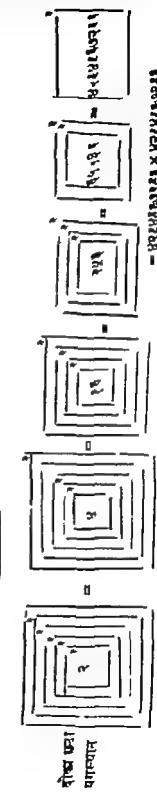
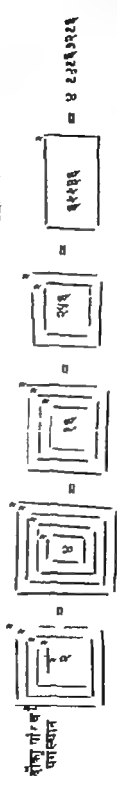
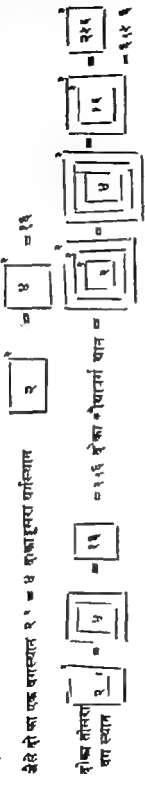
"तदा 'ओ' बलि' सोसा शब्द कछा तदी कर्णरूप इन्द्रिय प्रतिमानकरि ओका बलिउ जैसे शब्दको प्रमाण । अक्षर तीहि आनकरि 'अ' वनामा पण्य है' भेषा ओ जान मया सो अनिधान है । शब्द और अय के प्राक्य धावक संबंध है । अर्थ वाक्य है कथं वाक्य है, अर्थ है सा उम शब्द र कहने योग्य है शब्द उम अय का कदन बाप है सोसा ओ जान मया सो धुनवान है । यो इहां ओका बलिउ' जैसे शब्दका जानना तो प्रतिमान है पर उमके निर्मित्वे ओपनामा पण्य का प्रतिमान जानना सा धुनवान है । जैसे हो सब असंसारमक धुनवान का स्वयं मया । असंसारमक जो शब्द शान्त उपर मया आ जान नाकों सो असंसारमक कछा । इहां कानेदिने कान्य का उपचार किया है रण्यार्थनें जान कोर अक्षर का है नारी ७ ७३ ६७६ ॥ असंसारमक धुनवान का एक और पच्छा उपपदादिना जैसे मक कोर मनुष्य 'भीका' और

मंग आर विस्वयोगी मंग बर बहुसंयोगी मंग आर पञ्चसंयोगी मंग (कू खू गू घू ङू) एक ऐसे सातव मंग है । व वर्यो सप्रति दिने
 अर्थात् क वर्यो से व वर्यो को अनेका से प्रत्येक मंग (कू) एक है द्विसंयोगी पाँच मंग है त्रिसंयोगी बरा मंग है, बहुसंयोगी बरा मंग है
 पंच संयोगी मंग पाँच और पदसंयोगी मंग (कू खू गू घू ङू चू) एक है । ऐसे मंग पचास हैं । छ वर्यो सहित विदे अर्थात् क वर्यो से व वर्यो
 तक इन मान अष्टादो कू त्रिकला से प्रत्येक मंग (छ) एक है द्विसंयोगी मंग छठ है । त्रिसंयोगी मंग पन्द्रह है बहुसंयोगी मंग दोस है पञ्चसंयोगी
 मंग पन्द्रह है पद संयोगी मंग छह है और सप्त संयोगी मंग (कू खू गू घू ङू चू) एक है इस प्रकार चौंसठि है । नू वर्यो सहित विदे अर्थात्
 कय्या से अष्टाद तक इन आठ अष्टादो का अनेका से प्रत्येक मंग (अ) एक है द्विसंयोगी मंग सानू है त्रिसंयोगी मंग इकोस है बहुसंयोगी मंग
 पैंताल है, पञ्चसंयोगी मंग पैंतीस है पद संयोगी मंग इक स है सप्तसंयोगी मंग स्यात है अर स्योगी मंग (कू खू गू घू ङू चू ङू) एक है ऐसे
 एकसौ अष्टास है । नू वर्यो सहित विदे अर्थात् कय्य से नू वर्यो तक मी प्रत्येक मंग एक (नू) है द्विसंयोगी मंग आठ है त्रिसंयोगी मंग
 २८ अष्टास है । बहुसंयोगी मंग अष्टास है पंच संयोगी मंग सत्तर है । पदसंयोगी मंग अष्टास है । सप्त संयोगी मंग अष्टास है । अष्टसंयोगी
 मंग आठ है नवसंयोगी मंग (कू खू गू घू ङू चू ङू) एक है ऐसे कय्य से नू तक बीसौ अष्टास मंग है । और क१७ से न वर्यो पदैव
 इन वर्यो अष्टादो क, अनेका से प्रत्येक मंग (अ) एक है । त्रिसंयोगी मंग दकोस है बहुसंयोगी मंग बीसौ है पंचसंयोगी
 एकसौ अष्टास है । पदसंयोगी मंग बीस एकसौ अष्टास है । सप्तसंयोगी मंग बीसौ है अष्टसंयोगी मंग अष्टास है नव संयोगी मंग नव है
 दश संयोगी मंग 'कू खू गू घू चू ङू चू ङू' एक है ऐसे ये ५१२ मंग हैं पुँदे सप्त मंग एक सप्तस्र बीस ओढने पर होते हैं ये सब पृथक्
 पृथक् लिखे जानकते हैं विस्तर मंग से महीं लिखे का रीति उपर बता चुके हैं । स्मरण रहे कि ये मंग अनुमरक अष्टादो द्वारा पने
 पुँदे हैं अर्थात् पद मंग में उत्तरकेर कर पनी अष्टास नहीं जानकते उँ घैसे कू खू गू और अष्टाद हा गकक यह तीनों अनुमरक मंग को अनेका से
 एक व मंग है । इस दो क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक मंग त्रिसंयोगी मंग, बहु संयोगी मंग इत्यादि मंग पूर पूर्व स्थानों
 के मंगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगळे अगळे स्थाना से पुँने होते जाते हैं । घैसे—

मंग कार चित्तयोगो मंग कर बहुतयोगी मंग कार पञ्चसंयोगो मंग (क् ख ग घ ङ) एक ऐसे सासह मंग है । च षणो सहित विधि
 अर्थात् ऋ ऌ से च एओं को अनेका से प्रत्येक मंग (व्) एक है द्विसंयोगो पंच मंग है त्रिसंयोगो षण मंग है, चतुसंयोगो वय मंग है
 पंच संयोगो मंग पंच और पदसंयोगो मंग (क् ख ग घ ङ) एक है । ऐसे मंग पञ्चोत्तम हैं । ऋ ऌ सहित विधि अर्थात् ऋ ऌ से च एओं
 तक इन मान अक्षरों का विवक्षा से प्रत्येक मंग (उ) एक है द्विसंयोगो मंग छह हैं । त्रिसंयोगो मंग पण्ड है चतुसंयोगो मंग जोस है पञ्चसंयोगो
 मंग पण्ड है पद संयोगो मंग छह है और तत्त संयोगो मंग (क ख ग घ ङ) एक है इस प्रकार चौंसठ हैं । ज् वय सहित विधि अर्थात्
 कण्या से अथवा तत्त इन आठ अक्षरों को अनेका से प्रत्येक मंग (ज) एक है द्विसंयोगो मंग साठ है त्रिसंयोगो मंग इकोस है चतुसंयोगो मंग
 पैंगत्त है । पञ्चसंयोगो मंग पैंगत्त है पद संयोगो मंग इक स है तत्तसंयोगो मंग सात है वय संयोगो मंग (क् ख ग घ ङ) एक है ऐसे
 एकसौ अक्षर हैं । ऋ वय सहित विधि अर्थात् कजव से ऋ वय तक में प्रत्येक मंग एक (म्) है, त्रिसंयोगो मंग आठ है त्रिसंयोगो मंग
 २८ अक्षर हैं । चतुसंयोगो मंग छयन है पंच संयोगो मंग सत्तर है । पदसंयोगो मंग छयन है । तत्त संयोगो मंग अर्नास है । अष्टसंयोगो
 मंग आठ है नपसंयोगो मंग (क् ख ग घ ङ) एक है ऐसे कजव से ऋ तक दोसौछयन मंग हैं । और कजव से ऋ तक पण्ड
 इन दश अक्षरों को अनेका से प्रत्येक मंग (प्र) एक है । त्रिसंयोगो मंग तीस है । द्विसंयोगो मंग चौपत्ती है चतुसंयोगो मंग चौपत्ती है पंचसंयोगो
 एकसौछयन स है । पदसंयोगो मंग जो एकसौ छयनीस है । तत्तसंयोगो मंग चौपत्ती है अष्टसंयोगो मंग छयन है मच संयोगो मंग मच है
 वय संयोगो मंग 'क् ख ग घ ङ' एक है ऐसे ये ५११ मंग हैं द्वितीय मंग एक सत्तर हैईस जोटने पर होते हैं ये सब पृथक्
 पृथक् सिद्धि जानकरी हैं विस्तर मंग से नहीं सिद्धि सिद्धि का रीति उपर बता चुके हैं । स्मरणा रहे कि ये मंग अणुनरुद्ध अक्षरों द्वारा बने
 हुये हैं अर्थात् पद मंग में उलटकेर कर फटो यासर नहीं आनकरी हैं जैसे क्ख्ग और ङ्गक् वा ग्गक् यह तीनों अणुनरुद्ध मंग को अनेका से
 एक है मंग है । इस ही क्रम से चौंसठि स्थानों में प्रत्येक मंग द्विसंयोगो मंग त्रिसंयोगो मंग चतुसंयोगो मंग इत्यादिक मंग पण्ड एवं स्थानों
 के मंगों से उत्तर उत्तर अर्थात् अगले स्थानों से हुने हुने होते जाते हैं । जैसे—

पटा निवासी नगरपालिका पदच्येद और विपक्षस्य सहित सर्वोपस्थितिका शब्दार्थः हिन्दी अनुवाद । अध्याप १ धृ२२०

() इन्तो मेव को नोमरे प्रकाश से उसे मो प्रकाश का गत्तु है कि विशेषगथायका (अथवा शके वर्ग पाया में) अष्टमं गगनागत अिन्तो गगनाभा पश्यतो सम्पत्तिं वरापर है । इति एकदो प्रमाणा सल्लगते म तत्क मगोसे जा अथवेय सेवग रते उते हो आगमक प्रशार म्प्य भुतासल्लके मे प्रप्योद् दाने ऊते २ वग दमकर अब घटवो यगका स्थान आयो (२ २ २ २ २ २) २२ गुणमस्त्वमे १ एव प्रयाया सेदी प्रप्यभुनके कपुतरएव आसरेवे



घटाते पर १८५४१०५४ ०३० ६२२११२ रोप रणे येदी कपुनक म्प्य भुतासल्ल के मे

घटाते पर १८५४१०५४ ०३० ६२२११२ रोप रणे येदी कपुनक म्प्य भुतासल्ल के मे

घटाते पर १८५४१०५४ ०३० ६२२११२ रोप रणे येदी कपुनक म्प्य भुतासल्ल के मे

पूरा निवासी नागरपसराय वकीलकृत पन्थेय और विमर्शपूर्ण सहित सर्वोपसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाक । अध्याय १ पृष्ठ २०

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

मार्ग

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

१५५३१

यथा श्रोग्रं येष और अन्त्याता को ऊपर च लिखते हैं। यह अक्षर से उग्रा हुआ जो ज्ञान सितके ऊपर कः से एक एक अक्षर को धृति दत्त है। ३३ नक्षत्रात् अक्षर की धृति दत्ता ७ तब पञ्चनामक भुक्तान् होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पञ्चज्ञान के दूध तक जितने ज्ञान के मेव हैं (वे ज्ञान के मेव नक्षत्रा में पद के अक्षरों से वा स्पून होते हैं) ये सब अक्षर समासज्ञान के मेव हैं। (को० को० गो ३३५ गाया) स्मरय्य यदै कि यदी १८ तद मेव अन्त्यात् मध्यमपद से है यत्किं एव तीन प्रकार के हैं (१) अर्थपद (का) प्रमथ पद (ब) मध्यम पद। तहाँ कितने अक्षरों के समूहवाप यीछित अर्थ जाना जाता है उसको 'अर्थपद' कहते हैं अर्थात् विविधित अर्थ के अर्थों एक वा अर्थात् अक्षरमयः समूह ताको 'अर्थपद' कहते हैं जैसे 'गामम्यात् शुक्ल' वदेन वाक्य में गाम अन्त्यात् शुक्ल वदेन (= एवेन गाय को वदेके वद) से बन्ध करवा। गाम अन्त्यात् शुक्ल वदेन चार अर्थ पद हुये। वैसे ही अभिमानप, वाक्मै अभिम् अभिम् आनप (= आग को ला) वाक्य पद हुये। और वदेन आन्त्यात् 'निवाल्' पाक में वदेन - शाब्दिक्यः - आ - निवाल् (= वदेसे गाय का घातों में से निकाल वा) ये चार अर्थ पद हुये। इन अक्षरार्थों से प्रकट है कि अक्षरों में अर्थके पद के अक्षर वरावर नहीं होते स्पून हो अक्षरों के अर्थ (को० वरावर मो हो प्रमथि अक्षरार्थों से अर्थ) निरगतः नक्षत्रात् अक्षर पद ३ तदथा मया आ शब्द मानाय। नियमित लेख्या का बिसे हुये आठ अक्षर अर्थात् गणना कर उत्पन्न हुआ प्रसंगेय समूह या प्रमाथ पद है अर्थात् यद्य मान (गणना) क नमस्कार हो अन्य अक्षरार्थ प्रमाथपद के मळा मध्यमार्थमिति मयि प्रमाणात् नै मयि। अक्षरार्थ पद सत्तत्तात् पदार्थमैव। इत्यपि इन तीन प्रमाथपद के अक्षरार्थों से प्रकट है इनके अक्षरों की सख्या हीन अधिक है ५८३ प्रतीक अक्षर अक्षर तीन प्रमाथपदों के अक्षरों का प्रमाथ वरावर हागा। एक सब अक्षरार्थों के मिलाने से यह फल निकलता है कि अक्षर और प्रमाथपद के अक्षरों को कोई गणना नियत नहीं है।

यथा और सोनासै र्वादीन कर्षिद सियासी आठ सात हजार आठसै अठ्यासी (१३४५३०५८८८) गाथा विधे (= परमागम कर्षि अनुनक्षत्र अक्षर भित्ति समूह मो मध्यमपद कह्ये। इति विधे अर्थपद अक्षर प्रमाथपद ही तीन अर्थात् अक्षरार्थ प्रमाथपदों सिय लोकाव्यवहार करिपरवत् य एवम् आ काय है गान साक्षर अक्षर परमागमविधि गावाविधे करी ओ सख्या तोह। विधे वदमाल ओ मध्यम पद ताही का प्रमाथ जानमा? माला, अक्षर और म अक्षरों न्यूनधिक्य माया होये से साक्षरवरावर में प्रकट है विसरि लोकावहार गाथा विधे [= परमागम में] कहे हुये पदके अक्षरों का प्रमाणा १३४५३०५८८८८ सर्वथा के विधे निर्दिष्ट है। इस हो को मध्यम पद कहत है।

कदा निरासी अक्षरस्य कर्तृक कृत पञ्चदेव और विमलस्य सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः शिवा अनुवाय । अक्षय १ सूत्र २०

अगतकृतम् । अनुचरापपादिकदयम् । प्रभव्याकरायम् । विपाकसूत्रम् । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवाद

पञ्चविध —

अन्वहारम् ॥॥ = अन्वहार्यांग जिसमें प्रत्येक तीर्थके तीर्थमें (= एक तीर्थके पीछे जबतक दूसरा तीर्थक हो वो काल) वो दश दश मुनि चार प्रकार का तीर्थ उपसर्ग सदन करके संसारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके

तीर्थसंख्या अर्द्धसंख्या २२२८००० पद है

अनुचरोपादिकम् ॥ = अनुचरोपादिक दशांग वह है जिसमें एक एक तीर्थ के तीर्थमें दश दश महासुनि घोर उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुचर विमानोंमें उत्पन्न हुए । इसमें बानवै सात घनलीस सहस्र ९२४४००० पद है ।

प्रलब्ध व्याकरणम् ॥ = प्रलब्ध व्याकरणांग वो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अक्षय सुख दुःख जीवित मरणादि शुभाशुभका कोई प्रलब्ध करने जिसके उत्तर यथार्थ कहें का उपाय वर्णन है और आधेपिणी, विधेपिणी सर्वेजनी निर्वेजनी इन चार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवै सात सौ सहस्र ९२४६००० पद है ।

विपाकम् ॥ = विपाकसंख्या वह अक्षर है जिसमें प्रत्येक, योग, काण्ड भावके अनुसार शुभाशुभ कर्मों को तीर्थ प्रत्येक मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभागशक्तिके फल देने कर विपाक का वर्णन है इसमें एकस्रोद चौगसोलाय पद है = दृष्टिवाद वह अक्षर है जिसमें तीनसौ तिरसठ मिथिया मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें

दृष्टिवादः ॥ पञ्चसौ आठ करोड़ अटसठसात छापन सहस्र पांच १०८६८५९००५ पद है

दृष्टिवादः ॥ पञ्चविधः ॥ = दृष्टिवादः (चारहवां अक्षर) पांच प्रकार का है (इसो पुस्तक का पृष्ठ ४२० देखो)

पदा निरासी मंगलसहाय वरदकृत पक्खेद और विष्णुसिद्धिका मन्त्रश हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०
 आचारः । सूत्रकृतम् । स्थानम् । समवाय । व्याख्याप्रज्ञात । ज्ञातुधर्म कथा । उपासनाध्ययनम्

आचारः ॥ = आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो । अठारह सहाय जिसके पद हैं ।

सूत्रकृतम् ॥ = सूत्रकृतांग अर्थात् वह है । जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मिक्रियामें स्वमत परमवक्त्री क्रियाका और

निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विक्षय निरूपण हो इसमें छत्तीस सहाय १६००० पद हैं ।

स्थानम् ॥ = स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्यों के एकते लेकर कितने विस्मय होसकते हैं और उन विकल्पों का वर्णन किया है

जैसे समान्यभूत अणुओंसे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, संसारो और मुक्त की अपेक्षा से

वा भेद है उत्पत्ति व्यय पौण्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं । चार गणियों की अपेक्षा से चार भेद हैं, इत्यादि ।

इसी प्रकार पुनः आदिक द्रव्यों के भी भेद समझना । इस में विषालीस सहाय ४२००० पद हैं ।

समवायः ॥

= समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य सत्, काळ भाव को अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है । सारांश

सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है । जैसे द्रव्यकारि धर्मास्तिकाय

अधर्मास्तिकाय समान है । कवचरि मनुष्यसोत्र और प्रथम नरका प्रथम इन्द्रकबिड, अर प्रथम स्वर्गका प्रथम

इन्द्रक विमान समान है । काठकरी उत्तरदिशि अवसर्पिणी समान है । भावकारि केवल ज्ञान केवल दर्शन समान

है । इसके एक लाख चौसठ सहाय १६४००० पद हैं ।

व्याख्याप्रज्ञातिः ॥ = व्याख्याप्रज्ञाति अङ्ग वह है जिसमें जीव के अस्तित्वरहित, वस्तुत्व अवस्तुत्व नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि

ज्ञातुधर्मद्रव्यः ॥

साठ सहाय प्रत्येक गणधर देवने तीर्थंकर भगवान के निज क्रिये सां कथन है । दोलाखत्रदार्द्रस सहाय पद हैं ।

= ज्ञातु धर्म कथांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव, तीर्थंकरोंका महात्म्य, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका

समय तथा महात्म्य, उत्तम भूमा आदि दशधर्म सम्पन्नवर्त्तनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती

मादिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पांचमात्र छप्पनसहाय पद हैं ।

उपासकाध्ययनम् ॥ = उपासकाध्ययनाङ्ग वह है जिसमें उपासककी (आत्मिकी) सम्पन्नवर्त्तनादि ग्यारह प्रतिया संकटी ज्ञात गुण जीव

आचार तथा दूसरे क्रिया कांठ और उनके मन्त्राधिकों का विस्तार वर्णन है । ग्यारहमात्र सत्कार सहस्रपद हैं

इस निरासी ममरूपसाय कर्तव्य कृत पदच्छेद और निमित्तपर्यसहित सर्वार्थसिद्धिका शुद्ध्यर्थः । अद्याप्य १ सूत्र २०

अतस्तदुच्यते । अनुसरोपपादिकदशम् । प्रशव्याकरणम् । विषाकसूत्रम् । दृष्टिवाद इति ॥ दृष्टिवाद

पञ्चविध —

अन्तर्हारागम् ॥॥ = अन्तर्हाराग जिसमें प्रत्येक तीर्थकरके तीर्थमें (= एक तीर्थके पीछे जबतक दूसरा तीर्थकर जो वो काल)

जो दश दश मुनि चार प्रकार का तीर्थ उपसर्ग सहन करके ससारके अन्त को प्राप्त हुए उनका वर्णन है इसके

छेत्तु लाल अष्टादश सहस्र २३२८००० पद हैं

अनुसरोपपादिकदशम् ॥॥ = अनुसरोपपादिक दशांग यह है जिसमें एक एक तीर्थकरके तीर्थमें दश दश महासुनि चार उपसर्ग सहकर अन्तमें समाधि के द्वारा अपने प्राणों को त्याग करके विजय आदिक पांच प्रकारके अनुचर विमानोंमें उत्पन्न हुए । इसमें बानवै लाल चबालीस सहस्र ९२४४००० पद हैं ।

मदन व्याकरणम् ॥॥ = मदन व्याकरणांग जो है जिसमें अतीत अनागत काल सम्बन्धी लाभ अक्षय सुख दुःख नीवित मरणादि शुभाशुभका कोई मदन करे जिसके उत्तर पर्याय कहोका उपाय वर्णन है और आक्षेपिणी, विक्षेपिणी सर्वेक्षिणी निवेक्षिणी इन चार प्रकारकी कथाओं का वर्णन है इसमें तिरानवै लाल सोलह सहस्र ९३१६००० पद हैं ।

विषाकसूत्रम् ॥॥ = विषाकसूत्राङ्ग वा अङ्ग है जिसमें द्रव्य, क्षेत्र, काश आदिके अनुसार शुभाशुभ कर्मों को तीव्र मन्द मध्यम आदि अनेक प्रकारकी अनुभागशक्तिके फल देने रूप विषाक का वर्णन है इसमें एकत्रयोदश चौरासोलाख पद हैं

दृष्टिवाद ॥ = दृष्टिवादाङ्ग वा अङ्ग है जिसमें तीनसौ तिरसठ मिथिया मतों का वर्णन और उनका निराकरण है इसमें एकसौ आठ करोड़ अष्टसठलाख छपन सहस्र पाँच १०८६८५६००५ पद हैं

दृष्टिवाद ॥ पञ्चविधः ॥ = दृष्टिवादः (चारहवाँ अङ्ग) पाँच प्रकार का है (इसी पुस्तक का पृष्ठ ४२० देखो)

पटा निवासी मंगलेश्वराय बर्बरकृत पक्खेद और विष्णुस्वर्ण सहित स्वर्णसिद्धिका शब्दस्य हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०
 आचारः । सूत्रकृतम् । स्थानम् । समवाय । व्याख्या प्रज्ञास । ज्ञातुधर्म कथा । उपासनाध्ययनम्

आचारः ॥ = आचारांग अर्थात् वह है जिसमें साधुओं के समस्त आचरणका वर्णन हो । अतएव सहस्र जिसके पद हैं ।

सूत्रकृतम् ॥ = सूत्रकृतांग अर्थात् वह है । जिसमें ज्ञानका विनयादिक तथा धर्मक्रियामें स्वमत परमतकी क्रियाका और

निर्विघ्न अध्ययन क्रियाका विशेष निरूपण हो इस में छत्तीस सहस्र १६००० पद हैं ।

स्थानम् ॥ = स्थानाङ्ग अर्थात् जिसमें सम्पूर्ण द्रव्यों के एकसे लेकर किन्तुने विरूप्य दोसकते हैं और उन विस्तरों का वर्णन किया है

वैदे समान्यन्द्रे प्रपेक्षासे जीवद्रव्यका एक ही विकल्प वा भेद है, सतारी और मुक्त की अपेक्षा से

दो भेद हैं उताद व्यय पौल्यकी अपेक्षा से तीन भेद हैं । चार गतियों की अपेक्षा से चार भेद हैं, इत्यादि ।

इसी प्रकार पुनः आदिक द्रव्यों के भी भेद समसना । इस में विषालीस सहस्र ४२००० पद हैं ।

समवायः ॥ = समवायाङ्ग अर्थात् वह अङ्ग है जिसमें द्रव्य क्षेत्र काउ भाव करे अपेक्षासे सामान्यताका वर्णन है । सारांश

सम्पूर्ण द्रव्यों में परस्पर किस किस धर्म की अपेक्षा से सादृश्य है यह बताया है । जैसे द्रव्यकारि धर्मास्तिकाय

अवमार्स्तिकाय समान है । क्षेत्रधरि मनुष्यक्षेत्र और प्रथम नरकका प्रथम इन्द्रकविल, अर प्रथम स्काका प्रथम

इन्द्रक विमान समान है । कालकरि उत्सर्पिणी अवसर्पिणी समान हैं । भावकारि क्षेत्रज्ञ ज्ञान क्षेत्रज्ञ दर्शन समान

हैं । इसके एक लाख चौसठ सहस्र १६४००० पद हैं ।

व्याख्यानप्रवृत्तिः ॥ = व्याख्यानप्रवृत्ति अङ्ग वह है जिसमें नीव के अस्तित्वास्ति, वस्तुत्व अवस्तुत्व नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि

साठ सहस्र प्रश्न गणधर देवने तीर्थंकर भावान क निरूप्य क्रिये तो कथन है । दोलावदार्ढस सहस्र पद हैं ।

= ज्ञात धर्म कर्मांग वह है जिसमें जीवादि वस्तुओं का स्वभाव तीर्थंकरोंका महात्म्य, तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनिका

समय तथा महात्म्य, उताम भया आदि दशधर्म सम्पददर्शनादि रत्नत्रयका स्वरूप तथा गणधर इन्द्र चक्रवर्ती

आदिकी कथा उपकथाओं का वर्णन है पाँचअस्र छप्पनसहस्र पद हैं ।

उपसंक्राम्यपनम् ॥ = उपासकाध्ययनान्ग वह है जिसमें उपासत्रयीकी (आवर्तकी) सम्पददर्शनादि गणधर प्रसिमा सर्वदी अत गुण श्रील

आधार तथा दूसरे किन्त्या काँठ और उनके मन्त्राधिकों का विस्तार वर्णन है । ग्यारहअस्र सत्तर सहस्र पद हैं

श्रुत्यर्थः ॥

यदा निवासी धारुपसहाय कर्ष्यलक्ष्य पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का श्रवणं हिंयो बहुवाद । अन्त्याय १ एव २०

पूर्वगतम् । चूलिका वेति ॥ तस्य पूर्वगत चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम् । अत्रायणीयम् ।

पूर्वगतम् ॥ = [चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] यह है जिसके चौदह प्रभेद हैं । जिसमें पचानवे करोड़ वर्तमान लाल

नियानवे सहस्र नौ सौ नियानवे [१४९९९९९९] पद हैं । (इसके विशेष के छिमे दोस्रो पृष्ठ ४२१, ४२२)

(१) च * चूलिका ॥ इति ॥ और = च) चूलिका (पचम भेद दृष्टिवाद अंग का) है । (जिसके पाच प्रभेद हैं किनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)

तत्र * पूर्वगतम् ॥ = तर्ही (= तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद)

चतुर्दशविधम् ॥ = चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

उत्पादपूर्वम् ॥ = वर है जिसमें प्रत्येकद्रव्य के उत्पाद व्यय धौव्य और उनके संपोषी धर्मों का वर्णन है । इसके एक करोड़ पद हैं

अत्रायणीयम् ॥ = वर पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानमूल के सुनय और दुर्नय पञ्चादिकाय पदद्रव्य सत्तत्त्व नव पदार्थ

आदिका वर्णन है इसमें छिदानवे सास ९६००००० पद हैं

(१) [क] असंगता वृत्ति [क] स्वासंगता वृत्ति [ग] मायागता वृत्ति [घ] रूपगता वृत्ति [ङ] आकाशगता वृत्ति ये पाँच भेद हैं

[क] असंगता वृत्ति यह है जिसमें अलगमन के अस्तरमग्न के अग्नि के घासन के, घनि के मसण के, घनि के प्रवेश के अग्नि के स्तम्भन आदि के मंत्र तत्र तत्पदार्थोंआदिक का कथन है । इन प्रत्येक के वा करोड़ भी काय नवासी सहस्र वा सौ पद हैं ।

[ग] स्वासंगता वृत्ति यह है जिसमें मेरुश्लाथल भूमि पर्वत आदि में प्रवेश करना शाय गमन करना श्याविक किया के कार्यामूल मंत्र तथादिक का प्रकरण है । इसके भी दो करोड़ भी साय गतासो सहस्र वा सौ पद हैं ।

[ग] मायागता वृत्ति यह है जिसमें मायामयी इन्द्रजालादि विभिन्नता के कारण मंत्र मंत्र आचरणानि का कथन है २०८८२१० पद हैं ।

[घ] रूपगता वृत्ति यह है जिसमें सिद्ध बायी घोषा गैस विरज्य श्याविक रूपके गलटने के कारण मंत्र मंत्र तत्पदार्थआदिक का प्रकरण है तथा चित्राय यत्तुर्देवनादिक का वर्णन है । तथा चातु रस रमयन का निरूपण है २०८८२१०० पद हैं

[ङ] आकाशगता वृत्ति यह है जिसमें आकाश में गमनादिक के कार्यामूल मंत्र मंत्र तत्पदार्थआदिक का वर्णन है । इसके भी दो करोड़

नव लक्ष गतासो सहस्र वा मन्त्र (१ ८८२१०) पद हैं ।

यदा निवासी जगरूपसहाय कवीलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वोपसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अथवा १ सूत्र २० परिकर्म । सूत्रम् । प्रथमानुयोगः ।

(१) परिचयम् ॥

== (प्रथम भद्र दृष्टिवाद अग का) परिकर्म १ वह है जिसमें गणित के कारण सूत्रों का वर्णन है

सूत्रम् ॥

== (द्वितीय भद्र दृष्टिवाद अग का) सूत्र वह है जिसमें तीनसौनेसठ भिज्यादृष्टियों का पूर्वशतपूर्वक निराकरण है

अथात् जिसमें भिज्यादर्शन सम्बन्धी तीनसौनेसठ कुवाद हैं तिनका पूर्वपक्ष ले कर जीवादिक पदार्थों ऊपर लगावने का वर्णन है । तिन भिज्यादृष्टियों के अर्थों में जीव अवधारणी है, अकर्षा ही है निर्माण ही है । अमोक्षा ही है । स्वप्रकाशक ही है । पर प्रकाशक ही है । अस्तित्व ही है । वास्तविक ही है इत्यादि एकान्त यत्नगत को दूर कर यथार्थस्वरूप का वर्णन है । इसमें अठासीछात्र पद हैं ।

प्रथमानुयोगः ॥

(प्रतीय भद्र दृष्टिवाद अग का) प्रथमानुयोग वह है जिसमें चतुर्विंशति तौर्लकर, द्वादश चक्रवर्ती नव नारायण नव प्रतिनारायण और नव वलम्ब इन नैसठ सुखाका (= उत्तम) युद्धोंका वर्णन है । इसमें पाँच सदस्य पद हैं ।

- (१) इन (परिकर्म) के प च अक्षर - (१६) चन्द्र प्रभृति (२) सूर्य युगति (३) जम्बू रोपमन्त्रि (४) ज्योतिषाग्न प्रभृति (५) व्याख्या प्रभृति (६) नारायण में चन्द्रमा मन्त्राद्या विमान आधु परिहार मृद्धि गमन हाने बुद्धि पूष पक्ष अथमद्वया चतुर्थांशपक्ष आदिका पक्ष न है इसमें द्वादशसुखा व पाँच सदस्य (३६०५ ००) पद हैं
- (२) पूर्वप्रभृति म गुरु सञ्च आधु परिहार गमन पक्ष श्रुति विधक्का पञ्चा म है इसमें पाचकात्र तीन सदस्य पद हैं । (५०१० ०)
- (३) जम्बू ग मन्त्राग्न मपथा मन्त्र तुलायल ह्न (सदस्य) क्षेत्र कु व वैदिका व व्यन्तरी के आवास महानदी आदिका पक्ष न है । इसमें गान सा ग पञ्चोत्तर सदस्य ३६५ ० पद हैं
- (४) ज्योतिषाग्न प्रभृति में अथमद्वया ज्योतिषाग्न सन्तुर्लो का अक्षरूप तथा यहाँ निम्नले बाले मन्त्र व स्त्री वपुषट् उपोदितिकर्त्र के आवासका पक्ष न और-यथा पर होत या " अष्टमि भोज्याभयों का पक्ष न है इससे बाबम सात्र पृथीस सदस्य (५५३१०० पद) हैं
- (५) व्याख्यामन्त्रि में मन्त्र अथमद्वय-जेर प्रमाण सकृप्य करो आरुणा अत्र व युद्धों का कीट अनन्तरसिद्ध परपट सिद्धोक्त तथा नृमत्त परजुनों का मो पक्ष न है । इसमें चौदासी सात्र छत्तास सदस्य (८८३३०००) पद हैं

इस निवासी समरूपसहाय स्त्रीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २० पूर्वगतम् । चूषिका भंति ॥ तत्र पूर्वगत चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्वम् । अग्रायणीयम् ।

पूर्वगतम् ॥॥

= [चतुर्थ भेद दृष्टिवाद अङ्ग का] वह है जिसके चौदह प्रभेद हैं । जिसमें पचानवे करोड़ उन्वांस लाख नियमानवे सहस्र नौ सौ नियानवे [१,४९९९९९९] पद हैं । (इनके विशेष के लिये देखो पृष्ठ ४२१, ४२२)

(१)

च० चूषिका ॥ इति कृ = और = च) चूषिका (पञ्चम भेद दृष्टिवाद अंग का) है । (जिसके पाँच प्रभेद हैं जिनका वर्णन निम्न टिप्पणी में है)

तत्र * पूर्वगतम् ॥॥

= तदा (= तत्र) पूर्वगत (दृष्टिवाद अंग का चौथा भेद)

चतुर्दशविधम् ॥॥

= चौदह प्रकार है अर्थात् दृष्टिवाद अङ्ग के चौथे भेद पूर्वगत में निम्नलिखित चौदह पूर्वगर्भित है

उत्पादपूर्वम् ॥॥

= वह है जिसमें प्रत्येक दृष्ट्य के उत्पाद अथवा द्रव्य और उनके उपयोगी घटों का वर्णन है । इसके एक करोड़ पद हैं

अग्रायणीयम् ॥॥

= वह पूर्व है जिसमें द्वादशांग के प्रधानभूत सातसौ सुनप और इतने पञ्चास्तिकाय पद दृष्ट्य सततत्वं नव पदार्थ आदिका वर्णन है इसमें छियानवें साल ९६००००० पद हैं

(१) [क] अलगता चूषिका [क] स्वलगता चूषिका [ग] मायागता चूषिका [घ] रूपगता चूषिका [ङ] आकाशगता चूषिका ये पाँच भेद हैं [क] अलगता चूषिका वह है जिसमें अलगमन के अंतरात्मन के अग्नि के वासन के, दग्नि के भस्म के अग्नि के प्रवेश के अग्नि के स्तम्भ आदि के मंत्र तंत्र तपस्वर्याभाविक का कथन है । इन प्रत्येक के वा करोड़ नौ काय नवासी सहस्र दो सौ पद हैं ।

[क] स्वलगता चूषिका वह है जिसमें मेरुकावल भूमि गर्वत आदि में प्रवेश करना शीघ्र गमन करना इत्यादिक क्रिया के कारणभूत मंत्र तत्त्वों का प्रकरण है । इसके भी दो करोड़ नौ लाख नवासी सहस्र दो सौ पद हैं ।

[ग] मायागता चूषिका वह है जिसमें मायामयो इन्द्रजालादि प्रक्रिया के कारण मंत्र तंत्र आचरणादि का कथन है २०८८२१० पद हैं ।

[घ] रूपगता चूषिका वह है जिसमें सिंह हाथी घोड़ा गैल चिरया इत्यादिक रूप के पलटने के कारण मंत्र तंत्र तपस्वर्याभाविक का प्रकरण है तथा चित्राद्य आहारेणादिक का वर्णन है । तथा चातु रस रसायन का प्रकरण है २०८८२१०० पद हैं

[ङ] आकाशगता चूषिका यह है जिसमें आकाश में गजनादिक के कारणभूत मंत्र तंत्र तपस्वर्याभाविक का वर्णन है । इसके भी दो करोड़ मंत्र तंत्र नवासी सहस्र दो सौ पद (२ ८८८२०) पद हैं ।

एत निवासी नगरसराह नदीकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दार्थ हिंदी अनुवाद । अन्त्या १ सूत्र २० वीर्यानुप्रवादम् । अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम् । प्रायश्चाननामधेयम् ।

- वीर्यानुवादम् । ॥ = (३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मकीर्त्य परवीर्य उपमवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य मानवीर्य आदि अनक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है । इसमें सप्तराश ७०००००० पद हैं ।
- अस्तिनास्तिप्रवादम् । ॥ = (४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके स्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यान्नास्ति आदि अनेक कर्मों में विधि निषेधकरि सम्मत्तकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है । इसमें सप्त राश (६००००००) पद हैं ।
- ज्ञानप्रवादम् । ॥ = (५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मत्किान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुयुक्तज्ञान कुत्रवधिज्ञान इन विवेकज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिकों का वर्णन है इसमें एक धाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं ।
- सत्यप्रवादम् । ॥ = (६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके श्रमदोषधारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसत्कारके कारण, सिद्ध द्रष्ट शब्दों के प्रयोग, लक्षण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्युक्ति मीन आदि का वर्णन है । इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं ।
- आत्मप्रवादम् । ॥ = (७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्षों भोक्ता आदि अनेक कर्मों का निरवचनप और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपसे वर्णन है । इसमें छब्बीस करोड़ (२६००००००००) पद हैं ।
- कर्मप्रवादम् । ॥ = (८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों की एक प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्परोत्तर प्रकृतियों के भवत्विये बंध सहा उदय उद्वीरणा उत्तर्पण अपवर्णन संक्रमण उपश्रम निघसि नि-कांचित आदि भक्त्याओं का वर्णन है । इसमें एक करोड़ असीस लाख (१८०००००००) पद हैं ।
- प्रायश्चाननामधेयम् । ॥ = (९) मत्प्रायश्चाननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी व्यापककरि पुरुषों के

यदा निवासी नगरप्रसाधय पक्षीकृत पदच्छेद और विमलस्यर्थ सक्षिप्त सर्गार्थसिद्धिका शब्दस्य हिंदी बहुवादः । अध्याय १, सूत्र २० विद्यानुप्रवादम् । कल्याणानामधेयम् । प्राणाशयम् । क्रियाविशालम् । लोकविन्दुत्तागभिति ॥

संनयन वसादिक के अनुसारद्वि प्रमाणीक बोल पर्यन्त वा अग्रमाणीक कालकरि त्वागकृतता तथा साधय वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और पञ्चसमिति और तीन गुप्ति आदिका वर्णन है । इसमें चौरासी लाख (८४०००००) पद हैं ।

विद्यानुप्रवादम् । ॥ = (१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व यह है जिसमें अष्टाष्टमसेना आदि सातसौ अक्षयविद्या तथा रोहिणी आदि पंचसौ महा विद्याओंकर स्वरूप रामचर्य मंत्र तत्र पूजा-विधानआदिका तथा सिद्ध मर्दे विद्याओं का फल और अन्तरिक्ष भौम अङ्ग स्वरूप स्वप्न स्थान व्यञ्जन छिन्न इन आराग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ॥ ११०००००० पद हैं ।

कल्याणनमधेयम् । ॥ = (११) कल्याणनमधेय पूर्व यह है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के गर्भावतारण आदि कल्याणानोंके मरोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विमलका हेतु) बोरुझकारण भावनादि तपश्चरणादिकों का तथा चन्द्र धर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन गण शकुनादिकों के फल वर्णन है इसके उच्चास करोड २६००००००० पद हैं ।

प्रजापत्यम् । ॥ = (१२) प्रजापत्य पूर्व यह है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इडा (= शुक्ली) विकला (= अग्नि) आदिका दक्षप्रमाणोंके उपकारक अयकारक द्रव्योंवा गतियों के अनुसार वर्णन है ।

इस में तेरह करोड १३००००००० पद हैं ।

क्रियाविशालम् । ॥ = (१३) क्रियाविशाल वह पूर्व है जिसमें संगीत छन्द अस्त्रकार पुरुषोंकी बहार कला स्त्रीके चौंसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, शिश्पादि विज्ञान सम्पत्त्यदर्शनादि पक्षसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पक्षसीस क्रिया और निमित्त नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है । इसमें नौ करोड पद हैं ।

लोखविन्दुसागम्-रुति ॥ = (१४) लोखविन्दुसाग पूर्व यह है जिसमें तीन लोखका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार बीजगणितदिक भौम का स्वरूप, उसके गमन का कारण, क्रिया, मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है । इसमें साढ़े बारह करोड पद हैं ।

पुत्रा निरासी गगरुत्तरहाय कवीरुद्ध पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २०
वीर्यानुप्रवादम् । अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम्
प्रयास्यनानामधेयम् ।

- वीर्यानुवादम् । ॥ = (३) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य कालवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य द्रव्यवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य मानवीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है । इसमें सत्तरखाल ७००००००० पद हैं ।
- अस्तिनास्तिप्रवादम् । ॥ = (४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें जीवादिक वस्तुओंके त्व पर द्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्पष्टस्थि स्थानास्ति आदि अनेक धर्मों में विधि नियेककरि सप्तमंकरि मुख्य गौणकरि वर्णन है । इसमें सत्त खाल (६००००००) पद हैं ।
- ज्ञानप्रवादम् । ॥ = (५) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मत्किान शुक्लान अव्यक्तान मनः पर्यायज्ञान केवलज्ञान और कुम्भज्ञान कुम्भज्ञान कुम्भविज्ञान इन विमंज्ञानों का स्वरूप संख्या विषय फलादिकों का वर्णन है इसमें एक याटि बरोड (९९९९९९) पद हैं ।
- सत्यप्रवादम् । ॥ = (६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके सत्योच्चारण के रथान, पांच प्रयत्न, वाक्यसंस्कारके कारण, शिट्ट टुट शब्दों के प्रयोग, शृङ्खण, वचनके भेद बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाम्बुसि मोन आदि का वर्णन है । इसमें एक बरोड छह (१००००००६) पद हैं ।
- आत्मप्रवादम् । ॥ = (७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्मा भोक्ता आदि अनेक धर्मों का निरचयनप और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है । इसमें छब्बीस बरोड (२६००००००००) पद हैं ।
- कर्मप्रवादम् । ॥ = (८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानावर्णादि कर्मों को युक्त प्रवृत्ति उत्तरप्रवृत्ति उत्तरोत्तर प्रवृत्तियों के प्रवृत्तिये बंध सत्ता उदय उदीरणा उत्कर्षण अपवर्षण सक्रमण उपशम निघसि नि-कांचित आदि व्यवस्थाओं का वर्णन है । इसमें एक बरोड असीखाल (१८००००००) पद हैं ।

— मात्सर्यास्यनानामधेयम् । ॥ = (९) मात्सर्यास्यनानामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना प्रज्ज क्षेत्रकाल माकरी भास्वरूपकरि प्रुठणों के

एव निवासी नगररूपतयाय बर्फीरुह्य पदच्छेद और विमलपर्य्य संहित सर्वाव्यसिधिका अन्वयः द्विती अमुकम् । अथवा १. छत्र २० विद्यानुप्रवादम् । कस्यायानामधेयम् । प्राणावायम् । क्रियाविशालम् । लोकाविन्दुसारभिति ।।

संनन बलादिक के अनुसारकरी प्रयाणीक कोल पर्यन्त वा अग्रभाणीक काकरि त्यागकरना तथा सावय वस्तुओं का त्याग और उपवास विधि और इनकी भावना और फलसमिति और तौनि युति आदिका वर्णन है । इसमें चौरासी साल (८४०००००) पद हैं ।

विद्यानुप्रवादम् ।।। = (१०) विद्यानुप्रवाद पूर्व वर है जिसमें अंशुप्रसेना आदि सातसौ अर्यविया तथा रोहिणी आदि पाँचसौ महा विद्याओंका स्वरूप रामपर्य्य पत्र तत्र पुनः-विधानआदिका तथा सिद्ध मई विद्याओं का फल और अन्तरिम औम अङ्ग स्वरूप स्मरण अञ्जन छिन्न इन आर्याग निमित्तों के ज्ञान का वर्णन है ।। ११०००००० पद हैं ।

कल्याणनमधेयम् ।।। = (११) कल्याणनामधेय पूर्व वर है जिसमें तीर्थंकर चक्रधर बलदेव वासुदेवादिकों के भर्मावतारण आदि कल्याणकर्तों के महोत्सव तथा उनके कारण (तीर्थंकरत्वादि पुन्य विशेषका हेतु) लोकप्रकारण भावनादि तपस्वणादिकों का तथा चन्द्र छर्यादि ग्रह नक्षत्रादिकों के गमन ग्रहण शुक्लनादिकों के फल वर्णन है इसके छब्बीस करोड २६००००००० पद हैं ।

प्रणावायम् ।।। = (१२) प्राणावाय पूर्व वर है जिसमें काय चिकित्सा आदि आठ प्रकार के आयुर्वेद का, इडा (= पृथ्वी) पिङ्गला (= अग्नि) आदिका दशप्रमाणिके उपकारक अपकारक द्रव्योंका गतियों के अनुसार वर्णन है ।

इस में तेरह करोड १२००००००० पद हैं ।

किमनिशालम् ।।। = (१३) क्रियाविशाल वर पूर्व है जिसमें समीत छन्द अलङ्कार पुरुषोंकी वरसर कला स्त्रीके चौसठ गुण तथा गर्भाधानादिकचौरासी क्रिया, निरुपादि विज्ञान सम्यग्दर्शनादि एकसौ आठ क्रिया, देववन्दनादिक पच्चीस क्रिया और निमित्त नैमित्तिक क्रियाओं का वर्णन है । इसमें नौ करोड पद हैं ।

लोकाविन्दुसारम्-श्रुति ॐ = (१४) लोकाविन्दुसार पूर्व वर है जिसमें तीन लोकाका स्वरूप छत्तीस परिकर्म आठ व्यवहार, चार भीमगणितादिक मोक्ष का स्वरूप, उसके गमन का कारण, क्रिया, मोक्षसुख के स्वरूप का वर्णन है । इसमें साढ़े चारह करोड पद हैं ।

एषा निवासी मगलपुत्रराज बहीरकृत पदच्छेद और विमलसूर्य सरित सनार्यसिद्धिका शब्दशः द्विव्री अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २० वीर्यानुप्रवादम् । अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ ज्ञानप्रवादम् । सत्यप्रवादम् । आत्मप्रवादम् । कर्मप्रवादम् । प्रायश्चयाननामधेयम् ।

- वीर्यानुवादम् ॥ = (१) वीर्यानुवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मवीर्य परवीर्य उभयवीर्य काव्यवीर्य गुणवीर्य तपोवीर्य ब्रह्मवीर्य पर्यायवीर्य क्षेत्रवीर्य भस्मवीर्य आदि अनक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का वर्णन है । इसमें सत्तरछाल ७०००००० पद हैं ।
- अस्तिनास्तिप्रवादम् ॥ = (४) अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व वो है जिसमें लीवादि कस्तुओंके स्व पर ब्रह्म क्षेत्र काल भाव की अपेक्षाकरि स्यादस्ति स्यानास्ति आदि अनेक घर्षों में विधि निर्येकपरि सप्तममन्त्ररि मुख्य यौग्यपरि वर्णन है । इसमें सट छाल (६००००००) पद हैं ।
- ज्ञानप्रवादम् ॥ = (६) ज्ञानप्रवाद पूर्व वह है जिसमें मत्तज्ञान ध्रु त्ज्ञान अवधिज्ञान मनः पर्येषज्ञान केवलज्ञान और कुमतिज्ञान कुश्रु त्ज्ञान कुम्बविज्ञान इन विर्मज्ञानों का स्वरूप सत्या विषय फलादिष्टो का वर्णन है इसमें एक घाटि करोड़ (९९९९९९९) पद हैं ।
- सत्यप्रवादम् ॥ = (६) सत्यप्रवाद वह पूर्व है जिसमें आठ प्रकारके शब्दोच्चारण के स्थान, पांच प्रयत्न, वाक्यसत्कारके कारण, शिष्ट श्रुत शब्दों के प्रयोग, श्रवण, वचनके मन्त्र बारह प्रकारकी भाषा अनेक प्रकार के असत्य वचन वाग्युक्ति मीन आदि का वर्णन है । इसमें एक करोड़ छह (१००००००६) पद हैं ।
- आत्मप्रवादम् ॥ = (७) आत्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें आत्मा के कर्षों मोक्षा आदि अनेक घर्षों का निरवयनय और व्यवहार नयकी अपेक्षा से विशेषरूपमें वर्णन है । इसमें छब्बीस करोड़ (२६०००००००) पद हैं ।
- कर्मप्रवादम् ॥ = (८) कर्मप्रवाद पूर्व वह है जिसमें ज्ञानवर्णादि कर्मों को मूल प्रकृति उत्तरप्रकृति उत्तरोत्तर प्रकृतियों के प्रवर्धये र्थ सत्ता उदग उदीरणा उत्कर्षण अपवर्धण संक्रमण उपश्रम निवर्षि नि-काचित आदि व्यस्यार्थों का वर्णन है । इसमें एक करोड़ असीछाल (१८००००००) पद हैं ।

प्रायश्चयाननामधेयम् ॥ = (९) प्रायश्चयाननामधेय पूर्व वह है जिसमें नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्रकाल भावकर्म व्याम्यलम्परि पुरुषों के

(१) आचार्य	१८००	१-नन्दगुह्यवि (परिकर्म)	३६०५००००	(४) मायावाद पूर्व	१३००००००००
(२) धृष्टकृतांग	३३०००	२-सूर्यपञ्चवि	५०३०००	(५) क्रियाविज्ञासापूर्व	२००००००००००
(३) स्वानांग	४२०००	३-अम्युदीपकवि	३२५०००	(६) लोकविमुसारपूर्व	१२५००००००००
(४) सवर्णांग	१६४०००	४-भीषसाधनगुह्यवि	५२३६०००	(७) अलगतापूर्विका	२०१८६२०००
(५) व्याख्या प्रविभांग	२२८०००	५-व्याख्यामहावि	८४१६०००	(८) सहागतापूर्विका	२०६८६२०००
(६) आदर्शपर्यवर्णाम	५५६०००	६-नृज (सुसरा मेर)	८८००००००	(९) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००
(७) वपासकाध्ययनानाम	११७००००	७-अपानुयोग (वीसरा मेर)	८८००००००	(१०) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००
(८) अन्तकुरांग	२३२८०००	८-असासपूर्व (वीसरा मेर)	८८००००००	(११) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००
(९) अनुसारीपवादिकुरांग	६२४४०००	(क) असासपूर्व (वीसरा मेर)	८८००००००	(१२) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००
(१०) अन्तव्याकुरांग	६३१६०००	(ख) असासपूर्व (वीसरा मेर)	८८००००००	(१३) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००
(११) निपाक दुरांग	१८४०००००	(ग) भीषानुसारपूर्व	७०००००००	(१४) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००
(१२) दृष्टिपरांग	१०८६८६०००५	(घ) आस्तित्वास्तिष्ठादपूर्व	९०००००००	(१५) अलगतापूर्विका	२०६८६२०००

हृष्टांग के सर्वपदार्थ योग	११२८६८८०००५	१-नन्दगुह्यवि (परिकर्म)	३६०५००००
हृष्टांग के पांच वेद हैं इनमें से प्रथम वेद परि		२-सूर्यपञ्चवि	५०३०००
र्ण के पांच प्रमेद हैं और वतुयमेद पूरगत के चौदह		३-अम्युदीपकवि	३२५०००
प्रमेद हैं और पांचां मे वृत्तिका के भी पांच प्रमेद हैं		४-भीषसाधनगुह्यवि	५२३६०००
“सुत” दूसरे वेद और “प्रयमानुयोग” तीसरे वेद का कोई		५-व्याख्यामहावि	८४१६०००
प्रमेद नहीं है इन सबके १०८६८६००५ पद्यप्र पद हैं। इन		६-नृज (सुसरा मेर)	८८००००००
प्रमेदों को एक २ सस्या और प्रत्येक प्रमेद के पदों की भी		७-अपानुयोग (वीसरा मेर)	८८००००००
सत्या इस पृष्ठ के तीसरे स्वस्म वा पारा में लिखते हैं।		८-असासपूर्व (वीसरा मेर)	८८००००००

पृष्ठा निवासी जगत्पराय नरील्लुत्त पक्कछेव और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दज्ञः हिंदी ब्रह्मवाङ् । अध्याय १ पृष्ठ २०

तदेतत् अत द्विभेदमनेकभेदं द्वादशभेदमिति ॥

तद् ॥ एतद् ॥ अस् ॥ द्विभेदम् ॥ ॥ = पूर्वोक्त (= तद्) यह (= एतद्) (श्रुतवान् अज्ञवाह्य और अज्ञमविष्ट) दो भेदरूप
अनेक भेदम् ॥ द्वादशभेदम् ॥ ॥ इति ॥ = (इनमें से अज्ञवाह्य) अनेक भेदरूप (अज्ञमविष्ट) बारह भेदरूप ऐसे हुआ

(१) मतिमान-भुतबान्ना १ । कः ॥ प्रतिविद्येकः ॥ इति ॥ = मतिमान और भुतबान्ना में क्या भेद (= प्रति विद्येय) देता (प्रश्न होने पर)
अथ उत्पत्तेः ॥ उत्पन्न - मतिनद - अर्थ -
साध्यनबाल - विषय ॥ अथ कः ॥ मतिमानम् ॥ ॥
भुतमान' ॥ ॥ ॥ विद्याल - विषय ॥ उत्पन्न -
निमित्त - अनुत्पन्न -
अर्थ साध्यम् ॥
॥ विद्युत्तरं ॥ इति ॥
कि ॥ ॥ अर्थ ॥ मतिमानम् ॥ इति ॥
अत्रिय निमित्तम् ॥ ॥ आत्मनः ॥ ॥ अर्थ - स्वमाया ॥
परिष्कारिणम् ॥ भुतमान ॥ ॥ तु ॥ तत् -
पूर्वम् ॥ ॥ मात-उत्पत्तेः ॥ मति ॥
(२) भुतबान्ना और केवल ज्ञान में अंतर था भेद यह कि भुतबान्ना पर, अर्थात् केवल ज्ञान को भवेत्ता से भुतबान्ना तत्पत् ॥
भुतबान्ना होने दो सङ्ग हैं मायाय - जिस प्रकार भुतबान्ना समूहों इदं श्रीर उनको पर्यायी को जानता है उस ही प्रकार केवल ज्ञान भी
मायाय प्रत्य भूत पर्यायी को जानता है । विद्येयता इतनी हो कि भुतबान्ना इन्द्रिय और मयका सहायता से होता है इसलिये इसको
जानने पर्यायी में श्रीर उनकी अर्थ पर्याय तथा दूसरे दृश्य अर्थों में स्पष्टकर से ज्ञप्ति नहीं होती । किन्तु केवल ज्ञान विद्येयता
है कि वाच्य समस्त पर्यायीका राह कर से विषय करता है ॥

टिप्पणी—शंगमनिष्ठ मुठकानेके पर्वों की संख्या—

(१) आचार्यग	१८००
(२) सुप्रकृतान	३४०००
(३) स्वानांग	४२०००
(४) सवधार्यग	१६४०००
(५) व्याख्या श्रव्यिवांग	२२८०००
(६) आनुयैक्यार्पण	५२५०००
(७) उपासकापवर्नाम	११७००००
(८) अन्तर्कुरांग	२३२८०००
(९) बहुवरोपपादिकद्वयार्पण	६२४४०००
(१०) वदन्त्याकरवांग	२३१५०००
(११) विनाक द्यवांग	१८४०००००
(१२) दृष्टिवांग	१०८६८५००५

इसवांग के सर्वस्वोंका योग ११२८३५८००५

दृष्टिवाद श्रंग के पांच येद है जिनमें से प्रथम येद बरि कर्म के पांच प्रमेद है और पतुर्वेभिर पूर्वगत के चौदह प्रमेद है और पांचवां भेद वृत्तिकारि की पांच प्रमेद है "युत्र" दूसरे येद और 'प्रयमानुयोग' तीसरे येद का कोरि प्रमेद नहीं है इन सबके १०८६८५००५ प्रथम पद है । इन प्रमेदों की एक २ संख्या और प्रत्येक प्रमेद के पर्वों की भी संख्या इस पृष्ठ के तीसरे स्वस्थ का पारा में मिलती है ।

१-न्ययवृत्ति (परिकर्म)	३६०५००००	(ठ) मायावाच पूर्व	१३०००००००
२-सूर्यपञ्चपि	५०१०००	(ड) क्रियाविक्षासापूर्व	९००००००००
३-अमृदीपपञ्चपि	३२५०००	(ढ) लोकविदुसापूर्व	१२५०००००००
४-सीसामरगच्छपि	५२३६०००	(१) कलागतावृत्तिका	२०९८६२००
५-व्याख्यामञ्चपि	८४३६०००	(२) त्यागतावृत्तिका	२०८६२००
६-न्यय (रसवा येद)	८८००००००	(३) कृपावाचवृत्तिका	२०६८९२००
७-प्रयमानुयोग (सीसरा येद)	५००००	(४) मायागतावृत्तिका	२०९८६२००
(क) अत्यन्तपूर्व (वोमोभेद)	१०००००००	(५) आकाशमवा	२०६८६२००
(ख) अत्यन्तपूर्व (वोमोभेद)	१०००००००		
(ग) अत्यन्तपूर्व	६६०००००		
(घ) सीमानुपपदपूर्व	७०००००००		
(च) आस्तित्वास्तिभावपूर्व	६०००००००		
(क) आननवाचपूर्व	३६६६६६६		
(ख) सत्यमवाचपूर्व	१००००००६		
(ङ) आत्ममवाचपूर्व	२६००००००००		
(च) कर्ममवाचपूर्व	१८०००००००		
(झ) मस्याख्याननाम	येद पूर्व }		
(झ) येद पूर्व			
(ञ) विमानुपपदपूर्व	१२०००००००		
(ट) कल्याणनाम	येद पूर्व }		
(ट) येद पूर्व			

१०८६८५००५

दृष्टिवाद श्रंग के सर्वोर्मिस स्थानों के एक सौ आठ करोड़ अष्टसठ साल छपन सारस पांच पद हुये ॥

पटा निवासी जगत्पराहाय परीतकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सपर्यसिद्धिका सम्बन्ध हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ २०

तदेतत् अत द्विमेदमनेकमेद द्वादशभेदमिति ॥

तद्व ॥॥ एकद्व ॥॥ अस्त् ॥॥ द्वि-भेदम् ॥॥
अनेक मेदम् ॥॥ द्वादशभेदम् ॥॥ इति०

= पूर्वोक्त (= तद्व) यह (= पदवृत्त) (श्रुतज्ञान अज्ञानाद्य और अज्ञानविष्ट) वो मेदरूप
= (इनमें से अज्ञानाद्य) अनेक म्दरूप (अज्ञानविष्ट) बारह मेदरूप ऐसे हुआ

(१) मतिज्ञान-भुतज्ञानयोः ॥ कः ॥ मतिविशेषः ॥ इति०
अथ उत्पत्तिः ॥ उत्पत्ति - अयिनद - अर्थ-
मागमनकाल - विषय १०॥ पादक ॥॥ मतिज्ञानम् ॥॥
उत्पत्तिः ॥ ११ ॥ विष्णु - विषय ॥॥ उत्पत्ति-

= मतिज्ञान और भुतज्ञान में क्या भेद (= प्रति विशेष) है देता (= प्रत्यक्ष होने पर)
= यही ब्रह्मा शब्दा है कि उत्पत्ति होकर जो नष्ट नहीं हुआ है उसे पदार्थ (= अर्थ) के
= पदमान (= सामग्र्यत्व) काल के विषय को पदमा करन वाला मतिज्ञान है
= और (= ११) विष्णु विष्णु विषय भुतज्ञान है (अर्थात्) उत्पत्ति पदार्थ का (और)
= (उत्पत्ति व कर) नष्ट भये पदार्थ का (और) अनुत्पत्ति (जो मविष्णु से उत्पन्न होगा उत्त)
= पदार्थ का (भुतज्ञान) पदवृत्त करने वाला है (देखा समान्यतः वाप्यधिगमन पृष्ठ १०)
= और (= १२) अथिक्त विष्णु (मतिज्ञान से भुतज्ञान) है
११ और जो (मतिज्ञान से भुतज्ञान में विशेष) है । मतिज्ञान है तो इदं रूप और

निमित्तक आभाके स्वभाव (= मानके स्वभाव) से होता है
= (१२) अथ भक्त्या उत्त (मतिज्ञान)
= ११ (मतिविशेष मो) है समाप्य ० १०

प्रत्यक्षदीप्तिस्वाप्रधीयारोपत्वाच्च प्रामाण्यम् । तस्य साध्यादिष्वप्येवमुच्यति श्याभिद्युक्तेर्गणधरो अतकेव
 सिमिगनुस्तुतग्रन्यरचनमगपूर्वखण्य तत्प्रमाया तत्प्रामाण्यः पुनराचार्ये कासदायासगच्छिता
 युर्मत्तिवत्तु शिष्यानुग्रहायं दशैरुचि काथपनिवद्ध तत्प्रमायामर्थतस्तद्वेदाभिति॥ क्षीराण्यजस्रघटयहीतमिव ।

प्रत्यक्षसिद्धिनात् १ ॥ प्रमाण—दोषनात् २ ॥ च० = (सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और = च० उक्तु निर्वोचपना से है
 तस्य १ साभात् ० सिध्यै १। द्रुष्टि—अविशय— = सिद्ध (सर्वज्ञ) के निकटवर्ती (= साभात्) शिष्य द्रुष्टि के अविशय और
 प्रद्विद्युक्तं १। गणपरः १। अतस्त्वैवमि १। = अद्रिष्ट करि सदिष्ट ने गणपरद्वारा और अतस्त्वैवमि करि
 अनुस्तुत—अन्यरचनम् १ ॥ = (उन गणपरों और अतस्त्वैवमि के) स्मरण के अनुसार अन्य रचना है
 अत्र — पूर्व लक्षणम् १ ॥ = जो अर्थों और पूर्वों का हेतु वा कस्सर (= लक्षण—देखो वैद्यजी
 रचित कोष पृष्ठ १७)

वत्प्रमाणं १ ॥ तत्—प्रामाण्यात् १ ॥ = उन [गणपर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,
 भारादीनि १। पुनरुचि आचार्यो १। = और आराविषों करि [भयात्] पिछले आचार्यों करि भाषायं
 काष्ठोपात्तं १। संक्षिप्त-आयुतं—मति-बल-शिष्यअनुग्रह = काष्ठ के दोष से बोधी अथवा अल्प आयु द्रुष्टि सामर्थ्य के (धारक) शिष्यों के उपकारके
 अर्थम् १ ॥ दशवैकालिक—आदि उपनिषदम् १ ॥ = लिखे दशवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं
 तत् प्रमाणम्—१ ॥ अर्थात् ० = उन (दशवैकालिक आदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, वास्तव्य से अथवा अभिप्राय से
 (जो सर्वज्ञ और गणपरों ने कहा) है।

तत् ॥ [तत् १ ॥] एव ० इदम् १ ॥ इति ० = सो (सद्र) ही (एव) यह (= इदम्) ऐसे है (इति)
 पट-प्रतीकम् १ ॥ क्षीर-अर्णव-जलम् १ ॥ इव ० = मानों, (= इव) वक्ष्यामि ग्रहण किया गया वा प्रयोगया क्षीर समुद्र का जल है अर्थात्
 जैसे क्षीर समुद्र का थोड़ा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि घरे
 का जल क्षीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैतेहो ये दशवैकालिक सर्वज्ञ को
 परम्परापसे उसी अर्थ का उल्लेख आचार्यों ने अपनी अपनी अथवा अतस्त्वैवमि करे है
 बोधी है वास्तव में सर्वज्ञ अथवा अर्णव ही इनमें कहा गया है अत यह प्रमाणभूत है।

एषा निगती अतएवप्राप यन्त्रिकृत पदपठेद् और विमलस्य सवित्र सर्वार्थसिद्धि का सुखम् । विन्दी मनुष्य । अथवाप १५३ २०

प्रत्यक्षदृशित्वात्प्रदीपत्वाच्च प्राप्तमाद्य तत्प्रमाणा तस्याप्रापयात् । आरातीये पुनराचार्ये काष्ठदायासंगच्छिता
लोभिगनुस्तुतग्रन्यरबनमगपूर्वकाद्यण तत्प्रमाणा तस्याप्रापयात् । आरातीये पुनराचार्ये काष्ठदायासंगच्छिता
युर्मतिवलाशिव्यानुग्रहायं दशैकबिंशत्पणनिवर्द्धं तत्प्रमाणास्यमर्थतस्तदवेदामिति॥ श्रीराणोषजसघटशृङ्गातमिव ।

प्रत्यक्षदृशित्वात् १ ॥ मलीण-दोषत्वात् २ ॥ घ० = (सर्वज्ञ के) प्रत्यक्ष देखने से और = घ० उत्कृष्ट निर्दोषपत्ता से है
तस्य १, तासात् ० सिद्धे १ । कुट्टि-अविश्रय- = सिद्ध (सर्वज्ञ) के निष्कर्वर्ती (= साक्षात्) शिष्य बुद्धि के अविश्रय और
मदियुक्तैः । गणधरैः । श्रुतस्त्वैकमिभिः । = झुट्टि करि सारित ने गणधरद्वारा और श्रुतस्त्वैकियों करि
अनुस्तुत-ग्रन्यरबनम् १ ॥ = (उन गणधरों और श्रुतस्त्वैकियों के) स्मरण के अनुसार प्रत्य रचना है
अङ्ग - पूर्व लक्षणम् १ ॥ = जो बगों और पूर्वों का देव वा जनसर (= लक्षण-बैखो वैखरी
रचित कोष ग्रु ३१७)

तत्प्रमाणं १ ॥ तत्-प्रामाण्यात् १ ॥ = उन [गणधर के वचन] का प्रमाण उन (सर्वज्ञ के वचन) के प्रमाण होने से है,
आरातीयेः । पुनर्-क आचार्यैः । = और आरातियों कर [अर्थात्] निष्कले आचार्यों करि भाषाये

काल्योवात् १ । संक्षिप्त-आयुत्-भवि-यत्-अभ्यव्युत्तर
अर्थम् १ ॥ दशवैकालिक-जादि उपनिषद् १ ॥ = कालके दोष से दोहरी अथवा कल्प आयु बुद्धि सामर्थ्य के (धारक) शिष्यों के उपकार के
तत् प्रमाणम्-१ ॥ अर्थम् ० = सिधे दशवैकालिक आदिक (प्रकीर्णक) रचे गये हैं
= उन (दशवैकालिक आदि प्रकीर्णकों) का प्रमाण अर्थ से, तात्पर्य से अथवा अभिप्राय से
(जो सर्वज्ञ और गणधरों ने कहा) है ।

तत् १ ॥ [तत् १] एव ० इदम् १ ॥ इति ०
घटशरीरस्य १ ॥ शरीर-अर्णव-वल्गुम् १ ॥ इव ०
= सो (तत्) ही (एव) यह (= इदम्) ऐसे है (इति)
= मानो (= एव) वक्ष्ये में कहा गया वा श्रयगया शीर समुद्र का मल्ल है अर्थात्

जैते शीर समुद्र का थोड़ा सा जल घट में भरा हुआ यह प्रकट करता है कि घड़े
का जल शीर समुद्र का जल ही है अन्य नहीं है तैसो ये दशवैकालिक सर्वज्ञ की
परम्परागत उसी अर्थ का उल्लेख आचार्यों ने अपनी अपनी बुद्धि अनुकूल कहे हैं
वोही है वास्तव में सर्वज्ञकथितप्रार्थ हो इनमें कहा गया है अतः यह प्रमाणभूत है ।

पदा निवासी मगरूपतहाय मर्यादकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वोपसिद्धिका शब्दज्ञाः । अथवा
यथा पतत्रिणो गमनमाकाशे भवनिमित्तं न शिष्टाणुविशेष, तथा देवनारकाणां प्रतनियमाय
भावेऽपि जायत इति भवप्रत्यय इत्युच्यते । इतरथा हि भवः साधारण्य इति कृत्वा सर्वेषामविशेषः स्यात्
इष्यते च तन्मात्रे प्रकर्षाप्रकर्षयुति ।

यथा० पतत्रिणः । गमनम् ॥ आकाशे । भव

निमित्तम् ॥ न० शिष्टाणुविशेषः । तथा०

देव-नारकाणाम् । प्रतनियमायि भवावे । अपि ॥

जायते । इति ० भव प्रत्यय । इति ० उच्यते ।

इतरथा ० हि०

भवः । साधारणः । इति० कृत्वा० सर्वेषाम् ।

अविशेषः । स्यात् ।

य० तत्र० अवयवः । प्रकर्ष-प्रकर्षयुति ॥

इष्यते ।

= नैवे स्त्री का आकाश में गमन [कने को] भव वा पर्याय
= कारण है न कि शिस्त का कुछ विशेष ऐसे
= देव और नारकियों के मत नियम भादि के न होने पर भी
= (भवविज्ञान) उत्पन्न होता है इस प्रकार भव निमित्तक है ऐसे करा गया है
= अन्वया (= इतरथा) तो (= हि) वर्ण्य
यदि भवप्रत्यय अविज्ञान के होनेका कारण देव और नारकियोंका केवल भवही होतो
= भव (तब देवनारकियों को) समान है ऐसा मानकर समस्त (देवनारकियों) को
= (भव प्रत्यय अविज्ञान) विशेष रहित वा एकसा होना चाहिये
= और वही (देवनारकियोंमें) अवधि कीप्रवृत्ति वा स्थिति (= घुसि) हीनाधिक
= मानी गई है अंगीकार करगई है वही शयोपशम का विशेष है । यही सार यह है
कि सर्व प्रकार के अविज्ञानों में अविज्ञानोवरणीय कर्म का शयोपशम तो
अन्तरङ्गकरण बीजों अदृश्य ही है बिना इस अन्तरङ्ग कारण के अविज्ञान
कभी स्थिती भी जीव के नहीं होसकता है देवनारकियोंमें भी अवधिज्ञान घाटि
बाहिरे तो हीनाधिक शयोपशमके हेतुते परन्तु शयोपशमका अस्तित्व सबकेही

(१) आकाश शब्द पुनिग मोर-पुलकविग हलो है (२) अन् (= उत्पन्नहलना) विपादि चतुर्थगण का । आर-मिपत्रो अकर्मक चाणु है ।
प्रयोग प्रथमा इगवाट मे अन् का आ भावेश होगता है । य चतुर्थगण का विकल्प है । ते अन्पुण्य (= प्रथमपुण्य) एक वचन वर्तमान
कामस्य आत्मनेपदा प्रत्ययही न अन् अन् + य + ते = आ + य + ते = आपते, उत्पन्न होता है ।

निवासी गणरूपसाधन वकीलशून्य पदध्वज और विभक्तिसमर्थ सवित्र सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः विंशो अनुवाक । अस्यापि १ सूत्र २१

तत्र क्षयोपशम निमित्तत्वं प्राप्नोति । नैव दोष । तदाश्रयात्तत्सिद्धे ॥ भव प्रतीत्य क्षयोप

१ सञ्जायत इति कृत्वाभव प्रधानवाराणमित्युपदिश्यते ॥

दुःखोपशमनिमित्तत्वं ॥ (१) प्राप्नोति नैव दोष = वरि क्षयोपशम का निमित्तपणा नहीं प्राप्त होता है (उत्तर) यह दूषण नहीं है

= क्योंकि उस (देव-नारकियों के सम्बन्ध) आश्रय से उस (क्षयोपशम निमित्त पना) की

= सिद्धि होती है । भव को समर्थन करी का प्रतिपादन करी का निर्णय करी (= प्रतीत्य)

= क्षयोपशम साथ साथ अविक्रान के उत्पन्न होता है । ऐसा करके

= (देव नारकियों का) (सम्बन्ध) उक्त अविक्रान का मुख्य निमित्त है

(और अवधि ज्ञानावधारण का क्षयोपशम तो भव के हेतु से होता ही है)

= ऐसा उपवेश किया गया है । इस प्रश्न और उत्तर का स्पष्ट सारांश यह है कि

सिद्धान्त के अनुसार किसी प्रकार का अविक्रान कर्तृ और कर्मी भो अविक्राना

वरण कर्म के क्षयोपशम के विना नहीं होता है इसी भागम के सिद्धान्त को शिष्य ने

विषय में स्वस्व प्रश्न कर दिया कि यदि देव और नारकियों को पर्याप्तता भव ही अवधि

ज्ञान को उत्तर प्रकृता है तो यह अविक्रानावधारण कर्म के क्षयोपशम की कुछ भी

अपेक्षा न रखी (उत्तर) अविक्रानावधारण क्षयोपशम तो कतर ग कारण

है ही । सो दोह प्रकार की अवधि में पार्यये है या विना तो अविक्रान उपपन्न

नाहीं । ताते यहाँ बाह्य निमित्त की अपेक्षाते कथन है । सब भव प्रत्यक्ष अवधि के

तो प्रधान कारण भव ही है ॥

(१) प्राप्नोति के लिये दे ग पृष्ठ २१४ (१) प्रयोग स्वीर पृष्ठा दोनों संवत्सवकयुक्त पृष्ठम है ।

(२) भव + आयते = सम् + आयते = किसी शब्द कावर्त प्रत्यय के अन्त में 'म्' हा और ह्य म् के पश्चात् कार्य व्यञ्जन आये तो म् प्राप केगल के रच्यनुसार अनुस्वार में परचर्चित हो जाता है और उक्त म् पर ह्य हो अनुस्वार से पसद आता है यदि म् के पीछे य-य-स् २ प्रपणा है आते । यदि ह्य पदिले नियम में अनुस्वार में म् को न पलटें तो वह म् उ-कों के पीछे पसद म् परचर्चित हो जाता है जिस पार्श्व को सखर उक्त म् के पीछे आये अतः यहाँ सम् का सम् होकर सम् प्रकृत होताया ।

रति ॐ उपदिशते ।

इत्यत आह ॥

इति अत आह T

= ऐसा (प्रान होने पर) इसलिये (आचार्यप्रमिस घत्रमे) कहते हैं कि

नय म वैयर्थिक नियाता देया क अप्रामाग में अणु अद्विष्टान घूम प्रमा (प्राक्ती पृथिवी) के अंत पर्यंत है । जो दृग् राशु से अप्रयोभाग में अधिक है और न्याय राशु से न्यून है । और इन ही देवों का उच्छ्रय अद्विष्टान अप्रयोभाग में तमप्रमा (छत्रवीं पृथिवी) के अन्त तक है ता माय में अप्रयोभाग को और न्याय राशु है ॥ सीपार्थविषया उपरि स्वयस्वर्गविमानजम्बरु शिखर पर्यंत गोमटसार पृष्ठ ८५३ - सीपार्थविवासी (देवों से नववैयर्थिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्ग का विमान का अन्मा का शिखर पर्यंत देखे हैं ।

"मय अनुविप्रविमान अर प्राक् अनुचर विमान के घातो सबको फालो ओ असनालो ताको देखे हैं वरुनि नव अनुविप्र पंच अनुचर विमान के घाता देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यंत अर नोचें को वाद्य अनुवात पर्यंत सर्व असनालो को देखे हैं सो अनुविप्र विमानवासे ही फन्नु पंचादि क तेह राशु प्रमाण लम्बा अर अनुचर विमानवाले जातिसे पंचोस घनुप घाति इकबोस पोअन करि हीन चीनह राशु प्रमाग लम्बा अर एक राशु बीड़ा अयधि का विप्र मृत क्षेत्र को देखे हैं" ॥ चौदह राशु क्षेत्र में से एकबीस योजन और बारसी पचास घनुप घटाये ओ क्षेत्र देव रही सो अनुचर विमान वाले सम्भार में अर एक राशु बीड़ा में अयधि द्वारा देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविशति उचर यतुः घनपनु अनरकविशति योअनि न्यून यतुयय रम्यायतां व रछु विस्तारी सर्वलोकांलि पश्यन्ति इत संरक्षत यावय ता आत होता है ॥ अनुविप्र विमान वाले कुछ अधिक तेह राशु प्रमाग लम्बा और एक राशु बीड़ा अयधिकान द्वारा देखते हैं ।

उपनु क आ क्षेत्रों का "परिमास कोया है सो स्थानकका नियमरूप आमाना । क्षेत्र का परिमास सोय नियम रूप न आमाना । आर्य अनुचर व्यंग पर्यत के घाती शिखर करि अन्य क्षेत्र की और अर तथा अयधि दोह ही पूर्वांक स्थानक पर्यंत ही होइ ऐसा नाही ओ प्रथम स्वर्गवाधा पदिले नरक अर अर तथा सेतो उड़ राशु नाचें और आर्य । सीपार्थ द्विक के प्रथम नरक पर्यंत अयधि क्षेत्र है सो यहां सो विष्टता तथा पर्यंत क्षेत्र ही की आर्य भैसे सर्वत्र आनना" ॥ ओं की गाम्भट मुद्रित पृष्ठ ८५३ ८५४ ॥

मरणवासी ध्युचर ज्योतिषा देवों को अयधिक क्षेत्र परावर घनरूप नाहीं है । कल्पवासी देवों को अयधिका क्षेत्र आयत यतुरल (चौकार) किन्तु लम्बा म अधिक और चारही म चौड़ा) है । ओय मनुष्य त्रिपंच नरको इनको अयधि का विप्रपथुल क्षेत्र परावर घनरूप है ।

सापार्थ ईगान स्वर्गों के देवों को अयधि का काल असंख्यात कोटि थप है । इसने ऊपर सनधुमार माहेष्ट्र म्म यद्रोचर कल्पवासे देवों का अयधि का काल यथापीन्य पश्य का असंख्यातार्थ माग है । इसके ऊपर लोचय स्थान से लेकर सर्वार्थान्वि पर्यंत के देवों को अयधिकारता कुछ घाति पश्य प्रमाण है ॥

एषा निवासी जगत्सहाय इति लक्ष्मी पदधेयं और विष्णुस्यैव संहित सर्वार्थसिद्धि का शङ्करा हिन्दी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २१

इत्यत आह ॥

इति श्री अतः ० आह १
= ऐसा (भरन होने पर) इसलिये (आचार्यश्रमिय धनमें) बढ़ते हैं कि

नय प्र वैदिक नियामों देवों के अत्यन्त में उच्च अद्विष्टान धूम प्रभा (पौषवीं पृथिवी) के मत पर्यंत हैं । जो वध राखू से अयोभाग में अधिक है और आह राखू से न्यून है । और इन ही देवों का उच्छ्रय अग्निमान अयोभाग में उममसा (छठवीं पृथिवी) के मत तक है जो भाग में अयोभाग को गौर ग्याह राखू है । साधर्मविदेवा उपरि स्वस्वस्यार्थिमानस्य अरु शिखर पयस्य पयसि गोमदसार पुष्ट ८५३

= नीयमादिप्राप्तो (देवों से नयवैदिक तक) ऊपरि आपने अपने विमान के यातो सयलोकमात्रों जो असनालो ताक्यों देखे हैं वदुति नय अनुविग पक्ष अनुत्तर विमान के याता देव ऊपरि अपने विमान का शिखर पर्यंत आर नोवें का बाह्य तनुषात पर्यंत सर्व असनालो को देखे हैं जो अनुविग विमानयाने ली कट्ट पक्ष अधिक के देव राखू प्रमाण साम्या अर अनुत्तर विमानयाने चारिसे पचास धनुष घाटि इकबोस योजन करि होन नीयद गद्व प्रमाण लक्षा अर एक राखू बीहड़ अयधि का विषय भूत क्षेत्र को देखे हैं । चौथह राखू क्षेत्र में से इकवीस योजन और चारसी पचास धनुष पचासै जो क्षेत्र देव त्वे लो अनुत्तर विमान याने लभ्यां में अर एक राखू चौथा में अयधि द्वारा देखत हैं ऐसा अर्थ "पंचविशति उत्तर यतः धनयतु ऊनयकविशति योजनः न्यून धनुषश्च दशयान्तां च रक्षु विस्तारं सर्वलक्ष्मणसि पश्यन्ति" इस संस्कृत वाक्य का भाव हुआ है अनुविग विमान यासे कुछ अधिक देख राखू प्रमाण लक्षा और एक राखू चौथा अद्विष्टान द्वारा देखते हैं ।

उप्युक्त आ क्षेत्रों का "परिमाण कोषा है लो स्थानकका नियमरूप जानना । क्षेत्रका परिमाण सोप नियम रूप न जानना । आर्त अक्युत स्थान पयत के यानी विहार करि अन्य क्षेत्र की जाह अर तहां अयधि होइ ली पूर्वाक स्थानक पर्यंत ही होइ ऐसा नाहो जो प्रथम स्वर्गोधावा पहिले नएक आह अर तहां सेतो देख राखू नाचें और जानें । सीधर्म द्विक के प्रथम नएक पर्यंत अयधि क्षेत्र है लो तहां लो विष्टा तहां पर्यंत क्षेत्र ही को जाने भेले सवत्र जानना । जो को गाम्मठ मुद्रित पुष्ट ८५३ ८८४

मयनवासी व्याकर उद्योगिया देवों की अयधिक क्षेत्र वरावर घनरूप नहीं है । अत्यन्तवासी देवों को अयधिका क्षेत्र आयत चतुरस्र (चौकार) किन्तु अस्मां में अधिक और चौधार्ह में चौधार्ह) है । गेय मनुष्य विर्यैव नारको इनको अयधि का विषयभूत क्षेत्र वरावर घनरूप है ।

सीधर्म ईमान स्वर्गों के देवों को अयधि का फल अस्तव्यत कोटि पय है । इसके ऊपर सनत्कुमार माहेन्द्र प्रह्ल यज्ञोत्तर पश्यवलि देवों को अयधि का फल यथायोग्य पय का अस्तव्यतार्थ भाग है । इसके ऊपर लोमह स्थग से लेकर सचोर्ध्वि पर्वतवाडे देवों को अद्विष्टाकरा कुछ घाटि पक्ष प्रमाण है ।

पटा निवासीनगरासहाय कधील्लूत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का श्रद्धालु हिन्दी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २१

इत्यत आह ॥

इति श्रु अत ० आह १

= ऐसा (मन होने पर) इसलिये (आचार्यअग्रिम सूत्रमें) कहते हैं कि

नय त्रैवेदिक निपातो देवों क अग्रभाग में अग्रतः अग्रविमान प्रथम प्रमा (पाँचवीं पृथिवी)के बात पवत है । जो वय पात्र से अग्रयोग में अधिक है और अग्रतः पात्र से मूल है । और इन दो देवों का उल्लेख अग्रविमान अग्रयोग में समप्रमा (छठवीं पृथिवी) के अग्रत तक है । ता मय में अग्रयोग को शोर ग्राह्य पात्र है ॥ सीधर्मादिदेवा उपरि स्वस्वस्वविमानपञ्चदश निबर पयत्त पदगति गोमटसार पृष्ठ २५३

= सीधर्मादिवासी (देवों से नयत्रैवेदिक तक) ऊपरि अपने अपने स्वर्गता विमान का अग्रतः दशक निबर पयत्त देखे हैं ।

नय अनुविपयमान अग्र पाँच अनुत्तर विमान के पाँचो सबलोकांशों जो असनालो ताको देख हैं वदुरि नय अनुविपय पय अनुत्तर विमान के पाँच देय ऊपरि अपने विमान का निबर पयत्त अग्र पाँचो को पात्र अनुत्तर पयत्त सर्व असनालो ताको देखे हैं तो अनुविपय विमानवासी ती कम्पू परकवि क देव पात्र प्रमाण लम्बा अग्र अनुत्तर विमानवाले खादिसे पचोस घनुप घाटि इकवोस योजन करि होन चीनह पात्र प्रमाण लम्बा अग्र एक पात्र चीनह अग्रविप का विपय मूल क्षेत्र को देखे हैं ॥ १ चीनह पात्र क्षेत्र में से इकवोस योजन और बारसी पचास घनुप घनादे जो क्षेत्र देव र्ही तो अनुत्तर विमान वाले सम्यार्थ में अग्र एक पात्र चीनह में अग्रविप द्वाप देखते हैं ऐसा अर्थ "पंचविपयि उत्तर पत्रुः पतपत्रुः अग्रकविपयि योजमिः मूल घनुपय रम्याशो व द्वा विस्तारं सर्वलोकांलि पयसि इत संस्कृत पाक्य का बात आता है ॥ अनुविप विमान वाले कुछ अधिक देव पात्र प्रमाण लम्बा और एक पात्र चीनह अग्रविमान द्वारा देखते हैं ।

उपसुक्त आ देवों का पयिमाय कोया है जो स्थानकका नियमरूप आनता । क्षेत्रका परिमाण लोप नियम रूप न आनता । आर्त अग्रयुत स्वय पयत्त के पाँचो निबर करि अग्र क्षेत्र की और अग्र तथा अग्रविप हो ॥ तो पूर्वोक्त स्थानक पयत्त ही होइ ऐसा माहो जो प्रथम स्वर्गवासा पदिले नरक लार अग्र तथा सेतो देव पात्र नचै और माँ । सीधर्मादिक के प्रथम नरक पयत्त अग्रविप क्षेत्र है तो वहाँ से विपदा वहाँ पयत्त क्षेत्र ही हो जाते भैसे सधन आनता ॥ ओ० कां नामग्रह मुद्रित पृष्ठ २५३, २५४ ॥

अग्रपासी प्यतर ज्योतिषा देवों को अग्रविपका क्षेत्र पयत्त वदुरल (वीकार) किन्तु लम्बा न अधिक और चाङ्ग में बाङ्ग ॥ है । योग मनुष्य विषय मारको इनको अग्रविप का विपयभूत क्षेत्र पयत्त घनरूप है ।

सीधर्मादि विमान स्वर्गों के देवों को अग्रविप का फाल असंस्थात कोटि वय है । इसके ऊपर सतकुमार मादेन्द्र पञ्च ज्योतिषर कल्पवासे देवों को अग्रविप का फाल अग्रयोग्य फल्य का असंस्थातर्था भाग है । इसके ऊपर सौतव स्थग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पयत्त बाङ्गे देवों को अग्रविपका फाल कुछ घाटि पयत्त प्रमाण है ॥

पटा निवासी नगरूपसहाय वर्षोत्कृष्ट पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वांगसिद्धिका शुब्दस्य हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २२
यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसंनिधाने सति शान्तदण्डिकर्मणा तरोपोपसन्धिर्भवति । सर्वस्य चायोपशुमनि
भित्तत्वे चायोपशुमग्रहण नियमार्थं चायोपशुम एव निमित्त न भव इति ॥

यथोक्तसम्यग्दर्शनादिनिमित्तसंनिधाने ॥॥

सति ॥ शान्तदण्डिकर्मणा ॥

सस्य ॥ उपबन्धि ॥ भवति ।

= जैसाकि ऊपर कहा गया है (= राया उक्त) कि समयदर्शनादिक कारणों के निबट
= इतने पर (= सति) हमों का उपशम (= शान्त) और अभाव (= क्षीण = क्षय)
होनेवाले हैं अर्थात् अवधिज्ञाना वरणीय कर्मका भयोपशुम हुआ है जिसको उस (जीव) ने
= तिस (गुण) मत्कार। अवधिज्ञान) की प्राप्ति होती है

(अब सर्व प्रकार के अवधिज्ञान के उत्पन्न होने का हेतु किसी भी जीव के कोई भी
अवधिज्ञान हो (अवधिज्ञानावरणीय कर्म का) भयोपशम निमित्त है तो इस
सूत्र में 'भयोपशम निमित्तः' वाक्य का व्यर्थ क्यों प्रयोग किया ?)

= (उत्तर) सत्य (जीवों) के अवधिज्ञानावरणीय कर्मका भयोपशमकागण होनेपर
(अवधिज्ञान होता है तो भी सूत्र में) 'भयोपशम' का प्रयोग भगवाँ के लिखे हे
= (कर्मोंकि) भयोपशम ही (प्रमुખ्य सिधियों के अवधि ज्ञान होने का) कारण
होता है न कि मय

१) योगकुर्ना मयप्रययोऽपि अयमिति = तीर्थकर्तों के (तीर्थकर्तों)। यव प्रत्यय मी (= मयप्रत्ययः)। अयि) अयचि होती है ।

२) नारक हेतु तात्पर्य के मयों को अथवा अयचिज्ञानावरणीय कर्मका भयोपशम हाकर जो अवधि हा उसको यवप्रत्यय अयचि कहते
है गुण जो सम्यग्दर्शनादि कारणों का अपेक्षा से अयचि आगच्छोय कर्मका भयोपशम हाकर अयचिज्ञान होता है उसको
गुण प्रत्यय अयचिज्ञान अथवा भयोपशम निमित्त अवधिज्ञान कहते हैं व "यव प्रत्यय अयचिज्ञान में भा सम्यग्दर्शनादि गुण का समावेश है
तथापि उन गुणों को अपेक्षा न करते हुये यव प्रत्यय कहा" । यव प्रत्यय अयचिज्ञान हेतु नारकी और तीर्थकर्त की पर्याय पाते हैं। उ पक्ष
हमारे ही और एक मयों का साथ ही साथ अयचिज्ञानावरणीय कर्मका भयोपशम भी हो ही जाना है अर्थात् किसी भीपक्ष की यथोक्ति प्रकाश
आत अयचिज्ञान का साथ एक साथ ही होती है सिध ही हेतु नारक का तीर्थकर्त का भय अय प्रत्यय अयचि अयचिज्ञानावरणीय

स एवोऽवधि पद्विकल्प । कुत ? अनुगाम्यननुगामिवर्द्धमानदीयमानावस्थितानवस्थितमेदात् ॥
कश्चिदवधिर्भास्करप्रकाशवद्रच्छन्तमनुगच्छति ॥ कश्चिन्नानुगच्छति तत्रैवातिपतति उन्मुग्धप्रभादेशिपुरुष
यवनवत् ॥

सः । एवः । अवधिः ।
= सो यह (संयोगाध्यायनिमित्तक, वा गुणनिमित्तक, गुणप्रत्ययक, गुणहेतुक) अवस्थितान
पद्विकल्पः । कुत ? * अनुगामिमेदात् ।
= छह भेदरूप (छह भेदवाला) है । (प्रश्न) कैसे? (उत्तर) अनुगामि (आनुगामिक) भेदसे
अननुगामिमेदात् । वर्द्धमानमेदात् । दीयमानमेदात् ।
= अनुगामि (अनानुगामिक) भेद से वर्द्धमान भेद से दीयमान भेद से
अवस्थितमेदात् । अनवस्थितमेदात् ।
= अवस्थित भेद से अनवस्थित भेद से (संयोगाध्यायमस्य-अवस्थितान) है
कश्चित् अवधिः । भास्करप्रकाशवत् गच्छन्त्यु ।
= जो कोई अवस्थितान धर्म के बजावे सद्यः समान करनेवाले (जीव) को (गच्छन्त्यु)
अनुगच्छति ।
= नहीं छोड़ता है अर्थात् जीवके साथ रह जाता है । (तो) अनुगामि वा अनुगामिक
कश्चित् न अनुगच्छति । तत्र एव
= जो कोई (अवधि गमन करने वाले जीव को) छोड़ देता है (न अनुगच्छति) छोड़ दे
उन्मुग्धप्रभ-आदेशिपुरुषवचनवत् अतिपतति ।
= मूर्ख प्रभन करनेवाले मनुष्य के वचन सद्यः भिर जाता है (= रह जाता है)

कर्मका क्षयोपयम ये तीनों साथ साथी तत्पस्य ही उत्पन्न होते हैं । और गुण प्रत्यय अवधि ज्ञानम सो मनुष्य त्रिपंच भवों का सञ्चाय
वा अतिरिक्त है तथापि उन पर्यायों को अपेक्षा नहीं करते से गुण प्रत्यय कहा है । 'जीव० नामदट् द्विगुण एव ७६८ ७६९'
मपप्रत्यय द्वय चक्षान सम्पूर्णं क्षयं से उत्पन्न होता है (= सद्यः आन्यपरितो से होता है) । नामि के ऊपर शब्द पञ्च सशस्तिरूपस्य
सुधिया, मवः की आदि जो दुन चिह्न होते हैं उस स्थानके आत्म प्रवेशोमे क्षमेवाले अवधि ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपयम से गुणप्रत्यय अवधिज्ञान
होता है

(१) अनुगामो अवधिज्ञान के तीन क्षेत्रानुगामाः मवानुगामो क्षमयानुगाम, भेद । जो दूसरे क्षेत्रमें अपने स्वामी के साथ आने सो क्षेत्रानुगामी
है । दूसरे मय में अपने स्वामी के साथ जाय सो मवानुगामो अवधिज्ञान है । जो दूसरे क्षेत्र और मय दोनों में अपने स्वामी के साथ जाय
सो क्षमयानुगामो अवधिज्ञान है ।
अननुगामो अवधिज्ञानके भी तीन क्षेत्रानुगामो मवानुगामो क्षमयानुगामी भेद हैं । जो अपने स्वामीके साथ दूसरे क्षेत्र में न जाने
सो क्षेत्रानुगामाः अवधिज्ञान है । जो अपने स्वामी के साथ दूसरे क्षेत्रमें न जाय सो मवानुगामो अवधिज्ञान है । जो दूसरे मय और क्षेत्र
दोनों में साथ न जाय सो क्षमयानुगामो अवधिज्ञान है ।

अपरोऽवधि अगणिनिर्मथनोत्पन्नशुक्लपक्षोपचोयमानन्धननिचयमभिद्वपावकवत्सम्यग्दर्शनादिगुणवि
शुद्धिपरिणामतीव्रशमाद्यत्परिणाण उत्पन्नस्ततो वर्द्धते असख्येयलोकेभ्यः ॥ अपरोऽवधि अन्तरितपरिच्छि
न्नोपादानसं तस्यांशिशिखावत्सम्यग्दर्शनादिगुणहानिसङ्गशपरिणामविबुद्धियोगाद्यत्परिणाण उत्पन्नस्ततो
हीयते । आ अगुलस्यासख्येयमागात् ॥ इतराऽवधि सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यपरिमाण उत्पन्नस्तत्परि
माण एवाशतिष्ठते न ह्रायते नापि वर्द्धते सिंगवत् । आ भवन्त्यादा केवलज्ञानात्पतेर्वा ॥

अपरः । अवधिः । अगणि-निर्मथन-उत्पन्न-

शुक्ल पक्ष-उपचीयमान-नन्धन निचय- समिद्व-

पावकवत् ॥ सम्यग्दर्शन-आदिगुणविशुद्धिपरिणाम-

साधिवानात् ॥ यत्परिमाणः । उत्पन्नाः । ततः ॥

वर्द्धते आ० असत्मातलोकेभ्यः ।

अपरः । अवधिः । अन्तरित-

परिच्छिन्न-उपादान-उत्पत्ति-

अनिर्दिशतवत् ॥ सम्यग्दर्शनादि-गुणाहानि-संख्येय-

परिणाम- विबुद्धि-योगात् । यत्परिमाणः । उत्पन्नः ।

ततः आ० अगुलस्यः । असख्येय-मणात् । हीयते ।

इतरः । अवधिः । सम्यग्दर्शन-आदि-गुण-

अवस्थानात् ॥ यत्-परिमाणः । उत्पन्नः ।

तत्-परिमाणः । एवमुत्पत्तिच्छेदोऽभिभवत् ॥ नञ्हीयते । नञ्हीयते ।

नञ्अपि वर्द्धते । आ० भवन्त्यादाः । आशतिष्ठतवत् ।

= अन्य अवधि (अर्थात् वर्द्धमान अवधिक्षान्) वो है वो अरणि के मथन से उपमी

= तथा द्रव्ये पत्तों के संघर्ष इत्ये ईप्सु के समूह पर (हैकी दुई) वर्द्धमान = (समिक)

= अग्नि के सहस्र सम्यग्दर्शनादि गुणों से निर्मल परिमाणों की

= सामो पता से जो परिमाण व माप प्रमाण उत्पन्न हुआ था तिससे

= असत्स्थात लोक पर्यंत (=आ) बढ़ता जाय है

= दूसरा अवधि (अर्थात् हीयमान अवधिक्षान्) वह है जो विरस्तृत (= अन्तरित) और

= परिमित (परिच्छिन्न) उपादान कारणवाले (= उपादान सन्धति) अर्थात् इन्धनवाले

= अग्नि शिखा के समान सम्यग्दर्शनादि गुणों की हानि रूप सम्प्लेय

= परिणामों के बहुत बड़ योग से जो परिमाण उत्पन्न हुआ था

= तिस (परिमाण) से अगुल के असंख्यपक्षों अंश तक (=आ) घटता जाय है

= दूसरा अवधि (अर्थात् अवस्थित अवधिक्षान्) वह है जो सम्यग्दर्शनादि गुणों की

= स्थिति से जो परिमाण (प्रमाण) उत्पन्न हुआ था

= वह परिमाण ही स्थिर रहता है (दारी के तिल मस्ता आदि) धिक् के सहस्र न घटता है

= बहुसंख्यी पर्यायकेक्षण वा सम्प्लेय (सफ) वा केवल ज्ञान की प्राप्ति पर्यंत नहीं है

अ-योऽवधि सम्पदर्थनादिगुणहानिद्विद्वयोगाव्यपरिमाण उत्पन्नस्ततो बद्धते यावदनेन वर्धितव्य, ह्यितं च यावदनेन ह्यतव्य वायुवगप्रतिजज्ञोर्मिवत् ॥ एव पदविकल्पोऽवधिमवति ॥

एव व्याख्यातमवधिज्ञान तदनन्तरमिदानीं मन पर्ययज्ञान वस्तव्य, तस्य भद्रपुर सर लक्षण

व्याचिख्यासुरित्याह—

अन्यः । अवधि । सम्पदर्थनादि—
 गुण-द्विनि-द्विच-योगात् । यत्-परिमाण । उत्पन्न ।
 तत् ५ बद्धते ७ यावत् अनेन । वर्धितव्यम् ।
 च ६ हीयते ७ यावत् ५ अनन । ह्यतव्यम् ।
 वायुगेम रिच नव-उर्मिवत् ॥
 एवम् । पद-विकल्प । अवधि । भवति । एकम् ॥
 अवधिज्ञानम् । व्याख्यातम् । लक्ष-अनन्तरम् ।
 इदानीम् ॥ मन पर्यय ज्ञानम् । वस्तव्यम् । तस्य
 भद्रपुर सर ।
 लक्षण । व्याचिख्यासु । इति ० आह ७

= इतर अवधि अर्थात् अनवस्थित अवधिज्ञान वह है जो सम्पददर्शनादि
 = गुणों के घटने बढ़ने के संयोगसे जो परिमाण उत्पन्न हुआ था
 = जिससे जहाँ तक (= यावत्) इसे बढ़ना चाहिये वृद्धा है
 = और (= च) जहाँ तक इसे घटना चाहिये वट्वा है
 = जैसे एवम वक्त से पेटा हुआ जलकी लहर (घटती भी है और बढ़ती भी है)
 = इस प्रकार 'छद् भेद' रूप अवधिज्ञान होता है । इस प्रकार
 = अवधिज्ञान वर्णन किया गया है । उस (अवधिज्ञान) के लयाता ही
 = अब मनः पर्यय ज्ञान बढ़ना योग्य है ॥ उस (मनः पर्यय ज्ञान) के
 = भेदों को (उसके लक्षण के ज्ञान की अपेक्षा) कमतर वा अप्रामाणी कर (= पुर सर)
 = (और पीछे उसके लक्षण को (भी) करने का इच्छक (आचार्य) ऐसे कहता है अर्थात्
 मन पर्ययज्ञानके भेद पूर्वक लक्षण को करने के इच्छक (आचार्य) ऐसे करते हैं
 यावार्थ मनःपर्यय ज्ञानके भेद" प्रथम (= अप्रमत्त) और पीछे उसके लक्षण को करने
 के इच्छक (आचार्य) श्रुत्यमति और विपुल्यमति भद्र तेईसों सूत्र में और इन
 उक्त भद्रों के लक्षण चौबीसों सूत्र में ऐसे करते हैं कि

(१) पदविकल्पः— भागम विधिं सम्रति पात आमल्लियात् तथा देशावधि सर्ववधि य सर्वानुगामी आदि अत्र भेद करे निन
 ७ अन्तर्गत जानने अपेक्षकों से ० वचनिका मुद्रित पृष्ठ १७७ ॥ उक्त पदविकल्पमति यद्योक्त गार्हिकी साक्षो वा है जिसके पुनरुक्तमें भेद है कि

“मन्त्रगाभ्यननुगामा यत् मानो ह यमानोऽप्यस्थितो

इन्द्राव्यय इति यद्व्यक्त्याऽपि सप्ततिपाठा
ब्रतिपाठयोरेवैयस्मन्मन्त्रात् ।

श्रियायधिः परमायधिः स्यादधिदिति ॥ परमाण्व

प्रमिदानीं पर्वोद्धयस्य सप्तभाषिणानां मन्त्रोपसंयगात्

100

१२८३ लल्लबाय रामवार्तिक मद्रिठ प्राप् ५६ और गो

पुनरप्येवैषां भगवद्भिराचार्यपरमाचार्यः सर्वत्र विप्रसिद्धिः

गुजरात अर्थात्, ज्ञाना) **महामार्गविद्वन्महाशक्तिप्र-**

गामय वरु । प्राप्ता । इत्युक्तं ।

... ..

समाधानापरमाणात्। सध्यावसत्यं विज्ञां प्राह,

॥ शशाङ्कः प्रदीपः ।

सिद्धि। यद्यप्येक परिमित होने से इस ज्ञान का अ

सामान्य ही सामा है हमसिये दूसरे जानो ये मो अण्डि

भय का उद्घन करि आ एक हो भय में रुठ (= प्रसिद्ध)

ममप्रणय इत्यपि निष्पन्नं सेवेयावधिं चोद्यते ।

देणवपि परमाद्यपि सर्वावधि (ऐसे) तीनों प्रकार का हो

मेसार्थपि भौर परमावधि अवधिमान के उपलब्ध

हो है । सर्वार्थपि मे अणम्य कलकप आदि मेन्द्र नहीं है ।

अथय देशावधि आ है सा उत्सेचांगुल का असंख्यातवा भाग मात्र क्षेत्र पर्यन्त है और उत्कृष्ट देशावधि सवसोक्त पर्यन्त है और इन दोनों के मध्य में पवर्तनेयता बनेक विकलरूप मध्यम देशावधि है ॥

अथय पटलावधि एक प्रदेश अधिक लोकक्षेत्र प्रमाण है और उत्कृष्ट असंख्यात लोकक्षेत्र प्रमाण है और मध्यम का मध्यम क्षेत्र है न अथय है न उत्कृष्ट है ॥ सर्वार्थवि उत्कृष्ट परमावधि के क्षेत्र से बाह्य असंख्यात क्षेत्र प्रमाण है ॥

असा कि ऊपर कह चुके हैं कि प्रतिपातो और अमतिपातो दोनों अनुगामी अनुगामा परमान अवस्थित अनयस्थित और अमतिपातो कहते हैं कि प्रतिपातो और अमतिपातो दोनों अनुगामी अनुगामा परमान अवस्थित और अमतिपातो होता है ॥ बिबसा के प्रकार के समान विनायीक प्रतिपातो है और इससे विपरीत अविनायी अमतिपातो है ।

अथय देशावधि ज्ञान संयत तथा अनयत अनुय तिर्यकों में हो होता है देव नारिक्यों में नहीं होता है । उत्कृष्ट देशावधि ज्ञान सयमी महाप्रानो अनुयों में हा होता है क्योंकि अशेष सानि गतिनों में महाप्रान का होना सम्भव नहीं है । परमावधि और सदावधि समष्टयो उसी मय से मोसगामा) महाप्रानो के हा होता है "मय तीर्थकपदिक गृहस्थ अनुय तिर्यच वेच नारिक्यि के नहीं होई ॥ इन्निहे देशावधि हो का योग्यता है" अर्थ प्रकाशिक पृष्ठ १७ देखो । परमावधि और सर्वावधि वाले ओव नियम से सिध्दात्म और बलत अवस्था को प्राप्त नहीं होते । अथयव और चारित्र्य से व्युत्पन्न होकर मिथ्यात्व अनयमको प्राप्ति का प्रतिपात कहते हैं । यह प्रतिपात देशावधि बाधेका हो होता है, परमावधि सर्वावधि बाधे का नहीं होता है ॥

अवधिज्ञान के अथय मेव से लेकर उत्कृष्ट मेव पयत असंख्यात लोक प्रमाण मेव हैं सो सर्वे श्रव्य शेषकात् माय को सापेक्षा से हणो (युक्त) द्रव्य को हा तथा उस (युक्त) के सर्वत्र से संसारो ओव द्रव्य का जो प्रत्यक्ष जानते हैं । वृष्टि सर्वावधि ज्ञान है सो अवयव मध्यम उत्कृष्ट मेव स्थित अवस्थित सर्वो कष्टता को प्राप्त है जाते अवधिज्ञानावरण का उत्कृष्ट संयोगरूप तथा हो समवे है ताते देशावधि परमावधि के अथय मध्यम उत्कृष्ट मेव संसवे है ॥

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः ॥ २३ ॥

सूक्ष्मम्—ऋजुविपुलमती मनःपर्यय ॥ २३ ॥

= ऋजुविपुलमती। मन पर्यय (द्विविकल्प सन्त) ॥ विकल्प शब्द की अनुवृत्ति २२वा सूत्रसर्ज है ऋजुविपुलमती !। मन पर्यय !। द्विविकल्प !। सन्त १ = मन पर्यय ज्ञान ऋजुमति और विपुलमति दो भेद रूप है अर्थात्

मन वचन कायकी सरलता रूप पर के मन में तिष्ठे हुये रूपों पदार्थों का जानै
वह ऋजुमति मन पर्ययज्ञान है और जो मन वचन कायकी सरलता रूप और
मन वचन कायकी वक्रता रूप वा कुटिलता रूप पर के मन में अवस्थित रूपी
पदार्थों को जानै सो विपुलमति मन पर्यय ज्ञान है ॥

(१) विनाशर आश्रयमें कहीं कहीं "मना पश्य" पाठ है। और कहीं कहीं "मनगच्छेय" पाठ है। आचारहान्यादे (= अत्रः रक्षान्-गद्विषया) मयापात्रां यथाभ्यः सूत्र से दोनों ही पाठ शक्य हैं। (विको विप्ययो वृक्ष ३२१ में) ॥ मनः पर्यय हो सिक्कना चाहिये क्योंकि यह सूत्र है और पुनः ॥ साम्या यह है कि अनाद्यत्मसंविग्यं सार नदिरयतो मुखं ब्रह्मोम मनयय च सूत्रं सुब्रह्म विदुः प्रत्य ब्रह्मत्वं ब्रह्मसंविग्यं सारयत्वं विवृत्तं सुब्रह्म - योत्रे अक्षर हो भिन्नता कार्यं सर्वेह रहित हो सार वा सत गर्भित हो सर्वतः ओष्ठ हा रत्नोमम् ब्रह्मवय च सुब्रह्मविदः । विदुः १ सूत्रम् = निरर्थक शब्द (= लोभ) से रहित (= अ) और दृग्गुणयन्त्रित हा सुनवाता उसको सूत्रसममते है आम्बर आश्रय में मनः परय के स्थान में "मनःपर्याय" है शेष पाठ एक है। अर्थ भी एक है हमारा समझ में सगु पाठ हो लेना पित है। इस सूत्र को संख्या समाख्य० में २४ है क्योंकि द्विविधोऽप्यायि सूत्रं बह्व गया है

(२) सिक्कना अनोत (मृत) काल में विनिगयन किया हो अथवा जितना समागत (मनियत्) काल में विनिगयन किया जायगा अथवा नमानमें जितना भाषा धितवन किया है इत्यादि क्रमेक ओष्ठ द्विये दूसरे के मनमें स्थित पदार्थों विसर्ग द्वारा जाना जाय उस ज्ञानक। मनः पर्यय दत्त है। "परार्थ" मतमि चरयन्मितीऽर्थः मनः तत् पर्यति यच्छति जानातीति मनः पर्ययः; पर के मन में विपुलता जो पदार्थ सो मनः कद्विये २म (परार्थ) को परस्य करतः है (= पर्यति) तन्मयं यथेय दोला है (= गच्छति) विसर्गो जानता है (= जानाति) येना मनःपर्यय है। जीव-गोचर ४४३

पदा निपाती मगलपञ्चम्यः स्वीकृत्य तत्पक्षेद् और निम्नस्यै सदित सर्वाभिसिद्धिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अण्यप ? अत्र २३

श्रुद्धी मतिर्यस्य सोऽय श्रुमुमति ॥

= उत्पन्नदुर्दे (= निर्वर्तिता) अथवा निष्पन्नदुर्दे (= निर्वर्तिता)
 = सरल [= श्रुद्धी = श्रुद्धि] और (= व) सीधो (= प्रगुणा) (मति)
 = स्थिरदुर्देवुसे (= कस्मात्) उत्पन्न दुर्दे वा निष्पन्न दुर्दे (= निर्वर्तिता) ?
 = (उत्तर) वचन-काय-भनकरि किये द्युये अन्य (जोव) के मन में प्राप्त भये
 = रूपी पदार्थ के (= अर्थव्य) जानने से (= विज्ञानात्) ॥ — सरल (= श्रुद्धी) है
 = मति (= ज्ञान वा बुद्धि) जिसका सो यह श्रुमुमति है ॥ भावार्थ सरल मनसे, सरल
 वचनसे सरल कायसे किये द्युये अन्य जीवके मन में प्राप्त द्युये सा रूपी पदार्थ विसके
 जानने से (= विज्ञानात्) उत्पन्नदुर्दे (= निर्वर्तिता) जो सरल मति सो श्रुमुमति है ॥

१) इस व्याख्यति से प्रगट है कि श्रुमुमति शब्द पुनिष्ठ है सामान्य का अर्थवा से मतः पर्यय ज्ञान एक प्रकार का है और विशेष
 को विवक्षा से श्रुमुमति मतः पर्ययज्ञान और विमुक्तमति मतः पर्ययज्ञान ऐसे वा भेद है ॥ श्रुमुमति मतः पर्यय ज्ञान के तीन भेद हैं अर्थात्
 (क) श्रुमुमति गताय विषयक (= श्रुमुमतिर्नये प्राप्त भया शर्य का ज्ञानादारा) वा श्रुमुमतिस्त्वायैष (= श्रुमुमतिस्त्वायैष शर्य का ज्ञानेवाला)
 (ख) श्रुमुमतिगताय विषयक (= श्रुमुमति गताय शर्य का ज्ञानादारा) वा श्रुमुमतिस्त्वायैष (= श्रुमुमतिस्त्वायैष शर्य का ज्ञानेवाला)
 (ग) श्रुमुमतिगताय विषयक (= श्रुमुमति गताय शर्य का ज्ञानादारा) वा श्रुमुमतिस्त्वायैष (= श्रुमुमतिस्त्वायैष शर्य का ज्ञानेवाला)
 (२) जैसे किनी मनुष्य ने मन से एक सरल वा प्रगटप पदार्थ का विषयन किया । धार्मिक वा लौकिक वक्तव्यों को भा मित्र निब
 रू से उधारण किया और दोनों खेक के फल का प्राप्ति के सिधे जग और उपायों का पटकना सकोचना और फैलाना रूप काय की चेष्टा मो
 क किंतु उनके कुछ दिवस के पश्चात् अथवा बहुत काल पीछे उस मन से विचारो द्युये या वचन से कहे द्युये अथवा शरीर से किये गये काय
 को प्रसन्नाने के कारण कि मति मन पचन काय से आ किया या इस बात के विचारले के सिधे वह समर्थ न रहा उसके उस प्रकार के मन
 पचन द्वाप किये गये कार्य का कोई श्रुमुमतिमगः पर्यय ज्ञान वाले से पूछो चाहे यत पूछो यह अपने श्रुमुमतिमगः पर्यय ज्ञान से स्पष्ट ज्ञान
 होता है कि उस मनुष्य ने मन से वह पदार्थ इस रूप से विचार था, वचन से इस प्रकार कहा था और शरीर से इस प्रकार किया था ॥

२) इस व्याख्यति से प्रगट है कि श्रुमुमति शब्द पुनिष्ठ है सामान्य का अर्थवा से मतः पर्यय ज्ञान एक प्रकार का है और विशेष
 को विवक्षा से श्रुमुमति मतः पर्ययज्ञान और विमुक्तमति मतः पर्ययज्ञान ऐसे वा भेद है ॥ श्रुमुमति मतः पर्यय ज्ञान के तीन भेद हैं अर्थात्
 (क) श्रुमुमति गताय विषयक (= श्रुमुमतिर्नये प्राप्त भया शर्य का ज्ञानादारा) वा श्रुमुमतिस्त्वायैष (= श्रुमुमतिस्त्वायैष शर्य का ज्ञानेवाला)
 (ख) श्रुमुमतिगताय विषयक (= श्रुमुमति गताय शर्य का ज्ञानादारा) वा श्रुमुमतिस्त्वायैष (= श्रुमुमतिस्त्वायैष शर्य का ज्ञानेवाला)
 (ग) श्रुमुमतिगताय विषयक (= श्रुमुमति गताय शर्य का ज्ञानादारा) वा श्रुमुमतिस्त्वायैष (= श्रुमुमतिस्त्वायैष शर्य का ज्ञानेवाला)
 (२) जैसे किनी मनुष्य ने मन से एक सरल वा प्रगटप पदार्थ का विषयन किया । धार्मिक वा लौकिक वक्तव्यों को भा मित्र निब
 रू से उधारण किया और दोनों खेक के फल का प्राप्ति के सिधे जग और उपायों का पटकना सकोचना और फैलाना रूप काय की चेष्टा मो
 क किंतु उनके कुछ दिवस के पश्चात् अथवा बहुत काल पीछे उस मन से विचारो द्युये या वचन से कहे द्युये अथवा शरीर से किये गये काय
 को प्रसन्नाने के कारण कि मति मन पचन काय से आ किया या इस बात के विचारले के सिधे वह समर्थ न रहा उसके उस प्रकार के मन
 पचन द्वाप किये गये कार्य का कोई श्रुमुमतिमगः पर्यय ज्ञान वाले से पूछो चाहे यत पूछो यह अपने श्रुमुमतिमगः पर्यय ज्ञान से स्पष्ट ज्ञान
 होता है कि उस मनुष्य ने मन से वह पदार्थ इस रूप से विचार था, वचन से इस प्रकार कहा था और शरीर से इस प्रकार किया था ॥

रदा निवासी भारणसहाय बर्बरकृत पक्षध्व और विभक्त्यर्थ सहित सर्वोपसिद्धिका शब्दशः हिन्दी कलुषाद् । अल्पाय १ सूत्र २२

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च । रुग्मादनिर्वर्तिता ? वाक्यायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनागतस्य
विशागात् । विपुला मनिर्यस्य साऽय विपुलमति ॥

य अनिर्वर्तिता ॥ कुटिला ॥ य ऋ
= और (= च) नहीं निष्पन्न हुई कथा नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च
= विस्तोर्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
= विलस कारण से नहीं निपझाई वा नहीं निष्पन्न मर्दे (= अनिवर्तिता)
= (उत्तर) बघन कायमन करि किये हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भये
= रूपी पदाय के (= अर्थस्य) जानने से ॥ विस्तोण-विशाल-नानार्थक है
= मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) निस्कती सो यह विपुलमति है ॥ भावार्थ

किर विशेष्टेष्टे उत्पन्न हुई है ? (उत्तर) "स्वयमवरी मर्दे है" (अन्य बघनिका युद्धित पृष्ठ १७५) । कैसे ? भविष्यत् काल में कोई जीव
रूपी पदार्थ को धित्वैगा अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचारा नहीं गया है उसके मन में वह रूपी पदार्थ अब तक नहीं विष्टा है
अने वाले काल में धित्वन करैगा इसको भो विपुलमति मन पर्यय ज्ञानी जानता है । इसलिये ना पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है
आर उसका विपुल मतिमन पर्यय ज्ञानीने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में कर सकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा
मति निस्कई बल स्वयमेव ही मर्दे क्योंकि उस समय दूसरे के मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ पदार्थ में विपुल शब्द
का अर्थ विस्तीर्ण, विशाल, गंभीर है जिसमें कुटिल, असरल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गभित है ।

और जिससे यह भाव झलकता है कि विपुलमति मन पर्यय ज्ञान से पर के मन में रहने वाले शत्रु-यक सरल द्येसर्वप्रकार के रूपी पदार्थों का
तथा भारी भारमासे भा मा को जा कर आया और परका धित्वन जीवित मरल पुल ज्ञान और अज्ञान का धिका सो अत्युक्तिमानवय
ज्ञानी जानता है । किंतु यह विषय है कि जो मुमुक्षु ध्यक्षमाना है मने प्रकार धित्वन कर जिन्होंने शब्द रूप से मत से पदार्थों का निष्पन्न कर
लिया है उसी के द्वारा विचारे गये पदार्थों का अत्युक्तिमानव पर्यय ज्ञानी जानता है । परन्तु जो ध्यक्षक मना है मने प्रकार धित्वन कर
जिन्होंने ध्यक्षक रूप से पदार्थों का निष्पन्न नहीं किया है उनके द्वारा मन से विचारे हुये रूपी पदार्थों को अत्युक्तिमानव पर्यय ज्ञानी नहीं जानता
है ॥ यह शब्द और च य को अर्थक है अत्युक्तिमानव पर्यय ज्ञान का धित्वन है । (ऐको- पृष्ठ १७५ मार्गिक ३) ॥

एषा निवासी आगरसहाय इकील कुत एदण्देद और विमलवर्य सहित सर्वोपेक्षिका शब्दः विदी अनुवाद । अथ्याय १ सूत्र २३

अनुमतिश्च विपुलमतिश्च अनुविपुलमती ॥ एकस्य मतिशब्दस्य गतार्थत्वादप्रयोग । अथवा अनुमतिश्च विपुला च अनुविपुले । अनुविपुले मती ययोस्तौ अनुविपुलमती । स एष मन पर्ययो-

ज्ञान होता है । अपने और परके नीहित मरण सुख दुःख लाभ और अस्वास्थ्य की ज्ञान होता है तथा जिस पदार्थका व्यक्तमनकरि चित्तवन किया गया है वा अव्यक्तमनकरि चित्तवन किया गया है अथवा नहीं चित्तवन किया गया है आगे जाकर चित्तवन हागा उन सब प्रकारके पदार्थोंका विपुल मति मन पर्यय ज्ञानी जानता है ॥ (राज० वा० बार्तिक १०) यह इत्य और भावकी अपेक्षासे विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानके विषयका निकपक्ष है ।

(१)

(२)

अनुमतिः । एक विपुलमतिः । एक अनुविपुलमती । अथवा (=व) अनुमति और (=व) विपुलमति (विज्ञानसे) अनुविपुलमती हुआ अर्थात् अनुमतिका मतिशब्द लेकर और विपुलमतिको मतिशब्दलाकर दोनों मति शब्दोंको विज्ञानसे "मती" ऐसा द्विवचन हुआ और अनुविपुलमती" इदं समास हुआ साथ विज्ञानसे अनुविपुल हुआ अतः "अनुविपुलमती" इदं समास हुआ =एक मतिशब्दके अर्थकी मति शब्दसे (=गतार्थत्वात्) वा तात्पर्यकी छानि होनेसे =द्वयमैद्वये मतिशब्दका प्रयोग अथवा व्यवहार नहीं अर्थात् एकही मतिशब्दको दोनों अनु और विपुलके साथ लगानसे अर्थ वा अभिप्रायकी मति होभावी है अतः

एकस्य । मतिशब्दस्य । गतार्थत्वात् ।

अ प्रयोगः ।

(२)

अथवा अनुमतिः । एक विपुला । एक

अनुविपुले । अनुविपुले । मती । ययोः ।

मती । अनुविपुलमती । सः । एवः । मनःपर्ययः ।

(१) सरल वा अनुमति मतिशब्द ही ज्ञान होने पर भी अनुमति शब्द पुनिरुद्ध रससिद्धे उपर पुनिरुद्धी सिद्धि यह वकार वाक्य मूलक के सिद्धे अर्थात् संस्कृतकी बोलचालमें हाथा आताही परन्तु इसका अनुवाद हिन्दीभाषाकी बोलचालमें नहीं होसकता है प्र

पटा निवासी स्मारकपहाय यदोलकृत पदच्छेद और विमलतूर्य सहित सर्वोत्तिष्ठिका क्षणशः दिन्दी भुजसाद । अल्पाय १ सूत्र २३

अनिर्वर्तिता कुटिला च विपुला च । कस्मादनिर्वर्तिता ? वाक्कायमनस्कृतार्थस्य परकीयमनागतस्य
विज्ञात् । विपुला मनियस्य साज्य विपुलमति ॥

च ० अनिर्वर्तिता ॥ कुटिला ॥ च ०
= और (= च) नहीं निष्पन्न हुई अर्थात् नहीं उत्पन्न हुई वक्र (= कुटिला) और (= च
= विस्तोर्ण (= विपुला), विशाल (= विपुला) वा नानार्थक (= विपुला)
= किन्तु कारण से नहीं निपझाई वा नहीं निष्पन्न मूर्ध (= अनिर्वर्तिता)
= (उपर) वचन कायमन करि किन्ते हुये अन्य (जीव) के मन में प्राप्त भवे
= रूपी पदार्थ के (= अवस्थ) जानने से ॥ विस्तोर्ण-विशाल-नानार्थक है
= मति (अर्थात् ज्ञान वा बुद्धि) जिसकी सो यह विपुलमति है ॥ भवार्थ

किर किस् हेतु से उत्पन्न हुई है ? (उपर) "स्वयम्बरी मूर्ध है" (अप० वचनिका सुवित पृष्ठ १७५) । कैसे ? भविष्यत् काल में कोई जीव
रूपी पदार्थ को चित्तवर्ग अब तक उसके मनद्वारा वह रूपी पदार्थ विचार नहीं गया है उसके मन में वह रूपी पदार्थ अब तक नहीं विद्यमान है
अतः बल काल में चित्तवर्ग का इसको भी विपुलमति मन पर्यप ज्ञानो जानता है । इसलिये वा पदार्थ अब तक परमनोगत नहीं हुआ है
और उसका विपुल मतिमन पर्यप ज्ञानीने जान लिया ही है तो ऐसी अवस्था में वह तकते हैं कि नहीं निष्पन्न हुई है परमनोगत पदार्थद्वारा
मति जिसकी वन स्वयम्बरी मूर्ध, क्योंकि उस समय धृतर के मन में उस रूपी पदार्थ का अस्तित्व नहीं हुआ ॥ पदार्थ में विपुल शब्द
का अर्थ विस्तोर्ण, विशाल, गभीर है जिसमें कुटिल, अंतराल नानार्थक, विषम सरल इत्यादि गमित है ।
और जिससे यह भाव श्लक्ष्णा है कि विपुलमति मन पर्यप ज्ञान से पर के मन में रहने वाले प्रसु-वक्र सरल द्येस्वयम्बकार के रूपी पदार्थों का

तथा प्रारम्भ आभासी भा मा को जा । कर आभा और परका चित्तवर्ग जीवित भवत्तु सुक्त दुःख क्षाम और ब्रह्मान आदिका मो म्बद्धमतिमानपदं
बन्नी जानता है । किन्तु यह नियम है कि जो सुतुष्य व्यक्तमाना है मने प्रकार चित्तवर्ग कर चित्तवर्ग प्रगत रूप से मन से पदार्थों का निश्चय कर
लिया है उन्हीं के दाप विचारों मने पर पथों को म्बद्धमतिमाना पर्यप ज्ञानो जानता है । परन्तु जो व्यक्तमाना है मने प्रकार चित्तवर्ग कर
जिन्होंने म्बद्ध रूप से पदार्थों का निश्चय नहीं किया है उनके दाप मन से विचारों हुये रूपी पदार्थों को म्बद्धमति माना पर्यप ज्ञानो नहीं जानता
है ॥ यह दाप और च ० की अर्थका है म्बद्धमति माना पर्यप ज्ञान का निश्चय है । (ऐक्यो० दाप० सूत्र १३ वार्तिक ३) ॥

आह उक्तो मेद, लक्ष्णमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते । वीर्यान्तरायमन पर्ययज्ञानावरण-
क्षयोपशमगोपागनामलाभावधम्मादात्मन परकीयमन सम्बन्धेनलब्ध वृत्तिरूपयोगो मन पर्यय ॥
मतिज्ञानप्रसंग इति चेदुक्तोत्तर पुरस्तात् । अपेक्षाकारण मन इति

आह
= शिष्य वा अन्यवादी आचार्यसे) मन करता है (=आह) या पूछता है (=आह) कि
(मनः पर्यय ज्ञान के अजुगपति मनः पर्ययज्ञान और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान)
वक्त मेदः । इदमेषः सखलम् ॥॥ वक्तव्यम् ॥॥ =मेद करे गये अब (नके) सखल वा स्वरूप कहनी चाहिये ।
=विः अत्रः उच्यते । वीर्यान्तराय-मन पर्यय— =येसे (मन करने पर) यहाँ कहाआया है कि वीर्यान्तराय कर्मका और मनःपर्यय
ज्ञानावरण-क्षयोपशम-अज्ञोपादानाय
=आम-अवगुणम् । अत्यन्तः । परकीय
मनासम्बन्धेन । सम्बन्धसि । उपयोगः ।
मनः-पर्ययः ।

मतिज्ञान-मसङ्गः ।
इति चेत् पुरस्तात् ।
वक्त उपरम् ॥॥
अपेक्षाकारणम् ॥॥ मनः ॥॥ इति ॥

(१) इसका तात्पर्य यह है कि प्रियों और मन होता मतिज्ञान उत्पन्न होता है । यह मतिज्ञान भूतज्ञानके होने के लिये कारण
है किन्ता मतिज्ञान के भूतज्ञान कभी भी नहीं होता मतिज्ञान कारणरूप है और भूतज्ञान कार्यरूप है अतः मतिज्ञान और भूतज्ञान का परस्पर
कार्यकारण भाव है व योंकि मतिज्ञान (प्रियों और) मन के संबन्ध विना नहीं होता है इसलिये शिष्यको यह मन करनेका अवसर मिला कि

द्विविध ऋजु मतिर्विपुलमतिरिति ॥

(१)

(२)

दि विप । ऋजुमतिः । विपुलमतिः । इति ॥ यो प्रकार ऋजुमति और विपुलमति इस भाँति (= विधि) है ॥

(१) ऋजुमतिमत्ता पर्यय ज्ञानके तीन भेद ऋजुमनस्छायायः ऋजुवाक्छायायः ऋजुकायछायायः (इनके लक्षण के लिये देखो पृष्ठ ४४७)

(२) विपुलमतिमत्ता पर्ययज्ञान चार प्रकार हैं । (क) ऋजुमनोगताय विषय ऋजुमनस्छायायः अर्थात् ऋजुमनको प्राप्त हुये अर्थ का ज्ञानसे वाता (ग) ऋजुबलगतार्थ विषय वा ऋजुवाक्छायायः अर्थात् ऋजुबलन को प्राप्त मया अर्थ का ज्ञानसे वाता (ग) ऋजुकायगतार्थ विषय ऋजुकायछायायः अर्थात् ऋजुकाय को प्राप्त हुये अर्थका (= कपी पर्याय का) ज्ञानसे वाता (घ) ऋजुमनोगताय विषय वज्रमनस्छायायः अर्थात् वज्रमनको प्राप्त मया अर्थ का ज्ञानसे वाता (ङ) ऋजुबलगतार्थ विषय वज्रवाक्छायायः अर्थात् वज्रबलनको प्राप्त हुआ कपी पर्यायका ज्ञानसे वाता (च) ऋजुकाय गताय विषय वज्रकायछायायः अर्थात् वज्रकाय को प्राप्त मया कपी पर्याय का ज्ञानसे वाता ॥

अजमति तथा विपुलमति मत्ता पर्यय ज्ञान के विषय शुद्धगत और अशुद्धगत दोनों ही प्रकार के होते हैं । कैसे ? सो कहते हैं कोई भी सरल मन करि निष्पन्न होत होता प्रिकाल सब ची पदार्थोंको चिंतन मया वा सरल बलन करि निष्पन्न होत होता चिंतन मया वा सरल काय करि निष्पन्न होत होता जिनको करत मया पीछे मूर्ति करि कालांतरित्वे सारब करनेको समर्थ न हुआ सर कायकरि ऋजुमतिमत्ता पर्यय भीको पुरुष मया वा सरल करत का अभिप्राय को पारि मील हीनै बड़ा रहा वहाँ ऋजुमतिमत्ता पर्ययज्ञान स्वयमेव सर्वको ज्ञानै है । ऐसे ही सरल वा बल मन बलन काय करि निष्पन्न होत होता प्रिकाल सम्बन्धी पर्यायोंको चिंतन मया वा बलल मया वा करत मया बहुरि मूर्ति करि केनेक ज्ञान पीछे सारल करत को समर्थ न हुआ आप करि विपुलमति मत्ता पर्ययज्ञानी के निकट पुरुष मया वा मील से बड़ा रहा वहाँ विपुल मतिमत्ता पर्ययज्ञान सर्वको ज्ञानै' परै इनका शब्दपर ज्ञानमा ॥

प्रिकाल सम्बन्धी पुरुष द्रव्य को चर्यमान काल सिधे कोई जीव चिंतन करे है तब पुरुष द्रव्य को ऋजुमति मत्ता पर्ययज्ञान ज्ञानता है और प्रिकाल सर्वची पुरुष द्रव्य की मूलकाय में चिंतन किया हो अथवा चिंतन अभिप्राय में चिंतन किया जायगा यहाँ चर्यमान में चिंतन का चिंतन वा रहा है एने सीनी ही प्रकार के पर्याय को विपुलमति मत्ता पर्ययज्ञान ज्ञानता है ॥

एतद् निवासी नास्मत्सायं वहीश्वरं हव श्वष्यन्ते सति सार्वसिद्धिं शब्दशः । इदं भद्रवाद । अस्यायं स २३

आह उक्तो भेद, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्रोच्यते । वीर्यान्तरायमनः पर्ययज्ञानावरण-
क्षयोपशमार्गोपागनामलाभावष्टम्भादात्मन परकीयमन सम्बन्धेनलब्ध वृत्तिरुपयोगो मन पर्यय ॥
मतिज्ञानप्रसंग इति चेदुक्तोत्तर पुरस्तात् । अपेक्षाकारण मन इति

115

आर

=शिल्प वा अन्यषोढी आचारसे) प्रन करारै (=आइ)वा पुहतरै (=आइ) कि
(मनः पर्यय द्वान के श्रुत्यति मनः नर्यप्रधान और निपुल्यमि मनःपर्यप्रधान)
=येउ करे गये उप (मने) लखण वा स्वरूप कडनी चागिये ।
चकमेदः ॥ इतनीम् कवणम् ॥ चकव्यम् ॥

—

एषा निवासी भगवन् सदाह बह्विह कुच पदच्छेद और शिष्यस्वर्यं सहित सर्वांगसिद्धिंका शब्दशः द्विदो अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २३

परकीयमनसि व्यवस्थितोऽर्थ अननेन ज्ञायते इत्येतावद्वापेक्ष्यते ।

परकीय-वर्त्मसि ॥ व्यवस्थितः ॥ अर्थो ॥ अननेन ॥

==इसरे क मन में सिधुता हुआ रूपी पदार्थ इस (मनः पर्यय ज्ञान) से ज्ञायते । इति एतावत् अत्र अपेक्षते ।

==माना जाता है इस प्रकार इतनी ही (इत्यावत्) यहाँ विवक्षा की गई है ।

अब अत्र पर्यय ज्ञान में भी मन का सम्बन्ध है और मतिज्ञान में तो मन पर्ययज्ञान में भी मतिज्ञान का प्रयोग आया जैसे अत्र और स्वर्ण रत्न चूल्हा आदि द्रव्यों के सब व से स्वर्ण रत्न चूल्हा आदि भोग्यत्व का प्रगट होते हैं उस मतिज्ञान है तैसे ही मन पर्यय ज्ञान भी मन सब व से प्राप्त है वृत्ति (प्रवृत्ति) जिससे देखा (मन पर्यय ज्ञान) है इस सिद्धे (मन पर्यय ज्ञान भी) मतिज्ञान नाम को पता है अर्थात् मन पर्ययज्ञान मन के निमित्तपत्ते से मतिज्ञान को प्राप्त होता है (= मनः पर्यय ज्ञान मनो निमित्तपत्तात् मतिज्ञानं प्राप्तम्) भाषाय मतपर्यय ज्ञान भी मन द्वारा उत्पन्न होता है और मतिज्ञान भी मन द्वारा (और पाँच द्रव्यों द्वारा) उत्पन्न होता है इसलिये मनः पर्यय ज्ञानसे मतिज्ञान बढ़ सकते हैं क्योंकि देखा ही आर्य लक्ष्मी परिपाटी है (= परम्परा हि ज्ञानी मतिव्यय) कि अपने मनकरि परम्या मनमें ठहरे हुये परार्थ का चिन्तन करके इत्यादि (= अन्तः अत्र संपरिचित्व + इति) है ।

(मनः) अपेक्षामात्रपत्ता से ' = अपेक्षामात्रपत्तात्) तहाँ (= मनः) मन पर्यय ज्ञान में अपना और पर के मन की अपेक्षा मात्र करिये है (मन पर्यय ज्ञाने-अत्र स्वपरमात्रपेक्षा मात्रं क्रियते) ॥ जैसे (कोई कही) बाएल में (= अन्तः) अपना आकाश में (= अन्तः) अपना को देखो (= परा अत्र अन्तः पर्यय + इति) यहाँ केलेने रूप काय लक्ष्मी है और बाएल का आकाश शुद्ध अपेक्षा मात्र है । तैसे ही मनः पर्यय ज्ञान में लिखे हुये का अवस्थित रूपी परार्थिका अनन्ता ही कार्य है और स्वपर मन अपेक्षा मात्र है और जैसे अन्तः अत्र मतिज्ञान है तैसे मन का काय मन पर्यय ज्ञान यही है (न अत्राप्य मतिज्ञानकत्वं) ॥

क्योंकि इस (मनपर्यय ज्ञान) का अन्त गुण्य का निमित्तपत्ता है (= एतस्य आत्मसमुच्चित्तिमित्तपत्तात् इति) क्योंकि राजबाँल में बातिक ५ सब द पर मनः पर्यय ज्ञान तो वीर्योन्मत्ताय कम और मनः पर्ययज्ञानावस्थीय कम क फुलपत्ताय की शक्ति मात्र से और अपेक्षामात्र नामक के मय के नाम से आत्मा के विकसित का प्रकटित हुआ है ॥ (देखा सूत्र ३२५ और ३२६) ॥ जीवार्थ गोमन्मदसार में इस सब व में लिखा है कि "जैसे पूर्व क्या या अवस्थाय अप्रतिज्ञान सर्व अंशों उपर्य है अत्र गुणमन्मय जीवार्थिक किम्बु जैसी उपर्य है तैनी मनः पर व ज्ञान मय मन उपर्य है नियमत्, और अगमिने प्रवेष्टानिबिन् बाही उपर्य है" गोमन्मदसार वाया ५४५ ॥

"मो मय मन इत्य आनन्तिर् अन्तःकरणं याद पाण्डुरी का कथन के आकार जीवोन्मत्ताय नामक के उपर्य में लिख आति की पुत्रम परमेष्ठिनि चिन्तनीकोला है निमित्त अन्तःपरिचित्व निमित्त है देखा लिखन है" गोमन्मदसार वाया ५४५ ॥

तस्य चक्षुमतिर्भिन पर्यायः काखतो

तत्र ३३ अक्षुमतिः । मनः पर्यय ॥ कलित ३३ = सर्वे अक्षुमति मनः पर्यय ज्ञान काल (की अपेक्षा) से

"तस्य मनःका नोद्विष्टय ३३ ॥ १ ॥ ना कथिये ईदल विस्मयाश्च इन्द्रिय है जैसे स्वभावार्थक इन्द्रिय पृष्ठ है जैसे मन के पृष्ठपणा नाभी नाँ ना का नोद्विष्टय ईद्विष्टा नाम है सो तिस प्रथम मा विर्ये मतिबलरूप आत्मन मी उपजे है । अर मनः पर्यय ज्ञान मी उपजे है । गाथा ४४४४४४ ॥ इन्द्रमति मनः पर्यय ज्ञान है सो कहे बा ज्ञान कीलके स्वभावार्थक इन्द्री अर मन अर मन बलन काय योग तिनको सापेक्षते जयने है । श्रुति कियुक्तमति मनः पर्यय है सो अक्षयि शा की सो नारै तिनको अपेक्षा विनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४४ ॥ ना बके मनविसे सरूपणै विवर्तनरूप तिष्ठता जो पवारै भाषी पहलै तो रंभा नाम मतिबलकार प्राप्त हाइ झैसा विचारै कि पाका मनविसे कल है । पीछ रिक्तमति मनः पदार्थालवरि तिस अर्थकी प्रत्यक्ष पने करि रिक्तमति मनः पर्यय जानै जानै है पक्ष नियम है ॥ गाथा ४४४ ॥ इन्द्र प्रति वाक्नेत्र प्रति वा काल प्रति वा आन प्रति अर्थकार लक्षित करिय विवर्तन कीया हुआ जो रूपी पुष्पद्रव्य वा पुष्पलके संवध धरै संसाध जीव इव्य ठाकी बलन साधन उद्दिष्ट मेवकार चक्षुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४४ ॥

अक्षुमति, मनः पर्यय ज्ञान उद्दिष्ट पर करि औदारिक शरीर का निरुपकरण समय प्रवृत्त करै जानै है । औदारिक शरीरविषय समय समय निर्जया हो है सो एक समय विर्ये औदारिक शरीर के जितने परमाणु निर्जयै तिनने परमाणुनि का स्वयंको अवल्य रिक्तमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है । श्रुति कियुक्तमति मनः पर्यय ज्ञान है सो कहे बा ज्ञान कीलके स्वभावार्थक इन्द्री अर मन अर मन बलन काय योग तिनको सापेक्षते जयने है । श्रुति कियुक्तमति मनः पर्यय है सो अक्षयि शा की सो नारै तिनको अपेक्षा विनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४४ ॥ ना बके मनविसे सरूपणै विवर्तनरूप तिष्ठता जो पवारै भाषी पहलै तो रंभा नाम मतिबलकार प्राप्त हाइ झैसा विचारै कि पाका मनविसे कल है । पीछ रिक्तमति मनः पदार्थालवरि तिस अर्थकी प्रत्यक्ष पने करि रिक्तमति मनः पर्यय जानै जानै है पक्ष नियम है ॥ गाथा ४४४ ॥ इन्द्र प्रति वाक्नेत्र प्रति वा काल प्रति वा आन प्रति अर्थकार लक्षित करिय विवर्तन कीया हुआ जो रूपी पुष्पद्रव्य वा पुष्पलके संवध धरै संसाध जीव इव्य ठाकी बलन साधन उद्दिष्ट मेवकार चक्षुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४४ ॥

मेरी समझ में मनः पर्यय ज्ञान उद्दिष्ट पर करि औदारिक शरीर का निरुपकरण समय प्रवृत्त करै जानै है । औदारिक शरीरविषय समय समय निर्जया हो है सो एक समय विर्ये औदारिक शरीर के जितने परमाणु निर्जयै तिनने परमाणुनि का स्वयंको अवल्य रिक्तमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है । श्रुति कियुक्तमति मनः पर्यय ज्ञान है सो कहे बा ज्ञान कीलके स्वभावार्थक इन्द्री अर मन अर मन बलन काय योग तिनको सापेक्षते जयने है । श्रुति कियुक्तमति मनः पर्यय है सो अक्षयि शा की सो नारै तिनको अपेक्षा विनाही निगमकरि जानै है" ॥ गाथा ४४४ ॥ ना बके मनविसे सरूपणै विवर्तनरूप तिष्ठता जो पवारै भाषी पहलै तो रंभा नाम मतिबलकार प्राप्त हाइ झैसा विचारै कि पाका मनविसे कल है । पीछ रिक्तमति मनः पदार्थालवरि तिस अर्थकी प्रत्यक्ष पने करि रिक्तमति मनः पर्यय जानै जानै है पक्ष नियम है ॥ गाथा ४४४ ॥ इन्द्र प्रति वाक्नेत्र प्रति वा काल प्रति वा आन प्रति अर्थकार लक्षित करिय विवर्तन कीया हुआ जो रूपी पुष्पद्रव्य वा पुष्पलके संवध धरै संसाध जीव इव्य ठाकी बलन साधन उद्दिष्ट मेवकार चक्षुमति वा विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान जानै है ॥ गाथा ४४ ॥

एग निवासी नगररूपसाय वकोलकृत पदच्छेद और विषयत्यर्थ सदिह सर्वोपसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २४ तदावगण द्वापयमे रति आत्मन प्रसादा विशुद्धि । प्रतिपत्तन प्रतिपात न प्रतिपात अप्रतिपात । उपशा तक्षपायस्य चाग्निमोहोद्वेष एप्रच्छुतसंयमाशिवरस्य प्रतिपातो भवति । क्षीणवधायस्य प्रतिपातकारणाभावादप्रतिपात ॥

(१) पदच्छेद क्रम विमर्शार्थसहित इस सूत्र पर सस्कृत सर्वांगसिद्धान्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद ।

सुखं आनन्दं कथं पश्यते । सति ।

आमनः । प्रसादः । विमुक्तः ॥ प्रसिद्धम् ॥

नतिप्राप्त'। उदशान्तिपादस्थः।

षातिश्मोह-उदकात्' । अरुतह यमसिलारय' ।

(3)

प्रतिपातः । भवति क्षीणं पापस्य ।

प्रतिपातकारण-अभावात् । अर्थात्पातः ।

(१) हमारा रहे कि रहा पर नी। इसा बिगु ४२१ में है। बोर्यान्तपय कर्मका और मना पर्यय बानधरणीय कर्मका सुयोपशमसे और अगार्णय नामनाइके के (उपरके) लालकूमास होमिसे आमाके परिणामीकी उर वलता सो विदुय वा विपुय है। यहाँ समेयपर्य पर कर्मका नाम वृत्तिमें लिया है।

(१२) राजा ऊटुर्मति मनः परय काल है सो प्रतिपत्ती है क्योंकि आरुमतिनासा उदरुम तथा दुपक दोनो ओखियो पर चढ़ता है उसमें पराधि सरकरी अवेबासे आरुमतिगर् का पतन नहीं होता। पराधि उदरुमर ब की अवेबासे पतन होता है और दूसरा विपुलमति मनः परवेबासा नै पलशरक। सो ही माइता है और चढ़ता है उसका पतन कदांग नहीं होता। मिद्वयसे बेल काल प्राधि करता है । दूसरा विपुलमति मनः परवेबासा है सो अरति दाती है । इसमें निरुद्ध परिवर्तनो, घटजारी वा गुरुना हा सो प्रतिपत्ती करालता है जिसके विरुद्ध माये के गुणना न हो उसका अरतिदाती कहते हैं । आरुर्मति मना परय वाल ती निरुद्ध है क्योंकि प्रतिपत्ती कमके स्वयंउमसे निर ल गता है । घटुटि बिदुलमति मनः परय वाल निरुद्धता है । क्योंकि मनः गर्वय बागापरत्तीय कमके कर्वापरामसे प्रतिपत्तीकति निमल प्रका है ।

विशुद्धिश्च अप्रतिपातश्च विशुद्ध्यप्रतिपातौ ताम्याम् । तयोर्विशेषस्तद्विशेषः ॥

विशुद्धिः ॥ च० अप्रतिपातः १। च विशुद्धि-अप्रतिपातौ ॥ =द्विर विशुद्धि और अप्रतिपात (मिलकर) विशुद्ध्यप्रतिपातौ (ऐसा वाक्य) हुआ ताम्याम् ॥ (विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् १)।
 =ताम्याम् (ओरकर) विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् (यह वाक्य) हुआ
 =तयोः (तिसमें) विशेष सो तद्विशेष है । यह व्युत्पत्ति इस “ विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् तद्विशेषः ” सब सूझती हुई ॥ जिसका अर्थ ऐसे है कि तज्जलदा सबा न व्युत्पत्ति होना सिन दो हेतुबोले सिन (कञ्जमसिन्तः पर्ययज्ञान, विपुल भवितव्यः पर्ययज्ञान)में विशेष अबबा येद है ।

(१) प्रत्येक कञ्जविपुलमती मय पर्यय ॥ इस सूत्रमें दो कञ्जमतिमनः पर्ययज्ञान तथा विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानमें अंतर या भेद है सा स्पष्ट है फिर विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्याम्विशेषः इस सूत्रका क्यों आरंभ किया गया है (उत्तर) ईदस्तां सूत्रमें जो कञ्जमतिमनः पर्ययज्ञान और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानका आपसमें विशेष बलन या मया है यह साधारण है ॥ सर्वमनुध्याका वस्तु संतोष नहीं हो मन्त्र है इसलिये विशेष रूपसे इन दोनों भागोंमें भेद-अंतर स्तकाने के लिये यह सूत्र कहा है ।

(२) प्रत्येक मतिमनः पर्ययज्ञानके कञ्जमति और विपुलमति भेद है उत्तरी भाति इनके ही विशुद्धि और अप्रतिपात भी भेद है। यदि यही अतिभाव है तब तो इस सूत्रमें च शब्दका प्रयोग इतना चाहिये ॥ (उत्तर) च शब्दका उल्लेख नहीं करता चाहिये क्योंकि जिन प्रकार मन्त्र पर्ययज्ञान कञ्जमति और विपुलमति भेद है उसी प्रकार यदि विशुद्धि और अप्रतिपात भी मन्त्र पर्ययज्ञानके भेद होते तब तो सूत्रमें च शब्द कहना सुष्ठु होता । सा तो है नहीं किन्तु ये (विशुद्धि और अप्रतिपात) कञ्जमति और विपुलमति के समान भेद नहीं हैं बल्कि विशुद्धि और अप्रतिपात ये दोन कञ्जमति विपुल मति का स्वरूप विशेष है । जिससे च शब्दका अप्रयोग है ॥ सारांश इन दोनों कञ्जमति और विपुलमति मन्त्र पर्ययज्ञानोंमें कञ्जमति विपुल है और विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान कञ्जमति की अपेक्षासे प्रथम क्षेत्र काज मान के विशेष जाननेकर विशुद्धि और अप्रतिपात विशेष है । कञ्जमति प्रतिपातों है विपुलमति अप्रतिपातों है इसलिये स्वरूप विशेष होने से च शब्द सूत्रमें नहीं जाये है ॥

प्रदानिवाप्ती अगस्त्यसहाय कबीलछत्र पदच्छेद और विमलस्यै सहित सर्वाभिधिद्विका शृङ्खला । अथाप्य १ धृत् २४

तत्र विशुद्ध्या तावत्--श्रुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावोर्विशुद्धतर । कथमिह ? य कार्मणद्रव्यान त भागोऽस्य सर्वाधिना द्वातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्यो भाग श्रुमतेर्विषय । तस्य श्रुमतिविषयस्या नन्तभागीकृतस्यान्यो भागो विपुलमतेर्विषय । अनन्तस्यानन्तभेदत्वात् ॥ द्रव्यक्षेत्रकालो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र श्रुद्ध्या ॥ तावत् श्रुमतेः १,

विपुलमतिः १, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावः १,

विशुद्धतर १, कथम् १ इह १

य १, कार्मणद्रव्य अनन्तभाग १, अन्त्या १,

सर्वाधिना १ द्वात १, तस्य १, पुनः १

अनन्तभागीकृतस्य १, अन्त्या १, भाग १,

श्रुमते १, विषयः १,

तस्य १, श्रुमतिविषयस्य १, अनन्तभागीकृतस्य १,

अन्त्या १, भाग १, विपुलमते १, विषयः १,

अनन्तस्य १, अनन्त-भेदत्वात् १,

द्रव्य-क्षेत्र-कालः १, विशुद्धिरुक्ता १,

=उक्तो विशुद्धताकरि तौ (=वाचत) श्रुमति मनः पर्यय ज्ञानसे

=विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (के विशेषे ज्ञानने) करि

=अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतर) यह (=ह) कैसे (=कथम्) ?

=जो कार्माण द्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनन्तर्वा भाग

=सर्वाभिधान द्वारा जाना गया है तिरु (अतिम अनन्तवा भाग) के फिर (=पुनः)

=अनन्त भाग किये जायें (तौ यह) अंतिम भाग वा अन्त का अंश (=अन्त्य भाग)

=श्रुमतिमन पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कार्माण द्रव्य के अनन्तवे भागके

अनन्तवे भाग रूपी द्रव्य को श्रुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है

=तिस श्रुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जायें (तौ यह)

=उक्त का वा अंतिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् न्ति अनन्तवे

भागको श्रुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनन्तर्वा भाग जो कि

दूर व्यवस्थित (=किसा हुआ) और धृत्न है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है

=अर्थात् अनन्त की (गिनती वा गणना के) अन्त येद होते हैं

(अतः अनन्त में और अनन्त के अनन्तवे भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)

=द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उन्वयलता करी गई अर्थात् द्रव्यकी

अपेक्षासे तो विशुद्धता यहाँ करी; क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये देखो पृष्ठ ५२, ५५, ५५

भावतो विशुद्धिं सूक्ष्मतरुण्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृतक्षयोपशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपत्तेनापि विपुलमतिर्विशिष्टः । स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्रोदयत्वात् ॥ श्रुजुमति पुन प्रतिपत्ती, स्वामिना कपायोटिका द्विग्यमानचारित्रोदयत्वात् ॥

यद्यस्य मन पर्ययस्य प्रत्यात्ममयं विषयः, अथानयोरवधिमन पर्यययोः कृता विपेश इत्यत आह -

भाक्ताः *
विशुद्धिः ॥ सूक्ष्मतरु
द्रव्य नियत्वात् ॥ एव वेदितव्या ॥
प्रकृत
क्षयोपशम-विशुद्धि-योगात् ॥
अप्रतिपत्तेन , अपि *
विपुलमतिः ॥ विशुद्धिः ॥ स्वामिनाम् ॥

प्रवर्द्धमान-चारित्र उदयत्वात् ॥

पुन * श्रुजुमतिः ॥ प्रतिपत्ती ॥

स्वामिनाम् ॥

क्षाय-उद्रेकात् ॥ श्रियमानचारित्र उदयत्वात् ॥

यदि * अस्य ॥ मन पर्ययस्य ॥ प्रत्यात्मम् ॥ अप्य

विशेन , अप * अनयो ॥ अवधिमान पर्ययोः ॥

कृत * विशेष ॥ इति अतः * आर ॥

=भाष (की अपेक्षा) से (श्रुजुमतिमन् पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानमे)

=(परिणामों की) उज्ज्वलता वा विशुद्धता अधिक द्रव्य (सूक्ष्मतरु)

=द्रव्यके ज्ञानपनेसे ही ज्ञानता योग्य है

=क्योंकि (श्रुजुमतिमन्ः पर्ययज्ञान से विपुलमति मनः पर्ययज्ञान में) उत्कृष्ट

=(मन् पर्ययज्ञानावरणीय क्लेशके) क्षयोपशमकी उज्ज्वलताका प्रसंग है अर्थात् विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान अत्यन्त द्रव्य रूपी पर्यायोंका विषय करनाही भाषको अपेक्षा विशुद्धि है ॥

=(सयपम्की) घट घरी न होने की अपेक्षा से भी (श्रुजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे)

=विपुलम् ठमना पर्ययज्ञान विशेष्यपुक्त वा अष्ट है क्योंकि (इसके) स्वामियों के

अर्थात् विपुलमतिमन् पर्ययज्ञाननियोजिक वा विपुल मतिज्ञान धारकोंके

=अष्टद्वये चारित्र का उदय होताहै (संयम बढ़ताहै) जाताहै जबतककेवली न हो)

=और (=पुन) श्रुजुमतिमन्ः पर्ययज्ञान प्रतिपत्ती है अर्थात् चारित्र घटती जाताहै

=क्योंकि (=इसके) अवधितियों के अर्थात् श्रुजुमतिमन्ः पर्ययज्ञाननियोजिक

=क्षयायकी उत्कृष्टतासे हीममान (घटते हुए) चारित्रका उदय होता है

=जो इस मन पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह

=विशेष है तो अब (अथ) इतदनेओं अवधिज्ञान और मन पर्ययज्ञानों में

=क्योंकर भेदहै ऐसा (प्रसन्न होने पर) इसलिये (आचार्य कहते हैं कि

पठानिवासी अगस्त्यराय कबीलकृत पञ्चदे और विमर्शपर्यन्त संहित स्वार्थसिद्धिका शब्दशः । इदं अनुवाद । अगस्त्य १ पृष्ठ २४

तत्र विशुद्ध्या तावत्—श्रुमतेर्विपुलमतिर्द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्विशुद्धतर । क्यामिह ? य कामणद्रव्यान त भागोऽन्य सर्ववाधिना द्वातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्यो भाग श्रुमतेर्विषय । तस्य श्रुमतिविषयस्या नन्तभागीकृतस्यान्यो भागो विपुलमतेर्विषय । अनन्तस्यानन्तभेदत्वात् ॥ द्रव्यक्षेत्रकालतो विशुद्धिरुक्ता ।

तत्र श्रुद्ध्या ॥ तावत् श्रुमते १,

विपुलमति १, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावै १,

विपुद्धतर १, कथम् १ इह १

य १, कामणद्रव्य अनन्तभाग १, अन्यः १,

सर्ववाधिना १ द्वात १, तस्य १, पुनः १

अनन्तभागीकृतस्य १, अन्यः १, भागः १,

श्रुमते १, विषय १ ॥

तस्य १, श्रुमतिविषयस्य १, अनन्तभागीकृतस्य १,

अन्यः १, भागः १, विपुलमते १, विषयः १,

अनन्तस्य १, अनन्त-भेदत्वात् १ ॥

द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावै विशुद्धिरुक्ता १ ॥

=वहाँ विशुद्धलाकरि लौ (=वायव्य) श्रुमति मनः पर्यय ज्ञानसे

=विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञान द्रव्य, क्षेत्र, काल, माय (के विशेष जानने) करि

=अधिक वा अतिशय विशुद्ध है (=विशुद्धतरः) यह (=ह) कैसे (=कथम्) ?

=ओ कामणद्रव्य के अन्तिम (=अन्त्य) अनन्तवा भाग

=सर्वविद्विमान द्वारा जाना गया है तितु (अन्तिम अनन्तवा भाग) के फिर (=पुनः)

=अनन्त भाग किये जायें (लौ यह) अन्तिम भाग वा अनन्त का अंश (=अन्त्यः भागः)

=श्रुमतिमनः पर्यय ज्ञान का विषय है अर्थात् कामण द्रव्य के अनन्तवै भागके

अनन्तवै भाग रूपी द्रव्य को श्रुमति मनः पर्यय ज्ञान वाला जानता है

=तिस श्रुमतिमनः पर्यय ज्ञान के विषय के अनन्त भाग किये जायें (लौ यह)

=अंत का वा अन्तिम भाग विपुलमति मनः पर्यय ज्ञानका विषय है अर्थात् तिस अनन्तवै

भागको श्रुमति मनः पर्यय ज्ञानने विषय किया है उसका भी अनन्तवा भाग जो कि

इस व्यवस्थित (=विनियमित) और वस्तु है विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय है

=अर्थात् अनन्त की (गिनती या गणना के) अनन्त भेद होते हैं

(वतः अनन्त में और अनन्त के अन्तर्गते भाग में अनन्त का भाग फिर फिर कहा है)

=द्रव्य, क्षेत्र, काल (की अपेक्षा) से विशुद्धता वा उन्नतता कही गई अर्थात् द्रव्यकी

अपेक्षासे जो विशुद्धता यहाँ कही, क्षेत्र और कालकी अपेक्षाके लिये वे लो पृष्ठ ५३, ५४, ५५

प्राप्तनिवासी उत्तमपदमहाय पदोत्कृष्ट पदोत्कृष्ट और निरक्षर्य सारित सर्वाधिकारिका दायद्वारा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ २४

भावतो विशुद्धि सूक्ष्मतरङ्गव्यविषयत्वादेव वेदितव्या, प्रकृष्टक्षयोगशमविशुद्धियोगात् ॥ अप्रतिपातेनापि विपुलमतीर्षिणी ॥ स्वामिना प्रवर्द्धमानचारित्र्योदयत्वात् ॥ श्रुजुमति पुन प्रतिपाटी, स्वामिना कयायोटिका द्वायमानचारित्र्योदयत्वात् ॥

यद्यस्य मन पर्ययस्य प्रत्यात्ममय विषय, अधानयोरवधिमन पर्ययो' कुतो विपेश इत्यत आह -

भावः * (परिषामो की) उज्ज्वलता वा विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतर)

विशुद्धिः ॥ सूक्ष्मतर

द्रव्य विषयत्वात् ॥ एव वेदितव्या ॥

प्रकृष्ट-

क्षयोगशम विपुलमति-योगात् ॥

अप्रतिपातेन ; अपि *

विपुलमति' ॥ विद्विष्ट' ॥ स्वामिनाम् ॥

प्रवर्द्धमान-चारित्र्य उदयत्वात् ॥

पुनः * श्रुजुमतिः ॥ प्रतिपाटी ॥

स्वामिनाम् ॥

कयाय-उद्रेकात् ॥ दीयमानचारित्र्य उदयत्वात् ॥

यदि * अस्य ॥ मन पर्ययस्य ॥ प्रत्यात्मम् ॥ अयम्

विशेष ॥ अय * अनया ॥ अधिमान पर्ययो ॥

स्व * विविष्ट' ॥ इति * अतः * आह ॥

=भाव (की अपेक्षा) से (श्रुजुमतिमनः पर्ययज्ञानसे विपुलमति मनः पर्ययज्ञानसे)

=(परिषामो की) उज्ज्वलता वा विशुद्धता अधिक सूक्ष्म (सूक्ष्मतर)

=द्रव्यके ज्ञानमनेसे ही जानना योग्य है

=स्वोक्ति (श्रुजुमतिमन' पर्ययज्ञान से विपुलमति मन पर्ययज्ञान में) उत्कृष्ट

=(मन पर्ययज्ञानावरणीय कसके) क्षयोपशमकी सज्ज्वलताका प्रसंग है अर्थात् विपुलमति मनः पर्यय ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म द्रव्यको विषय करता है इसलिये

उसका अत्यन्त सूक्ष्म रूपी पदार्थोंका विषय करनाही भावकी अपेक्षा विद्विष्टि है ॥

=(संशयकी) बट घारी न होने की अपेक्षा से भी (श्रुजुमति मनः पर्यय ज्ञानसे)

=विपुलमतिमनः पर्ययज्ञान विस्तेषुक्त वा श्रुष्ट है स्वोक्ति (इसके) स्वामिनों के

अर्थात् विपुलमतिमनः पर्ययज्ञानियोजि वा विपुल मतिज्ञान धारकों के

=धर्मेधुरे चारित्र्य का उदय होता है (संयम बढ़ता है) जाता है खलक केवली न हो)

=और (पुनः) श्रुजुमतिमनः पर्ययज्ञान प्रतिपाटी है अर्थात् चारित्र्य छुटती जाता है

=स्वोक्ति (=इसके) अक्षितियों के अर्थात् श्रुजुमतिमन' पर्ययज्ञानियोजि के

=कयायकी उत्कर्षासे दीयमान (पढते हुए) चारित्र्यका उदय होता है

=जो इस मनः पर्यय ज्ञानका अपना स्वरूप प्रति (प्रति-आत्मम्) यह

=विशेष है जो अब (अय) इनकेनों अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञानों में

=स्वोक्ति मेव है ऐसा (प्रश्न होने पर) इसलिये (आचार्य) कहते हैं कि

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः ॥ सूत्र २५ ॥

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः २५

=विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनः पर्यययोः (विशेष. भवति)

=विशुद्धता उत्पत्त्या वा निर्मलता, जहाँ तकके विद्यमान पदार्थोंके ज्ञानका होना

स्वामिन् विषयेभ्यः । =स्वामी वा झानोका प्रयोग करने वाला और जेय वस्तुओंके हेतुसे अर्थात् इन चारोंकी अपेक्षासे वा विलक्षणतासे

अवधिमनपर्ययो १ =अवधिज्ञान और मन पर्यय ज्ञानोंमें

निर्णयः । भवति १

=विशुद्धता उत्पत्त्या वा निर्मलता, जहाँ तकके विद्यमान पदार्थोंके ज्ञानका होना

(जितने रूपी पदार्थोंको अवधिज्ञान वाला जानता है उनको मन पर्ययज्ञानी मनोगत होने पर भी अविकर शुद्धता से जान लेता है अवधिज्ञानीसे मन पर्ययज्ञानीके परित्यागोंमें अधिकतर विद्युद्बला है) ॥

() अवधिज्ञानसे मन पर्ययज्ञान बोटे क्षेत्रबाला है । अवधिज्ञानके उत्पत्तिके क्षेत्र प्रसन्नताली पर्यंत है और विषयका क्षेत्र एवं लोक है । मनः पर्ययज्ञान मनुष्य लोकमेंही उत्पन्न होता है और मनुष्य लोकका विच्छिन्न पैतालीस लाख योजन चौड़ा और पैतालीस लाख योजन लम्बा समान चौकोर घनरूप प्रसर क्षेत्र (यहाँ ऊँचाई बाढी है इससे घन प्रसर बड़ा है) इसका विषय है क्योंकि धानयोचर पर्वतके बाहिर चारों कोनों में विद्युत् वैद्य और विषय द्वारा चितित और स्थित पदार्थोंको भी विपुल भवि मनः पर्यय ज्ञान जानता है ॥

() अवधिज्ञानसे मन पर्ययज्ञानके स्वामी वा धानोके प्रयोग करने वाले बोटे हैं संख्यामें न्यून हैं क्योंकि अवधिज्ञान चारों गतिके सैनी ध्वेन्द्रिय जीवोंके होता है और मनः पर्ययज्ञान गर्भव मनुष्य फर्मधूमिके पर्यामिनिकेरी प्रमच छठवें गुणस्थानसे धूमिकपाय चारहवाँ गुणस्थान तक उपलब्ध है इसादि देखो पृष्ठ ४६४ से ४६६ तक ॥

(1) इस सूत्र पर हमारे यहाँ २-येय तक पाठ है ॥ इसतावत् आस्र यमें मनः पर्यय' दुःखक रूप जमें 'मनापर्यय' है क्षण पाठ बालो संप्रदायोंमें एक है । मना पर्यय और मनःपर्यय दोनों पदार्थवाची हैं । यमारी समझमें मन पर्यय सिद्धता टीक है क्योंकि सूक्ष्मता पाठ छद्म वाच्यता है ॥ यानी मनुष्यवाच्य, मैं इस सूत्र पर मध्य मो एकपद है ॥ दशतान्तर अक्षयमें 'लेखिषाऽयमि' २१ सूत्रके अधिक होमेश इस सूत्र में गुणनः १६सी है हमारे यहाँ पर्ययवाची है ॥

एटानिवासी धारारूपसहाय शरीरकृत पदच्छेद और दिग्गतरणें साधित सर्वावसिद्धिका शब्दका अर्थ है। अर्थात् १ धृत्र २५ विशुद्धि प्रसाद । क्षेत्र यत्नस्थान्मावाग्रातिपद्यते । स्वामी प्रयोक्ता । विषयो ज्ञेयः ॥ तत्रावेध

(१) अवधिमानसे मनः परम ज्ञानका विषय प्राप्त है । कार्यार्ण द्रव्य के जिस अंतिम अंततत्वे भागको सर्वावधि ज्ञानने विषय कर रक्खा है उस अनतत्वे भागका भी अंतत्वा भाग श्रक्षुभतिमनः परम ज्ञानका विषय है और जिस अनतत्वे भागको श्रक्षुभतिमनः परमज्ञानने विषय किया है उसका भी अंतत्वा भाग जोकि इर व्यवहित और प्राप्त है वह विपुलमतिमनः परमज्ञानका विषय है (वेबो इतर ७, २८) क्योंकि अंतत्वे अन्तमेव माने हैं ॥

पदच्छेद और विभक्त्यर्थे साधित पञ्चासवां सूत्रपर संस्कृत सर्वायमिद्धि वृत्तिका शब्दश अनुवाद
विशुद्धि १५ प्रसाद १॥ यत्र ४
= उन्वलेखा, निमलेखा है वह विशुद्धि वा प्रसाद है ॥ वेबो व १॥ वहां तक
स्वान् १॥ भावान् । प्रतिपद्यते १
= विशुद्धि परमात्मिकों वा रूपी पदार्थों को प्राप्त होता है अथवा जानता है
प्रयोक्ता १॥ स्वामी १॥ विषयः १॥ इतर १॥ तत्र अवका १॥ (ज्ञानिक) ज्योग करनेवाला स्वामी है ॥ ज्ञयवस्तु तो विषय है । वहां अवधि ज्ञानसे

[१] प्रत्यक्ष-शब्दों में मनः परम ज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य स्वरूपा गता है और मनः परम ज्ञानका विषय ज्ञान द्रव्य कहाँ है क्योंकि सर्वावधिके विषयमूल कर्मावस्थ का अंतत्वा भाग मनः परम ज्ञानका द्रव्य वा विषय है (सुतर ८) और यह बात प्रसिद्ध है कि जिसका विषय अधिक द्रव्य होता है वह अधिक विशुद्ध और जिसका विषय मूल वा अल्प द्रव्य होता है वह अल्प विशुद्ध कहा जाता है अतः अधिक द्रव्यको विषय करने के हेतु मनः परमज्ञान की अपेक्षासे अवधिज्ञान अधिक विशुद्ध है और अल्प द्रव्यको विषय करनेके कारण मनः परम ज्ञान अल्प विशुद्ध है ॥ (उतर ८) संसारमें एक मनुष्य तो येना है जो समस्त शब्दोंका व्याख्यान तो करता है परन्तु इनका एक वेद शब्दसेही व्याख्यान करता है, कहाँ क्या लिखा है, किन्तु रूपसे लिखा है इन प्रकार समस्त रूपसे उनके अर्थका व्याख्यान नहीं करसकता-वेदशब्द कहलें ज्ञानमय है । परम मनुष्य येना है कि केवल पक्षी शब्दका व्याख्यान करता है परन्तु प्रत्येक अर्थ को मिला मिला शब्दों कर समस्त रूपसे अर्थ के व्याख्यान करता है । इन दोनों प्रकारके मनुष्योंमें पीछे का मनुष्य विद्वान् विशुद्ध ज्ञान का भारक समझा जाता है उसी प्रकार पद्यपि मनः परम ज्ञानकी अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय अधिक द्रव्य है परन्तु यह उसे एक वेद शब्द रूपसे जानता है और मनः परम ज्ञानका विषय अवधिज्ञान के विषय का अंतत्वा भाग है तो भी वह बहुत से रूप आदि पदार्थों के साथ समस्त रूपसे जानता है इसलिये अवधिज्ञान की अपेक्षा मनः परमज्ञान हो अधिक विशुद्ध है ॥

एटानिवासी बगरूपसहाय परकीलछत्र प्रच्छेद और विगन्तत्वर्य सहित स्वार्थेतिद्विका छन्दः। हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २५,
मनःपर्ययो विशुद्धतर । कुतः । सूक्ष्मविषयत्वात् ॥ क्षेत्रमुक्त विशेषो वक्ष्यते ॥ स्वामित्व प्रत्युच्यते ।

मना पर्ययः ॥ विशुद्धतरः ॥ कुतः ॥

सूक्ष्म विषयत्वात् ॥

क्षेत्रम् ॥ उक्तम् ॥

=मनः पर्ययज्ञान अधिष्ठय वा अधिकतर विशुद्ध है । क्योंकि (विशुद्धतर है)

=क्योंकि (मनाः पर्ययज्ञानका अवधिज्ञानसे) विषय वा ज्ञानपना सूक्ष्म है

=क्षेत्र (अवधिज्ञान और मनाः पर्ययज्ञानका) (परिछे) कहा गया है अर्थात्

श्रद्धामतिमनः पर्ययज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे अव्यक्तपरि सीमसे ऊपर

नौ से नीचे क्षेत्र है । उत्कृष्टकरि सीमसे ऊपर नौसे नीचे (=दृढस्त्व) योक्तके भीतर है न कि बाहिर ।

(विपुलमतिमनः पर्यय ज्ञानका विषय) क्षेत्र (की अपेक्षा) से अव्यक्तपरि सीमसे ऊपर नवसे न्यून (=दृढस्त्व)

योजन प्रमाण है । उत्कृष्टकरि (विपुलमति मनाः पर्यय ज्ञानका विषय क्षेत्रकी अपेक्षासे) मानयोग्य

पर्वतके भीतर भीतर है न कि बाहिर (देखो पृष्ठ ४५४-४५५-टिप्पणी (१) पृष्ठ ४५५की अवश्य देखो)

यहुरि "अवधिज्ञानके उत्तमिका क्षेत्र असनाली पर्यंत है जर विषयका क्षेत्र सर्वलोक है" अर्थप्रकाशिका सूत्र २५

चातों गरियोंकी अपेक्षासे अवधिज्ञानके क्षेत्रके सन्ध्यमें (पृष्ठ ४३५, ४३६, ४३७ अवश्य देखो)

=विषय (अर्थात् अवधि मनाः पर्ययज्ञानके ज्ञानपने का मेद सूत्र २७, २८ में)

=कहा जायगा भावार्थ अवधिज्ञान और मनाः पर्ययज्ञान रूपी पदार्थों को विषय

करते हैं सर्वावधि ज्ञानके विषयसे अनंतवा भाग सूक्ष्म मनाःपर्यय ज्ञानका

विषय होता है (तदनन्तरभागे मनाःपर्ययस्य सूत्र २८) ॥

=(अवधिज्ञान और मनाःपर्ययज्ञानमें) स्वामीपन वा अधिपतिपन (का मेद)

=कहा जाता है ।

विषयः ॥

वस्तुपदे

स्वामित्वम् ॥

प्रत्युच्यते

प्रकृतचारित्रगुणोपेतेषु वर्ततेऽयमक्षादिक्षीणकथायान्तेषु । तत्र चोत्पद्यमान प्रवर्द्धमानचारित्रेषु न हीयमानचारित्रेषु ।

प्रकृत-चारित्रगुण-उपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

तत्र च च उक्त्यमानाः ।

प्रवर्द्धमान-चारित्रेषु । न च क्षीयमान-चारित्रेषु ।

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

=उत्पद्यमान-चारित्रगुणोपेतेषु ॥ प्रमत्त-आदि

=क्षीणकथाय-अन्तेषु ॥ कथं च

(१) अवधिज्ञान और मनः पर्यवधानके स्वाश्रितके अन्तर विभागमें यह श्रेष्ठ छिन्न है कि अवधिज्ञानका स्वाामी अपर्णात अवस्था बाका जीव इच्छा है परन्तु अपर्णात अवस्था बाका जीव मनः पर्यवधानका स्वाामी नहीं होता वह अपर्णात जीवके अवधिज्ञान अपर्णात अवस्थामें हो सत्य है मनःपर्यवधान नहीं होता वह (स्वाभावसे अवधिज्ञानके देशावधि परमावधि सर्वावधि तीन श्रेष्ठ होते हैं । मन्त्रस्य अवधि निवृत्तये देशावधि ही होता है । और वर्तमानविद्युति भाति शुष्कोके निमित्त हो मनः बाका गुणप्रत्यय अवधिज्ञान देशावधि परमावधि सर्वावधि परसे तीनो प्रकारका होता है । कथं देशावधिज्ञान सत्य तथा असत्य दोनोंही प्रकारके मनुष्य तथा शिर्योके होता है । उक्त देशावधिज्ञान सत्य अवधि ही होता है किन्तु परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी और महात्मनीकी होता है । देशावधिज्ञान प्रतिपत्ती होता है (स्वभावसे व्युत्पन्न होकर मिथ्या और असत्यकी प्राप्ति) और परमावधि तथा सर्वावधि अतिप्राप्ती होते हैं । देशावधि परमावधिक अवस्थ मध्यम उक्त श्रेष्ठ संभव है किन्तु सर्वावधिज्ञानमें अथवा मध्यम उक्त श्रेष्ठ नहीं है - यह निर्विकल्प है ।

"मनुष्यमी अवधिज्ञान अपर्णात अवस्थामें व्यक्तिकथे रहता है जैसेकि तीर्थयात्राके पूर्व मुक्तमान अथ समर्थमें भी होता है । किन्तु मध्य श्रेष्ठकी सामग्रीके न मिलनेसे अपर्णात अवस्थामें स्फूर्ति अन्य होती है अविभाग प्रतिक्रिये भी व्युत्पन्न होती है अथवा समर्थमें कम होते हैं उक्त समर्थमें देव मापकियों के अपर्णात अवस्थामें भी अवधिज्ञान होता है और यह श्रेष्ठ है" शिष्टप्रश्न यं० मापकिकथे गोरेखा से प्राप्त ।

पटानिवासी अगुरुपसहाय फोसकृत पण्डित और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का मुख्यः हिंदी अनुवाद । अग्राय १ सत्र २५,
प्रवर्द्धमानचारित्र्येषु चोत्पद्यमान समविधान्यतमद्विप्राशेषज्ञायते नेतरेषु । श्रद्धिप्राप्त्यु केषुचिन्न सर्वेष्विति ॥

प्रथदमानेचारित्रपुः । च० उत्पद्यमानः ।

सप्तविध-अन्यतम-श्रुति

प्राप्तः । उपजायते न न इत्येव ।

अदि-आसु ४। वैयुचित न न संयु ५। ति ६

व्याप्ये हुये चारित्र (वास्ये) निम्न शी उपपन्न (मनः पर्ययमान)

बस प्रकारकी (वविध) श्रुतिर्योग से कोई एक (=अन्यतम श्रुति)

= प्राप्त होने (वाली) में उपलब्ध है न कि अन्यथा (= सिद्धांत प्राप्त वाली)

॥ अक्षरप्राप्तं चालोमि केँकिनि म (मनः पयपञ्चान) शेय नकि सखेम ॥

(१) अन्तर्गन्धि = अन्तर्गन्ध + गन्धि । प्रेक्षो दिव्यणी (१) ग्रम ७५७ (३) उपजायते — इस शब्दमें 'अन्' काल्पनिक विधानि गणना अर्थात् अन्तर्गन्ध परी घातने धनुष्यागच्छ 'अ' विह्वल्य (अर्थात् वह अन्तर है जो रूप बनाने से प्रथम घातमें जोड़ा जाता) है । 'अन्' का बिना किसी निमित्तके स्थिति बनानेमें 'अ' होना है इस आ में य लगातेसे 'अन्' होता है । पञ्चाक्ष एक वचन कल्पपुरुष आत्मनोपरी वतमान कालका घोलक है । प्रत्यय लगातेसे आपने बन जाता है अथ 'होता है' येसादि (विध सप्तकृत कोश पृष्ठ २८३) 'अन्' उपस्थानके ओङ्कार से 'अन्तर्गन्ध' (= उपजायते) बनता है । मराठ्ठ रहे कि 'अन्' धातुके अन्ते, आपने दो रूप कमवि प्रयोगमें बनते हैं । ऐलैकि अन् आ म कमवि प्रयोगका 'अ' ओङ्कार से और पञ्चाक्ष ७५७, ते आत्मनोपरी एक वचन वतमानकाल कल्प पुरुषका प्रत्यय कालात् आ + य + ते = आपत्त अन् + य + ते = अन्तर्गन्ध बनता है । अथ उपलब्ध किया जाता है येसा है ।

(१) ऊर्जा पर विरिद्ध या प्रत्यक्षमान संयोग होना यहाँ भक्त: परमप्राप्त होना अभ्यस्त नहीं । एकही विरोध व्याख्या इस प्रकार है कि भक्त: परम प्राप्त होने पर मनुष्योन्निही हो जाती है देव भावकी और विषयोंमें नहीं होती । मनुष्योन्निही भी गमन मनुष्योन्निही होती है मनुष्योन्निही मनुष्योन्निही ।

(पञ्चवर्तिक पृष्ठ ५९)

गमत्र मनुष्यांस्त्री मी कम मुमिके मनुष्योके ही होती है लोगसुमिके मनुष्योंमें नहीं हो सकती । कम मुमिके मनुष्योंमें भी छोटी परांगति पुत्र होने से जो परमात्म है उन्हींके होती है अपर्याप्तकों के नहीं । परांगतियोंमें मी सम्पन्नत्वियोंके ही वह बल्य होताहै, मिथ्याहृदि साक्षात्तनसम्पन्नहि सम्पन्न-हृदिग्राहहि गुणरक्षणवर्तियों के नहीं । सम्पन्नत्वियों में मी जो मनुष्य सखी है उन्हीं के होता है असंगत सम्पन्नहि चतुर्थ गुणस्यानवर्तियों और सप्तमासंगत तृतीय गुणस्यानवर्तियोंके नहीं । संयमितो में मी छोटे गुणस्यान प्रपत्तसे बाधुन हीनकृपा गुणस्यान पर्यंत सप्तमियोंके हो होता है । बाधुन गुणस्यानके आगेके गुणस्यानोंमें रहने बाध संयमितो के नहीं । छोटे गुणस्यान से बाधुन गुणस्यानतक होमिपरमी भिनका चारित्र-कृत्योंको रितो रिण मकृतसे रितोंदिन बर्षमात्र है उन्हींके होता है किन्तु कृत्योंकी वलकृत्यासे भिनका चारित्रि दीयमान है संघ होता कथा जाता है ।

पट्टाभिवासां वंगारुणसहाय कर्कसंख्य पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाधिसिद्धिका उपस्थाः द्विती बन्धुवादि । अध्याय १ सूत्र २५

अस्य स्वामिविशेषविशिष्टसंयमग्रहणं वाक्ये कृतम् ॥

अस्य ॥ स्वामिविशेष-विशिष्टसंयम-

=स (मनः पर्यय) के (अवधि से) स्वामि के यदर्थे विशिष्ट संयम (=विलक्षण चारित्र्य) का

ग्रहणं ॥ वाक्ये ॥ कृतम् ॥

=ग्रहण वाक्य ('ग्रहणचारित्र्यगुणोपेयेषु वर्तते' इस वाक्य) में किया है (नकि सूत्रमें)

प्रार्थार्थ मनाः पर्ययग्रहण की उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रचलन हेतु है

उनके नहीं होख । प्रवर्तमान चारित्र्यवस्तुओं में भी मात्र प्रकाशकी (बुद्धि-व्यव-वैकिकिक-जीव-व्यव-व्यव-व्यव) की बृद्धिकोति किमते कोने एक बृद्धि होती उपस्थित होता है किन्तु किमते कोने प्रकाशकी बृद्धि नहीं है उनके नहीं होता है । तथा क्वचि चारक पुस्तकों में भी किमती किमति होता है तबोके नहीं होता । इस प्रकार मनाः पर्यय ग्रहणकी उत्पत्तिमें विशिष्ट संयमका ग्रहण प्रचलन कारण बतलाया है । परंतु अवधिग्रहण देव मनुष्य विविध और नारकी चारों गतिव्योके जीवोंके होता है इस कारणसे अवधि और मनाः पर्ययके स्वाभिव्योका येद्व होलेवे भी दोनों ज्ञानोंमें येद्व है ॥

(१) अस्वार्थ स्वामिविशेष विशिष्ट संयमग्रहणं वा प्रकृत्य ॥ इत्येकः पाठः ॥ अस्वार्थ स्वामिविशेषा विशिष्ट संयमग्रहणं वा कृत न सृष्टे ॥ इत्येकः पाठः पुस्तकान्तरे विद्यते ॥

अस्य ॥ अग्र ॥ स्वामी विशेष ॥ विशिष्ट ॥ वा संयम - इस (मनः पर्ययग्रहण) के यह स्वामीका विशेष अथवा विशिष्ट संयमका

ग्रहणं ॥ प्रकृत्य ॥

प्रतिष्ठा एक ॥ पाठः ॥ अस्य ॥ स्वामिविशेषः ॥

वाक्य विशिष्ट संयमग्रहणं ॥ कृत्य ॥ न कृत्य ॥

इतिप्रतिष्ठा अथः ॥ पाठः ॥ पुस्तक-अन्तरे विद्यते ॥

एन तीनों वाक्योंके द्विती अनुवादे प्रसन्न है कि संस्कृतके अन्तरे वाक्य और टिप्पणीके दो वाक्योंका आशय एकसा है ॥ अस्वार्थ-विशेष रूप संयम गुणकरि एकद्व संयमवासी मनाः पर्यय ग्रहण दे अर्थान् मतपर्ययग्रहणका अधिनाभाव विशिष्ट संयम गुणके साथ है । इसको वृत्ति 'विशिष्ट संयमग्रहणं वाक्ये कृत्य' का अर्थ पञ्चाक्षर हुनी है अर्था विशिष्ट संयम हो वहाँ ही मनाः पर्ययग्रहण प्रवर्तते है (अग्र ॥ नहीं) ॥ इसी वृत्तिमें 'विशिष्ट संयमग्रहणं वाक्ये कृत्य' का अर्थ पञ्चाक्षर हुनी चीने "वाते विशिष्ट संयम पदका ग्रहण वाक्यमें है" यहाँ वाक्य का अर्थ वातिकर्म है अथवा 'वृत्तिमें है' होगा क्योंकि विशिष्टसंयम पद वृत्ति वातिकर्त्तव्य ज्ञानोंमें आया है विशिष्टसंयम, प्रकृत्य चारित्र्य, विशिष्टसंयम वा विशिष्ट चारित्र्य एकद्वेवाची है ॥ हमारी समझमें जैसा अर्थ आया वही किमता

पदानिवासी अग्राह्यसहाय यथोक्तलृत् पश्च्छेद और विषयस्वर्य सहित सर्वार्थसिद्धिका श्रद्धाः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २५,
प्रवर्द्धमानचारित्र्येषु चोत्पद्यमान ससविधान्यतमर्द्धिप्राप्तेषूपजायते नेतरेषु । श्रद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वोच्चिति ।।

प्रवर्द्धमानचारित्र्यः १। च० उत्पद्यमान ।

ससविध-अन्यतम श्रद्धि

प्राप्तः १। उपजायतो न० इतेषु २,

श्रद्धिप्राप्तः १। केषुचित् न० संकेतः २ इति०

= वरते हुये चारित्र्य (वाले) निम्न भी उपजने वाला या उपजाऊ (ममः समयमान)

= सात प्रकारकी (=विष) श्रद्धियों से कोई एक (=अन्यतम श्रद्धि)

= प्राप्त होने (वालों) में उपजाता है नकि अन्योर्मि (= बिना श्रद्धि प्राप्त बालोर्मि)

= श्रद्धाप्राप्त बालोर्मि कैकनि म (मन) परकाष्ठान) होय नकि सक्मं ।।

(१) अन्त्यतमर्द्धि = अग्रतम + श्रद्धि । नेको डिल्ली (१) प्रप ७४ । (३) उपजायते — इस शब्दमें 'ऊर्ध्व' धनग शिवानि गणरा अ, मक
जगत्ने परी पानेरी वनपगवच्छ 'य' शिवाय (अर्थात् यह ऊपर है जो रूप बनाने से प्रथम धातुमें जोड़ा जाता) है । 'ऊर्ध्व' का बिना किसी
निमित्तके श्रद्धिके बनानेमें 'आ' होना है इस आ में य लगानेसे 'आय' होजाता है । उदाहरण एक वक्ता अत्यपूरण आत्मनेपदी इतनाम कालका धोलाक
भेः प्रत्यय प्रगतेसे आयने बनजाता है अथ 'होता है' येमादि (बिच सरकत कोण पृष्ठ २८३) 'उय' उपत्यगते ओङ्गमे से 'उपजायते' (= उपजायती)
बनता है । इसपर रहे कि 'ऊर्ध्व' धातुके अव्ययों, आयते हो रूप कमणि प्रयोगमें बनते हैं । येल्लिकि ऊर्ध्व आ म क्मावि प्रयोगका 'य' ओङ्गमे से
और पञ्चम उच्य, नि' आत्मनेपदी एक वक्ता वतमानकाल कान्य पुङ्गवका प्रत्यय अगाकर 'आ + य + ते' आयत ऊर्ध्व + य + ते = अन्यतम क्मायात हैं ।।
अथ उल्लख किया जाता है येमा है १

(१) अर्ध पर विरहित या उपद्यमान समय होगा यहाँ मनःपरकाष्ठान होगा अर्थात् नहीं । इसकी विवेध व्याख्या इस प्रकार है कि मनः परकाष्ठान
उत्पत्ति मनुष्योक्ति ही होती है देय नारकी और सियकोमि नहीं होती । मनुष्योंमें भी गर्भवत् मनुष्योक्ति ही होती है ससृज्जन्म मनुष्यों में नहीं होती ।

गमय मनुष्योंमें भी कम भूमिके मनुष्योक्ति ही होती है भोगसुखिके मनुष्योंमें नहीं हो सकती । कम भूमिके मनुष्योंमें भी छोटी पराप्ति पुण होने से
जो पराप्ति है उन्हींके होती है अपराप्तिको के नहीं । पराप्तिकोमिं भी समयवर्धियोंके ही यह बल्य होताहै, सिध्दादि सासावनसम्यक्वि सस्य-
रूपिणादि गुणरगभक्तियों के नहीं । समयवर्धियों में भी जो मनुष्य संयमी है उन्हीं के होता है ऊसयत समयवर्धि कमपु गुणस्थानवर्तियों
और सयवसयत वान्वे गुणस्थानवर्तियोंके नहीं । संयमियों में भी छोटे गुणस्थान प्रपत्ते बरहूँ धीनकयय गुणस्थान पर्यंत संयमियोंके ही होता
है । नारदके गुणरगानके आगेके गुणस्थानोंमें रहने वाले संयमियों के नहीं । छोटे गुणस्थान से नारदके गुणस्थानतक होतेपत्नी जिनका चारित्र्य
रगव्योंको दितो रिग मंयसासे दिशोदिन रूपमान है उन्हींके होता है किम्य कृत्योंकी उत्कृष्टतासे जिनका चारित्र्य हीयमान है मंद होता कहा जाता है ।

पटानिमासी अगत्सदाय बलीसूत्र पक्षेय और विषयस्य सहित सर्वांगसिद्धि का श्रवणः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ २५

अवधिः पुनश्चातुर्गतेतिष्विति स्वामिभेदायनयोर्विशेषः ॥ इदानीं केवलज्ञानलक्षणाभिधान प्राप्तकालं तदुल्लेख्य ज्ञानाना विषयनिबन्ध परीक्ष्यते ॥ कुतः । तस्य मोक्षक्षयात् ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलमिति तत्र वक्ष्यमाणत्वात् ॥ यद्येवमाद्यथोरेव तावन्मतिश्रुतयोर्विषयनिबन्ध उच्यतामित्यत आह

पुनः अवधिः । चातुर्गदिकेयुः ५ इति ॥
स्वामिभेदात् । अपिः अनयोः ॥ विरोधः ॥

इदानीं केवलज्ञानलक्षण-अभिधानः ॥ प्राप्तकालः ॥
तदुल्लेख्य + ज्ञानानां । विषयनिबन्धः । परीक्ष्यते ॥

इति ॥

तस्य ॥ मोक्ष

क्षयात् ॥ च ॥ ज्ञानदर्शन-आवरण-

अन्तराय-क्षयात् ॥ केवलम् ॥ इति ॥

अत्र ॥ वक्ष्यमाणत्वात् ॥

यदि ॥ परत्वं आययोः ॥ एव ॥ शब्दः ॥

मतिश्रुतयोः ॥ विषय निबन्धः ॥ उच्यताम् ॥ इति

अत्र ॥ आह ॥

=परंशु (=पुनः) अधिष्ठान चारों गतिबालों में है इस प्रकार
=स्वामी विशेषसे मी दोनों (अवधिज्ञान तथा मनः पर्यवधान) में भेद है अर्थात् मनः पर्यवधान तो केवल विशिष्ट संस्रम चारक मुनियों के ही होता है परंतु अवधिज्ञान वेव यजुष्य तिर्येच और नारकी चारों गतियों के बीचों के होता है इस प्रकार अवधि और मनः पर्येके स्वाभियोंका भेद होनेसे मी दोनों ज्ञानोंमें भेद है
=अव (=इदानीं) केवलज्ञानके स्वरूपके कथनका अवसर प्राप्त है
=उसको छोड़कर (=उल्लेख्य) ज्ञानोंके विषयोंकी सीमा वा नियम परखा जाय है (=केवल ज्ञानके स्वरूपके कथनको छोड़कर ज्ञानोंके विषय निस्स्र) इसी (कहते हैं)
=(उपर) क्योंकि विस (केवलज्ञान) के (लक्षण अभिधानको) मोहनीय करनेका नाश होने (के हेतु) से और (=च) उसके पश्चात् ज्ञानावर्णीय दर्शनावर्णीय अन्तराय कर्माके क्षय होने (के निमित्त) से केवलज्ञान होता है इस प्रकार
=यहां (अर्थात् दक्षर्षा अध्यायके प्रथम सूत्रमें) कहा जायगा
=जो ऐसे है तो (=चाहत) आदिके दोही (=एव)
=अधिज्ञान, मुख्यज्ञानके विषयका नियम (=निबन्ध) कहा जाना चाहिये
=इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) पुनः = परंशु - किंशु (" पुनरप्यनेने अने तथा पर्याप्तपुनः " इत्यमरः शातः ॥ पुनरुपपत्त्ये अने पर्याप्तपुनः अति ५ ॥

पटानिवासी जगरूपसहाय कर्मलकृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित सर्वार्थसिद्धिका छन्दः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २६,
 निबन्धन निबन्ध । कस्य विषयस्य । तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् ॥ प्रकृतं विषयग्रहण । क प्रकृतं ?
 विशुद्धि क्षेत्रस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तत्पार्थक्यशब्दभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्येत्यभिसम्बध्यते ॥ द्रव्येष्वाति
 बहुवचननिर्देश सर्वेषां जीवधर्माधर्माकाशपुद्गलानां सप्रदायः । तद्विशेषणार्थमसर्वपर्याय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित छव्वीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश अनुवाद
 चम् ॥ निबन्धः ।

छगाव (=निबन्धन, जो) है सो निबन्ध है अर्थात् विषयग्रहण सम्बन्ध है मावार्थ सूत्रमें निबन्ध
 छन्द है उसका अर्थ संघ-च है और 'निबन्धनं निबन्ध' उस निबन्ध छन्दकी व्युत्पत्ति
 वा व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है वा निकास है ।

= (प्रश्न) किसका (निबन्ध) (उपर) विषयका (निबन्ध) ॥ (प्रश्न) ठस
 = विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था । (उपर) नहीं करना योग्य था
 = विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृत) है
 = (प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहाँ है । (उपर) 'विशुद्धि क्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः'
 = ऐसा (वाक्य पचीसवां सूत्रमें) है । इस लिये तिस (किस्य छन्द) के
 = आश्रय वा सार्वर्ण्य के आश्रय से (अर्थात् कहाँ जैसा अर्थ लिया जाता है वहाँ कैसाही)
 = विभक्तिका परिवर्तन वा विपरिणाम वा परिष्कन होनाता है । ऐसे
 = (इस छन्दके मतिमुक्त्योः और निबन्ध छन्दके बीचमें) विषयस्य
 = ऐसा (पद) लगाया गया है वा बोझा गया है । द्रव्येषु (=द्रव्योक्ति निर्भर) ऐसा
 = बहुवचनका अटलाने वाला वा बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सब
 = जीवद्रव्य, पदद्रव्य, अघर्षद्रव्य, वाकायद्रव्य, कालद्रव्य पुरालोकि समुच्चयके
 = अर्थ है । उन (द्रव्यों) के विशेषणके लिये असर्वपर्याय (वाक्य) का

कस्य ? विषयस्य ।

विषय-ग्रहणं ॥ कर्तव्यम् ॥ तद् न कर्तव्यम् ॥

विषय-ग्रहणं ॥ प्रकृतं ॥

प्रकृतं ॥ क ? विशुद्धि क्षेत्रस्वामिविषयेभ्यः ।

इति अतः तस्य ।

अर्थ-वचन ।

विभक्तिपरिणामः । भवति इति ।

विषयस्य ।

इति अभिसम्बध्यते इ द्रव्येषु ॥ इति ।

बहुवचन निर्देशः । सर्वेषाम् ।

जीव-यम-अघम आकाश-काल-पुद्गलानाम् । संप्रदा

अर्थः । तद्-विशेष्य-अर्थम् । असर्वपर्याय-

एतानिमासी अगहस्पदाय ककील्लुत्ता पदच्छेद और विमल्यनये सहित सर्वावैयधिकका छन्दः। अर्थात् १ पद्य २६,

ग्रहणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमाद्यमानानि कतिपर्येव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायेरनन्तेरपीति ॥ अत्राह-धर्मास्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते । अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तते इत्युक्तम् ॥ नैप दोषः । अनिन्द्रियास्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धि पूर्वक सपयोगोऽवघ्रादिरूप प्रागेव-

प्रकरणम् ॥३॥

तानि ॥३॥ द्रव्याणि ॥३॥ मतिश्रुतयोः ॥३॥ विषयभावम् ॥३॥

आप्यमानानि ॥३॥ कतिपर्येः ॥३॥ एवम् पर्यायैः ॥३॥

विषयमात्म ॥३॥ आस्कन्दन्ति ॥३॥ न ॥३॥

सर्वपर्यायैः ॥३॥ अनन्तैः ॥३॥ अपि ॥३॥ इति ॥३॥

अत्र ॥ अह ॥ धर्मास्तिकायादीनि ॥३॥

अतीन्द्रियाणि ॥३॥

तेषु ॥ मतिज्ञानम् ॥३॥ न ॥ प्रवर्तते ॥३॥

अतः ॥ सर्वद्रव्येषु ॥३॥ मतिज्ञानम् ॥३॥ कतिपर्ये ॥३॥

इति ॥ अयुक्तम् ॥३॥ न ॥ एषः ॥३॥ दोषः ॥३॥ अनिन्द्रिय-

आत्मम् ॥३॥ करणम् ॥३॥ अस्ति ॥३॥ तद्व

आलम्बनः ॥३॥

नो-इन्द्रिय-आवरण-समोपशम-लब्धि-पूर्वकः ॥३॥

उपयोगः ॥३॥ अवघ्रा-आदिरूपः ॥३॥ आह ॥ एवम्

=ग्रहण है अर्थात् द्रव्येषु छन्द विधेय है और असर्वपर्यायेषु विशेषण है

=ते द्रव्य मति शुद्धान्तके विषय भावको

=आप्त हुये (अपने अपने) कितनेकड़ी पर्यायोंकर

=विषयभावको प्राप्त होते हैं न कि

=अन्त सप पर्यायों सहित ही (=अपि) (मतिशुद्धान्तके विषय भावको प्राप्त होते हैं)

सारांश-मतिज्ञान शुद्धान्त सप द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व

वा अतः पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥

=यहाँ प्रश्न करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अवर्त आकाश काल मोदजीव)

=अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं अर्थात् इन पदार्थोंको इन्द्रियें ग्रहण नहीं कर सकती हैं

=तिन (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है

=इसलिये सप (अपने) द्रव्येति मतिज्ञान प्रवर्तता है

=येसा (कथन) ठीक नहीं है । (उत्तर) यह रूपण नहीं है । (व्याक्ति) मन (अनिन्द्रिय)

=नासा (=आत्म) कारण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के

=निमित्तक वा कारणक (सब-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा हेतु जिसको ऐसा)

=अनु(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकोके क्षयापशमकरि प्राप्तपूर्वक(लब्धि है निमित्त जिसको ऐसा)

=उपयोग (है सो) अवघ्रा-वहा-आवाय-धारणा (वस्तुएँ) स्वरूप पहिले ही

पटानिवासी जगरूकसाहाय वक्रालुप्त पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका मुख्यता हिंदी अनुवाद । अन्वय १ सूत्र २६,

निवन्धन निवन्ध । कस्य विषयस्य । तद्विषयग्रहणं कर्तव्यम् । न कर्तव्यम् ॥ प्रकृतं विषयग्रहण । क प्रकृतं ? विशुद्धिद्वेष्टस्वामिविषयेभ्य इत्यतस्तत्स्यार्थवशाद्विशुद्धिप्रक्रियारिणामो भवतीति विषयस्येत्यभिप्रेतव्यते ॥ द्रव्येष्विति बहुवचननिर्देश सर्वेषा जीवधर्मार्थाकाशपुल्याना सग्रहार्थः । तद्विशेषणार्थमसर्वेषांय—

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित छव्यीसवा सूत्रपर सर्वार्थसिद्धि द्युत्तिका शब्दशः अनुवाद

निवन्धनम् १॥ निवन्धः ।

=उगाव (=निवन्धन, जो) है सो निवन्ध है अर्थात् विषययुक्त सम्बन्ध है भावार्थ सूत्रमें निवन्ध शब्द है उसका अर्थ संबन्ध है और 'निवन्धनं निवन्ध' उस निवन्ध शब्दकी व्युत्पत्ति का व्याकरण की रीति से उत्पत्ति है वा निकास है ।

=(प्रश्न) किस्तका (निवन्ध) (उत्तर) विषयका (निवन्ध) ॥ (प्रश्न) तस्य

विषय-ग्रहणं, ॥ कर्तव्यम् १॥ तत् न कर्तव्यम्, ॥

=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) करना योग्य था । (उत्तर) नहीं करना योग्य था

=विषय (शब्द) का ग्रहण (इस सूत्रमें) प्रकरण प्राप्त (=प्रकृत) है

=(प्रश्न) प्रकरण प्राप्त कहाँ है । (उत्तर) 'विशुद्धिद्वेष्टस्वामिविषयेभ्यः'

=येसा (वाक्य पदसिवां सूत्रमें) है । इस क्रिये तिस (विषय शब्द) के

=आश्रय वा तात्पर्य के आश्रय से (अर्थात् जहाँ जैसा अर्थ लिया जाता है वहाँ वैसाही)

=विभक्तिका परिष्करण वा विपरिणाम वा परिणामन होआता है । ऐसे

=(इस सूत्रके मतिष्पुस्योः और निवन्ध शब्दोंके बीचमें) विषयस्य

=येसा (पद) लगाया गया है वा जोड़ा गया है । द्रव्येषु (=द्रव्योंके विषे) ऐसा

=बहुवचनका बदलाने वाला वा बहुवचनका निर्देशक (वाक्य) सप्त

=जीवद्रव्य, धर्मद्रव्य, अयमद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य पुद्गलके समुच्चयके

=अर्थ है । उन (द्रव्यों) के विशेषणके लिये असर्वेषांय (वाक्य) का

कस्य १, विषयस्य १,

विषय-ग्रहणं, ॥ कर्तव्यम् १॥ तत् न कर्तव्यम्, ॥

विषय-ग्रहणं १॥ प्रकृतं १॥

प्रकृतं १॥ क ? विशुद्धिद्वेष्टस्वामिविषयेभ्यः १,

इति १ अदः १ तस्य १,

असर्वेषां १,

विभक्तिकपरिणामः १, भवति १ इति १

विषयस्य १,

इति १ अमिसन्धपते १ त्रयेषु १॥ इति १

बहुवचन-निर्देशः १ सर्वेषाम् १,

जीव-यम-अयम-आकाश-काल-पुद्गलानाम् १, संप्र

अर्थः १, तद्-विशेषण-अर्थम् १॥ असर्वेषांय—

पट्टानिवासी अगस्त्यशायी वकीलकुल पदच्छेद और विषमस्वर्ग सारिल सर्वाथैतिहिका कल्पः। हिंदी क्लृप्तं। अथवा १ पद्य २६६,

ब्रह्मणम् ॥ तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापद्यमानानि कतिपर्येव पर्यायैर्विषयभावमास्कन्दन्ति न सर्वपर्यायेरनन्तेरपीति ॥ अत्राह-धर्मोस्तिकायादीन्यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञानं न प्रवर्तते । अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञानं वर्तत इत्युक्तम् ॥ नेप दोषः । अनिन्द्रियास्यं करणमस्ति तदालम्बनो नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमलब्धि पूर्वक उपयोगोज्जग्रहादिरूप प्रागेव-

ब्रह्मणम् ॥
 तानि॥ द्रव्याणि॥ मतिश्रुतयोः॥ विषयभावम्॥
 आप्यमानानि ॥ कतिपर्येव॥ एवम् पर्यायैः ॥
 नेपयमास्यः ॥ आस्कन्दन्ति ॥ नम्
 सर्वपर्यायैः ॥ अनन्ते ॥ अपि॥ इति॥
 =ब्रह्मण है सर्वाथ द्रव्येषु क्लृप्त विषेय है और असर्कपर्यायेषु विषेयम् है
 =ये द्रव्य मति श्रुतज्ञानके विषय भावको
 =आप्त हुये (अपने अपने) किलनेकही पर्यायोंकर
 =विषयभावको प्राप्त होते हैं न कि
 =अनन्त सब पर्यायों सरित ही (=अपि) (मतिश्रुतज्ञानके विषय भावको प्राप्त होते हैं)
 साराह-मतिज्ञान श्रुतज्ञान सब द्रव्यों की कुछ ही पर्यायोंको विषय करते हैं सर्व
 या अनन्त पर्यायोंको विषय नहीं करते हैं ॥

=यहां ग्रस करता है (=आह) कि धर्मास्तिकाय आदिक (अवर्ग आकाश काल मोक्षबीज)
 =अतीन्द्रिय (पदार्थ) हैं सर्वाथ इन पर्यायोंको इन्द्रिये ग्रहण नहीं कर सकती हैं
 =किन् (धर्मास्तिकायादिक) में मतिज्ञान (जो इन्द्रियों द्वारा होता है) नहीं प्रवर्तता है
 =सतलिये सब (छंदो) द्रव्योंमें मतिज्ञान प्रवर्तता है
 =ऐसा (कलन) ठीक नहीं है । (उत्तर) यह दूषण नहीं है । (क्योंकि) मन (अनिन्द्रिय)
 =नामा (=आत्म्य) (अंतरंग) कारण वा इन्द्रिय है (द्रव्यमन है) उस (मन) के
 =निमित्तक वा कारणक (शब्द-आलम्बन अर्थात् मन है निमित्त वा इतु मित्तको ऐसा)
 =श्रुत(नोइन्द्रिय)ज्ञानावरणकर्मके क्षयोपशमकी प्राप्तिके लब्धिवै निमित्त जिसको ऐसा)
 =उपयोग (है सो) अवग्रह-रहा-आवाय-धारवा (क्लृप्त्य) स्वरूप पहिले ही

प्र० आह ॥ धर्मास्तिकायादीनि ॥
 तीन्द्रियाणि ॥
 पु० ॥ मतिज्ञानम् ॥ न० प्रवर्तते ॥
 तम् सर्वद्रव्येषु ॥ मतिज्ञानम् ॥ वर्तते ॥
 ते० अयुक्तम् ॥ न० एषः ॥ दोषः ॥ अनिन्द्रिय-
 तस्य ॥ करणम् ॥ अस्ति ॥ तत्
 तलम् ॥
 =इन्द्रिय आवरण-संयोगप्रद-लब्धि-पूर्वकः ॥
 योगः ॥ अवग्रह-आदिरूपः ॥ प्राक् एव॥

रूपिष्ववधेः ॥ २७ ॥

विपयनिबन्ध इत्यनुवर्तते ।

रूपिष्ववधे

रूपिषु । अवध-पर्यायेषु ।

अवधेः । विपय निबन्धः । भवति ।

=रूपिषु (असर्व-पर्यायेषु) अवध (विपय निबन्ध भवति)

=वर्तीक (पदार्थ) निके (विपे) किन्नेक वा दोदे (नकि सन्न) पदार्थों में,

=अवधि धानके विपयका सम्बन्ध होता है सारांश यह है कि, पुत्रल इत्येक अन्ते पर्याय,

अवधिधानके विपयसूत्र नहीं है किन्तु उसके कविपय पर्यायोंको और जीवके औदधिक,

औपशमिक इत्योपशमिक परिणामोंको ही (अवधिधान) विपय करता है क्योंकि रूप रस गंध

संज्ञे विधिद्वारा पदार्थ भवविधानके विपय होते हैं अतः, जीवके धार्मिक और, पारिभाषिक

मान तथा धर्म इत्य, अर्धम इत्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य वस्तुपदार्थ होनेके, निमित्त,

अवधिधान के विपयसूत्र नहीं होसकते

पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित सचाईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दशः हिन्दी अनुवाद

विपयनिबन्धः । इति अनुवर्तते । =विपयका निबन्ध-येसी अनुवृत्ति (इस सूत्रमें) पद्वीसवा और। छविषवा सूत्रसे यथासंख्य

आती है तबसूत्र "रूपिष्ववधेः विपयनिबन्धो" ऐसा हुआ

- (१) रूपमें रूप रस गंध स्पर्शका महण सम्मलगा कारोही अविनामावी हैं अतः पदके महण व कारोह महण होता है । सत-सिद्ध के मति शब्द है ।
- (२) इस सूत्रका का पाठ हमारे पहा सर्वत्र और एतेसमर आचार्यके समग्र्य सत्तार्थअधिप्रसूनमें पक है और अचरमी बोली सम्मदायमें प्रकृता है ।
- (३) 'रूपिष्ववधेः' सूत्रमें उपपन्न उपलक्षण है । इसलिये रूप शब्दके लक्षणेसे उसके अविनामावी (सुते न रह सकते वाछे) रस गंध स्पर्शका भी प्राय है । "अवधत्वापलक्षणोपपन्नोपलक्षणम्" उपलक्षणम् । अवधत्वापलक्षणम् । (—अपने कार्यका न छोड़कर), आ दूसरे पदार्थों का महण करनाई उसका नाम उपलक्षण है जिस प्रकार 'धर्मकेयो वधि रसयती' कागोल वहीही रसा करते । यहाँ पर धारु, दारु उपलक्षण है इसलिये जितने भी जीव वहीके विपयक है, उन सबका धारु शब्दसे महण है उसी प्रमाण प्रकृत्यों रूप धारुको उपलक्षण मानाये, जितने वस्तुसंख्यके अविनामावी रस गंध स्पर्श गुणों उन सबका रूप शब्दसे महण है ।

उपजायते ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञान तद्विषयेषु स्वयोर्येषु व्याप्रियते ॥ अथ मतिश्रुतयोरनन्तरनिर्देशार्हस्यावयवैः

नो विषयानिन्वय इत्यत आह -

उपजायते T ततस्तत्पूर्वं वद =उपजता है । पश्चात् (ततस्तेखो वेद कोश ग्रन्थ ३००) उस (अवग्रह वादिरूप उपयोग) के

पूर्वम् ॥ =निमित्तक (अर्थात् अवग्रह-ईशा अवाय-धारणात्म उपयोग है कारण जिसको ऐसा)

भूतज्ञानम् ॥ स्वयोर्येषु ५ तन् =भूतज्ञान अपने योग्य उन धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय पदार्थों के

विषयेषु ५ व्याप्रियत T =विषयों (अर्थात् ग्रहण करनेमें) प्रस्यता है ॥ सारांश यह है :— मन्त्र करनेपर कि धर्मास्तिकाय

पदार्थ इन्द्रिय गोचर नहीं है इन्द्रियोंकी अपेक्षा रखने वाले मस्तिष्कान्धरी उनके जानने में प्रवृत्ति नहीं हो सकती इसलिये सप द्रव्यों को मस्तिष्कान जानता है, यह कदना ठीक नहीं है वरन् कहेतें कि धर्मास्तिकाय आदि पदार्थोंके ज्ञानमें मन्त्र कारण है धृष्टज्ञानावरण (=नोइन्द्रियज्ञानावरण) कर्मकी क्षयोपक्षम लक्षिरूप विद्युद्विके रहनेपर उससे धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थों का अवग्रह ईशा अवाय धारणा स्वरूप उपयोग प्रथम ही होलेता है उसके पीछे भूतज्ञान की अपने योग्य धर्मास्तिकाय अतीन्द्रिय विषयोंमें प्रवृत्ति होती है इसलिये धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान जब मनसे होता है सब यह मस्तिष्कान नहीं है क्योंकि मनसे भी मस्तिष्कान होता है ॥

अथ मतिश्रुतयो ॥ अनन्तर =अथ मस्तिष्कान और भूतज्ञानके निकट अथवा लगताही

निर्देश-प्रस्य ॥ अथवा ॥ ५ ॥ =निरूपण वा रूपन करने (=निर्देश) योग्य (=अर्हस्य) अवविज्ञानके क्या

निरूपितक्यम् ॥ इति अत आह T =विषयका नियम है ऐसा (मन्त्र) है ॥ इसलिये कहेते हैं कि

(१) 'कर्म' का प्रथम पूर्वशब्दका प्रथम वसदी मति है अर्थात् 'श्रुतमति पूर्व ग्रथनेक शायदा मेवम्' सूत्रमें अर्थात् पूर्वव =पूर्वकम्

(२) व्याप्रिय- T सुवृत्ति छे गणक्य यहाँ पर अन्धर्मक आशयसे पक्षी भातु है इनके साथ वृत्ति या वि का (अर्थात् वृत्ति) उपसर्ग आते हैं T का प्रियः ५। आता है T और छे गणक्य 'अ' विवरण आइनेस 'व्याप्रिय' होजाता है पश्चात् एकत्रयन अन्य पुरुष आशयसे पक्षी वर्तमान कथक 'से' प्रत्यय समाहित है 'व्याप्रिय' कहता है । कर्मविषययोग में 'वृ' का 'वि' होजाता है 'अ' कर्मविषययोगका प्रत्यय जोड़े व्याप्रियः पीछे कथ 'ने' जाइ। व्याप्रियते वा आता है ५ यहाँ वृत्ति में कर्तारि प्रयोग में इस उपस्य की कार्य है ।

तदनन्तभागे मनः पर्ययस्य ॥ २८ ॥

• यदेतद्विद्वद्व्यं सर्वाविज्ञानविषयत्वेन समर्थित तस्यानन्तभागीकृतस्यैकस्मिन्भागे मनः पर्यय प्रवर्तते ॥ •
अयान्ते यन्निर्दिष्टं केवलज्ञान तस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—

सूत्रम्—तदनन्तभागे मन पर्ययस्य (विषयस्य निबन्धः भवति)

तद् अनन्तभागे १ मनस्यपर्ययस्य ॥ =उस (सर्वाविशेष्य) के अन्तर्वा अंश (सम्पत्त) में मना पर्यय ज्ञानके विषयस्य ॥ निषेधः ॥ भवति ॥ =विषयका सम्पत्त है भावार्थ जो परमाविज्ञानके विषयकृत पुष्टल स्वरूप अनन्तका भाग दीक्षिये तो एक

परमाणु मात्र सर्वाविज्ञा विषय होय है यहुरि तिसमें अनन्तका भाग दीक्षिये शब्द शृजुमति मत्तः पर्ययज्ञानका विषय होताहै तिसमेंही अनन्तका भाग है तब विपुलमतिमत्तपर्ययज्ञानका विषय होता है (५० बयर्कद जी)

पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित अट्टाईसवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिचिका शब्दश अनुवाद

(२) ५२ ॥ एतद् ॥ रूपि द्रव्यम् सर्वाविज्ञानविषयत्वेन ॥ =जो यह रूपी पदार्थ सर्वाविज्ञानका विषय होने से

समर्थितम् ॥ तस्य ॥ =समर्थन किया है वा सिद्ध किया है । तिस (सर्वावधिके विषयवृत्तरूपी पदार्थ) के

अनन्तभागीकृतस्य ॥ एतस्मिन् ॥ भागे ॥

मन पर्यय ॥ प्रवर्तते ॥ अयं अन्ये ॥

पद ॥ निर्दिष्टम् ॥ केवलज्ञानम् ॥ तस्य ॥

विषय-निषेधः ॥ कः ॥ इति अतः आह ॥

=अनन्त भाग किये जाय तो उसके एक अंश में

=मनः पर्यय (ज्ञान) प्रवर्तता है । अब अन्य में

=कथित (=निर्दिष्ट) जो (=यत्) केवलज्ञान है तिस (केवलज्ञान) के

=विषयका नियम क्या है । इस लिये (आचार्य) कहते हैं कि

(१) इतराश्चर आत्मायके समान ५० में 'मनःपर्ययस्य' के स्थानमें 'मनःपर्यावस्य' है । शय पाठ और अर्थही दोनों आत्मायोंमें एकसा है ५ मनस्यपर्ययः ॥

(२) अवधर्मता पर्ययस्य स्वामयिष्यत्वदर्शनार्थं सूत्रमिदं न तु कियन्तिबन्धभावर्यम् । यतो मनः पर्ययस्यविषयिग्यानस्मात्तोऽप्यत्रापि वृश्चितावृष्टिः प्रवर्तते

इत पाठान्तरस्य ॥ सर्वावशिष्टिकी द्वितीयादितरे "इति पाठान्तरस्य" के स्थानमें "इत्यवशिष्टः पाठः" येसा वाक्य है ५ येसा अधिक पाठ भी है ॥

अर्थः ॥ मनः पर्ययस्य ॥ सूक्ष्मविषयस्य दर्शन-

अर्थः ॥ पाठः ॥ एतद् ॥ मनः सूक्ष्मविषयनिषेध-अर्थः ॥ = लिये (अर्थः) यह सूत्र है किन्तु (=तु) विषयही इतका या सीमाके सिधे नहीं है

प्रदानिमासी अगारुस्तदाय कर्त्तव्यं पदच्छेद और विमर्शपर्यं सहित सर्वाभिदिका शब्ददा हिंदी श्लोकाद । अप्याय १ पृष्ठ २७

रूपिव्यतिनेन पुद्गला पुद्गलद्रव्यसम्बन्धाश्च जीवाः परिगृह्यन्ते । रूपिष्वेवावधोर्विषयनिवन्धो नारूपेऽप्यिति नियमः त्रियते । रूपिव्यपि भवन्न सर्वपर्यायेषु स्वयोगेष्वेवेत्यवधारणार्थमसर्वपर्यायेष्वित्यभिसम्बध्यते ॥ अयं तदनन्तरनिर्देशभाजो मन पर्ययस्य को विषयनिवन्ध इत्यत आह—

रूपिः । इति० अनेन १। पुद्गला १। क० पुद्गलद्रव्य-
 सम्बन्धाः । जीवाः । परिगृह्यन्ते १ रूपिषु १। एव०
 अवयवाः १। विषयनिबन्धः १। न० अरूपिषु १।
 इति० नियमः १। व्यिषय १ रूपिषु १। अपि० भवतः १।
 न० सर्वपर्यायेषु १। स्वयोगेषु १। एव०

—रूपी (स्वार्थ) निम्ने ऐसे इस (शब्द) करि पुद्गल और पुद्गल द्रव्यके
 —संयोगी जीव लिये गये हैं वा ग्रहण किये गये हैं । रूपी (स्वार्थ) निम्ने ही
 —अवधिज्ञानके विषयका (सम्बन्ध) है न कि अमूर्तियों में
 —ऐसा नियम स्थापना है । रूपी (स्वार्थ) निम्नेमी (अवधिज्ञानका विषय) होला हुआ
 —असत्य (किस्नेक) पर्यायोंमें अपने योग्यही है अर्थात् पुद्गल द्रव्यके कलकपर्यायों
 में और पुद्गल संयोगी जीवके औदयिक औपलम्भिक क्षायोपलम्भिक परिणामों को
 ही अवधिज्ञान को विषय करनेकी योग्यता है (देखो सूत्रार्थ पृष्ठ ४७१)
 —ऐसा नियम करने के लिये (अवधारण-अर्थम्) असर्वपर्यायेषु
 —ऐसा (वाक्य सूत्रों) लगाया गया है अर्थात् विषय शब्दकी अनुवृत्ति पर्यायों
 और 'निबन्ध' शब्दकी और 'असर्वपर्यायेषु' वाक्यकी अनुवृत्ति सम्बन्धों सूत्रसे
 सीमाई तब मात्र ऐसा हुआ कि 'असर्वपर्यायेषु रूपिव्यवधेः विषयसन्निकन्वा'
 —अथ तस्य (अवधिज्ञान) के लगता ही (अनन्तर) कहने योग्य (=निर्देशमात्रा)
 —मना पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

मय० तद् अनन्तर निर्देशमात्रा १।
 मनः परंपरस्य १। विषयनिबन्धः १। कः १। इति यदा आह —मना पर्यय (ज्ञान) के विषयका नियम क्या है इसलिये कहते हैं कि

(१) 'मया'—'मू' पाठका पर्ययान इत्यतः । मया पर्ययान इत्यतः आते हैं । एक पाठका यह रूप छेदा जो अन्यपुरुष बहुवचन वर्तमान बनके मयय छगने से परिछे बन जाता है । इसके पश्चात् वर्तमान कृतस्य अहं यदि पाठ पर्ययपर्यय हो और (वर्तमान कृतस्यका) मान मयय यदि पाठ मानने पर्यय हो और मय । अब मू को गुणस्य मा हुआ मय हुआ प्रथम गुणका अ विकल्प छगने से मय हुआ अहं ओहने से मय + अहं हुआ, यदि मयय के आलम्भमें अ हो तो उसस पहला 'अ' गिरा सेते हैं अता मयय हुआ ॥

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरेतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः ॥ ताद्विशेषण सर्वग्रहण प्रत्येकमभिसम्बध्यते

सूत्रम्-सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य

सर्वद्रव्यपर्यायेषु ३, केवलस्य ॥१॥ विषयस्य ३;

निर्वाणः ३, भवति ३

=सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य (विषयस्य निबन्ध भवति)

=सम्पूर्ण द्रव्योंकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें केवलज्ञानके विषयका

=नियम है मागार्थ एक एक द्रव्यकी त्रिकालवर्ती अनन्तान्त पर्यायें हैं सो

छहों द्रव्योंकी समस्त अवस्थाओंको केवलज्ञान युगपत् एक साथ जानता है

पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित उन्तीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिका शब्दश अनुवाद

द्रव्याणि, ३ च पर्यायाः, ३ द्रव्यपर्यायाः, इति ३ =द्रव्यं और पर्यायं (मिलकर) 'द्रव्य पर्यायाः' ऐसा वाक्य

इतेन योगलक्षणः ॥ द्वन्द्वः ३।

यद् विरोधम् ॥१॥ सर्वग्रहणम् ॥१॥

प्रत्येकम् ३ अभिसम्बध्यते ३

=भास्वर (इतरेतर) योगलक्षणवाला वा अन्योन्ययोग नामका द्वन्द्व समास है

=उस (द्रव्यपर्यायां) द्वन्द्व समास) का विशेष्य "सर्व" (ऐसे द्रव्य) का ग्रहण

=प्रत्येक (द्रव्य द्रव्य और पर्याय द्रव्य) पर लगाया गया है (=अभिसम्बध्यते)

पठः ३ मनः पर्यायस्तः अत्रापि विपरीत-अन्तः-
भागेनो अन्तः ३ अति ३ वर्तितः ॥१॥ इति ॥१॥

प्रवर्तते ३ इति ३ पाठ-अन्तरः ३॥१॥ इत्यर्थः ३॥

= पर्यायिक (=यका) मतः पर्याय ज्ञानका (विषय) अवधिके विपरीतसे अन्तःसर्वा

= भागमें है । दूसरे स्थानमें भी (इस संस्कार सर्वार्थसिद्धिकी) प्रकाशित शक्ति में

= प्रवर्तता है या विपरीत है (ऐको युग्मश्च ३॥१॥ द्विषुषुषु ३॥) ऐसा अस्य पाठ है ॥

(अस्य अर्थ) क्योंकि मनाः पर्यवधानकी प्रवृत्ति (=वृत्ति) अर्वाच्यज्ञानके द्वेयके अनन्तता भागमें

तथा (=अति) अवधिज्ञानके द्वेयसे शिथिल बस्तुअर्थों में (अत्यन्त) (भागमें) इतारें गर्ते है

(=वर्तितः) ऐसा अस्य पाठ है । ऐसा अधिक पाठ भी है

(१) इस सूत्रका पाठ और भाग दोनोमें सम्बन्धार्थमें पाठ है ॥ (२) द्रव्यके अवस्था विशेष पर्यायोंका नाम पर्याय है द्रव्यकी व्यवस्था विशेष जो है सो

पर्याय है । पर्यायवाचक शक्ति होने का तै, इति द्रव्यत्वम् (जो) अपनी पर्यायोंको जाना हो या तिन (पर्यायों)परि (=परि) प्राप्ति की जाय ऐसा द्रव्य है ॥

इ पाठसे पर्यायत्व का अर्थ (यु = जो = द्रव्य) द्रव्य वाचकी सिद्धि हुई है । (३) वा तीन जाति यह अगले अगली सिद्धि स्थानकर जो द्रव्य अगले

उस द्रव्यको जाना च करते है । "अति" से जो परछे हो वह पर्यायत्व तथा वीछिका द्रव्य समुच्चय कहता है आ समुचित तथा समुच्चय निश्चयकर बना

पटानिवासी अगारुसहाय धर्मसकृष्ट पदच्छेद और विमर्शार्थे संहित सर्वाधिसिद्धिका शब्दछा द्विती भनुवाद् । अग्राय १ एव २९ सर्वेषु ब्रव्येषु सर्वेषु पर्यायिष्विति ॥ जीवद्रव्याणि तावदनन्तानन्तान्, पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्कन्धभेदेन भिन्नानि, धर्माधर्माकाशानि त्रीणि, कालाश्रयासत्येयः

इति० संयु ॥॥ ब्रव्येषु ॥॥ संयु ॥ पर्यायेषु ॥
 तत्त्व० नीव इव्याणि ॥॥ अनन्तानन्तानि ॥ च०
 पुद्गलद्रव्याणि ॥॥ स्त० ॥ अति ० अनन्तानन्तानि ॥ पुद्गलद्रव्ये ० (श्रीवै) से मी (अन्ता अपि) अनन्तानन्तान्युमे
 अनुस्कन्धभेदेन ॥ विभानि ॥॥ धर्म-अधर्म-
 आकाशानि ॥॥ त्रीणि ॥॥ च० काला ॥ असत्येयः ॥
 अर्थात् "कालद्रव्यके कालाणु असंख्यात इव्य है" वे गिने जाने योग्य नहीं है

(१) लोगमानस्येदे पदेके अे द्विगुण पदेका ॥ एयणव राखी इव ते कलाणु मुयेयव्वा ॥१॥ इति गायोक्त प्रकाशेव काकद्रव्यस्याणु-
 कणाययान्तर्ध्वं धर्माधर्माकाशानामेकमेवमतेऽपि काकद्रव्यकलाभावादेकैकत्वमववाच्यम्
 लोगमानस्येदे ॥ पदेके ॥ अे ॥ (= कोकाकाश-भेदेन) एकेकस्मिन् । ये ॥१॥ — कोकाकाशके एक एक प्रदेशमें अे
 द्विगु ॥१॥ पदेका ॥ एयणव ॥॥ (स्वित्ता ॥॥) (स्वित्ता ॥॥) — एक एक ही (दु = कलु) स्थित है । रत्नोंकी
 राखी ॥१॥ इव० (राखि ॥१॥ इव०)
 से काकाणु मुयेयव्वा (ते ॥ काक-अणवः ॥१॥ मयव्वा ॥१॥) — वे काकके अणु समझना चाहिये ॥ वे असंख्यद्रव्य है
 इति० गण-उच्छ-प्रकारेण ॥ काकद्रव्यस्य ॥॥ अणुरणवत्ता ॥॥ — ऐसे गण में कते हुए सेव करि कास्त्रण के अणुसुप्त होते से
 नामतस्य ॥॥ धर्म-अधर्म-आकाशाग्राय ॥॥ अनेक-भेदेसत्ये ॥॥ — अनेकता है । (एवमु धर्म अणम आकाशाद्रव्यो के बहुत प्रदेश होने पर
 अपि काकाकाशक अभावात् ॥ एकेकत्व ॥॥ अववाच्यत्व ॥॥ — मी काकस्य मतेने (के हेतु) से पुणह पुणह पना जलना चाहिये ।
 मायायः—जिस प्रकार रत्नोंका ढेर एकत्र होनेपर मी कसमें प्रत्येक रत्न दुसराई देवेही काकके अणु बुदे बुदे एकके पकात् एक कोकाकाशके
 के प्रत्येक प्रदेश पर एक एक कर क्रमसे विछे हुए एवमु धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य और आकाशाद्रव्य के असंख्यता असंख्यात प्रदेशाई से प्रदेश पेसे मिले
 बुदे दे कि जनी बुदे बुदे मती होसकते है इनसे य हीनों एक एक द्रव्य ही है । धर्म द्रव्य अधर्म द्रव्य सम्पूर्ण कोकमें विसमें सेठ की भांति व्याप्त है
 और आकाशके भिन्न प्रदेशोंमें स्थित है वगैरै प्रदेशोंमें स्थितरहते हैं इनके प्रदेश अकल्प है ॥ येनो सर्वाधिसिद्धि इति० अणुस्य ५ एव ३९ पर

पञ्चानिवासी जगद्गुरुसहाय कवीलङ्कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वांशसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र २९,

तेषां पर्यायाश्च त्रिकालमुव प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु द्रव्य पर्यायजात वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य त्रिपयभावमतिमान्मस्ति ॥ अपरिभितमद्वात्स्य हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह त्रिपयनिम्नोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञोतमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनित नृत्तीनि ज्ञानानि योगपद्येन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

न० वराय १॥ त्रिकालमुव ॥
 प्रत्यस्म० अन्तर्ज्ञानान्ताः । पर्यायाः १, तेषु १॥
 वा द्रव्य पर्यायवर्तः ॥ कवल ज्ञानस्य १॥ त्रिपय भावस्य १॥
 अतिमान्मः १॥ न० किञ्चित् ० अस्ति १॥ त्रि० यत् १॥
 अपरिभितमद्वात्स्य १॥ इति० ज्ञापन अर्थस्य १॥
 मन्त्र पर्यायस्य १, इति० उच्यत १॥
 आह १ त्रिपयनिर्वचः १, अवधृतः १, नतिअदीनाय १॥
 इदम् १॥ तै० न० निर्वातम् १॥ एकस्मिन् १॥
 ज्ञानानि १॥ स्वनिमित्तमभिधान-उपजनितवृत्तीनि १॥
 ज्ञानानि १॥ योगपद्यन् १॥ कति १॥ भवन्ति १॥ इति० १॥
 अतः ० उच्यन् १॥

==और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
 =प्रत्येकके अनन्तानन्त पर्याय हैं । उक्त (द्रव्यों) में
 =या द्रव्य पर्यायों का समूह केवल ज्ञान के विषय भाव को
 =उत्संख्यान करनेको किञ्चित् भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=वत्) केवलज्ञान
 =अपरिच्छिन्न वा असीम मात्स्व्य है । ऐसा (=इति) ज्ञानाने के लिये
 =समस्तद्रव्योंकी समस्तपर्यायों में (केवल ज्ञानके विषयका नियम) है ऐसा कदागया है
 = (द्रव्य-अव) पृथक्ता है कि मति (ज्ञान) आदिकृतिके विषयके नियम कदागये
 =यदि यह (=इदम्) प्राप्त नहीं हुआ (कि) एक
 =जीवमें अपने अपने कारणों क निष्कट होवे (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
 =ज्ञान एक काल अथवा एक बार करि किन्ते होवे है ऐसे (अन्य पर)
 =इसलिये (आचार्य उत्तर सूत्रमें) कदावह कि

- १ द्रव्य इव यह यैव संस्कृत अटलमात्र काय पृष्ठ ४६९ में अल्पव लिखा है । इसलिये हमने भी इसको अल्पव लिखा है ।
- २ अनपुनः — विपुनः १, इति० कति० पाठान्तरम् १॥ — विपुनः (= व्यापकता) ऐसा भी अल्प पाठ है
- ३ मति + आदीनाम् = मत्यादीनाम्-आदि समस्तोंके अन्तिम अवयववत् इस सत्यता 'और अन्य' 'और अन्य' जैसे ही' इन व्यर्थों आता है । अन्वयः, पाठकः यहाँ पर आद्यः शब्द बहुपद्वन पुष्टिगर्भ है येने ही मत्यादीनाम् का गहो विमलकि बहुपद्वन पुष्टिगर्भ लिखा है (देखा उक्त नोट पृष्ठ ९९)
- ४ योगपद्य वा योगपर-नुमक नियम है (येव आद्य पृष्ठ १०१) वानों समकालता एककालता अवर्तमें है अतः हमने अनुमक लिखा है ।
- ५ कति मरत्तम् मरत्त बहुपद्वनमें आता है और पुष्टिमें इसका यही प्रमाण हुआ है ॥

पेशनिवासी वर्गसंरक्षण व संरक्षित पक्षेत्र और विगतत्वं सहित सर्वाधिकारिका पक्षेत्रा हिंदी खुदवार । अज्या १ सुत्र ३०,

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ॥३०॥

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः = एकादीनि (ज्ञानानि) भाज्यानि युगपदेकस्मिन् (जीवे) आ

चतुर्भ्यः (ज्ञानेभ्यः) सम्भवन्ति

एकादीनि ॥३॥ ज्ञानानि ॥३॥ भाज्यानि ॥३॥
युगपदेकस्मिन् १ जीवे १ भाज्ये १ आचतुर्भ्यः ॥३॥ ज्ञानेभ्यः = एक साध (= युगपद्) एक बीजै चारुजान एक (= आ)

सम्भवन्ति ॥
= सम्यक्, अर्थात् यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान, दो होगी तो मतिज्ञान
= सुज्ञान, तीन होगी तो मतिज्ञान, चतुर्ज्ञान, अवधिज्ञान वा मतिज्ञान भूतज्ञान
मनः पर्यवधान होय यदि चार होगी तो मतिज्ञान, भूतज्ञान, अवधिज्ञान,
मनः पर्यवधान होय

मनः पर्यवधान होय

१ इस सूत्रका पाठ दोनो सम्प्रदायों में एक है और अर्ध भी दोनों भाषाओंमें एक है जैसाकि जगन्नी रिण्डियोसे प्रगट होगा ।

२ वार्तिका-सख्या वचनोपेक्षायः = (वृत्ति) अथवा सख्या वचनोपेक्षायः = अथवा (विशेष) अथवा एक साध सख्यावाची है । एक = एकवचनसंख्या ।
यस्य भाविः यस्मिन् तस्मिन् एकादीनि कथम् १ * = एक है आदि जिनके से ये पक्ष हैं । (मन) कैसे ?
यदस्मिन् १ । आत्मानि १ मतिज्ञानम् १ । एकम् १ ॥

= (उत्तर) एक आत्माने एक (ज्ञान) मतिज्ञान होय है

(सुज्ञान) दो मत्तक है एक आध्यात्मिक भूतज्ञान दूसरा अनस्यपत्तक भूतज्ञान

ननु अस्य सुत्रम् १ ॥ द्वि + अनेक + आध्यात्मिक १ ॥ = जो आध्यात्मिक भूतज्ञान है सो वा अनेक आध्यात्मिक होय है

अथवा पूर्वकम् १ ॥

ननु मत्तकीयम् १ ॥ अथात् १ वा

न * वा * इति *

इत्यम् १ ॥ पूर्वकम् *

= (वह आध्यात्मिक भूतज्ञान) अर्थात् द्वारा होता है (जैसाकि इस अध्यात्मिक दोसरी सूत्र है)

= वह (अध्यात्मिक भूतज्ञान) मत्तकीय है या मत्तकीय रूप है किन्हीं शीर्षिक होता है

= किन्हीं नती (अध्यात्मिक भूतज्ञानकी अपेक्षा) एक आत्माने एक आत्माने मतिज्ञान भी हो सत्य है)

= अन्य पूर्व (पक्ष) सख्या होय है अर्थात् दो ज्ञान हों तो मतिज्ञान भूतज्ञान हों तीन ज्ञान

हों तो मतिज्ञान भूतज्ञान, अपयिज्ञान हों अथवा मतिज्ञान, भूतज्ञान मन पर्यवधान हों,

चार हों तो मतिज्ञान, भूतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यवधान हों

पटानिवासी वगरूपसहाय स्वीकृत पदच्छेद और विषयस्यार्थ सहित सर्वोपसिद्धिका कृपया: हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ २९,

तेषा पर्यायाश्च त्रिकालमुव प्रत्येकमनन्तान्तास्तेषु द्रव्यं पर्यायजात वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति ॥ अपरिभितमहात्म्यं हि तदिति ज्ञापनार्थं सर्वद्रव्यपर्यायेष्वित्युच्यते ॥

आह विषयनिवन्धोऽवधृतो मत्यादीनां, इदं तु न निर्ज्ञातमेकस्मिन्नात्मनि स्वनिमित्तसन्निधानोपजनितं दृष्टीनि ज्ञानानि योगपदेन कति भवन्तीत्यत उच्यते—

च० वषात् १॥ त्रिकालसद्वत् १।
 =और तिन (सर्वद्रव्यनि) के (अतीत अनागत वर्तमान) तीन कालमें होने वाले
 प्रत्येक० मन्तानन्ताः, पर्यायाः १, तेषु १॥
 =प्रत्येकके अनन्तान्त पर्याय हैं । उन (द्रव्यों) में
 या द्रव्यं पर्यायजातं १॥ केवलज्ञानस्य, १ विषय-भावम् १॥ =वा द्रव्य पर्यायों का सग्रह केवल ज्ञान के विषय भाव को
 अतिक्रान्तम् १। न० किञ्चित्, १ अस्ति १॥ तत् १॥ =उल्लेखन करनेको किञ्चित् भी समर्थ नहीं है क्योंकि (=हि) पूर्वोक्त (=सम्) केवलज्ञान
 अपरिमित-माहात्म्य १॥ इति० ज्ञापन-अर्थम् १॥ =अपरिमित्म वा असीम महात्म्य है । ऐसा (=इति) बनावने के लिये
 सद्वत् पर्यायेषु १, इति० उच्यते १॥ =समस्तद्रव्योंकी समस्तपर्यायों में (केवल ज्ञानके विषयका निबन्ध) है ऐसा कहागया है
 आह १ विषयनिवन्धः, अवधृतः १। मतिर्जादीनाम् १॥ =विषय-अव) पृच्छा है कि मति (ज्ञान) आदिकानिके विषयोंके नियम कहेगये
 इदम् १॥ त० न० निर्ज्ञातम् १॥ एकस्मिन् १॥ =परंतु यह (=इदम्) ज्ञात नहीं हुआ (कि) एक
 आत्मनि १। स्व-निमित्तसमिधान-उपजनितदृष्टीनि १॥ =जीवमें अपने अपने कारणों क निकट होते (=उपजनित) प्रवर्तनेवाले
 ज्ञानानि १॥ योगपदेन १॥ कति १। भवन्ति १ इति० =ज्ञान एक काल अथवा एक बार करि कितने होते हैं ऐसे (प्रश्न पर)
 अतः० उच्यते १॥ =इसलिये (आचार्य उत्तर सुन्यें) कहातेहैं कि

१ इत्येकम् यद् वेद संसृष्ट अज्ञानमात्रा कोय पृष्ठ ४१९ में लक्ष्य पछिवा है । इसलिये हमने भी इसका लक्ष्य प छिवा है ॥

२ अवधृतः — विधृतः १। इति० कति० परात्मन् १॥ = विधृतः (=व्यापकात्) ऐसा भी लक्ष्य पाठ है

३ मति + जादीनाम् = मत्यादीनाम्-आदि समासोंके अंतिम अवयवसत्त्व इस सत्त्वों और अन्य 'और अन्य' 'और अन्य' 'देखे ही' इन अर्थोंमें आया है । अभावप
 पाठक यहाँ पर भावप' पदम् बहुवचन पुष्टिमें है देखे ही मत्यादीनाम् को यद्यो विमलिक बहुवचन पुष्टिमें छिवा है (देखो उक्त कोय पृष्ठ ९९)

४ योगपद या योगपद-अनुसक्त किंग है (वेद कोय पृष्ठ १०१) दोनों समवायता एककाव्यता अर्थमें है अतः हमने अनुसक्त छिवा है ।

५ कति सर्वज्ञान सदा बहुवचनमें आया है और पुष्टिमें इसका यहाँ प्रयोग हुआ है न

एकशब्द सत्यावाची, आदिशब्दोऽव्यवचन

पदच्छेद और विभक्त्यर्थसहित तसिवा सूत्र पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका शब्दश हिंदी अनुवाद
एकशब्दोः। संस्यवाची, आदिशब्दः। अव्यवचनाः। अ(शर्म) 'एक' शब्द गणनाका वाचक है आदि शब्द दुकड़ा (=दूक) के अर्थमें है

(१) पृष्ठ ४७७ की दूसरी किलाणीमें हम विज्ञापक हैं कि तत्कार्योपपत्तिक के कर्ता के तत्कार्योपपत्तिक मो है और अन्य भाषायाँके मतमें यहाँ 'एक' शब्दकलेक्या अन्वय प्रदान अर्थ का वाचक है अब हमारा राक्षसिकके अनुकूल अनेक अर्थ समझ होने पर (मो) वचनको इच्छते (= विच्छेद) प्रमाणवाची 'एक' शब्द है (= अनेकार्थे सत्यसे विच्छेद) प्राप्यवचनः एकशब्दः। अनेकार्थे ये हैं कि कहीं सत्या (अर्थ) में प्रवर्तना है जैसे 'एक' को बहुत । कहीं अन्य (अर्थ) में जैसे 'एक' कावाचाः = अन्ये भाषायाँ = दूसरे भाषायाँ। कहीं अन्वय (अर्थ) में जैसे 'एक' किन्तसे विच्छेद कीटा' से शुरुआत अनेके विच्छेदों हैं। कहीं प्रमाण अर्थ में जैसे एकशब्दों सेना करोति = प्रमाणहवा सेना करतामिति इति अर्थ = प्रमाण प्राप्य सेनाको मठ करता है ऐसा अर्थ है और कहीं पर प्रमाण अर्थ में जैसे एकशब्दों सेना करोति = प्रमाणहवा इति = पहिला आता हुआ । सूत्रमें 'प्रमाण का पहिले' के अर्थमें 'एक' शब्द छाते हैं और नवतां सुख 'महिलावाचिमक पर्यवेकवच्छागिनितम्' । है तब एकशब्दीनी' वाक्य का अर्थ 'प्रमाण का पहिले आनाको आदि लेकर' हुआ अर्थात् मतिमान आदि लेकर विच्छेदकम्पने का मन्त्रकम्प से एक आत्मा में एक साथ चार आन तक विचरित है ॥

(२) तत्कार्योपपत्तिक के रचयितामें 'आदि' शब्दके अनेक अर्थ होने पर मो'अवयव' और समीप अर्थ में किया है 'आदि शब्दवाच्यवचना' "सामान्यवचनो वा" = आदि शब्द (इस सूत्रमें) दुकड़े का वाची है अथवा निकटता का वाचक है ।। कहीं पर स्यस्या (अर्थ) में (आदि शब्द) प्रवर्तना है जैसे प्राज्ञवाच्यवचनो वार्त्ताः (= प्राज्ञवाचिक वार्त्ता वार्त्ता) प्राज्ञवाच्यवचनः (= कि प्राज्ञवाच्ये व्यवस्था है) प्राज्ञवाच्यवचनो वार्त्ताः इत्यर्थः कि प्राज्ञवाच्य सन्निध वैश्य धर्म है ऐसा अर्थ है । अर्थात् प्राज्ञवाच्य सन्निध वैश्य और धर्म इन चारों वार्त्ताको प्राज्ञवाच्य वार्त्ताके आधीन व्यवस्था या रचना है । कहीं पर (आदि शब्द) प्रवर्तना (अर्थ) में प्रवर्तना है जैसे मुद्रावाच्यः परिवर्तना (मुद्रावाचिक परिवार करने योग्य है) मुद्रावाच्यः विपत्त इत्यर्थः (= मुद्रावाच्य प्रवर्तना कतिसे मुद्रांग सत्या विपत्त सत्यकोन स्थानमें योग्य है) ऐसा अर्थ है भाषा सर्वार्थादि विपत्तको (सत्य) वार्त्ताको इच्छते ही छात्र देता चाहिये । कहीं पर (आदि शब्द) अवयव, दुकड़ा, दूक, या माग अर्थ में प्रवर्तना है जैसे किन्तु अर्थादि विपत्तको समीपे इति अर्थ = अवयवके (= माग) कुछ माग को (= अवयवम्) पड़ता है (= अर्थात्) ऐसा अर्थ है ॥

एटानिवासी जगहसुधाय वकीलकृत पदच्छेद और विमर्शार्थ सहित सर्वोपसिद्धि का सम्बन्ध हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३०

पर: ॥ आह T असम्पासनाय

प्रपाम्यश्चने^१। परुराभ्ये^२। सवि^३। पञ्चमीनिः॥

केन्द्रकारीनि॥॥ इति कर्मण्यं एकस्मिन्प्रायश्चित्तादि कृतत्वात् - ए० केवल (बाल) आदीनि येसे कर्मणं है कि एक आत्मामें सायिकपलासे
 एकर ॥॥ केवलजन्य है॥ मतिफुले ॥॥
 -- एक केवल ज्ञान होता है । (बो बाय है तब) मतिज्ञान प्रवृत्तान होते है

इत्यादिपूर्य्यवत् ॥

इस गुणमें 'एक' शब्दका अस्वभाव और प्रमाण अर्थोंमें प्रयोग किया गया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल ज्ञान है क्योंकि अन्य चार ज्ञान अस्वभाव और प्रमाण नहीं हो सकते हैं ये चारों क्षयापराधिक ज्ञान हैं इस रीतिसे एक अर्थके एक साध केवलज्ञानको आदि छेकर चार भाग तक होना संभव है यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा (अथवा अस्वभाविक ज्ञानसे एक ज्ञानमें अनेका मतिज्ञान भी हो सकता है)। यदि दो एक साध होंगे तो मतिज्ञान और सुलब्ध ज्ञान, यदि तीन एक काखमें होंगे तो मतिज्ञान, सुलब्ध, अवधिज्ञान या मतिज्ञान, सुलब्ध, मत्तः पर्ययज्ञान होंगे यदि चार ज्ञान होंगे तो मतिज्ञान, सुलब्ध, अवधिज्ञान और मत्तः पर्ययज्ञान होंगे ॥ (देखो उत्तरार्ध-राजवार्तिक पृष्ठ १३) ॥ स्वेतास्वर आचार्योंमें भी यही है कि मतिज्ञान की अनेका होसक्य है और केवलज्ञान की अनेका होसक्य है अतः ॥ निम्न सिद्धिसे प्रगट है (देखो समाख्य उत्तरार्धभाग सूत्र पृष्ठ २८)

सुवर्गानस्वः॥ सुवर्गं मरिचमालम्॥ मरिचः॥ मरिचः (या मरिचः)

— किन्तु (या अवश्य जानना उचित है) सुतबालका मालामाले सहभाव अवश्य है (अर्थात् जहाँ जहाँ सुतमान है वहाँ वहाँ मतिबालका अस्तित्व अवश्य ही है)

॥॥ पूर्णकल्याण ॥॥

यस्य । तु मतिमान् तस्य सुप्रमाणं स्यात् T या न वा इति -- पंचाङ्गं चानि (मतिप्रमाणं) द्वारा (सुप्रमाणं) इत्यादि सुप्रमाणकं होसिको मतिप्रमाण कारण है -- यहाँ प्रसन्न करता है कि केवलप्रमाणके पालने होसि पाके मतिप्रमाण का निश्चय किम् ।।।।। सहसाहः ।।।।। मयवति T न इति उच्यते T

—क्या सहिष्णुता होता है ! (उत्तर) नहीं। येसा कदागण है अर्थात् ऊर्ध्व केपटकान है वहाँ पर मतिमान सुवकान अवपिधान, मम, पर्ययानका अस्तिव नहीं है।

परः ।। आह 'I असक्त्यासहाय

प्रधाम्यवचने' एकदायेन ।। सति' एकद्वीभिः ।।।

केससादीनि ।। इति अथ एकस्मिन्मनसिपुन्यिच्छाया - २३० केवल (बाल) भावीति चेते अर्थमें है कि एक आत्मामें सायिकमासे

पक्षर ।।। केवलबालम् ।।। मतिपुने न ।।।

इत्यादिपूर्वपक्ष

- दूसरा कहता है (अर्थात् अन्य अन्य जाचार्योंका मत है) कि असक्त्या असहाय

- प्रधान अथवा बाधक (हम सूत्रमें आये हुये) 'एक' शब्दके होते 'एकद्वीभिः' है

- २३० केवल (बाल) भावीति चेते अर्थमें है कि एक आत्मामें सायिकमासे

- एक केवल बाल होता है । (हो होय वैं तहाँ) मतिबाल सुतबाल होते हैं

- इत्यादि पहिले (कथित) मध्य है सावर्त्य येसा है कि और और आचार्य कहते हैं कि

हम पूर्वमें 'एक' शब्दका अर्थका असहाय और प्रधान अर्थमें प्रयोग किया गया है अतः इस (एक शब्द) का अर्थ केवल बाल है क्योंकि अन्य

कारण असहाय और प्रधान नहीं होसकते हैं ये चारों क्षायाप्राप्तिके ज्ञान हैं इस रीतिसे एक जीवमें एक साथ केवलज्ञानको भावि छेकर

कार बाल एक ज्ञाना समवै यदि एक ज्ञान होगा तो केवलज्ञान होगा (अथवा असमानक सुतबालकी अपेक्षासे एक आत्मामें अकेला मतिबाल

भी हो सकता है) । यदि दो एक साथ होंगे तो मतिबाल और सुतबाल होंगे, यदि तीन एक कालमें होंगे तो मतिबाल, सुतबाल, अवबिबान या

मतिकान पुन्यबाल, तथा पर्ययबाल होंगे, यदि चार बाल होंगे तो मतिकान, सुतबाल, अवबिबान और मन पर्ययबाल होंगे । (देखो तात्पर्य

राजबार्तिक पृष्ठ ३३) । इत्यादि आद्यायमें भी यही है कि मतिकान की अकेला होसक्य है और केवलज्ञान की अकेला होसक्य है अतः कि

निश्च किचित्ते प्रपद है (देखो समाख्य तात्पर्याधिगम पृष्ठ ३८)

सुतबालम् ।।। इति मतिकानेन ।।। निषेधः ।।। सहायकः ।।।

- किन्तु (यह अवश्य ज्ञान्य दक्षित है) सुतबालका मतिकानसे सहभाव अवश्य है

(अर्थात् जहाँ जहाँ सुतबाल है वहाँ वहाँ मतिकानका अस्तित्व अवश्य ही है)

यद् पूर्वकथाय

यस्य ।।। तु मतिकानं तस्य सुतबालं स्यात् 'I' या न या इति - परंतु किन्ते मतिकान है किन्ते असहायक सुतबाल वा अथवा (=वा) न हो येसा है

अपके अह 'I केवलज्ञानस्य' ।।। पूर्वः ।।। मतिकानातिभिः - यहाँ प्रश्न करता है कि केवलज्ञानके पहिले होने पाके मतिकान आदिछे

किम् ।।। सहभावः ।।। सपति 'I' न इति क्वच्यते 'I

- क्या सहभाव होता है ? (उत्तर) नहीं येसा कहा गया है अर्थात् जहाँ केवलज्ञान है वहाँ

पर मतिकान सुतबाल अवबिबान, मनः पर्ययज्ञानका अस्तित्व नहीं है

पटानिवाही अमरसिंहगणपक्रीलकुव पदच्छेद और विमर्शपूर्ण सारित सर्वाभिसिद्धिदा कर्ष्यः विदितजुवादे अम्भाम् १ सुम् ३०

युगपदवतिष्ठन्ते । द्वे मतिश्रुते । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि, मतिश्रुतमन पर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि मतिश्रुतावधिमन पर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ॥

पटानिवासी समयरूपसहाय कबीलकृत पक्षच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाभिरुचिका मुख्यः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ३०,

और इसको कभीके व्युत्पत्तिकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रहती है अतः केवल ज्ञानीके मति-धूस-अवधि-मनापण ज्ञान नहीं होते हैं

केवलज्ञान शान्ति-ध्यान है और असहायज्ञान है हमने पाँचों धाम नहीं होते हैं ठीक नहीं है ? (उत्तर) श्रिते अब का स्थान सयथा और सर्व प्रकारसे शुद्ध होयुक्त है कोय भागमी उस स्थानका अनुभव नहीं कहा जानसकता है येमेहो ऊप सर्व ज्ञानायरणीयकमकी प्रकृतियोंका मय प्रकाश नाश होयुक्त है तब उन कर्मकी प्रकृतियोंका शरीरवशम कहना और अत्यन्त माया होनाभी कहना ये एक दूसरेके विरुद्ध हैं और नहीं कहे जासकते हैं इसलिये यह साध आभासे मतिज्ञानको आदि केकर धार तक जानेका आ नियम है यह नियोग और निर्देश है ॥

इस विषयमें अब हम श्वेतस्मर आचार्यका मत लिखते हैं ॥ (प्रश्न) केवलज्ञानका मतितान शुद्धज्ञान अणुचिदान और मन-पर्यवसानके साथ सहभाव है कि नहीं है ? (उत्तर) केवलज्ञानके साथ मतिज्ञानादिका सहभाव नहीं है । परतु कोयै कार्य आचार्य कहते हैं कि केवलज्ञानकी सत्ता वशामें मतिज्ञानादि ज्ञानोंका अभाव नहीं है किन्तु केवलज्ञानसे ये मत्यादिज्ञान अविमृष्ट (परमजित) होनेसे ऐसे अकिंचित्तर हैं अतकि वेधादि इन्द्रियां । केवलज्ञानकी वशामें मतिभुवनादि अणुज्ञान अविमृष्ट होकर ऐसे अकिंचित्कर हैं श्रिते मेपरहित आकाशमें सूयके उदित हातेपर अचिद तेजके कारण ऐसे अविमृष्ट अग्नि मणि कम्बला तथा गहनादिके तेज, प्रकाश करनेमें अकिंचित्कर हैं । और कोय ऐसा कहते हैं कि अणाय सर्वदृश्यता अर्थात् प्रत्येके विषयमें अपत्य सर्वदृश्यतासेही प्रवृत्त होता है अतः उनकी सत्ता में मतिज्ञान यह सत्ता है और केवलज्ञानों का इन्द्रो द्याप पृथ्वीपरलब्धिव नहीं होती, इस कारणसे केवलज्ञानकीको मतिज्ञानादि ज्ञान नहीं है ॥ किं चाण्डाल । औरमी यह बात है कि मतिज्ञानादि धारों ज्ञानोंमें पर्याय वा समसे उपयोग होता है न कि एक ही ज्ञानमें और मिलित है ज्ञानस्वरूप जिसका ऐसे गणकाल केवली धा तो एकही काखमें सर्वभावके धायक या प्रादक और अन्य ज्ञाननित्येय केवलज्ञान तथा केवलस्वरूप होते हैं और प्रतियोग वा प्रति सम्यग् ज्ञानोपयोग तथा पूर्वोक्तोपयोग होता है । और यहमी है कि पूर्व मतिज्ञानादि धार ज्ञान वा ज्ञानायत्येक शरीरोपयोगसे उत्पन्न होते हैं । और केवलज्ञान शरीरसेही उत्पन्न होता है । इसलियेभी केवलज्ञानकीको मति ज्ञानादि धार धार ज्ञान नहीं होते ॥^१ सम्मथ्य० पृष्ठ २८, २९ ॥ इसारा दृश्य मी इस बातको लयीकाट नहीं करता कि केवलज्ञान की विषयमत्तामें

यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव उभन्ते, उतान्यथापीत्यत आह—

यथोक्तानि॥ मत्यादीनि॥॥ ज्ञानव्यपदेशम् ॥॥ एवम् = कृतानुसार (= यथोक्त) मति आदिक ज्ञान ज्ञान नामही

उभन्ते ॥ उतम् अन्यथाऽवपि॥ = जाते हैं । अथवा (= उतम्) अन्यथा भी है अर्थात् मतिज्ञान, सुखज्ञान, अवधिज्ञान,

मनः पर्यवेक्षण ये ज्ञान संज्ञा से ही जाने जाते हैं कि ये किसी और

ज्ञान से भी कहे जाते हैं ॥ ऐला (प्रश्न होने पर) इस लिये कहते हैं कि

इति अतः आह ॥

अथ चार ज्ञानका अतिविवरक रूपमें भी अस्तित्व रहता है क्योंकि यदि हम ऐसा मान लें तो इस वृत्तका " वाचतुर्थ्यः " वाक्य स्वयं हुआ जाता है । और पाँचों ज्ञानका अस्तित्व पुनः पुनः हुआ जाता है ।

(सम्) अस्तंती पंचेन्द्रियते केकर अयोग्यकेवलो पर्यत सब जीव पंचेन्द्रिय है । जिनका केवलज्ञान है वे भी जीव अब पंचेन्द्रिय हैं और पाँचों इन्द्रिय उनके विद्यमान हैं अब इन्द्रियों कि कार्य मतिज्ञान आदि सायोग्यानिष्ठज्ञान होने चाहिये क्योंकि समर्थकारण इन्द्रियों कि रहते कार्य ज्ञान अवश्य मावी है । अतः यह कहना कि केवलज्ञानके अस्तित्व समर्थमें मतिज्ञान आदि नहीं होसकते यह कथन निरर्थक है (उत्तर) स्वयोगकेवली और अयोगकेवली को जो पंचेन्द्रिय मतलब है यह इन्द्रियकी अयोग्यते नहीं है क्योंकि आवेन्द्रियको विद्यमानता में समस्त ज्ञानावरणोंक अन्तः रूप नहीं होसकत है और ज्ञानावरणकर्मके निर्मूल रूपके किना सर्वज्ञाना भी नहीं होसकत है यदि स्वयोगकेवली और अयोगकेवलीकें मावें इन्द्रियकी सत्ता मानो जानी तो उनके ज्ञानावरणकर्मका रूप निर्मूल न होसकत अतः वे सर्वज्ञ नहीं कहे जासकते ॥ अहां पर मावेन्द्रिय है वहां पर मतिज्ञानादिक सायोग्यानिष्ठज्ञानोंका आविर्भाव होता है केवल इन्द्रियके अस्तित्व काळमें नहीं क्योंकि इन्द्रियकी सत्ताको भिन्नात्मिक माना है यह ज्ञानोंकी उत्पत्तिमें कारण नहीं है । इस लिये अब केवलज्ञानके उदय रहने पर मावेन्द्रियका अस्तित्व नहीं रहता अब केवलज्ञानके साथ, कारण मावेन्द्रियके समर्थमें कार्य मतिज्ञानादि नहीं हो सकते । अतः एक आत्ममैं माय रूप मतिज्ञान से केकर चार ज्ञान तक एक साथ हो सकते हैं यः नय निर्वाच है किन्तु पाँचों ज्ञान एक साथ नहीं हो सकते हैं ॥

पटानिवासी अगदुसहाय अशुलकुम्भ पदच्छेद और विगन्तयै सहित त्वार्थसिद्धिका सुखसा हिंदी बालुवाद । अन्वय १ सूत्र ३१,

कुत पुनरेषांविपर्यय ?

अर्थात् मयिज्ञान सुखज्ञान अवच्छिन्न विषयाज्ञान भी हैं और तन्मयज्ञान भी हैं
= (प्रश्न) बहुदिन इन (ज्ञानों) के विपरीतता (=विपर्यय) क्योंकर है ?

कुतः ० पुनः ० एषाम् ॥॥ निर्ययः , ! ?

मयिज्ञानादि सहाय अनन्यस्वरूप मी है इस अर्थके करनेमें 'यः शब्द' का सुझने काता कार्य मी है ॥ श्लोक वा ० पृष्ठ २५५ श्लोक ९, १० ११ देखो ॥ वहाँ पर स्मरण रहे कि मयिज्ञान इन्द्रिय और मनसे हाता है अतः उसके विपरिणाम सहाय विपर्यय और अनन्यवत्ता मीनों मिथ्याज्ञान है और सुखज्ञान मनकी-साक्षात्कार होता है इसलिये-अब के-मी विपरिणाम-साथ विपर्यय और अनन्यवत्ता मीनों मिथ्याज्ञान हैं किन्तु अवधि-ज्ञानके विपरिणाम विपर्यय और अनन्यवत्ता मी हैं सहाय मी क्योंकि यह 'स्याणु' है वा पुनः है ? ऐसे अनेक काटियोंको स्वयं करनेवाले ज्ञान का ज्ञान सहाय है और मही पर अक्षर रहनेसे दूरमें स्थित पदार्थ स्याणु है वा पुनः है ऐसा स्पष्ट ज्ञान न होनेस इन दोनोंमें रहने वाले ऊर्ध्वता सामान्यका प्रत्यक्ष है वह कोनर आदि स्याणुके विशेष एवं निर हाय आदि पुरुषके विशेषों का प्रत्यक्ष नहीं किन्तु पहले उनका ज्ञान हो सुख है इसलिये मनके द्वारा उनका स्मरण है इन रीतिसे सामान्यप्रत्यक्ष विवेकात्मकता और विज्ञान स्मरण है वहाँ पर सहायज्ञान होनेके कारण इन्द्रियों के आधीन इसकी उत्पत्ति मानी है परंतु अवधिज्ञानमें इन्द्रियके व्यापारकी कार्य अपेक्षा मीं न मनेके व्यापारकी कार्य अपेक्षा है क्योंकि अवधि-ज्ञानको इन्द्रिय और मनसे अज्ञान माना है किन्तु अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशमको विधुद्धता रहने पर वह सामान्य विज्ञान स्वतन्त्र अपने विषयभूत पदार्थोंका ज्ञानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणाम सहाय स्वतन्त्र नहीं हासकता अस्ति हा ! मिथ्यात्व नाम कर्मक विपरीत ध्यान स्वतन्त्र पदार्थोंका ज्ञानता है इसलिये अवधिज्ञानका विपरिणाम सहाय स्वतन्त्र नहीं हासकता अस्ति हा ! मिथ्यात्व नाम कर्मक विपरीत ध्यान स्वतन्त्र मिथ्यास्वरूपके साथ अवधिज्ञान रहता है इसलिये वह विपरीत स्वतन्त्र है तथा श्रित पदार्थकी आर अवधिज्ञानका उपयोग क्षण हुआ है कारण वहा उसका पूरा ज्ञान ध्यानके पहिले ही दूसरे किंसी ज्ञानके विषयभूत दूसरी पदार्थों और उपयोग लग जाय उस समय मींमें आते हुये पुण्य की लून स्पष्टीके ध्यानके समाप्त अतिशयात्मक अवधिज्ञान हासकता है इसलिये अर्थात् ज्ञानका विपरिणाम अनन्यवत्ताय स्वतन्त्र मी है किन्तु श्रित समय श्रित पदार्थों को अवधिज्ञान विषय कर रहा है इन समय बहि वह अवधारण बड़ होगी तो अवधि ज्ञानका अनन्यवत्ताय स्वतन्त्र विपरिणाम नहीं हा सकता ॥ (देखो श्लोक वार्तिक श्लोक १२, और १३ पृष्ठ २५९)

(१) सामान्यरूपसे विपर्ययका अर्थ मिथ्याज्ञान है तो मी सहाय विपर्यय और अनन्यवत्ता इन तीनों प्रकारके ज्ञानोंका यहाँ प्रमाण है परंतु स्मरण रहे कि मयिज्ञान सुखज्ञान और अवधिज्ञान येही तीनों ज्ञान विपरीत या मिथ्याज्ञान हासकते हैं न कि मनःस्थाय और केवलज्ञान (प्रश्न) क्यों ?

एतान्निवासी बगरुमसहाय क्लीकृत पञ्चेद और भिमवत्यर्थे सहित सर्वार्थसिद्धिका बुद्ध्या हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३१

मिथ्यादर्शनेन सहैकार्यसमवायात् सरजस्कन्दकालाबुगतदुग्धवत् ॥

मिथ्यादर्शनेन ॥ सहः

एकार्य-समवायात् ॥

= (उत्तर) मिथ्यात्व (के उदयकरि) सहित (=सह) आत्मा और मतिज्ञानादिक का)
= एकमेकरूप (=एकार्य) पक्ष, सम्मेलन, वा सन्धेय (के हेतु) से (=समवायात्)

(मतिज्ञान, बुतशान और अवधिज्ञान के विपरीतता होजाती है)

= जैसेकि गिरी वा रज सहित कटुवी (=कटुक) तुम्हीं (=जलाघु) होया हुआ (=जात) दूध
बयाँव कैसे गिरी सहित वा रज सहित कटुवी तुम्हीं दूध रखनेसे दृढ़वा होजाता है वैसेही दर्शन मोहनीय कर्म
के उदयसे आत्माका जो मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ यति आदि शान भी एक स्थानमें रहते हैं - दोनों
(मिथ्यादर्शन परिणाम और यति आदि शान) एक साथ आत्मामें रहते हैं इस लिये मिथ्यात्व के सर्वप्रथम मति आदि शान
मिथ्या शान बने जाते हैं ॥

सरजस्कन्दकालाबुगतदुग्धवत् ॥

(उत्तर) क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्मके वक्ष्य जो आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम होता है उसके साथ मतिज्ञान, बुतज्ञान, अवधिज्ञान भी एक
स्थानमें रहते हैं । एक मतिज्ञान और आत्माका मिथ्यादर्शन परिणाम दोनों एकसाथ आत्मामें रहते हैं इसलिये मिथ्यात्वके सबप्रथमे मतिज्ञान आदि
मिथ्यामान बने जाते हैं । परन्तु मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानका आत्मामें मिथ्यादर्शनके फलस्वरूप होजाते पर सम्पूर्ण गुणकी प्रगटता
से निम्न सम्य आत्मा विमुख होजाता है उन साथ उदय होता है । बिना सम्यकत्वगुणके उदय नहीं होसकता इस लिये मिथ्यात्वके सर्वप्रथमे सर्वथा
दूर रहनेके कारण मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान कभी मिथ्या नहीं होसकते । उन दोनों ज्ञानोंमें प्रिय समग्र दर्शन मोहनीय कर्मका सर्वथा क्षय हो
जाता है और काचित् मोहनीय कर्मका उपशान (अर्थात् मनःपर्ययज्ञान छूट गुणव्यापनमें भी होजाता है अतः यह प्रत्यक्षानुबोधित उपशानकी अपेक्षा
कमज है होजाता है उन समग्र आत्मामें मनःपर्ययज्ञानका उदय होता है इसलिये मिथ्यात्वके साथ सबप्रथम रहनेके कारण यह मिथ्याज्ञान नहीं होसकता
तथा ब्रह्मावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और ब्रह्मराय इन चार धारिका कर्मों के सर्वथा गूढ़ होजाते पर आत्मामें कथञ्चा का उदय होता है ।
इस समग्र परिपूर्ण विमुखता केवलज्ञानमें प्राप्त होजाती है इसलिये यह भी मिथ्याज्ञान नहीं कहा जा सकता ॥

पटानिवासी अग्निरूपस्य वकीलकृत पदच्छेद और विमलस्य सहित स्वार्थसिद्धि का सम्यक् । अथवा १ एव ३१
 ननु च तत्राधारदोषात् दुग्धस्य रसविपर्ययो भवति, न च तथा मत्याज्ञानादीना विषयग्रहणे निपर्ययः ॥
 तथाहि, सम्यग्दृष्टिर्यथा चक्षुरादिभि रूपादीर्नृपलभते, तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्याज्ञानेन ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः
 श्रुतेन रूपादीनि जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन ॥ यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टि
 रूपिणोऽर्थानवगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्बिभङ्गाज्ञानेनति ॥ अतोच्यते—

ननु च तत्र आधार-दोषात् १, दुग्धस्य ॥

रस-विपर्ययः १, भवति ॥ न च तथा ॥

मति-अज्ञान-आदीनां १, विषय-ग्रहणे ॥ विपर्ययः १

तथाहिः सम्यग्दृष्टिः १, यथा च चक्षुरादिभिः १, ॥

रूपादीनां, उक्तमतेऽ तया च मिथ्यादृष्टिः १, अपि ॥

मति-अज्ञानेन १, ॥ यथा च सम्यग्दृष्टिः १, श्रुतेन ॥

रूपादीनि १, जानाति ॥ निरूपयति १, यथा च

मिथ्यादृष्टिः १, अपि ॥ श्रुत अज्ञानेन १, यथा च

अवधिज्ञानेन १, सम्यग्दृष्टिः १, रूपिणः १, अर्थान् १

अवगच्छति १, तया च मिथ्यादृष्टिः १, विभङ्गाज्ञानेन १, ॥

दृष्टिः अत्र उच्यते ॥

=निर (=च) प्रमा (=अनु) यदा (तुषीमें) आधारके दृपणसे दृषका

=स्वाद उलटा हो जाता है (अर्थात् कड़ु भा होजाता है) बहुदुर (=च) नहीं है तैसे

=मति-अज्ञानादिकोंके विषय ग्रहण (करने) में विपरीति अर्थात् ज्ञानमें जो विषय

का ग्रहण सम्यक्त्वमें और मिथ्यात्वमें समान होता है

=उदाहरण (=तथाहि) सम्यग्दर्शनवाला जैसे नेत्र आदिक इन्द्रियोंसे

=रूपादिकों को जानता है (=उक्तमते) तैसे मिथ्यादर्शनवाला भा

=कुमतिज्ञानरि (जानता है) और (=च) जैसे सम्यग्दर्शनवाला सुखानकरि

=रूपादिकों को जानता है तथा (=च) कथन करता है तैसे

=मिथ्यादृष्टि भी कुसुखज्ञान द्वारा (जानता है और व्याख्यान करता है) और जैसे

=अवधिज्ञानकरि सम्यग्दर्शनवाला रूपी वा धूर्तिक वस्तुओं को

=जानता है (=अवगच्छति) तैसे मिथ्यादर्शनवाला कुप्रविधानकरि (जानता है)

=येसा (प्रमा होने पर) यदा कहते हैं कि

(१) जानाति ॥ निरूपयति ॥ दृष्टिः अपि च पाठस्यारम्भः ॥

= जानता है कथन करता है ऐसा भी सम्य पाठ है

पटानिवासी जगन्मोक्षदाय कल्लोमं पञ्चैत्र और विमलसूर्य साहित सभाधिसिद्धिकां शुद्धदा हिंदी अनुवादि । अध्याय १ पृष्ठ ३२,

संदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥

सद्विद्यमानमसद्विद्यमानमित्यर्थः । तयोर्विशेषेण यदृच्छया उपलब्धेर्विपर्ययो भवति ॥

सदसुतोरंविशेषाद्यदृच्छापलब्धेरन्मतवत् = सदसुतोरविशेषाद्यदृच्छापलब्धेरन्मतवत् (विपर्ययो भवति ज्ञानम्)

सप्त प्रश्नः

=विद्यमान और शक्तिमान (पदार्थों) का वा प्रशस्त्य (महत्ते) अप्रशस्त्य (घटे) का

अविज्ञोपासु ५।

=विशेषरूप या प्रमेयरूप ज्ञान वा ज्योत्स्ना लों विवेक न होने (कि हेतु) से

नारचु-रुपलम्बेः ॥ सुन्मपयतक =अपनीः

॥ इत्यथ ॥ =अज्ञी याज्ञिक्यका द्वारा ग्रहण करने से उन्मत्त (पशु) के समान

=विपरीत वा मिथ्याज्ञान रोवा है भाषार्थ जिस प्रकार मूढमाणा वा नन्व

श्री भाग्यं समग्रं है यः उसका ज्ञान सिद्धाधान है एवं किसी समय वह प्रयत्नसे प्राप्त होने लगेगा।

मरा कुजा है वो भी नमहा या वाम्ना मयावाम ज्यो
कल्लय्या पौंति न्हो

मेरे इस पथपर विवेक का ज्योत्स्ना हो पाए और विचार हो सके —

बसंत पंचमी का शुभारंभ

भी सिध्वा पात्र है ॥

पादच्छेदं चौरैः विभक्त्यर्थं संहतिं वृत्तीमवा। मन्त्रं परं मन्त्रार्थमिति न विज्ञितम् ॥

सुखं विना नास्ति भूयः ।

अस्य विषयमान वा प्रमाण (पक्ष) है उसका अविषयमान वा अनश्वरी (पक्ष) है

न्यासा गालये ह इ न दर्ना (सव असल) का ययार्य वियक न होने से

[illegible]

(१) रस धृष्टज्य हाचो देवताम्बर और विंगम्बर सुमनकाचोमें पाठ और अर्थ एक हे ॥ ५ ॥ कांमो पावय्वादी गोवां और

[illegible]

पटानिपासी जगत्प्राप्तहाय यच्छिष्टं पश्यच्छेदं और विमलस्वर्ग सहित सर्वाभििसिद्धि का लब्धः। हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३२
अन्ये वर्णयन्ति—पृथिव्यादीनि चत्वारि भूतानि, भौतिकधर्मा वर्णगन्धरसस्पर्शः, एतेषा समुदायो रूपपरमा
णुरष्टक इत्यादि ॥ इतरे वर्णयन्ति—पृथिव्येभ्योजोवायव काठिन्यादिवत्वाद्युष्णत्वादीरणत्वादियुगा जातिभिन्नाः
परमाणव कार्यस्यारभकाः ॥ भेदाभेदविपर्यास क्करणत्कार्यमर्थान्तरभूतमेवेति

अन्ये ऽ, वर्णयन्ति ऽ पृथिवी-आदीनि ॥

चत्वारि ऽ, भूतानि ऽ, भौतिकधर्माः ॥

वर्णगन्धरसस्पर्शः ऽ, एतेषा ॥

समुदायः ऽ, रूपपरमाणुः ऽ, अष्टकः ऽ, इत्यादि ॥

इतरे ऽ, वर्णयन्ति ऽ पृथिवी-अप-वेजस्-वायवः ऽ,

काठिन्यादि-द्रवत्वादि-उष्णत्वादि-रूपत्वादि

गुणाः ऽ, आविष्काः ऽ, परमाणवः ॥

कार्यस्य ऽ, आरम्भकाः ॥

=इसरे (अर्थात् सौदमसी) वर्णन करते हैं कि पृथिवी बल-वेज-वायु (=आदि)

=चार विशेष गुणवाले द्रव्य हैं (=भूतानि) इन विशेष द्रव्योंके स्वभाव और धर्म

=रूप, गंध, रस, स्पर्श हैं इन (पृथिवी, जल, तेज, वायु, धर्म, गंध, रस, स्पर्श) का

=समुदाय रूप परमाणु अष्टक है ऐसे और (वातों भी मानते) हैं

=अन्य (अर्थात् चार्वाक मता) करते हैं कि भूमि, जल, अग्नि, पवन, (क्रमसे)

=कठोरतादि, कृदनापनादि, व्याधि, प्रेरणत्वादि (=रूपत्वविधि)

=गुण वांछे भिन्न भिन्न वातिवाले परमाणु हैं ।

=वे भिन्न भिन्न वाति वाले परमाणु पृथिवी आदिक स्कंध रूप) कार्य के

=आरम्भ करने वाले हैं । (इस संका मतार्थ यह है कि) भूमि के परमाणु के

काठिन्यादियुग और जलके परमाणुओंके द्रवत्वादियुग और अग्निके परमाणुओंके उष्णत्वादियुग और पवनके परमाणुओं
के ईरणत्वादियुग हैं वे भिन्न भिन्न परमाणु पृथिवी आदिक भिन्न भिन्न स्कन्ध अपनी अपनी वातिरूप उत्पन्न करते हैं ।
(इस प्रकार दो पृथिवी आदिक पदार्थों के कारण में विपर्यय मानते हैं)

=येदाभेदविपर्यासः ऽ, कारणतः ॥ कार्यम् ॥

अर्थात्परस्परम् ॥ एवम् इति ॥

=भिन्न पदार्थ (=अर्थान्तर) ही होता है अर्थात् पृथिवी आदिक परमाणु नित्य हैं स्तिन
से स्कन्धरूप जो कार्य उत्पन्न होते हैं वे उन परमाणुओंसे भिन्न हैं वा गुणसे गुणी

भिन्न ही है वा द्रव्यसे गुण पृथक् ही है

पटाभिवासी क्षमस्त्वस्याय क्रीकृष्ट एच्छेत् और विमक्त्यर्थे सहित स्वाभिधिदिक्षा क्षम्यथा हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३२,

अनर्थान्तरमृतमेवेति च परिकल्पना ॥ स्वरूपाविपर्ययास रूपादयो निर्विकल्पा सन्ति न अन्येव वा । तदाकारणरिणते विज्ञानमेव । न तदालम्बनं वस्तु बाह्यमिति ॥ एवमन्यानपि परिकल्पनाभेदान् दृष्टष्टविरुद्धा भिध्यादर्शनोदयात्कल्पयन्ति तत्र च श्रद्धानुमुत्पादयन्ति । ततस्तन्मातृज्ञान श्रुताज्ञान अवध्यज्ञानं च भवति ॥ सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्कार्याधिगमे श्रद्धानुमुत्पादयति । ततस्तन्मातृज्ञान श्रुताज्ञानमविज्ञानं भवति आह प्रमाणं

अनर्थांतरस्य १॥ इत्यर्थः ॥ एवम् इति १॥ परिकल्पना १॥ = और (=च) (कारणसे काये) अग्निस पदार्थ ही होता है इस प्रकार (किसी किसीकी)

कल्पना या मानना है । जैसे घट पटादिक और ग्राम वन पर्वतादिक ब्रह्मसे उत्पन्न हुए हैं वा ब्रह्मही हैं जड़े नहीं हैं ॥ (इत्यादि भेदाभेद विपर्यास है जहां भेद होय वहां अभेदही कल्पना जहां अभेद होय वहां भेदही कल्पना, ऐसे विपर्यय योगियोंकी है) = स्वल्प विपर्यास जैसे रूपादिक निर्विकल्प हैं अर्थात् इनकी कल्पना नहीं होसकती है (ऐसी वैभाष्यक मतवालों की कल्पना है)

= अथवा रूपादिक कौरे पदार्थ नहीं हैं

= उन (रूपादिक) के आकारपरिणया विज्ञान ही है

= तिस (विज्ञान) के आधारभूत या अवलम्बनरूप बाह्यद्रव्य (स्वादिक) नहीं हैं

(विज्ञान बाह्यतवाधियोंका जो बौद्धस्तका एक भेद है ऐसी ऊपर कही हुई कल्पना है)

= तस प्रकार अग्निस अक्षुत (=परि) इत्यना के भेदों को भी

= जो प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाण से विरुद्ध हैं सिध्दात्त के उदय से

= मानते हैं । और (=च) तहां प्रतीति या रूपि (=अज्ञान) को उत्पन्न करते हैं

= तिससे वह (=उत्प) कुमविज्ञान (वह) कुमुत्तज्ञान

= और (वह) कुज्याविज्ञान वा विमर्ग अवधिज्ञान होता है ॥ और सम्यक्त्व

= यथार्थ वायबावस्थित (=उत्प) वस्तु या पदार्थके (=अर्थ) माननेपर प्रतीति उपभावा है

= तिससे वो मयिज्ञान (=उत्प) दृष्टज्ञान

= (वह) अवधिज्ञान होता है । पक्षया है कि प्रमाण (प्रत्यक्ष और परोक्ष)

स्वरूपविपर्यासाः ॥ इमादयाः ॥ निर्विकल्पाः ॥ सन्ति

न सन्ति ॥ एवम् वा ॥

वद-आकार-परिकल्पाम् ॥ विज्ञानम् ॥ एवम्

न तत्त्व-आत्मनम् ॥ वस्तु ॥ वाक्यम् ॥ इति ॥

एवम् ॥ अन्तान् ॥ अपि ॥ परिकल्पनाभेदान् ॥

पटविकल्पान् ॥ सिध्दात्तदर्शनद्वयम् ॥

कल्पयन्ति ॥ एवम् ॥ श्रद्धानम् ॥ उतादयानि ॥

तदाः ॥ तत् ॥ मयि ॥ श्रद्धानम् ॥ श्रुत-अज्ञानम् ॥

च अवधिज्ञानम् ॥ भवति ॥ पुनः ॥ सम्यग्दर्शनम् ॥

तत्त्व-अर्थ विपर्यासम् ॥ श्रद्धानम् ॥ उत्पादयन्ति ॥

तदाः ॥ तत् ॥ मयिज्ञानम् ॥ श्रुत-अज्ञानम् ॥

अवधिज्ञानम् ॥ भवति ॥ आह ॥ प्रमाणम् ॥

पदानांवासी अकारसङ्गाय एकीकृत पदच्छेद और निमित्त्यर्थ साहित सर्वावसिद्धिका सम्बन्ध निदि अनुवाद । अप्याय १ एव ३२, ३३ द्विश्रकार वर्णितम् । प्रमाणेदेशाश्च नयास्तदनन्तरहोत्रभाजो निदेशन्या इत्यतआह ॥

नैगमसग्रहव्यवहारजसूत्र शब्दसमभिखण्डवैभूता नयाः ॥३३॥

द्विश्रकारयः, वर्णितम्, ॥ प्रमाण-यक-पेक्षाः, च नयाः, ।

— दो प्रकार कवन किया गया है और (=च) प्रमाणके एकदेश (ने) नय (ने) सङ्-अनन्तर (=प्रमाणनपरिचामाः इल एव यो) उस (प्रमाण) के अत्यन्तसमीप (=अनन्तर) उरेश भाजः । निदेशन्याः, इति० अता० आह ॥

— नाममात्र कडे (=उपेक्षामात्र) (अब) कवन किये जाने योग्य हैं । इसलिये कहते हैं कि नैगमसग्रहव्यवहारजसूत्रशब्द समभिखण्डवैभूता नया ॥३३॥

— नैगमसग्रहव्यवहारजसूत्रशब्दसमभिखण्डवैभूता (सप्त) नयाः : (यवन्ति) ॥३३॥

नैगम-सग्रह व्यवहार ऋतुसूत्र-सूच्य

समभिखण्ड एकवृक्षाः, सप्त, नयाः, यवन्ति ॥

(१) सप्तशतसूत्र = व्यवहार + ऋतुसूत्र (सोने पाक्य ठीक है वेला दिवणी सूट ७७) ॥ (२) एकवृक्ष = एकगुह (सोने दिवणी सूट ५ और नीचे की टि०) । च पदान दो का किसी प्रणय के अन्तमें दो और इस य के पदवाच्य को व्याख्यान आवे तो य का विरुद्धकार अनुस्वारमें परिकल्प होजाता है यदि इस य के पदवाच्य शु-ब-सु-र-द आवे तो य अवश्य ही अनुस्वार में पसद आवेगा । यदि इस य को अनुस्वार में न पसद हो उन अनुवाचितिक शु-ब-सु-र-द य परिपक्ष होमा किस वग का व्यञ्जन इस य के पीछे आवे और यदि इस य के पदवाच्य यु-द-सु-म से को आवे तो य अनुवाचितिक पू-य य में ऋतुसूत्र का वथायोग्य पसद आवेगा । अतः एकय + नृतात्म्या शब्द का य अनुस्वार में पसदकर एव नृतात्म्या पेसा शब्द बना । इसलिय परम्पूरात्म्या और एकसूत्रात्म्या शोनों धामय ठीक है ॥ (साधारणतः मागोपदेशिका सूट १३) (३) स्वेताम्बर आत्मायके नामाच्य में हमारे पक्ष के तैदीसर्वा सूत्रके स्थान में " नैगमसग्रहव्यवहारजसूत्रशब्दा नयाः" कोटीशर्मा सूत्र है । इन कोटीशर्मा सूत्रके अन्तगा ही ध्यापदाश्वी द्विभिन्ने" (= कारिकी नगमनय) के दो (येव) शब्द (एव) के धनि जेव हैं) पेसा समाच्य० में पेशीसर्वा सूत्र है ॥ (सोको सूट ७९४) ॥ नय (वेको) ७० अक्षर की बचनिका मुद्रित सूट १९५) ॥ दोनों अन्त्या की य वेदावली निखीती है । नय

नय (वेको) समाच्यत्वाग्रिमियमसूच्य सूट ३१)



अधिरोगरूप साध्य फलार्थ को मानै सो नय है । तबकें उपर्युक्त सातमेद हैं ॥

[illegible]

(१) चित्तने द्रव्य है—ये अपनी श्रुत, भविष्यत्, वर्तमान काल की समस्त पर्यायों से

() एक अर्द्धवद्रूपको येदक्य विषय ॥ तैवाद्ये क्षणको सद्रूपतुल्य व्यवहार भव्य ॥ इत्ये—अधिक के—छात्रात्मिक वा मतिज्ञातात्मिक गुण है ॥ (अन विद्वान्मत्त मतेतिहास पृष्ठ ३३) वृत्तान्तके शब्दमयुक्त व्यवहार और अनुसृतसद्रूपतुल्य व्यवहार से वा सेव है ॥

() नृपगुण और शब्दगुणिका येद कहना किस प्रकार अधिक के केवलकाव्य है गुण है अथवा शब्द पर्याय और शब्द पर्यायीका येद कहना जिन प्रकार सिद्ध ओषधी निम्न पर्याय है यह शब्द सद्रूपतुल्य व्यवहार है ॥ () अथवागुण और अनुसृत गुणीका येद कहना उसे अधिक के मतिज्ञातात्मिक गुण है अथवा अनुसृत पर्याय और अनुसृत पर्यायीका येद कहना उसे समान ओषधी है वही पर्याय है यह अनुसृत सद्रूपतुल्य व्यवहारालय है ॥

() 'अथ सद्रूपतुल्य गुण काव्यके कहै सो असद्रूपतुल्य व्यवहार है' अथ ० पृष्ठ ३१४ जिसके द्वारा स्वभावति सवर्षी असत् व्यवहार होता हो वह स्वभाव सद्रूपतुल्यव्यवहारालय है जैसे परमाणु बहु प्रवेशी है । वहाँ पर बहुप्रवेशी प्रत्यक्ष द्रव्य परमाणुका सञ्जातीय है परन्तु परमाणु बहु प्रवेशी नहीं वह एक प्रवेशीही है इसलिये एक प्रवेशीके रचानमें वह प्रवेशी कहनेसे 'परमाणुको बहु प्रवेशी कहना' समान अस्तीय असद्रूपतुल्य व्यवहारालयका विषय है । () जिस मयके द्वारा विद्यति सवर्षी अन्तः व्यवहार होता हो वह विज्ञातसद्रूपतुल्य व्यवहार है जैसे अहाँ एकनिद्रयात्मिक वेद सो प्रसन्न स्वयं है ठणको अधिक कहना सो असमान ज्ञातीय असत् सद्रूपतुल्य व्यवहारालयका विषय है ॥

() जिस लयके द्वारा स्वभावति विद्यति सवर्षी अन्तः व्यवहार हो वह स्वभावति विज्ञातसद्रूपतुल्य व्यवहारालय है जैसे अहाँ मतिज्ञानको श्रुतीक कहना कर्त्तव्यिक श्रुतीकसे उपजे है तथा जैसे है । जहाँ मतिज्ञान सो असर्वात्मिक अधिकत घन है और श्रुतीकका पुनरुक्त घन है यह सिद्ध असद्रूपतुल्य व्यवहारालय ॥ (अथ उपपत्तरच) जैसे क्षण क्षणका विजातीय है शान्तिको क्षणका आधार कहना स्वभावतिविज्ञातसद्रूपतुल्य व्यवहारालयको विषय है ॥

() अन्तर्गत सिद्ध पदार्थोंको आ अभेदक्य प्रत्यक्ष करे उभक्तो उपचरित व्यवहारालय अथवा उपचरित असद्रूपतुल्य व्यवहारालय कहते हैं । जैसे हाथी घोड़ा, गध मेरे है इत्यादि । इसके भी हीम येद (१) स्वभावतुल्यव्यवहारात्मक व्यवहार वा सामान ज्ञातीय उपपत्तरका उपपत्तर है । जैसे हाथी सद्रूपतुल्य व्यवहार वा विजातीय उपपत्तरका उपपत्तर (२) स्वभावति विज्ञातसद्रूपतुल्य व्यवहार वा सिद्ध उपपत्तरका उपपत्तर है ॥ जिस लयके द्वारा स्वभावति सवर्षी भावोपित असत् व्यवहार है जैसे अमी, पुत्र, पुत्री, माता, पिता आदि मेरे हैं वहाँ पर अमी पुत्र, पुत्री, माता, पिता अस्ती नहीं

अन्यरूप (व्योदरूप) है अपनी किसी भी पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है। सो

[illegible]

"दा नामस्ते मेव होत है । द्रव्यनिर्गम, पर्यायनिर्गम, प्रकृतपर्यायनिर्गम । तहाँ द्रव्य नामके बोध भेद है । शुद्धद्रव्यनिर्गम, अशुद्धद्रव्यनिर्गम । बहुवि पर्यायनिर्गमके तीन भेद अथपर्यायनिर्गम, व्यवहनपर्यायनिर्गम, अत्यव्यवहनपर्यायनिर्गम । बहुवि प्रकृतपर्यायनिर्गमके चारि भेद शुद्धद्रव्यापचर्याय निर्गम अशुद्धद्रव्यापचर्यायनिर्गम शुद्धद्रव्यव्यवहनपर्यायनिर्गम, अशुद्धद्रव्यव्यवहनपर्यायनिर्गम ऐसे नामप्रत्यये गण्यमव भये । तहाँ कथाहरण अर्थात् सम्प्रदाय का विगत सम्प्रदाय (= सप्त माध) शुद्धद्रव्य है तथा यद्वा निर्गमनय सत्त्वय करे है ओ सम्मान द्रव्य सम्प्रदायस्तु है, ऐसे छह तहाँ सम्प्रदाय विधेयत्व भया ताते गौण है । बहुवि द्रव्य विधेयत्व भया ताते मुख्य है यद्वा शुद्धद्रव्यनिर्गम है । बहुवि ओ पर्यायवान् है सो द्रव्य है तथा शुद्धवान् है सो द्रव्य है ऐसा व्यवहारभव भव करि कहे हैं । ताका यद्वा निर्गमनय सत्त्वय करे हैं । तहाँ पर्यायवान् तथा शुद्धवान् यद्वत्तौ विधेयत्व भया ताते गौण है बहुवि द्रव्य विधेयत्व भया ताते मुख्य है । ऐसे अशुद्ध द्रव्य निर्गमनय भया" ॥

() बहुरि प्राणीके सुखनयेवना पै सो क्षण र्वसी है येले क्षणमसी येसा तौ सतावा अय पर्याय है सो विशेषण है बहुरि सुख है सो संवेदनका लयपर्याय है सा। पियोल्य मया तावे मुख्य है । तावे यहू अयपर्याय नैमम मया ।।

एतदनिवासी जगत्सुखसहाय वहीलक्ष्मण पदच्छेद और विमलसूर्य सहित सर्वाधिसिद्धिका सुखका, हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३२,

मान विनासीके दिन भी वर्द्धमान मगवान् मोसको गये । यहाँ पर यथापि मगवान् को मोक्ष गये सहस्रों वर्ष नीत गये पंतु सत्तारो वेसा व्यवहार होता है अर्थात् उस सहस्रों वर्ष पहलेके दिनका चक्रव्यवहार आजकल चिन्तन किया जाता है । अतः नेगम नयकी अपेक्षा ही उसका वाक्य ठीक समझा जाता है (२) जहाँ पर होने, बाले पदार्थों से शुद्धनक समान सकृत्वात्मा जाता है वा कवन किंसावाता है उसकी भावा वा मन्त्रिय नेगम कहते हैं । जैसे अर्धेन सिद्ध एव अपात अर्धेन मगवान् सिद्धी हैं । यथापि अस्तव आगे । यह हाँगे अनी जिह्म हुये नही है होने बाले हैं यथापि होशुक्नेके समान कवन किया गया है इसलिये इसको मानि नेगम कहते हैं ॥ (३) जहाँपर कोई काम करना आरम्भ कर दिया हो चाहे वह योग्य बना हो चाहे योग्य नही न बना हो यथापि उससे बने हुयेके समान करना यह वत्मान नेगमनय है । जैसे कहीं पुल्ल तोटी बनानेकी सामग्री इकट्ठी कर रहा है और उसे किसीने कुछा क्या करता हो ? वह उत्तर क्या है कि रोटी बनता है किन्तु यहाँ रोटी बनानेके पयाय अमीतक प्रगत नहीं हुई केवलमात्र लक्ष्मण बल और अन्य सामान रख रहा है यथापि वत्मान नेगम नयसे ऐसा कवन कह सकता है कि 'रोटी बना रहा है ।

(२) जो एक वस्तुका समस्त आविर्भाव और उसकी सब पर्यायोंको संग्रहण करके एक स्वल्प कहै, उसको संग्रहनय कहते हैं जैसे 'घट' कहनेसे सब घटोंको समझना अपना द्रव्य कहनेसे जीव अजीवादि तथा उनका येद प्रयदादि सबका समझना सा है ॥

(३) जो संग्रहनयसे ग्रहण किये पदार्थोंका विधि पृथक (व्यवहारक अनुकूल) व्यवहारण अर्थात् येद प्रयद कर सा व्यवहारनय है । जैसे संग्रहनयसे 'द्रव्य' कहनेसे समस्त येद प्रयदेद्रूप द्रव्योंका सामान्यतास ग्रहण होता है । परन्तु द्रव्य दो प्रकारक है जीव और अजीव । जीवदेव नारकी मनुष्य विषय चार प्रकारक हैं । अजीव पुद्गल, धने, अवयव, काल, भाकाश्च यथाच प्रकारक है । इस प्रकार व्यवहारक साक्षक जतन येद प्रयदेद्रोसके उनको जाने सा व्यवहारनय है । सारांश—संग्रहनयसे ग्रहण किये हुये पदार्थोंको लोकव्यवहारक अनुसार वा बोधसे येद प्रयदेद्रोसक कहिकि स्मिन् किंसा प्रकारका विभाग न हो सके । सो जहाँ मनुज सूत्रका विषय है तिसके पहलेउक्त संग्रह और व्यवहार दोनोंनय बल बाय है ॥

(४) अर्थात् अनागत दर्शना पयायोंको छांटकर वर्तमान पयाय मात्रको ग्रहण कर सा मनुजुद्धनय है ॥ अर्थात् द्रव्यको पयाय समय समय (=कालका सतत छीटे माग) में पारणमती (पठती) रहती है । सो एक समयवर्षा पयाय को अथ पयाय कहते हैं । अब पयाय भी मनुजुद्धनयका विषय है । मनुजुद्धनय वर्तमान एक समय मात्रको पयायको करता है । अर्थात् अनागत समयको पयायको ग्रहण नहीं करता । जैसे कोई पुल्ल कहिसि आकर बैठा है किसी दूसरे ने पूछा कहाँ माई कहाँसे आरहे हो ? उस समय उसका यह कहना कि कहिसि नहीं आरहा है क्योंकि उस समय गमन क्रियाका सर्वथा अभाव है अतः शुद्ध वर्तमानकी अपेक्षा 'इस समय कहिसि नहीं आरहा है' यह मनुजुद्धनय का विषय है और ठीक है ।

(५) जो व्याकरण संबंधी लिना, संख्या (वचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपग्रह (=परसंपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यापिचारोंको (=दोनोंको) हर करके जाने वा कहें उसे छन्दनय कहते हैं (इसके उदाहरण श्रुतिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थोंको छोड़कर प्रधानतासे जो एकही अर्थमें रूढ (=प्रसिद्ध) हो उसी अर्थको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जाने वा कहें सो सममिष्टनय है। जैसे—गो छन्दके वाणी शुषिबी गमन आदि अनेक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पशुका ही ग्रहण किया जाता है। यहाँ पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोती, उठती, पंछती, वलती, फिलती, किसी भी अवस्था में वह क्यों न हो सब लोग उसको गायही कहते हैं। सो यह सममिष्टनय है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसही नामसे जाने वा कहें उसको एवं भूत नय कहते हैं ॥ जैसे देवों के पवित्रे परम ऐश्वर्य सहित हो, उसी अवस्थामें इद्र करना पूजन, अभियेकादि करके हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह शक्तिरूप क्रियाको करे उसी समय 'शक्त' कहना अन्य समयमें शक्त नहीं कहना ॥ यहाँ पर "एवमयम्" = ऐसा होना इस एवंभूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निर्णय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवंभूत नय माना है कारणमें काय का उपचार है अर्थात् एवंभूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और काय एवमयनय है ॥

(१) सममिष्ट और एवंभूत नयोंमें यह भेद वा अंतर है कि व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ क्या है (अर्थात् व्याकरणकी रीतिले शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस बातका छत्र मी विचार न कर प्रसिद्ध अर्थका जान लेना सममिष्टनयका विषय है 'गो' शब्दका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ 'गो गमन करे सो गाय है यह है इसका ही विचार न करना किंतु हमके रसों, किरण, वज्र अथ मयंक, वायु, सूर्य, इति, शायी, विद्या माता वाणी, मृमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'गाय' केना और सब अर्थोंको छोड़ कर उस गायका सोती उठती, बैठती वलती सब अवस्थाओंमें गाय कहना यह सममिष्टनय कहना इत्यादि अनेक अर्थोंका व्युत्पत्तिसिद्ध अर्थ परमेश्वर्यका योगमा है इसका ही विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुत्रोंका पितारूप पूजा करने समय, अभियेक करने समय इत्यादि सब अवस्थाओंमें इन्द्र कहना यह सममिष्टनयका विषय है। परंतु अहमिर केवल व्युत्पत्ति सिद्ध अर्थ विषय हो वा ग्रहण हो वह एवंभूत नय है जैसे गमन करने वालीको ही गाय कहना लकी रहने वाली या सोने वालीको गाय न कहना या जिस समय इन्द्र परमेश्वर्यका माग कर रहा हो उसी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह एवंभूत नयका विषय है ॥

पदानिवासी क्षारुस्वभाव इति सूत्रं पदच्छेद और विभक्त्यर्थे एतत् सर्वाधिकारिका इत्युक्तः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३
एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं वक्तव्यम् । सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्येनैकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्य
विशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणयोगो नयः । स द्वेधा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहितं तैत्तिरीयां सूत्रं पर सर्वार्थसिद्धिवृत्तिवा शब्दश्च हिंदी अनुवाद ॥

एतेषाम् १। सामान्य-विशेष-सम्बन्धम् ॥॥ इत्युक्तम् १॥॥

तावद्वस्तु सामान्य-सम्बन्धम् ॥॥ अनेकां तावत्समि ।

वस्तुनि ३। अविवेचने १। हेतु-अर्पणम् १॥॥

साध्य

विशेषस्य १। याथात्म्य-प्रापण-

प्रवण-योगः १। नयः १

१ (१-यो) का संश्लेषस्वरूप और व्योम वायु (विवेचन) स्वरूप करने योग्य है

= १३३ (तावत्) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला

= वस्तुमें अविवेचक (निर्विचार) अविवेचकतासे हेतुरूप समर्थन करनेसे

= साध्य (परार्थ) के (जिस पद का) सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके)

= विशेषका वा व्योमवायुका वयर्थ स्वरूप (= याथात्म्य) प्राप्त करने को

= व्यापाररूप प्रयोग सो नय है म धर्म वस्तुमें अनेक धर्म का स्वभाव होते हैं उनमेंसे

किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविवेचक (किंवा किसी दोषके) जिसकरि

साध्य (साधनीय वा सिद्ध क्रिये जाने योग्य पदार्थ) जाना जाय सो नय है

सा १। इत्युक्तः द्रव्यार्थिकः १। च पर्यायार्थिकः १। इति १॥ च पर्यायार्थिक और (= च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं १

(१) नयकी परिभाषा अने प्रकार सम्भव में आवे। अतः उत्तरार्थे राज वार्तिक ने कहे है "प्रमाण प्रकाशितार्थ वित्तोप प्रकृष्टो नयः" प्रमाणकरि प्रमाण का क्रिये परार्थः १। विशेष प्रकृत्य करने वाला (= निर्वेग व्योमवायु कथन करने वाला) जो जान है सो नय है। आचार्य प्रमाण के द्वारा प्रमाणित अस्तित्व भास्वित्य, मित्य, अनित्यत्व आदि ज्ञान धर्म स्वरूप वा अंगत स्वभाव वाले जीव ब्रह्मीय आदि पदार्थों को एक देश रूप से निकटतम करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ प्रकृत्यमान वा प्रकृत्य ज्ञानको प्रमाण कहते हैं ॥ वह एक धर्म द्वारा पदार्थके सब धर्मोंको जान लेता है इसलिये सबको जाननेके हेतुसे वस्तुका धर्म समझायेला है ॥ "प्रमाण प्रकाशितोपलब्धि" इसके अनुसार जहाँ 'प्रमाण प्रकाशित' पदका लक्ष्य है उसका यह तात्पर्य है कि जो परार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है वस्तुके प्रकृत्य को येव प्रमेव करते निर्वेग कथन करने वाला नय है (अतः जिन पदार्थों का प्रमाण प्रमाणभास्य स है (= सर्वत्र ज्ञान द्वारा है) उनका प्रमाण नय नहीं है मित्यनय (प्रकारात्) है तथा वस्तु नयके अर्थमें कथन शब्दके स्थान में जो प्रकृत्य शब्दका लक्ष्य है वस्तुतः वास्तव्य यह है कि प्रमाण प्रकाशित अंगत धर्म समझकर

(५) जो व्याकरण संबंधी लििंग, सख्या (धचन), साधन (पुरुष), काल, पुरुष, उपसर्ग, उपसह (=-परस्मैपद, आत्मनेपद) आदिक के व्यभिचारोंको (=दोषोंको) दूर करके जाने वा कहें उसे श्रव्यनय कहते हैं (इसके उदाहरण श्रुतिके अनुवादमें बहुत दिये हैं)

(६) अनेक अर्थको छोटकर प्रधानतासे खो एकही अबमै लब्ध (=प्रसिद्ध) हो उसी अबको विषय करने वाला हो अर्थात् उसी अर्थको जानने वा करने से सममिलनयन है। जैसे—गो झुड़के वाणी पुबिबी गयन आदि अनैक अर्थ होते हैं तथापि मुख्यता से गो नाम गाय नामा पडुका ही प्रत्यक्ष किया जाता है। यहाँ पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि सोली, उठली, बल्ली, फिल्ली, किसी भी अवस्था में वह बच्चों न हो सब लोग उसको गावही करते हैं। सो यह सममिलनयन है।

(७) जिस कालमें जो क्रिया करता हो उसको उस कालमें उसी नामसे खाने वा कहें उसको एव सूत नय कहते हैं ॥ जैसे वैंवों के पतितो परम देख्य संहित हो, उसी अवस्थामें इंद्र कहना, अमियेकादि करते हुये इन्द्र नहीं कहना तथा जिस कालमें वह द्युत्तरूप क्रियाको करे उसी समय 'द्युक्' कहना अन्य समयमें द्युज नहीं कहना ॥ यहाँ पर "एवसूयस" = ऐसा होना इस पूर्वसूत नय के अर्थ की प्रतीति (=निश्चय) शब्द से होती है इस लिये शब्द ही एवसूत नय माना है कारणमें काय का उपचार है अर्थात् एवसूत नय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और काय पूर्वसूतनय है ॥

(१) समामित्य और पवन्युत नयोंमें यह मेघ वा अंतर है कि ध्युलपि सिद्ध अर्थ क्या है (अथर्व व्याकरणकी रीतिसे शब्दके साधनमें क्या अर्थ होता है) इस बातका कुछ भी विचार न कर प्रसिद्ध अर्थका आज देना समामित्यनयका विषय है 'गो' शब्दका ध्युलपित्सिद्ध अर्थ 'ओ गमन करे सो माय है यह है इसका तो विचार न करना किंतु ठमके स्वर्ग, किरण, नक्षत्र, अक्ष, अर्धवृत्त, ध्रुव, दधि, बाली, विद्या माता बाली मृमि इत्यादि अनेक अर्थोंमें प्रसिद्ध अर्थ 'माय' देना और सब अर्थोंको छोड़ कर उस मायका सोती उठती देवनी श्रुती सब अवस्थायोंमें गाव कहना यह समामित्य करना विनय है । ऐसेही इन्द्र शब्दका ध्युलपित्सिद्ध अर्थ परमैश्वर्यका मांगना है इसका तो विचार न करना किंतु शक्तिमान होना पुरोहित विचारण, पूजा करते समय, अग्निप्रेष करते समय इत्यादि सब अवस्थायोंमें इन्द्र कहना यह समामित्यनयका विषय है । परंतु अहीर केबल ध्युलपि सिद्ध ही अर्थ विषय बा वा ग्रहण हो वह पवन्युत नप है जैसे गमन करने वाळीको ही गाव कहना बाली चले वाली वा सोने वाळीको गाव न कहना बा किंतु समय इन्द्र परमैश्वर्यका मांग कर रहा तो उनी समय इन्द्र कहना अन्य समय इन्द्र न कहना यह पवन्युत नयका विषय है ।।

पदानिवासी अगुरुसहस्रान् बलीलङ्घन पदच्छेद और निभक्त्यर्थे सति सर्वार्थसिद्धि का प्रत्यक्षः हिंदी अनुवाद । अर्थात् १ सुख ३२
एतेषां सामान्यविशेषलक्षणं चक्ष्यम् । सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्येकान्तात्मन्यविरोधेन हेत्वर्पणात्साध्य-
विशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणप्रयोगो नय । स द्वेषा द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्चेति

पदच्छेद और विभक्त्यर्थे सहित तृतीसवां सूत्र पर सर्वार्थसिद्धिवृत्ति का शब्दगः हिंदी अनुवाद ॥

पदेष्टम् ॥ सामान्य-विशेष-लक्षणम् ॥ चक्ष्यम् ॥

वाचक सामान्य-लक्षणम् ॥ अनेका द-आत्मनि ।

वस्तुनि ॥ अविवेचन ॥ हेतु अर्पणात् ॥

साध-

विशेष ॥ याथात्म्य-प्राप-

प्रवण-प्रयोग ॥ नयः ॥

१-यो का संश्लेषस्वरूप और म्योता वार (=विशेष) स्वरूप करने योग्य है
=ग्रहण (=वाचक) सामान्य स्वरूप (यह है कि) अनेक धर्म स्वरूप वा स्वभाव वाला
=वस्तुमें अविवेचक (=निर्वाचनासे) अधिकृततासे हेतुरूप समर्पण करनेसे
=साध्य (पदार्थ) के (जिस पदार्थ को सिद्ध करना चाहते हैं उसका वा साधनीय वस्तुके)
=विशेषका वा व्यतिरेकका यथार्थ स्वरूप (=याथात्म्य) प्राप्त करने को

=व्यापाररूप प्रयोग सो नय है म धर्म्य वस्तुमें अनेक धर्म वा स्वभाव होते हैं उनमेंसे

किसी एक धर्मकी मुख्यताकरि अविवेचरूप (=विना किसी दोषके) विसकरि

साध्य (साधनीय वा सिद्ध किये जाने योग्य पदार्थ) जाना जान सो नय है

सः ॥ द्वेषाऽऽ द्रव्यार्थिकः ॥ च पर्यायार्थिकः ॥ इति ॥ नयः (नय) दो प्रकार द्रव्यार्थिक और (=च) पर्यायार्थिक ऐसे हैं

(१) भण्डी परित्याग मन्ने प्रकार समस्त में आवे कदा कदायं राज यातिक से लेते हैं "प्रमाण प्रकाशितार्थ विशेष प्रत्यक्षो नयः" प्रमाणकरि
प्रकाश का किये पदार्थः । विशेष प्रकल्प करने वाला (=निर्देश पदार्थकार कल्प करने वाला) जो ज्ञान ही सो नय है भावार्थ प्रमाण के द्वारा
प्रकाशित अस्तित्व वास्तव्य, विद्यात्वं, जगद्व्याप्य आदि अगण धर्म स्वरूप वा अनंत स्वभाव वाले जीव सजीव आदि पदार्थों को एक देश रूप से
निकटत्व करने वाला है उसको नय कहते हैं ॥ व्याख्या ॥ प्रकृतमान वा प्रकृत मानको प्रमाण कहते हैं । वह एक धर्म द्वारा पदार्थिक रूप धर्मोको
ज्ञान देता है हमसिये सत्त्वको ज्ञानके हेतुके वस्तुका कार्य सम्भावित है ॥ "प्रमाण प्रकाशितार्थार्थार्थि" कवके प्रकल्पों आ "प्रमाण प्रकाशित"
पदका वस्तु है उसका यह तात्पर्य है कि जो पदार्थ प्रमाण के द्वारा प्रकाशित है उसीके पदार्थको जो प्रेक्ष्य प्रमाण रूपसे निर्देश कल्पन करने वाला
नय है (यन्तु तिन पदार्थों का प्रकाश प्रमाणमात्र स है (=सर्वत्र ज्ञान द्वारा है) उनका प्रकाशक नय नहीं है सिद्धान्त (प्रकाशक) है तथा कथ
नयके ज्ञान में कल्प शब्दके स्थान में जो प्रकल्प तात्पर्य कहते हैं कि प्रमाण प्रकाशित अनंत धर्मस्वरूप

एतान्निवासी अंगारूपसिद्धिमे षष्ठीकृत्य षष्ठ्येभ्यो ओर विभक्त्यर्थे सहित सर्वाधिकसिद्धिः। अन्वयः। तद्वत् अनुवादः । अथाप्य १ क्त ३३
तयोर्भेदा नेमादयः ।

स्योः । मेदाः । नेम-

आदयः ।

उच्यते। (द्रव्याधिक्ये और पार्थिविक नयो) के भेद नेम-
संग्रह, व्यवहार, प्रत्यक्ष, अन्वय, सममिलन, एवंमत्त हैं अर्थात्

अपवादः प्रत्यक्षः ।। पयः ।। अन्वयः ।। न गुणकर्मणी ।।
तदु अपरस्याख्यातः ।। इति० द्रव्याधिक्यः ।।
पार्थिवः ।। पयः ।। अन्वयः ।। (सा पार्थिविकः) इति।
अपवादः-आदि सहायः ।।
न० तदाः अन्वयः प्रत्यक्षः ।। इति० पार्थिविकः ।।
अपवादः अर्थेऽपि गम्यते ।। निष्पद्यते ।।
इति० अर्थः ।। कार्यः ।। इति० न पार्थिविकः ।।
इति प्रत्यक्षः कारणात् ।। अन्वयः एव अर्थः अन्वयः ।।
कार्यम् न अर्थोत्तरान् न च कार्यं कारकमेव ।। अन्वयः एव अर्थः ।।
तद् अन्वयः ।। पार्थिविकः ।। एव० पार्थिविकः ।।
प्रत्यक्षः इति० द्रव्याधिक्यः ।। पयः ।।
तस्मात् अन्वयः ।। पार्थिवः ।। पयः ।।
अर्थः ।। कार्यम् ।। अन्वयः ।। न० प्रत्यक्षः ।।
अतीतानामर्थोः ।। विनिष्ठागुणकमेव ।।
व्यवहारः समावृत्तः ।। न० ।। पयः ।। पयः ।।
कार्यकारणपदश्रमम् ।।

— या द्रव्यही है अथान्न जिसका गुण कम है है (प्रमाण कम) नहीं है
— क्योंकि ये (— तदु = गुण और कम) (द्रव्य ही) अवस्थागत है ऐसा द्रव्याधिक्य है
— पार्थिव ही है अथान्न (— अर्थ) जिसका सा पार्थिविक है क्योंकि रूपविगुण
— और विशेषण या उत्तर को रोकना आदि कर्मक (पार्थिव ही है)
= तिन (पार्थिव) से (मिथ) अन्य द्रव्य (कार्य पार्थिव) नहीं है ऐसा पार्थिविक है
= अपवाद प्राप्त किया आय (— अर्थ) आना आय (— गम्यते) बनाया आय (निष्पद्यते)
= ऐसा आय ही है कार्य को प्राप्त करे (— द्रव्य) कार्यक पार्थिव (— गच्छति)
= यथा इत्येव ही कारण है । द्रव्य ही है अर्थ जिसका (अर्थ) कारण ही
= कार्य है । कार्य दूसरी वस्तु नहीं है । अर्थ कार्य कारण कुछ वक्रपदम् नहीं है
अर्थात् कार्य और कारण बना एक ही स्वभाव है । अर्थ नहीं है
= वे दोनों (कार्य और कारण एक आकार होते हैं) अन्वय और उत्तरी गति (— पयः)
= एक द्रव्य (— इत्य) है । यथा द्रव्याधिक्य (मय) है । (अन्वय) वार्ता और स (— पयः)
= सव आर से (— समेत) = पयः उत्पत्ति हा सा पार्थिव है । पार्थिव ही है
= अथान्न (— अर्थ) कहिये कार्य जिसका न कि द्रव्य है (अर्थात् द्रव्य अथान्न नहीं है)
= क्योंकि अतीतकाका इत्यन्वय ही गुण आगतो काटका इत्यन्त शरीर उत्पद्य नहीं
= (अन्वय) उत्तरी अर्थवत् नहीं वास्तवतः । सा ही एक (वर्तमानकाल) पार्थिव
= कार्यकारण (दोनों नामको) धारण करने वाली है अर्थात् कारण आर कार्य दोनों
नामोंको धारण करने वाली उस वर्तमान कारणीय पार्थिव हीको पार्थिविकत्व
पयः करतव्यता है द्रव्यको नहीं ।।

प्रदानिवासी बगलुस्तथाय कलिकृत पक्षधेद और विमलसर्प सहित सर्वाभिहितिका शब्दः। द्विती अनुवाच । अध्याय २ स्य ३३,

तेषां विशेषलक्षणमुच्यते

नैगम, सैम्य, व्यवहार ये प्रत्यार्थिक नयके भेद हैं और श्रुतुश्रुत शब्द सममिच्छ, एवंश्रुत ये पर्यायार्थिक नयके भेद हैं ॥ नीचे की टिप्पणी देखो ॥

तेषां १। विशेष-लक्षणम् १॥ उच्यते १ = उन (नैमादि सातों नयों) का विस्तारसे (=विशेषण) लक्षण बड़ा जाता है

इति० पर्यायार्थिकः १। अथवा अर्थम् १। अर्थः १।

= येस्य पर्यायार्थिक है । अथवा अर्थ शब्दका (= अर्थस्य) अर्थप्रत्यय (= अर्थ)

प्रयोगवर्धः। अथवा अर्थः, अर्थः प्रत्ययः प्रत्ययार्थिकः १।

= प्रयोग है । प्रत्यय ही दो प्रयोगजन्य प्रत्यय (नय) का यह प्रत्ययार्थिक है

प्रत्यय अर्थप्रत्यय

अनुवाचि विना-प्रत्ययः

निर्देशानु-प्रत्ययः १॥

= क्योंकि (प्रत्ययकी) प्रतीति (= प्रत्यय = विद्वत्ता, निश्चय ज्ञान) नाम' = अभिप्राय

= (प्रत्यय के अनुवाद) प्रवर्तन रूप (एव) चिन्तने (= चिन्ता) देखे जाने वाले (प्रत्यय) के

= चिन्तने को समग्र है अर्थात् संसार में जो प्रत्ययकी प्रतीति होती है, जो संसार

है । एवं प्रत्ययके अनुवाद प्रतीति रूप चिन्त है उनका कोष प्रतीति हो लक्षणा-सारण

प्रत्ययका ज्ञान, प्रत्ययका नाम और प्रत्ययोंमें प्रतीति एव चिन्तसि देखे जाने वाले प्रत्यय

का व्याख्याय वा अन्वय नहीं कहा जा सकता है ॥

पर्यायः। अर्थः। प्रयोगः। अर्थः। इति० पर्यायार्थिकः।

= पर्याय है अर्थ कहिये प्रयाजन प्रत्यय (नय) का देली पर्यायार्थिक है

= क्योंकि (यह नय केवल पर्याय को विषय करती है इस कारण से) शब्द (= शब्द)

= और ज्ञान मात्र (= विज्ञान) वा ज्ञानकी निवृत्ति और प्रतीति (= व्यक्तित्व) के

= आधीन (= निरन्तर) वा कारणप्रवृत्ति (= निरन्तर) को व्यवहार है उसकी प्रतीति है

अर्थात् श्रुत सिद्धि से यह पर्यायकी प्रतीति होती है यहाँ श्रुत शब्दकी और श्रुत

शब्दों से यह, यह, यह प्रत्ययका नाम और प्रत्ययोंमें प्रतीति एव चिन्तसि देखे जाने वाले प्रत्यय

का व्याख्याय वा अन्वय नहीं कहा जा सकता है ॥

की प्रतीति है और यह शब्दों और उच्यते ज्ञानकी प्रतीति रूप का प्रत्यय है

शब्दों से यह, यह, यह प्रत्ययका नाम और प्रत्ययोंमें प्रतीति एव चिन्तसि देखे जाने वाले प्रत्यय

का व्याख्याय वा अन्वय नहीं कहा जा सकता है ॥

(१) अथवा अर्थम् और शब्दस्य पर्ये श्री को सेव दोहे है अर्थात् नैगम, सैम्य, व्यवहार ये चार अर्थ वा प्रयोगजन्य प्रत्ययार्थिक प्रयोग हैं ॥

अनभिनिवृत्तार्थसङ्ख्यमात्रप्राप्ती नैवमः ॥

ब्रह्म-अभिनिर्वाण-अर्ध-संस्कारमात्र प्राप्ती । =अविषयक वा अपूर्ण (=अन-अभिनिर्वाण) पदार्थ को संस्कारमात्र प्राप्त करने वाली

नैगमः ।
नैगमन्य है अर्थात् संसार में किन्ने द्रव्य है वे अपनी दृढभाविम्यत

(१) गन्धर्वः प्रथमगणके प्राप्तुं 'नि' क्यसर्गं और अर्थ (=अ) प्रत्यय छमाँ पर निगम (शब्द) बनायाता है। पहाँ निगम (शब्द) का अर्थ संकल्प है जैसे— "संकल्पो निमित्तस्तत्र भवोऽयं तत्प्रयोगः" इकोनै वाचिक इकोनै १८ पुष्ट ३६० एक संकल्प मानस्य प्राज्ञको नैमिषो भवा (= वहाँ फ्याँ का संकल्पनात्र का प्रमाण करने बाका नेमम बप है) तत्कार्यं इकोनै वाचिक इकोनै १७ । निगम शब्दसे कुच्छ अर्थमें बहुत प्रत्यय करते पर अथवा निगम शब्द से अवधार में बहुत प्रत्यय करते पर नेमम शब्द की स्थिति हुई है। "निगमश्चास्त्वस्तिचित्ति निमित्तमात्राह वा नियमः" = निगाध्यष्टि आसिम्ब हवि वा निगात्म मात्रं नियमः = (पदायं) किसमें प्राप्त हो सो निगम है अथवा जो प्राप्त होना चाह है सो निगम है ॥ "निगमे कुच्छो मवा वा मैगाभा" (एक १०) नियमे कुच्छो नेमम वा नियमे सबो नियमः = निगम (संकल्प) में (जो) कुच्छ हो सो नेमम है वा निगम में होय सो नेमम है अतः संकल्पमें जो कुच्छ हो अथवा जो संकल्प में होने बाका हो वह नेमम है । ऐसा नेमम शब्द का अर्थ है ।

“अर्थ संकल्प मातृगर्भो भैरवः” (= एकार्थ को संकल्पमात्र प्रत्यक्ष करने वाला वा विषय करने वाला है सो भैरव अर्थ एव वार्तिकप्रसू ३५ । ^{११} भैरव मन्त्रकीति निगमो विकल्पस्तत्र भवो भैरवः” = भैरव (= तैरव = त-वर्क) (एकार्थ निगम) प्रसू हों सो निगम अर्थात् विकल्प है वहाँ (विकल्प वा निगम में) प्रसूति (= भव) सा भैरव है ॥ (अन्वयक संशय में गर्भित आन्वय पदसि प्रसू १७३) । विकल्प = संकल्प के अर्थ में भी वहाँ हो सक्ता है । विकल्प = विविधकथना ॥ ऐक्यो वेद कोस प्रसू ६६८, ७४५ ॥ अर्थात् भैरव की परिभाषाये जो एव वार्तिक स्मरण वार्तिक, आकाशपद्मसि के ही हैं वे एकार्थ वार्तिक हैं । पुष्पावयव स्वातीकी परिभाषामें ‘अनभिनिर्मुक्त’ अर्थ अर्थिक है सो एव भवितुं अर्थ परिभाषामें से समग्र मित्वा हुआ है अब प्रश्न यह है कि ‘अनभिनिर्मुक्त’ का परिभाषा पर क्या प्रभाव है ॥ (उत्तर) सीमा बन्ध होने से भैरव-अर्थ के वर्तमानत्व-अर्थ और भविष्यत्त्व-अर्थों पर से दो को गर्भित करने से मुक्तकालीन का मेव मुक्तकाल है क्योंकि अन्य अन्वयिका और द्वितीयानुवाय तत्कार्य एवकारिक ज्ञाते आकाशपद्मसि इत्यादि अन्योर्भिः भैरव-अर्थ के मुक्तकाल भैरव, वर्तमानकाल भैरव और भवौकाल भैरव तीन भेद कहे हैं अब इन तीनों में से दो को यह विवक्ष्य है कि तत्कार्यविरुद्ध में सीमा परिभाषा भैरवमपत्ति कोटों की अपेक्षा सीमावन्ध है ।

वर्तमान फाल की समस्त परांगों से अन्यत्र रूप (व्योवरूप) है अपनी किसी भी

() को अतीत स्थावर्त श्रमदानकतु काटोपण करे वा संकल्प करे सो भुतनैगुमलय है अथ "अथ वीणोत्सवतिने श्रीवर्धमानस्यामी मार्सं गतः" आत्र रिपान्दीचे दिन पर भी मन्वीर स्वामी मोक्ष कपाणे है यहां पर कपति मन्वानको मोक्ष गये हुये मन्वकों कंद स्ववीर होगये अथार् १९६३ सप्तक वीस गये परंतु संसारमें कस कपणार होया है बातः भैगमस्य की कपेमा येसा कथम कपित कपि कपय कीकड़ी सपममा आठा है ।

(८) नो बालश्रमी पराबों को वर्तमानस्थ संरक्षण करी सो मरिषियस नेगमन्स है केसे एक मनुष्य कउसे हनुकी प्रसिमा बगाना बाहया है बानी बह केबल हनुकी प्रसिमा बगानेकी योबलन कर प्या है यदि कउसे पूजा जाव्य है मांई बगान कर रहे हो ? सो कउर सिस्टता है कि मै एम् बगान यहा हूं पदयि बानी हनुकी प्रसिमा उपस्थित मांई है किन हनुकी प्रसिं बगानेका संरक्षण नौमी मै एक कउर मैकमन्स की कउसेका सीजवै है

(५) कर्तुमाप्यधसीपश्चिप्यधमिन्पक्षे वा वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते ” = कर्तुं वा अपाठवत् इत्यत्र निष्पन्न वस्तु निष्पन्नवत् कथ्यते = (वर्तमानमें पूर्ण या) वस्तु जात्यम करने पर कुछ पूर्ण मया कुछ पूर्ण नहीं हुआ (समाप्त) परिपूर्ण होने पड़ी है) इसको परिपूर्ण कहा जाय सो वर्तमान मैमन्त्र्य है (१) जैसे जोदना प्यवते ” = माता एक गया है) देको आकाश प्यवति ॥ अपांन् वर्तमान में जो कार्य करने के लिये हाथमें किया है सो पूर्ण मया तथा परिपूर्ण नहीं हुआ अत्यन्त निकट सम्मर्मे परितस्मात् होया वस्तुको परिपूर्ण रूप संकल्प कर लेया वर्तमान मैमन्त्र्य का विषय है अपना पों मी खर सकते है कि जो कार्य वर्तमान कालमें हाथमें लेलिया है यह होते होते देखी जायवया में जांच गया है कि वस्तुको व्यवहारमें क्यते है कि यह पूर्ण है यद्यपि वस्तुकी परिपूर्णतामें अल्पता मूलता अपवशेण है जैसे एक समाप्त यात्राको गां हुई है सबकी समितित रसोंमें में दाल मात हा रहा है कुछ मात देखे क्यूक है कि केवल एक दो पक्षमें यह अधिकसे भीचे उ रे जाने को ही है रसोंमेंया पुकारता है कि वस्तु माहयो जाको दाल मात निष्पन्न है अथ कुछ मी देखी या विद्यम्य नहीं है (वर्तित्तविक्रमे केवल सड़ती या बमका टाट काग से गुपिनी पर बहारने की देखी है योंही कि रसोंमेंया के सड़ती काग कर दाल का मातको अधिकसे व्यवसा किया) वस इतनेही में दाल मात पूर्वकया परिणत होनेसे और मैमन्त्र्यका विषय जाता रहा ॥ हमारी समझमें वर्तमान मैमन्त्र्य भी सुरुम बहिसे अधिकपर मैमन्त्र्य में ही परिमित हो जाती है यह दोना अद कष्ट वृत्ति की परिभाषा में अन्तर्गत होजाते है केवल भूतमैमन्त्र्य अन्तर्गत नहीं होती अथ वृत्तिकार की परिभाषा सीमाबद्ध है जैसा हमारी समझ में आया है सो लिखा ।

पटानिवासी समस्तस्मद्वारवर्षिकं पश्यन्ते नौर विमलपर्ययं सहितं सर्वाभिसिद्धिं कथयन्तः विदिमस्तुवाद् अन्त्याव १०५ ३३

कञ्चित्पुल्यं परिगृहीतपरशु गच्छन्तमवलोक्य कश्चित्पृच्छति किमर्थं भवानाच्छतीति । स आह प्रस्थमा-
नेतुमिति । नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः । तदभिनिर्वृत्तये संकल्पमात्रे प्रस्थव्यवहारः ॥ तथा एघोदका-
द्याहरणे व्याप्तिमात्रे कञ्चित्पृच्छति किं करोति भवानिति । स आह ओदन पचामीति । न तदोदनपर्यायः
सन्निहितः । तदर्थे व्यापारे स प्रयुज्यते ॥ एवमकारो लोकसव्यवहारः अनाभिनिर्वृत्तार्थं

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है तो अल्पपर्यायोंका, उन पर्यायों का
जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं कर्मभानकालमें संकल्प करे ऐसा ज्ञान तथा
वचन नैमग्नपर्ये ॥ इसमें यत्नैवम अन्तर्गत नहीं हुई । वेदो हिप्पनी ५०६, ४९९ । प्रष्ट

कञ्चित् ० पुल्यम् १ । परिगृहीत परशुम् १ ।

गच्छन्तम् १ । अवलोक्य ० कञ्चित् ० पृच्छति ० किम् ॥ आगे हुए देख कर कोई पूछता है किस-

अर्थम् ॥ भवान् १ । पृच्छति ० इति ० सा आह प्रस्थम् १ । अर्थे आप बातें हो । वह कहता है घान्यवापनेका लक्ष्यका परिमाण (=अवस्थ)

आनेदुम् इति ० ; नसौ १ । तदा ० प्रस्थपर्यायः १ ।

सन्निहितः १ । न ० ; तद्व-अभि-

निर्वृत्तये १ । संकल्पमात्रे १ ॥

प्रस्थव्यवहारः १ । तथा एकस्-उदक-आदि

आहारने १ ॥ व्याप्तिमात्रम् १ ॥ कञ्चित्पृच्छति ०

किम् ॥ करोति ० भवान् १ । इति ० सा १ । आह ओदनम् १ ॥ आप क्या करते हो । वह कहता है मातको

एवामि ० इति तदा ० ओदन पर्यायः १ । सन्निहितः १ । न ० पकताई । तद्व-पकताई । उस समय मातका पर्याय निकटस्थ नहीं है

तद्व-अर्थे १ । व्यापारे १ । सः १ । प्रयुज्यते ० एवम् ०

प्रकारः १ । लोक संन्यवहारः १ । अभिनिर्वृत्त-अर्थ-

पर्याय से कोई द्रव्य भिन्न नहीं है तो अल्पपर्यायोंका, उन पर्यायों का

जो अभी परिपूर्ण नहीं हुई हैं कर्मभानकालमें संकल्प करे ऐसा ज्ञान तथा

वचन नैमग्नपर्ये ॥ इसमें यत्नैवम अन्तर्गत नहीं हुई । वेदो हिप्पनी ५०६, ४९९ । प्रष्ट

=किसी मनुष्य को इत्यादि लिये हुये

=आगे हुए देख कर कोई पूछता है किस-

=अर्थे आप बातें हो । वह कहता है घान्यवापनेका लक्ष्यका परिमाण (=अवस्थ)

=उनेको (बाताई) । उस समय वह (=वदा) प्रस्थ पर्याय

=निकटस्थ नहीं है । उस (प्रस्थ) को भागों वा अल्पपर्याय में (=अभि)

=नित्यप्र करनेके लिये अर्थात् लक्ष्यी काटकर बनानेके लिये केवलमनकी इच्छामें

=वस्तुका उपयोग वा व्यवहार है । जैसे ही (=तथा) लक्ष्यी उस आदिक

=उतने में (=आहारक) लगेहुयेको कोई पूछता है

=उतने में (=आप क्या करते हो । वह कहता है मातको

=उस (मात) के लिये व्यवहार वा उपयोगमें वह (पुल्य) लगा हुआ है इसी (=एवम्)

=प्रकार संसारका व्यवहार है । अन्तर्गम्य (=अनाभिनिर्वृत्त) पर्याय को

पटानिवासी जगत्सहाय कर्तृकृत पदच्छेद और विमत्स्यार्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका श्रद्धालुः शिरी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३,
 संकल्पमात्रविषयो नैगमस्य गोचरः ॥१॥ स्वजात्यविरोधेनैकध्वमुपनीय पर्यायानाक्रान्तमेदानविशेषेण
 समस्तग्रहणात्संग्रहः ॥

संकल्पमात्रविषयः । नैगमस्य । गोचरः ।
 स्वजाति-अविरोधेन । एकध्वम् ॥१॥ समीप-
 पर्यायान् । अक्रान्तमेदान् । अविशेषेण ।
 समस्तग्रहणात् ॥१॥
 संग्रहः ।

=संकल्पमात्र ग्रहण करने वाला नैगम (नय) का विषय है
 =अपनी जातिके वस्तुओं को अविरोधकरि एक प्रकारपनाको प्राप्तकर
 =स्वार्थोंको वा प्राप्त होने वाले वेदोंको सामान्य रूपसे (=अविशेषेण)
 =समस्तको ग्रहण करनेके हेतुसे वा समस्तको विषय करनेके कारणसे
 =संग्रह (नय करी वाली) है अर्थात् अपनी जातिके सब स्वार्थोंको बिना किसी
 विरोधवाके (एक जातिके करने ही स्वार्थोंमें भी विरोध नहीं होगा पण्ड
 उसका निम्न जातिके स्वार्थों से विरोध होता है)

(१) बुद्धि नाम अनुकूल प्रवृत्ति एवं किन्हींकी सम्मति रखने वाला जो स्वाह्व है वही जाति है अर्थात् दिन स्वार्थोंकी स्वीति सम्मान होगी
 नाम की समान होम, अनुकूल प्रवृत्ति की समान होगी ऐसे पर्यायोंके समूहका नाम जाति है अपना जहाँ स्वल्पका अनुगम है (=प्रत्यय) है
 ब्रह्म प्रकार गोत्र स्वकर समस्त संसारकी गौर्धर्मि रहता है इस क्रिये वह जाति है वह जाति वेत्त अथेत्त जाति पर्याय स्वल्प है वेत्त जाति
 पदार्थों से निष्ठ नहीं । तथा वसकी प्रवृत्तिमें कारण गोत्र, घटल प्रत्यय-तत्त्व जाति अनेक शब्द है इस क्रिये जहाँ जो शब्द होगा वसीके
 अनुसार उसका नाम की निष्ठ होगा तथा प्रवृत्ति की वसी निष्ठ शब्द के अनुसार होगी ।
 (२) एक संस्कृत श्रुतिमें जो अविरोध शब्द है उसका अर्थ स्वल्पसे ग्रथिता है वा स्वल्पसे न प्रत्यय होना है ॥ अपनी जाति है जो स्वजाति
 है । नहीं किना है वा नहीं किना है जो अविरोध है, अपनी जातिसे नहीं किना (जो) है जो स्वजात्यविरोध है । अपनी जातिसे नहीं किने
 तथा एक प्रकारपनाका प्राप्त होगा है जो "स्वजात्यविरोधेनैकध्वमुपनीय" है । ऐसे सर्वार्थसिद्धिद्विष्टिमें जाते हुये "स्वजात्यविरोधेनैकध्वमुपनीय"
 वाक्यको निरुक्ति है । (=प्रवृत्ति यातु प्रत्यय जाति अथवा निष्ठ अर्थ को वह कर समाप्त के जहाँ जो जातकाम) जो निरुक्ति है ।
 (३) उत्पत्ति पञ्चवार्तिकमें संमत्तकका शब्द पठें कहा है "स्वजात्यविरोधेनैकध्वमुपनीय" शब्द पठें श्रुतिमें जो इति संमत्त
 नवी परिभाषा से अब इस परिभाषा को सुलभ करते हैं जो "पर्यायान् अक्रान्तमेदान् अविरोधेन" वाक्य पञ्चवार्तिक से अधिक पाते हैं जो पञ्च
 होमोंका खगमा पञ्चस्य है परंतु खगम्य दोनों परिभाषाओं का एकता है क्योंकि जातिक वाक्यका अर्थ "पर्यायोंको अविरोधकरि" देखा है ॥

पदानिवासी अगुरुस्सहाय वहीस्मृत परच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित स्वार्थसिद्धिका अन्वयः । अन्वयः १ अथ ३, सत् द्रव्यं घट इत्यादि । सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमितसत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां संग्रहः । द्रव्यमित्युक्तेऽपि ब्रवति गच्छति तांस्तान्पर्यायानित्युपलक्षिताना जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां संग्रहः । तथा घट इत्युक्तेऽपि घटशुच्य

एक रूपसे पर्यायोंको भेदोंको व्यक्तकर समस्त भेदोंका ग्रहण करने वाला ऐसा संग्रहनय है । सारांश यह है कि अपनी जाति को प्राप्त करने के पर्यायका भेद न करने के समस्तका समुदाय रूप ग्रहण करने वाला संग्रहनय है ॥

सत् ॥ इत्यम ॥ घटः । इत्यादि ॥ ॥

सत् ॥ इति० उक्ते ॥ सत् ॥ इति० वाग्विज्ञान-

अनुप्रवृत्तिलिङ्ग-

अनुमित-सत्ता-आधारभूतानाम् । सर्वेषाम् ॥

अविशेषेण ॥ संग्रहः ॥

=सत्, द्रव्य, घट इत्यादिक (संग्रहनयके उदाहरण) है ॥

=सत् ऐसा करने में सत् ऐसा वक्तव्य तथा वाग्विज्ञान

=अन्यपरूप किन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिङ्ग) वा ओइरूप किन्हसे (=अनुप्रवृत्तिलिङ्ग)

=अनुमान किये द्रव्ये (=अनुमित) सत्ताको आनपसूत सब (वस्तु) निका

=सामान्य रूपसे (=अविशेषेण) संग्रह है अर्थात् ऐसे सब वस्तुओं सत्ता रूप है

सात्यः-सत् ऐसा उच्चारण करने पर द्रव्य, पर्याय और उसके भेद प्रत्येक सब

सत्तासे अग्रिम है अतः एक सत्त्व धर्मसे उन सम्पत्ता ग्रहण होजाता है

=द्रव्य ऐसा करनेमें भी (जो) किन किन पर्यायोंको प्राप्त होता है (=ब्रवति)

=अवस्था (किन किन पर्यायोंको) पता है ऐसे उपलब्ध जीव और सब

=तथा उन (जीव अजीव) के भेद और प्रत्येकोंका संग्रह है अर्थात् द्रव्य करने में

गुण पर्यायों सहित जीव अजीव उनके भेद प्रत्येक सबको समस्त जैना चाहिये

=वैसेही (=तथा) घट (=घटा) ऐसा उच्चारण करने में भी घटाका ज्ञान तथा

द्रव्यम् ॥ इति उक्ते ॥ अपि तान्द्रव्यान् पर्यायान् ब्रवति ॥

गच्छति ॥ इति उपलक्षितानां । अवि-अजीव

सत् भेद-अवेदानाम् । संग्रहः ॥

तथा० घटः । इति० उक्ते ॥ अपि० घटयुद्धि

पटानिवासी अगुरुसहाय क्लीकृत पञ्चैष्ट्य और विपक्ष्यर्ष सहित सूर्योपसिद्धिका छन्दः। दिदी अनुवाद । अम्माय १ सूत्र ३३

भिधानानुगमलिङ्गानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवमप्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनय ॥२॥ संग्रहनयाक्षिप्तानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरण व्यवहार ॥ को विधि ॥ य. संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहार. प्रवर्तत इत्ययं विधिः ।

अभिधान अनुगमलिङ्ग-
 अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः ॥
 एवम् प्रकाशः ॥ अन्त्यः ॥ अयि ॥

संग्रहनयः ॥
 (२) संग्रहनय-प्रोक्षितानाम् ॥ अर्थानाम् ॥
 विधिपूर्वकम् ॥ व्यवहारम् ॥ व्यवहारः ॥
 कः ॥ विधिः ॥ य. संग्रह-गृहीताः ॥ अर्थः ॥ सूर्यः ॥ संग्रह-गृहीताः ॥ अर्थः ॥
 अनुपूर्व्येण ॥ एव ॥ व्यवहारः ॥ प्रवर्तते ॥
 इति ॥ अयम् ॥ विधिः ॥

अभिधान अङ्गणमलिना-

अनुमित-सकल-अर्थ-संप्रादः ॥

एवम् प्रकारः । अन्यः । अपि ।

संमार्जन्यः ॥

(२) संग्रहण-प्रशिक्षणम् । अर्थानाम् ।

विधिपूर्वकम् ॥॥ अक्षरभम् ॥॥ न्यवहारः ॥॥

६३३। विधिः। याः। सप्त-पुत्रिः। अर्थः।

बालुङ्गप ॥॥ एव च व्यासः ॥ प्रकृतो न

इति॥ अथम् ॥ निषिः ॥

(१) संसारो द्विषिषः ॥ सामान्य संसारी यथा स्वर्गणि ॥ प्रवृत्तिनि = संसृष्ट (नष्ट) वो प्रकार ॥ सामान्यवर्ग्यो भेदे संसृष्ट

परस्परव्यतिरोधाभिः । विशेष्यसंमिश्रोपया

सर्वबीजाः परस्परमिवोपनि'। अत्रापि पद्यतिसे छिपा है ।

(२) 'मृतो विधिपूर्वकमथारूपं ध्यात्वा' इस (संप्रत्यय) से (प्राण क्रिये द्वारा पार्यन्त) अनुक्रमसे (= विधिपूर्वक) मंद झरला (= अन्तराल)

सो व्यवहार है यह पारमार्थ व्यवहारजन्यता तथापि राजन्यायिकों से छिपाई और "इयुक्त समाजवाद्यासिद्धान्तमार्ग" का जारी लासपथी जो इन्कारे

(२) बापिपूर्वक = आनुपूर्वाकारे, आनुपूर्व्याकारे, आनुपूर्वकात् अर्थात् अगममुसारं, जगज्जुल्लभं बहुलमसे नमःपूर्वक ॥ सुखे वेदर मन्त्रपूर्वक

- आनुवंशिक दशा पक्षकन्द कादा पृष्ठ ७७ (४) जगहरण - एगहरण = सेव किया आना, हैसो पं० जगवंशको कृता सार्वविधि, बभगिका पृष्ठ ९२

पटानिवासी अगस्त्यसाय क्रीलकृत पदच्छेद और विमलस्यर्ष सहित सर्वांशसिद्धिका कृप्यः विंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३
तद्यथा-सर्वसंप्रहण यत्संगृहीत तस्मानपेक्षितविशेषं नाल संव्यवहारायेति व्यवहारगन्य आश्रीयते ।
यत्सत्तत्त्वद्रव्य गुणो वेति । द्रव्येणापि संप्रहणक्षिप्तन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्यः संव्यवहार इति जीव
द्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयत ।

तद्यथाः सर्वसंप्रहण १; सत्संगृहीतम् १; ॥
चः तत् १; ॥ अन्-अपेक्षितविशेषम् १; ॥
संव्यवहाराय १; नः कल्पम्
इति व्यवहारगन्यः १; आश्रीयते १
यत् १; ॥ सत् १; ॥ तत् १; ॥ द्रव्यम् १; ॥ वाः गुणः १; ॥ इति १; ॥
= सो (=वत्) ऐसे हैं (=यथा) कि सर्वका संप्रहणरि सत् प्रहण किया गया है
= और (=च) वह (=वत्) अर्थात् सत् विशेषकी विषया रहित है
= सो योग्य व्यवहार (प्रवर्तमान)के लिये समर्थ (=अर्ह) वा योग्य (=अर्ह) नहीं है
= ऐसे व्यवहारगन्य अवलम्बन कीर्ण है वा आशय कीवासी है (तब कहें हैं कि)
= सो सार (=सत्) है सो द्रव्य है और गुण है भावार्थ यह है कि कैसे (=वयथा)
संप्रहणनका विषय सत् पदार्थ है किन्तु सत् कल्पसे संसारका व्यवहार हो नहीं
सकता अतः जो सत् है वह द्रव्य और गुण है यह व्यवहार नयसे मानना पड़ता
है ऐसे सत् विषे भेद करें तब संसार का व्यवहार चलता है ॥

= (और यही) द्रव्य (वस्तु) करि भी संप्रहणयसे प्रहण किये हुये जीव अजीव के
विशेष-अन्-अपेक्षेण १; संव्यवहारः १; नः कल्पः १;
इति वसिष्ठव्यम् १; ॥ वाः अवलम्ब्यम् १; ॥ इति १;
व्यवहारः १; आश्रीयते १

पर भी संप्रहणनका विषय द्रव्य हुआ उसके जीव और अजीव भेद माने बिना
संसारका व्यवहार नहीं होसकता है इसलिये वह द्रव्य जीव और अजीव हैं यह व्यवहारसे कहना पड़ता है

(१) सर्वार्थ सिद्धि की दोनों आह्वयिणियों 'यत्संगृहीतम्' है अर्थ यह होगा कि सर्वका संप्रहणरि जो (सत्) प्रहण किया गया है परंतु सत् तत्कार्य
पञ्चार्थिक में है तथा अवयव्य रायप्रति और अन्य भाषा अनुवाक्यों ने 'यत्' के स्थानमें सत् मानकरि अनुवाद किया है इस लिये हमने 'सत्संगृहीत'
तत्' पाठ दिया है यद्यपि 'वत्' से भी यही अर्थ निकल सकता है जो सत् से परंतु हमने सुनिश्चि 'यत्संगृहीत' ही पाठ रक्खा है ॥

पटान्निवासी बगरसुहाय वकीलकृत पदच्छेद और निमग्न्यार्थ सहित स्मार्थसिद्धिका सम्प्रदायः हिंदी अनुवाद । अग्न्याय १ अथ ३३

मिधानानुगमालिगानुमितसकलार्थसंग्रहः । एवमप्रकारोऽन्योऽपि संग्रहनय ॥२॥ संग्रहनयाक्षिसानामर्थानां विधिपूर्वकप्रवहरणं व्यवहारः ॥ को विधिः । यः संग्रहगृहीतोऽर्थस्तदानुपूर्व्येणैव व्यवहार प्रवर्तत इत्ययं विधिः ।

अभिधान अनुगमलिग-

अनुमित-सकल-अर्थ-संग्रहः १।

एवमः प्रकारः १। अन्यः १। अपि ३

अनायके अन्वयकपचिन्तक (अनुगमलिग) वा बोद्धव्य चिन्तक (अनुप्रवृत्तिलिग)

अनुमान क्रियेदुये (अनुमित) सब वटरूप पदार्थका (अर्थ) संग्रह होता है

इसप्रकार अन्य भी (अर्थात् उपर्युक्त कहे हुये उपग्रहणोक्ति अतिरिक्त) और भी

(बैसे मठ, पट, गृह, इत्यादि एक भाषिकी सब वस्तुओं का कल्पन करने वाला)

संग्रह नय है ॥ (संग्रह नयके सामान्यसंग्रह विशेषसंग्रह दो भेद हैं (देखो निम्नटिप्पणी)

(२) संग्रहनय भासितानाम् १। अर्धानाम् १।

विधिरुक्म् १॥ केवलरक्षणम् ॥ व्यवहारः १।

का १। विधिः १। यः १। संग्रह-गृहीताः १। लब्धः १। कर्तुः १।

आनुपूर्व्यम् १। एव ३ व्यवहारः १। प्रवर्तते १।

इति ३ अयम् १। विधिः १।

अनुमानसार वा अनुक्रमसे वा विधिपूर्वक भेद करना सो व्यवहार (नय) है

क्या है ? यः संग्रह क्या है ? जो संग्रह (नय) द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ है उसका (अर्थ)

आनुपूर्व्यम् १। एव ३ व्यवहारः १। प्रवर्तते १।

येसी यह विधि (संग्रहनयसे ग्रहे पदार्थको आदिते लेकर भेद करने सो) है ॥

(१) संग्रहो विधिः । सामान्य संग्रहो यथा सर्वाणि १॥ इत्यादि = संग्रह (नय) दो प्रकार है । सामान्यसंग्रह जैसे सब वस्तु

परस्परविरोधीभिः । विशेष संग्रहो यथा

सर्वेजीवाः परस्परविरोधीभिः" आकाश पद्धतिसे किया है ।

(२) 'अतो विधिपूर्वकप्रवहरणं व्यवहारः" इस (संग्रहनय) से (ग्रहण क्रिये हुये पदार्थका) अनुक्रमसे (अनुप्रवृत्त) भेद करना (अवधारण) सो व्यवहार है यह परिभाषा व्यवहारणयका तात्पर्य राजवर्तिकमें से किया है और "उपर्युक्त संग्रहनयाक्षिसानामर्थानां" का बही तात्पर्यही जो इसका है

(३) विधिपूर्वक = आनुपूर्वीक, आनुपूर्वीक, आनुपूर्वक, आनुपूर्वक, आनुपूर्वक ॥ सुख से लेकर कमपूर्वक

= आनुपूर्व्यम् । ऐसी पञ्चमत्त कोषा गृह-३३) (४) व्यवहार = व्यवहार = भेद किया जाना, ऐसी १० अर्थव्यवहारी कृतान्वयार्थसिद्धि व्यवहिका गृह-३३

एतान्निवासी वयस्कस्त्रास्य वस्त्रिष्टकृत्य पश्चिमेय गौर विमलस्वर्य सङ्घित सर्वाथैसिद्धिका शब्दसङ्घः हिंदी अनुवाद । अध्याय २ अत्र ३३,

॥३॥ श्रुजु प्रगुणं सूत्रयति तन्त्रयत इति श्रुजुसूत्र । पूर्वान्तराधिकालविषयानतिशय्य वर्तमानकाल विषयानादत्ते अतीतानागतयोर्विनिश्चयानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च वर्तमान समयमात्र तद्विषयपर्यायमात्र ग्राह्योऽयमश्रुजुसूत्रः ॥

परिच्छेद परितो संग्रहणय और व्यवहारानय दोनों चले जाते हैं

श्रुजुः । श्रुजुसूत्रः । सूत्रयति ।

वस्तुतः । इति । श्रुजुसूत्रः ।

निकाशविषयान् । पूर्वान् । आन् ।

वतिश्रव्यः । वर्तमान-काल-विषयान् । आद्ये ।

अतीत-अनागतयोः । विनिश्च-

यानुत्पन्नत्वेन । व्यवहार-अभावात् । तच्च ।

वर्तमानम् । समयमात्रम् । तद्विषय

पर्यायमात्र-मात्रः । अयम् । श्रुजुसूत्रः ।

स्वीचे (=श्रुजु) और सरल (=प्रगुण) (विषय वा वस्तु) को सूचित करता है (सूत्रयति)

=नैकाता है (वस्तुतः) ऐसा श्रुजुसूत्रनय है (वस्तुतः भी आता है, देखो राजवा० पृ० ६६)

=स्वीन कालके विषय (अर्थात् पर्याय वा भाव) निम्न से अतीत-अनागत (विषयों) को

वतिश्रव्यः = वर्तमान-काल-विषयों का छोड़कर विद्यमान कालके विषयों को (श्रुजुसूत्रनय) ग्रहण करता है

=क्योंकि श्रुत और भविष्यत् (विषयों) को (यथासंख्य) विनाश होनेसे और

अनुत्पन्नत्वेन । व्यवहार-अभावात् । तच्च । तत्कालिक (=वस्तु-वैयक्योः पृ० ३०१)

=विद्यमान केवल एक समयवर्ती उस (श्रुजुसूत्रनय) का विषय

=पर्यायमात्रका ग्रहण करनेवाला है सो यह श्रुजुसूत्रनय है अर्थात् वस्तुकी पर्याय समय समय

में परिणमती (फटती) रहती है

सो एक सम्पत्ती पर्यायको अर्थपर्याय कहते हैं । अर्थपर्याय ही श्रुजुसूत्रनयका विषय है । श्रुजुसूत्रनय वर्तमान एक समयमात्र की पर्याय को करता है वा ग्रहण करता है अतीत अनागत सम्पत्ती पर्यायको ग्रहण नहीं करता है ॥

(१) श्रुजुः । —यह श्रुजुसूत्र निर्दिष्ट है (श्रुजु + ऊ) का किंग में विच्छन्न से ऊपर होता है जैसे आर्यो ॥ ॥ क्षिप्रता पुष्पिण

पुष्पिण किंग में यहाँ लाया है

(२) प्रगुण-यह निर्दिष्ट है व प्रगुणा । प्रगुणा । यहाँपर क्षिप्रता यत्कृत्यम् पुष्पिण अथवा मनुसर्ककिंगमें श्रुजु श्रुजुसूत्र आनता काक्षि

एतानिवासी अमरसंसार कभीसुखे क्षणिके और विमर्शस्यै सति सर्वोपसिद्धिका अन्धकारा हिरी अलुपादे । अन्धकार १ वृत्त ३३
जीवाजीवावधि संग्रहाक्षिसौ नालं संख्यवहारायेति प्रत्येक देवनारकादिर्घटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते । एवमयं
नयस्तावद्वर्तते यावत्युन्नांस्ति विभागः

जीव-अमीचौ ॥ अयिक

संग्रह-आधितौ ॥

संख्यवहाराय ॥ अन्तम् ॥ इति ॥ प्रत्येकम् ॥ ॥

देवनारकादिः ॥ ॥ चण्डादिः ॥ अन्तराले ॥

आमीचये ॥

—(और इस अवस्था में) जीव और अजीव भी

—जो संग्रहनयके विषयवृत्त हैं संग्रहनय गोचर हैं वा अग्रण संग्रहनयसे क्रियेगये हैं

—व्यवहार (प्रवर्तन) के लिये समर्थ नहीं है । प्रत्येक (जीव और अजीव)

—(यथा संख्य वा क्रमसे) देवनारकादिक तथा घट आदिक व्यवहारनय करि

—आमय क्रिये भये हैं अर्थात् यहाँ संग्रहनय का विषय जीव और अजीव माने गये हैं

परंतु जीवके देव, नारक, मनुष्य, तिर्यक, सिद्ध भेद माने बिना संसारका व्यवहार

नहीं चल सकता इसलिये लोक व्यवहाराक्षी सिद्धि के लिये जीव प्रत्येक देव नारक

आदि भेद व्यवहार से मानने पड़े हैं । और अजीव के घट, फट, मट, गृह इत्यादि

भेद माने बिनाभी संसार का व्यवहार नहीं हो सका है इसलिये अजीव के घट, फट, मट,

गृह आदि भेद व्यवहार नय से मानते हैं

—इसप्रकार यह व्यवहार नय तबतक चला जाता है

—कतक फिर विभाग नहीं हो (सक) वा है अर्थात् अनुसुत्र नय के विपरीत

एतदं भयम् ॥ नया ॥ शास्त्रं च स्वेति ॥

शास्त्रं च पुनः च न च अस्ति ॥ विभागा ॥ ॥ ३ ॥

(१) "अवधारोऽपि देवा । समान्यसंग्रह भेषुको व्यवहारो

यथा-द्रव्याणि जीवाजीवा । विरोधसंग्रह भेषुको व्यवहारो

यथा-जीवः संसारान्नो मुखपक्ष "

—व्यवहारनय भी दो प्रकार है सामान्य संग्रहसेवक व्यवहार-अवधार

सामान्य संग्रह नय की सेवा करने वाली व्यवहारजन्य

—ऐसे द्रव्य हैं सा जीवकय और अजीवकय हैं । विरोधसंग्रहसेवक व्यवहार

अर्थात् विरोधक संग्रहनयके भेद करने वाली व्यवहारजन्य

—दोहे जीव है सा संसारो और मुखपक्ष है ॥ (माहात्म्यव्यति से अनुसुत्र)

(२) नाय इत्यादि द्रव्य से तीन विशेष संग्रहजन्य हैं उनसे संग्रहजन्यक वस्तुका ग्रहण होताहै उनसे विषय मिल व्यवहार नहीं होसक्य क्योंकि वे तीनोही अति बाधक है व्यतिजात्यक नहीं है । इसलिये व्यवहारके लिये वर्तमान एवोय मात्र विशेष ही समर्थ है इसीका पता प्रचल है । इस टीकिले इस व्यवहार नयका वर्गीकृत विषय कलकल कलकल फिर किसी प्रकार का भी विभाग नहींसकै ॥

(क) महासूच नय का विषय प्रकट मी है परन्तु किस समय अथ - गति पहाय सेर नाथ द्वारा तुल रहा है उसी समय प्रस्य कष्टनुष नय का विषय हा नकता है परन्तु किस से घम्य तुल्यु... अथवा आगे आकर मुद्देग यह कष्टनुष नय का विषय नहीं हो नकता क्योंकि ओ तुल बुद्ध यह मृतकाल का विषय है ओ आगे मुलेय यह मविष्यत का विषय है भूतकाल भी पर्याय और मविष्यत का ही पर्याय महासूच नय का विषय है नहीं किन्तु वरमानकाल की यह समय बर्ती पर्याय ही उसका विषय है इसलिये भूतकाल वा मविष्यत काल की अपेक्षा एनिवाता प्रस्यर प्रस्यर नय का विषय होना असम्भव है ।

(ग) कुमभारका अभाव प्रमुख नयका विषय है क्योंकि कुमको बरसे वाला कुम १८ रु० आता है। इस समय कुमकार प्रत्यक्ष कुम-पट्टा न बनाकर नमकी निबिड़ छत्रक आदि पर्याय बना रहा है इस मसब वह प्रमुख नयका अथवा धोका बनाने वाला नहीं करता या न छत्र क्योंकि निबिड़ छत्रक आदि पर्यायोंके आगे आकर घट पर्याय बनने काछी है इसलिये अधिकतर कालका विषय है वर्तमान काल का नहीं पर चित्र नमय यह पड़ा बना रहा है उस मसब घट की उत्पत्ति उसके विशेष अवयवोंसे हो रही है और यही मुख्य वर्तमान काल प्रमुख नयका विषय है किन्तु उस समय कुमकार कुछ नहीं कर रहा है इसलिये प्रमुख नयका विषय कुमकार नहीं हा सख्य किन्तु कुमकार का अभाव इसका विषय है। तथा —

(घ) कोय पक्ष कहीं से आकर बैठे हैं किन्ती दूसरे ने पूछा — क्यों माता कहीं से आ रहे हैं ? उस समय उत्तरका यह कहना कि कहीं से नहीं आ रहा ई क्योंकि उस समय सर्वपा गमन किया का अभाव है इसलिये दुष्टवर्तमान की अयेरा 'तुन समय कहींसे नहीं आ रहा' यह कहसुन बयका पियर है ॥

(क) किसी बठ मन्त्री को देखाकर यह पूछना कि माँह ! इस समय तुम किस स्थान पर हो ? उस समय वर्तमान में वह सितले जिलेमें आरुघ्यके प्रदेशों में विपणन है उतने ही प्रवेशोका नाम लेकर कहे कि मैं यहाँ पर हूँ, किसी पुरी ग्राम घर आविष्क नाम गरी के, वह कुछ वर्तमान कामकी अपेक्षा इयन होनेसे अनुसुत्रण का विषय है। अथवा उस समय जिले आगवेशाकि जाकारये उत्सक रहना हो उतमे ही प्रमाण आत्य प्रदेशों का उत्तेज कर वह यह कहै कि मैं यहाँ पर हूँ वह ननुसुत्रण नयका विषय है क्योंकि उसकी स्थिति का कुछ वर्तमान समयमें पदी लाकार है, अन्य नहीं ।

पदानिवासी जगत्समसाधनकीलम्बुल पञ्चेद और विभक्त्यय सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशः विदीननुवाद अध्यास १ सूत्र ३३

ननु सत्यवद्वारलोपप्रमग इति चेन्नास्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शन क्रियते । सर्वनयसमूहसाध्यो हि लोक-
मैव्यवहार सर्वनयसमूहसाध्य

ननु ॥ संभववद्वारलोप-प्रमगः ।

= प्रम (= ननु) लोकव्यवहार के अभावका प्रमग आता है अर्थात् लोकमें अतीत अनागत का व्योपार भी प्रवर्तता है सो किस प्रकार चलैगा जो अस्तु सूत्रनय केवल सर्वमान पर्याय मात्र को ही ग्रहण करैगी

इति = चैत ॥ न ॥ = ऐसी श्रुता (= चैत-नेने पर उत्तर में कहते हैं कि) (यह बात) नहीं है

अस्य नयस्य विषयमात्र-प्रदर्शनम् ॥ क्रियते ॥

= इस (अस्तुसूत्रनय) का केवल विषय (= विषयमात्र) दिखाया गया है

हि ॥ लोकसंभववहार । सर्वनयसमूहसाध्यः ॥

= क्योंकि (= हि) लोकका व्यवहार वा कार्य सत्यनयोंके समूह द्वारा साधने योग्य है अर्थात् लोक व्यवहार में किस नयका जो कार्य है उसी नयको काममें लाना चाहिये

(१) अस्तुसूत्रो द्वितीयः सूत्रसमूहः यथा एक समय-

अवस्थायां पर्यायः प्रथमसूत्रो यथा

मनुष्यादि पर्यायस्त्वयुः प्रमाणकाल सिगन्धि

= अस्तुसूत्र (नय) दो प्रकार है सूत्र अस्तुसूत्रनय जैसे एक समय तक

= दूसरे वाली पर्याय और स्पृष्टअस्तुसूत्रनय जैसे

= मनुष्य आदि पर्याय है वे (= नय) आनुपरिमाणकाल तक रहती हैं ॥

आलाप पदस्थिते बहुभूत
(१) जिस प्रकार सूत्रका गिरना सरस होता है उसी प्रकार जो माल विषयका सूचित करता है उसका नाम अस्तुसूत्रनय है ॥ यह नय भिन्नकाल सेवर्ती विषयों में परमाण कालीन विषयोंका ग्रहण करता है क्योंकि जो पर्याय दोत सुकी अगता जो पर्याय असी उपस्थित नहीं हुई आगे आकर उपस्थित होगी उन दोनों परमाणोंके व्यवहार नहीं चाह सकता है इन्मिथे शुभ एक समय मात्र ही अस्तुसूत्र नयका विषय माना गया है ॥ अस्तुसूत्र नयके कुछ अर्थोंके उदाहरण ऐसे हैं कि (क) 'कलायो मेरुस्य' काहा अर्थय है यहाँ पर जिस पर्यायका काहा है उन पर्यायोंका रस निबाळ कर जिस समय सारासू औनय स्पृष्टय काहा बन जाता है वही शुभ वर्तमान कालोन एत समयवर्ती अस्तुसूत्रनयका विषय है किन्तु पावेले ही वरिष्ठे जिसका रस असी तक प्राप्त नहीं हुआ आगे आकर प्रगट होने वाला है अतः जो माफाए औनय नहीं है वह अस्तुसूत्रनयका विषय नहीं है क्योंकि वह वर्तमान एक समयवर्ती नहीं भविष्यत् काहाको लयेला रहता है ॥

प्रदानिवासी स्मरूपसाराय वकीलकृत फर्रुख्दे और विषयस्य संहित त्वार्थसिद्धिका श्रव्यशः हिंदी अनुवाद । अर्थाय १ सूत्र ३३

॥ ४ ॥ लिङ्गपंथ्यासाधनादिव्यभिचारिनिवृत्तिपर अन्दनय ॥ तत्र लिङ्गव्यभिचार — पुण्यस्तारका

नक्षत्रमिति ॥ सस्याव्यभिचारः — जलमागो वर्षा ऋतु

स्त्रि-संख्या-साधन-आदि-व्यभिचार-निवृत्ति-लिङ्ग, वचन (संख्या) साधनादि अर्थाय वा दोषोक्ति (व्यभिचार) दूर करनेमें (=निवृत्ति) पर ३। अन्दनयः १।

काळ, उपग्रह 'आदि व्यवहारनयसे माना हुआ दोष है उसके दूर करनेको यह अन्दनय

है। पुष्पिणी खोलिग और नपुंसक लिङ्गके मेदसे लिग तीन प्रकार हैं। एकवचन, द्विवचन और बहुवचनसे संख्या तीन प्रकार है ॥ साधनका अर्थ (एक वस्तु कोष्ट पृष्ठ ४१९ और पैय संस्कारांगल कोष्ट पृष्ठ ७७१ के अनुसार) करण वृत्तीया विभक्ति का है संतु यहाँ पर (तृतीय राजवार्तिक पृष्ठ ६७ और श्लोक वार्तिक पृष्ठ २७३ और त्रयार्थसिद्धि वृत्तिके अनुसार) प्रथम पुल्लि, मध्यम पुल्लि और उत्तम पुल्लि अथवा युष्मद् और अस्मद् शब्द साधन माने गये हैं। साधन व्यभिचार को पुल्लि व्यभिचार भी कहते हैं वा मानते हैं जैसा कि आगे जान (टिप्पणी संख्या दो पृष्ठ ५१८ से ५२१ तक में) सिद्ध करेंगे कारक संस्कृतमें कर्वा, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान, अधिहरण माने हैं संबंधको कारक नहीं माना है क्योंकि सत्ता और क्रियामें परस्पर यह किसी प्रकारके संबंधका प्रावुर्भाव नहीं करता है। श्रुतकाल, मविष्यकाल, वर्तमानकाल ये तीन काल हैं "उपग्रह का अर्थ परस्मैपद वा आत्मनेपद है परस्मैपदके स्थानमें आत्मनेपद कह देना और आत्मनेपदके स्थानमें परस्मैपद कह देना उपग्रह व्यभिचार है "उपग्रह" व्यभिचार "कहिये उसमें व्यभिचार है" १० पञ्चालालजी इन्हीं अनुवादित त्रयार्थ राजवार्तिक पृष्ठ २६४ और ५० गजधर लालजी अनुवादित त्रयार्थ राजवार्तिक मुद्रित पृष्ठ ४८० की टिप्पणी देखो।

ततः लिग व्यभिचारः १। पुष्पाः १। तारका १॥ अथर्व लिगवृण — (जैसे) पुष्प पुष्पिणी है उसको तारका खोलिग

नयनम् ३॥ इतिः संख्याव्यभिचारः १।

अन्तम् १। आपम् १॥ वर्षाः १॥ ऋतुः १।

—जलम एकवचन को आप् बहुवचन वर्षा बहुवचन को ऋतु एकवचन

(१) "स च द्विगुणसंख्यासाधनादि व्यभिचार तिष्ठ स पर" त्रयार्थरत्नमार्तिक पृष्ठ ९७ ॥ सः = अन्दनय । सार्थसिद्धि की परिभाषा से यह परिभाषा श्रव्यशः मिलती है (२) वगोः लोकोक्ति, तस्य बहुवचन है (३) आपम् — 'आणस्' शब्द प्रथमा बहुवचन आदिग अप शब्दका है। 'आप्' शब्द भा सप्त बहुवचन लोट लोकिग हाता है (पैय संस्कारांगल काय पृष्ठ ३५, पञ्चालाल काय पृष्ठ ३०) ॥ आपः खोः' स्वपरः ॥ 'तत्र आपः'

(क) पञ्चमान—आ रंघ रहा है और एक—ओ रण्डुका है यह ऋण्डुसुख नय का विषय है। यहाँ एकपमान और एकका अर्थ कर्णचित्। पञ्चमान और कर्णचित् एक यह स्पष्ट केन चक्षिणे। (अन्त) पञ्चमान यह वर्तमान पर्वोच और एक यह अतीत पर्वोच है, इन दोनों का एक स्थान में कैसे सम्मिलेय होया ? (उत्तर) चक्षिणे ही पक्षिणे का समकाल ओर विभाग नहीं है इस समय मातृका कुछ अद्य रचारी सीक्षा है वा नहीं रचा है नहीं सीक्षा है यदि नहीं सीक्षा है तब द्वितीयादि समयोंमें भी यह नहीं सीख सकता इत्युक्तिये एकका अभाव ही रहस्य हुआ। परन्तु यदि इन यह सीछका अवश्य है इत्युक्तिये वक्तव्यों में रखे हुये चर्चकोंमें सीछे और वे सीछे की अपेक्षा अन्तु नयका कर्णचित् पञ्चमान और कर्णचित् एक यह विषय वाचित नहीं यदि यद्यपि यह अपेक्षा न मानी जायगी और एकपमान अवस्था और एक अवस्था का सर्वथा विरोध माना जायगा तब पञ्चमान (मिथित) कर्णचित् पञ्चमान और एक इन प्रकारसे बिन्योक्त होने से वृत्तान्तसे समय भी तीन प्रकार का सम्भव होय परन्तु तीन सेवों का सर्वथा विरुद्ध मानने से एक समय में वे तीनों सेव नहीं रहस्य हैं इत्युक्तिये कर्णचित् पञ्चमान और कर्णचित् एकमें सर्वथा विरोध नहीं माना जासका। इत्युक्तिये यहाँ यह शत सम्मुखमी व द्विव। कदा रत्नार्थका यह अस्मियर हो कि जो चर्चित मन्त्रों प्रकार से सीछ गये हैं कर्षे भी कदा होय नहीं रहा है तब (रत्नार्थका) को अपेक्षा जो मन्त्रप्रकार रखे हुये चर्चित हो चक है। और जिस रंघने मन्त्रों का यह अभिप्राय हो कि यह कुछ सीछे और कुछ वे सीछे कर्णचित् पञ्चमान और कर्णचित् एक ऐसे पञ्चमान बान्को को ही एक कदाय बाह्य है उसकी अपेक्षा पञ्चमान ही एक है। क्योंकि यह पञ्चमाना का ही एक मात्रता सुखप्रद सम्मुखता है इत्युक्तिये यह शत विमित हो चुकी कि ऋण्डुसुख नयका पञ्चमान अर्थात् कर्णचित् पञ्चमान कर्णचित् एक मन्त्राहार्य विन्योक्त है तथा एक रंघ चुकने के पश्चात् एक समय नहीं पर्वोच भी ऋण्डुसुख नयका विषय है। येसेही विपक्षान हुन (कर्णचित् विषयमान कर्णचित् हुन) मुगयमान मुन (कर्णचित् मुगयमान कर्णचित् मुन) नयमान बह (कर्णचित् नयमान कर्णचित् बह) और सिम्पद सिम्पद (कर्णचित् सिम्पद सिम्पद सिम्पद) यदि भी ऋण्डुसुख नयके अन्वहार्य सम्मुखके चाहिये। अर्थात् जो किता जा रहा है और जो किता जा चुका है और जो भोगा जा रहा है और जो भोगा जा चुका है जो सिम्पद किता जा रहा है और जो सिम्पद किता जा चुका है ये सब ही ऋण्डुसुख नयके विषय पक्षों हैं क्योंकि इन सबों में भी कुछ चर्चकोंमें वर्तमान पर्वोचका ग्रहण होता है, कितने चर्चकों में वर्तमान पर्वोचका ग्रहण है उतने ही अर्थों में ऋण्डुसुख नयकी विवदता है इत्युक्तिये कर्णचित् नयके अवलम्बा है। यहाँ पर द्वितीयादि बातों का विरुद्ध और सामान्यता पञ्चमान एक व समान है तत्कार्यवाक्यार्थिक मुद्रित पृष्ठ १०० से अनुसन्धित ॥

पटानिवासी शरारुपसहाय वकीलकृत पक्षच्छेद और विपक्षपर्ये सहित म्वायिसिद्धिका लब्धका हिंदो अनुवाद । अध्याय १ पृष्ठ ३३
मात्मा वन वरणा नगरमिति ॥ कारकव्यभिचार सेना पर्वतमाधिवसति ॥ साधनव्यभिचार पुरुषव्यभिचारः

आश्राः । ननम् ॥॥

वरणाः । नगरम् ॥॥ इति०

कारकव्यभिचारः । सेनाः॥ पर्वतम् । अधिवसति=कारक व्यभिचार—जैसे सेना पर्वतको (=पर्वतमें वा पर्वत पर) बसे है

साधनव्यभिचारः । पुरुषव्यभिचारः ॥

=“साधनव्यभिचार तादृं पुरुषव्यभिचार भी कहिये” ॥ ५० अयं कवचिका पृष्ठ २०३

(=आश्रय) “किंवा बहने वा ‘आश्रय’ तहाँ आश्रय प्राप्त करीकिंगे और बहवचन में सदैव जाता है ॥ इस अष्ट शाब्द का एकवचन और

शिवचन बहो होते हैं इसकी सब विन कर्णा बहवचन में देय है कि आश्रयः (=आश्रय प्रणाम विमर्श)। अयः (प्रतिष्ठा विमर्श)। अग्निः

(१) कारक व्यभिचारका आश्रय बहवचन ताकाई कोक काकि पृष्ठ २०३ में इस प्रकार दिया है “तथा करोति क्रियते इति कारकयोः

कर्तृकमनोरेड्प्राप्तिक्रमयत एवाक्षियते । स एव करोति क्रिबहत् स एव क्रियते केनविचिदिति प्रतीयेदिति सर्ववि न अयः परीक्षायां । देवदत्ता

वत्ता करोति क्रियते” इति० कारकयोः॥ कर्तृकमनोरेड्प्राप्तिक्रमयत एवाक्षियते ॥”

अने । अयि० कर्मिणम् ॥॥ कर्तृकः एव० कःक्षियते”

सा॥० एव० करोति० क्रिबहत् सा एव० क्रियते० केनविचि० इति०

अतीते ॥॥ इति०

वह्॥॥ अयि० न० अयम् ॥॥ परीक्षयाम् ॥॥

देवदत्ताः । कर्तृ० करोति० इति० अय० अयि०

कर्तृ० कर्मयोः॥ देवदत्त करोतः । कर्मयोः यस्यात् ॥

१२) इस दिव्यादे इसको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारका और पुरुष व्यभिचारको एक ही मन्त्र है और ताकाय पात्रकारिक

=आश्रा (=आश्रय के वृक्ष) बहवचनको वनम् एकवचन (बहना और)

=वरणा (आकार का कोट) बहवचनको नगर एकवचन ऐसे (बहना)

कारकव्यभिचारः । सेनाः॥ पर्वतम् । अधिवसति=कारक व्यभिचार—जैसे सेना पर्वतको (=पर्वतमें वा पर्वत पर) बसे है

साधनव्यभिचारः । पुरुषव्यभिचारः ॥

=“साधनव्यभिचार तादृं पुरुषव्यभिचार भी कहिये” ॥ ५० अयं कवचिका पृष्ठ २०३

(=आश्रय) “किंवा बहने वा ‘आश्रय’ तहाँ आश्रय प्राप्त करीकिंगे और बहवचन में सदैव जाता है ॥ इस अष्ट शाब्द का एकवचन और

शिवचन बहो होते हैं इसकी सब विन कर्णा बहवचन में देय है कि आश्रयः (=आश्रय प्रणाम विमर्श)। अयः (प्रतिष्ठा विमर्श)। अग्निः

(१) कारक व्यभिचारका आश्रय बहवचन ताकाई कोक काकि पृष्ठ २०३ में इस प्रकार दिया है “तथा करोति क्रियते इति कारकयोः

कर्तृकमनोरेड्प्राप्तिक्रमयत एवाक्षियते । स एव करोति क्रिबहत् स एव क्रियते केनविचिदिति प्रतीयेदिति सर्ववि न अयः परीक्षायां । देवदत्ता

वत्ता करोति क्रियते” इति० कारकयोः॥ कर्तृकमनोरेड्प्राप्तिक्रमयत एवाक्षियते ॥”

अने । अयि० कर्मिणम् ॥॥ कर्तृकः एव० कःक्षियते”

सा॥० एव० करोति० क्रिबहत् सा एव० क्रियते० केनविचि० इति०

अतीते ॥॥ इति०

वह्॥॥ अयि० न० अयम् ॥॥ परीक्षयाम् ॥॥

देवदत्ताः । कर्तृ० करोति० इति० अय० अयि०

कर्तृ० कर्मयोः॥ देवदत्त करोतः । कर्मयोः यस्यात् ॥

१२) इस दिव्यादे इसको यह बात सिद्ध करनी है कि साधन व्यभिचारका और पुरुष व्यभिचारको एक ही मन्त्र है और ताकाय पात्रकारिक

(आश्रा कर्ता कर्मको एक मानकर कारक दोन्नों के लिये एक ही मन्त्र है और ताकाय पात्रकारिक

=“साधनव्यभिचार तादृं पुरुषव्यभिचार भी कहिये” ॥ ५० अयं कवचिका पृष्ठ २०३

(=आश्रय) “किंवा बहने वा ‘आश्रय’ तहाँ आश्रय प्राप्त करीकिंगे और बहवचन में सदैव जाता है ॥ इस अष्ट शाब्द का एकवचन और

शिवचन बहो होते हैं इसकी सब विन कर्णा बहवचन में देय है कि आश्रयः (=आश्रय प्रणाम विमर्श)। अयः (प्रतिष्ठा विमर्श)। अग्निः

(१) कारक व्यभिचारका आश्रय बहवचन ताकाई कोक काकि पृष्ठ २०३ में इस प्रकार दिया है “तथा करोति क्रियते इति कारकयोः

कर्तृकमनोरेड्प्राप्तिक्रमयत एवाक्षियते । स एव करोति क्रिबहत् स एव क्रियते केनविचिदिति प्रतीयेदिति सर्ववि न अयः परीक्षायां । देवदत्ता

पठानिवासी अगस्तसहाय इकलिकृत फरफेट और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धिका शब्दशाब्दिकी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३,

और मध्यम पुरुष के स्थान में उसम पुरुष लाना, अरम्भ (=मैं) के स्थान में शुभम्बु लाना और शुभम्बु (=तू) के स्थानमें अस्मत् लाना (जसा कि नीचे के दृष्टान्तसे ज्ञात है)

साधनकारकगमिचारः—(साधनकारकगमिचारः) ये सन्तो वाक्य, वाक्यशृङ्खला पूर्ण कर देने में अर्थात् साधनगमिचारम कारक शब्द जोड़ने से और अग्रेक गमिचारमें साधन शब्द छाननेसे एक होजाते हैं । परन्तु उक्त उदाहरण (साधनकारक मध्यमसन्निधिमें तौ साधनकारक गमिचारका कुछ भी अन्त नहीं है । इसीरी समझमें साधनकारक गमिचारके दो अर्थ हैं () साधन (वृत्ती ग करण) कारक द्वारा आ दण उत्पन्न हो सा साधन गमिचार है अर्थात् अन्य कारकका प्रयोग होना हीका होता उसने स्थानमें करण कारक (=वृत्ती ग विमर्शिका) प्रयोग पोया जाता । () साधन कारकमें (क) शब्द अर्थात् करण कारक (=वृत्ती ग विमर्शिका) के स्थानमें अन्य कारकका प्रयोग पोया जाता सा साधनकारक गमिचार या करण कारक गमिचार हो सकता है ॥ स्मृतिप्रद इसीरी समझमें संख्या द्वारा प्रकृतित तत्साधनगमिचारिक अनुवाद पृष्ठ ३७८ के नीचे आ निम्न दिव्यनी शी है यह अस्मत्पदानोसे निकली है । सर्वार्थसिद्धिमें साधनगमिचारः (कारकगमिचारः) सेनागमनमध्यमसन्निधि । पुरुषगमिचारः यदि मध्य एवेन यास्वसि नहि यास्वसि यतस्ते रिष्टा अर्थात् साधनका अन्य कारक माना है और साधन गमिचार मना पक्षत म रहती है वह उदाहरण दिया है । पुरुषगमिचार एक निम्न गमिचार माना है और उसका यदि मध्य एवेनयादि उदाहरण दिया है ॥

सर्वार्थसिद्धिचि, तत्साधन गमिचारः, तत्साधन गमिचारः, अस्मत्पदानो पूर्य यचनिका और अथ प्रकाशिका में इस क्रमसे उक्त गमिचारोंके ज्ञान दिने है इसी क्रमसे उनको निम्न निम्न व्याख्या की है और क्रमानुसार ही उदाहरण दिये हैं इससे यह बात झरझरी है कि "कारकगमिचारः केअर्थमर्थमर्थमिति ॥" इस व्याख्या का स्थान "यदि मध्य एवेन यास्वसि न हि यास्वसि यातस्ते रिष्टमिति" के पक्षान्तर द्वारा चादिये और 'कारक-गमिचारः' द्वारा चादिये अर्थात् 'कारक गमिचारः-सेना पर्वतमर्थमिति ॥ साधनगमिचारः, पुरुषगमिचारः,—यदि मध्य एवेन यास्वसि न हि यास्वसि यातस्ते रिष्टमिति ॥ पक्षान्तरगमिचारः" इतने लेखके स्थानमें कारकगमिचारः—सेना पर्वतमर्थमिति" इस दृष्टान्त के स्थान पर करके पुनः येना पाठ द्वारा चादिये "साधन गमिचारः, पुरुषगमिचारः—यदि मध्य एवेन यास्वसि न हि यास्वसि यातस्ते रिष्टमिति ॥ कारकगमिचारः—सेना पर्वतमर्थमिति ॥ कारकगमिचारः, इत्यादि चर्चोक्त सन्निधिसिद्धिमें "अस्मत्पदानो मध्यम गमिचारः रिष्टमिति" एसी परिभाषा अन्वयव की शी है । इससे 'व्याप्ति' 'अस्मत्पदानो मध्यम गमिचारः' और अथमर्थमिति और अथमर्थमिति गमिचित है ॥

उक्त शब्दस्य को परिभाषा के क्रमानुसूल प्रथम सिंगव्यभिचार को उदाहरण सहित कहा पश्चात् संवाच्यभिचार को उदात्त सहित कहा तत्पश्चात् सापतन्यभिचार क्रमानुसूल अवश्य ही कहना चाहिये । यह बात किमती कम विवेक है कि सिंगव्यभिचार और संवाच्यभिचार को कबकर और सापतन्यभिचार को कबकर 'आदि' शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारोंमेंस कारकव्यभिचार आ महत्त्व परमा पश्चात् 'आदि' शब्द में अन्तर्गत कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को भी छोड़ कर फिर सापतन्यभिचार का कथन आरम्भ कर देना । आदि शब्द में अन्तर्गत व्यभिचारों को स्पष्ट करे हुये व्यभिचारों से जोड़े ही कहना पड़ता है क्योंकि सभ्य है कि आदि शब्द में कारक व्यभिचार कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार क बहिर्गत अथवा अन्य व्यभिचार भी सम्मिलित हों जैसा कि लताथी राजवार्तिक पृष्ठ १७ १८ में 'आदि' शब्द कर कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को जेन हुए 'यवमाद्ययोः व्यभिचारा अपुष्ठाः । (—येसे काल उपग्रह आदिक व्यभिचार अपुष्क हैं) कथन किया है । () उपर्युक्त वार्तिक के पृष्ठ १७ १८ में सिंगसम्बन्धा साधनार्थि वाक्य क पीछे क्रमसे सिंगव्यभिचार, संवाच्यभिचार सापतन्य व्यभिचार का कथन उदात्तों सहित किया है और 'आदि' शब्द में कालव्यभिचार और उपग्रहव्यभिचार को उदाहरण सहित निर्देश कर प्रकट किया है कि ऐस 'आदि' शब्द में और व्यभिचार भी हैं वे सर्व अपुष्क हैं । उदात्तश्लोकवार्तिक पृष्ठ २७२, २७३ में कालकारक सिंगसम्बन्धा सापतन्योपग्रहमेवादिशब्दों श्रुतीति शब्दों मध्य यह वाक्य देकर इसकी क्रम से शब्द नय की अपेक्षा से इन सबकथ कथन उदाहरणों और वितर्क सहित दिया है । यही क्रम लताथीराजवार्तिक के, दोनों अन्वयार्थों ने ग्रहण किया है ॥ प० गजाधरजी के २७० २७३ उक्त पृष्ठों का अनुवाद दिया है उसमें भी यही क्रम रक्खा है (देखो पृष्ठ ४८३ से ४८८ तक) ॥ प० अयबन्ध जी न बलिका पृष्ठ २०२ से २०५ तक में सिंगव्यभिचार संवाच्यभिचार, 'सापतन्यभिचार ताकू पुरुष व्यभिचार भी कहिये "कालव्यभिचार उपग्रहव्यभिचार कारक व्यभिचार इस क्रम से उक्त व्यभिचार देकर उनकी शब्दा उदाहरणों सहित अस्सेक किया है परन्तु उनसे कारकव्यभिचार का कथन छोड़ दिया है । पृष्ठ ४८० से प० अयबन्ध जी के लच्छ शब्द व्यभिचारों का उदाहरण सहित अस्सेक किया है परन्तु उनसे कारकव्यभिचार का कथन छोड़ दिया है । पृष्ठ ४८० से प० अयबन्ध जी के लच्छ शब्द व्यभिचारों के पीछे सापतन्यभिचार वाकू पुरुषव्यभिचार को संवाच्यभिचार और संवाच्यभिचार इत्यादिका । हमने पाठ ही सर्वार्थसिद्धिपुस्तिका शब्द कर दिया है परन्तु कारकव्यभिचार को संवाच्यभिचार और सापतन्यभिचार के (—पुरुष व्यभिचार के) मध्य में ही रक्खा है क्योंकि हमारे मिष्ठ कोई ऐसी प्राचीन प्रति नहीं है जिसके आधार पर हम 'कारकव्यभिचार को 'सापतन्य व्यभिचार (= पुरुष व्यभिचार) के पश्चात् रखें ॥ विचार में आया यही लिखा आगे पाठन महाद्वय गुल वृत्त सम्भार करें ॥

चला गया है ॥ भ्रीयुत श्रीधन्द्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ “एहि मन्ये (१) येन वास्यसि, न हि वास्यसि, यातस्ते पितेति” ॥ यह संस्कृत वाक्य इंदी में कहा गया है ॥ यह व्याकरण और व्याकरण और व्याकरण नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और लोक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और वह ठीक समझा जाता है परन्तु शुद्ध नय की प्रधानता से उक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अतएव दे दूषित है व्याकरणय और व्याकरण से वह भले-नी ठीक हो । यहाँ पर भी शुद्ध नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं ।

(१) इसका इस दिक्की में हम बात को सिद्ध करना है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से भी “एहि मन्ये येन वास्यसि न हि वास्यसि यातस्ते पितेति” यह वाक्य ठीक है और यदि शुद्ध नय के अनुकूल मन्ये” उक्तम पुरुष क स्थान में मन्येने मध्यम पुरुष कर दिया जावे और ‘वास्यसि मध्यम पुरुष के स्थान में ‘वास्यसि उक्तम पुरुष कर दिया जावे तो उक्त वाक्य का भीषा सारा साधारण अर्थ होजावेगा और उपहास का परिहास का प्रसंग जाता रहेगा परन्तु शुद्ध नय से जिसको हम यहाँ पर प्रमान मानते हैं उक्त वाक्य ठीक नहीं है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ भी सिद्ध क्यों न करता हो। प्रथम हम अष्टाध्यायी के सूत्र का उल्लेख करते हैं। प्रधान व मध्यापरदे मन्त्ये उक्तमः एवमथ” १।१।०९ ॥ — प्रहाते । ॥ यःमन्त्य-उपपदे १॥ यातोः । (सूत्र ८० से लिया है) मन्त्यः १। १।०९ वां सूत्र से लिया है) (मन्त्यि की) मन्त्योः, उक्तमः । एवमथ १० ॥

— और (= क) प्रहास का हसी (हर्ष) में अर्थात् जब किसी क्रिया के सम्बन्ध में किसी से प्रहास करने का अभिप्राय हो ।

मगोपपदे । यातोः । मन्त्यः । — मन्त्य-उपपद (मन्त्य यातु जिसके साथ हो येन) यातु से (= यातोः = येसी यातु के पीछे) मन्त्यम पश्य हो अर्थात् जिस यातु के साथ में मन्त्य (यातु) उपपन्न रूप में जाई हो तो वह प्रकृतिमूल वा विषय यातु यातु अथवा वह क्रियायोगक यातु मन्त्यम पुरुष में जाई जाती है ।

= और मन्त्य यातु से (= मन्त्योः) यह मन्त्यि की पचमी अयादान बिम्बिक पञ्चम्यम है) उक्तम पुरुष हो ।

= यह एक वचन भी (= व) हो व सारांश यह है कि जब किसी प्राणी से किसी क्रिया जिस जाना जाना जाने वाले जाना इत्यादि के सम्बन्ध में हसी करता हो और मन्त्य यातु उक्त विषयमूल क्रियाके पास जावे वा पछि जावे अथवा मन्त्यम बोला जाय तो इस क्रिया के पीछे मन्त्यम पुरुष का प्रत्यय आया आया और उक्तमन्त्य

मगपदेः । उक्तमः ।
एवमथ १० ॥

काटु के पञ्चाद प्रथम पुष्प का प्रलय काया आकाश, वह प्रलय एक बचन मी (=क) होया ॥ कैले—“एवं माये मांस्व मांस्वसे इति। नदि मोस्वसे, मुच्छ सोपतिपिभिः” इस कथनमें ‘पुच्छ’ काटु है जिसका अर्थ ‘मच्छन करना’ है इन ‘काया’ पिपा के संलय में किसी कमीसे परिदास वा इसी कला है और एक वाक्य में मय (मय = समझना, विचारविमलका य विकार है) काटु विपक्षित वा प्रकरजमें कार्य में ‘पुच्छ’ काटुसे गहिजे कार्य है, प्रथम बोली गई है, इसलिये इस ‘पुच्छ’ काटु के पञ्चाद सत्ये (=मुच्छ+सत्ये = मांस्व+सत्ये = मोक्ष+सत्ये = मोक्षसे) मांस्व पुच्छ का सत्य काय गवा है और ‘मय’ काटु जो वाक्य का उपपत्ति (=आयनाम, गौत्र, अनुग्री) है समके पीछे इ (=मय+य, विकार+इ = मयसे) उक्त पुच्छ एक बचन मय काया गवा है । बात यही इस सुषमा ओंका लो अर्थ और कायम है ॥ अब इसमें कहावत वह हुआ मान कीदिये कि एक इस पुच्छ के पाठो मात मय मी नहीं बना है और एक मय १२.९६ की मात काले की बहरी एक है परस्पर सममें बराबर मी दाया दठा है तो वह बुद्ध का पुच्छ हमी में करता है ए येत्या समझा है “मैं मात आकाश” ए मी कायमा वह मात मी मांसमो दाया का दिया गया” यहाँ मात और कथयि कुछ मी संयमाव न है न या येत्य समझा है और स्पष्टाही है ॥ यहाँ तब कि वह ईश्वर अर्थ वह एक ही संलय वाक्य का यौग्य तब एक हम शब्दके प्रतिपक्ष ‘मये’ काटुमें मयम पुच्छ के स्थानमें जो उक्त पुच्छ है और मोस्वसे उक्त पुच्छके स्थान में मयम पुच्छ है नगा रहने में यदि शब्दके अनुसार हम उक्त बराबर हो येत्या करके एवं मयसे आकाश मयसे इति। नदि मास्वसे, मुच्छ सोपतिपिभिः’ अर्थान् मयसे उक्त पुच्छके स्थान में मयसे मयम पुच्छ करते और मोस्वसे मयम पुच्छ के स्थान में मोस्वसे उक्त पुच्छ करते तो इसीका विन्य आता यौग्य और एक वाक्यका सीधा साधा स्यात् अर्थ हात्रिय वह अर्थ वह होमाका कि उक्त बराबरमैं अब इस पुच्छके यहाँ मात अर्थान्में हुआ था और मयमान उक्त मात का संलय सब वास्तविकमें मानये तो वह सची बात नगा किसी इसमें यह सत्य है कि येता ए समता है ‘मैं मात आकाश’ नहीं कायमा, वह (अतः तो) मयमान कायम है उक्त पुच्छ मयम प्रकरल यस भी है “प्रहात मय वापि मुच्छमयवेत्येकवच” अर्थान् मयसे (अर्थ) में मयवाच (मय) काटु जिसके वाक्य का पठनमें हा एते) काटु पुच्छ (मयम पुच्छ) हो और मय काटुसे मयमा (उक्त पुच्छ) हो और वह (असम्भू) एक वचन मी हा ।

पद्यानिवासी नगरपराशर्य पक्षीलकृत पदचन्द और विषयस्यार्थसहित सर्वांगसिद्धिका शम्भय्य हिंदी अनवाद । अध्याय १ सूत्र ३३

सखा गया है ॥ श्रियुक्तश्रीयन्त्र अनुवादित अष्टाध्यायी पृष्ठ २११ देखो ॥ “एहि मये (१) रयेन यास्यसि, न हि यास्यसि, पातस्ते विवेति” ॥ यह संस्कृत वाक्य हैसी में कहा गया है ॥ यह व्याकरण और व्यवहार नय दोनों के अनुकूल शुद्ध है और शोरक व्यवहार में ऐसा प्रयोग होता है और पाठ ठीक समझा जाता है परन्तु शब्द नय की प्रधानता से वक्त संस्कृत वाक्य का प्रयोग ठीक नहीं है, अयुक्त है दूषित है व्यवहारनय और व्याकरण से यह भले ही ठीक हो । यहाँ पर तो शब्द नय का प्रकरण है इस से हम उसको दूषित मानते हैं ।

(१) हमका इस दिलचस्पी में हम बात को सिद्ध करता है कि पाणिनीयकृत अष्टाध्यायी और जैनेन्द्र व्याकरण के भी अनुसार और व्यवहार नय से तो ‘एहि मये यास्यसि न हि यास्यसि पातस्ते विवेति’ यह वाक्य ठीक है और यदि शब्द नय के अनुकूल ‘मये’ उत्तम नय के स्थान में ‘मय्यत्’ मय्यत् मय्यत् पठन कर लिया जाये और यास्यसि मय्यत् पठन के स्थान में ‘यास्यसि’ उत्तम पुन्य कर दिया जाये तो उक्त वाक्य का सीधा साधा साधारण अर्थ होजायगा और उपहास या परिहास का प्रसंग आता रहेगा परन्तु शब्द नय से जिसका हम यहाँ पर प्रमाण मानते हैं वक्त वाक्य ठीक गहरी है व्याकरण और व्यवहार नय कुछ गो सिद्ध क्यों न करता होत प्रथम मय्य अष्टाध्यायी के सूत्र का उद्घाटन करते हैं । महात्मे न मयागपदे मय्यत्ते अस्माक एवमप्य” १५१०६ ॥ -- प्रह्लादे । वक्तव्य-उपपदे । ॥ पातो । (सूत्र ८० से लिया है) मय्यत्मा । ॥ १०५ वां सूत्र छे-विषा है (मय्यत्ति की) मय्यत्ते अस्माक एवमप्य” १५१०६ ॥ -- प्रह्लादे । वक्तव्य-उपपदे । ॥ पातो । (सूत्र ८० से लिया है) मय्यत्मा । ॥ मय्यत्ते । ॥ य *

-- और (-- य) मय्यत्ते या हारी (अर्थ) में अर्थात् अब किसी किया के सम्बन्ध में किसी से प्रमाण करने का क्रमिमाण हो ।

मयोपपदे । पातो । मय्यत्मा । ॥ -- मय्य-उपपद (मय्य पातु जिसके पाग हो येन) पातु से (-- पातो । ॥ पत्नी पातु ने गोछे) मय्यत्मा पुरुष हो अर्थात् जिस पातु के साथ में मय्य (पातु) उपपद रूप में आईं दो तो यह प्रकृतिमूल वा निगद्य शुभ पातु करपा यह निगद्योक्तक पातु मय्यत्मा पुरुष में आई जाती है ।

-- और मय्य पातु से (-- मय्यत्ते । पात मय्यत्ति की पद्यसी अष्टाध्यायन विवक्ति परकयकन है) उत्तम पुरुष हो । यह वक्तव्य मयी (-- य) हो ॥ सारोश यह है कि अब किसी प्राणी से किसी निवा अरे आभा आभा नले आभाइत्यादि के सम्बन्धों में हारी करना हो और मय्य पातु उक्त निगद्योक्त निवाके पाग रागे या पदिले आये अथवा अथवा बोला जाय तो इस निगद्य के नीचे मय्यत्मा पुरुष का प्रत्यय आता अथवा और उक्तमय्य मय्यत्ते । ॥ उत्तम । ॥ वक्तव्य-उपपदे । ॥ पातो । ॥ मय्यत्मा । ॥

कालव्यभिचारः—विषयभास्य पुत्रो जनिता । भावि-त्यभासीदिति ॥

कालव्यभिचारः । विश्वरत्नः ।

पुत्रः १। अस्य १। जनिता

कालव्यभिचारः (जन्म) समस्त लोक को जन्मने देखल । हे वा ज्ञान लिया हे ऐसा पुत्र इससे उत्पन्न होगा (=जनिता) अर्थात् यहाँ समस्त प्रमांडा वेष्ट हैना म विषय कालका कार्य है उसका मूलकालमें होना मान लिया गया है अतः यहाँ भविष्यकाल में होनेवाले कार्यके स्थानमें मूलकालमें हुआ कार्य कबहुना कालव्यभिचार है ॥

भावि-कृत्य ॥ आसीत् इति

दोहरार (=आप्ति) कार्य (=कृत्य) हुआ ऐसे यहाँ होनेवाले कार्य इतनावाक्य आगामी कालका वाचक है और आसीत् (=हुआ) यह वाक्य अतितकालका वाचक है इसलिये यहाँ अनागत कालमें वा आये होनेवाले कालमें भूतकालकी (प्रकाशक) विभक्ति वा क्रियाका प्रत्यय लगाया है (=भविष्यत्कालेऽतीतकालविभक्तिः) ॥

क्योंकि संसारमें हम एक प्रधातक वाक्यों द्वारा प्रचार वा व्यवहार देखते हैं इसलिये व्यवहारमये भी यदि मध्य रचने इत्यादि वाक्य हीक है । जब हम वाक्यवाक्यी प्रथाका मग्न कर और व्यवहारको गौर करने यह श्रुतिमाना पाहते हैं कि यदि मुझसे मध्यम पुत्रोंके स्थानमें भस्मसे उल्लस पुत्र बरसिवा आये और अस्मत् प्रथम पुत्रके स्थानमें पुत्र मध्यम पुत्र बरसिवा आये तो यह वाक्यमये हीक म हागा क्योंकि साफल्यसे यह है भी पक्षोंको एक माना आवेगा तो अहं यथासि त्वं कश्चिन् (मैं मीछा हूं तू मीछा है) यद्यपि मी छुमसे अस्मत् रूप साधनोंवा भवे है इसलिये यद्यपि मी एक भावता पक्षों के सिद्ध सिद्ध रूपसे जो वा प्रचार होते हैं वे न हो सकेंगे अतः साधन व्यभिचारके दूर करनेके लिये जो व्याकरणेति समाधान लिया है वह मनुष्य है (देखो तत्प्रायः सहीक वाक्यिक पुष्ट १०३)

(१) इस वाक्यमें विषयवाक्य को पुनः विवेचन हे इसके द्वारा भूतकाल प्रचार किया है और द्वितीय वाक्यमें आसीत् अनागतमयुक्त किया अतीतकाल प्रचार किया है ॥ इसी वाक्य एकद्वय प्रथमा विभक्ति एक एकम पुलिग है ॥

(२) जनिता—जन्म—अपम होगा, विचारिष्य आगम्येपरी अस्मत्क, सेट्ट पाहु है, जनन और ता छुट्ट मरिष्यत् माल प्रथम पुल्ल, एक बचन आगम्येपरी कियाका प्रत्यय संग्रहेसे जनिता (=उत्पन्न होगा) यह बना ॥ (३) आसीत्—अस्म अर्थात् द्वितीयाक, अस्मत्क यत्प्रेषरी, मद् पाहु 'हस्त' अर्थ में यहाँ माना है अनागतमयुक्त वाक्यकी क्रियामें 'अ' आगम आया फिर 'त्' प्रथम पुल्ल, एक बचन, उत्पन्न मूलकालका प्रवृत्तय प्रत्यय लगाते स (सम-अस्मत्-मर्-मन्) = आसीत् (=हुआ) बना ॥

विरमत्युपरमतीति ॥

‘स्या’ पाठ के उपरान्त यों से यहाँ ‘विरमति’ के अर्थ यह उतरता है या वह रहता है केवल यों सेते हैं । सप्त और अ उपसर्गोंके पहले उस ‘विरमति’ परस्मैपद का (अष्टादश्यायी १ ३ २२ वां सूत्र से) आसने पर होकर सम्यक्-विद्यते और न-विद्यते, सन्निवृत्ते और न-विद्यते दोनों रूप रूप से बन गये । ऐसे सप्त और अ दो उपसर्गों द्वारा परस्मैपद ‘स्या’ पाठ का आसने परी होकर एक पाठ व्यभिचरित (= नियत नियमसे युक्त) हो गया । अब इस को उपसर्ग व्यभिचार कहते हैं । ऐसे हो

विरमति ‘T’ उपरमति ‘T’ इति * = वह उतरता है (या नियम करता है) ॥ वह (इन्द्रियों के विषयों से) श्रुता है अर्थात् सम्यक् अथवा नया का आसने परी पाठ है उसमें अ विकल्प और वे आसनेपदी सर्वधान फल का अत्यन्त समाने से समते (= वह रहता है) बनता है परन्तु विचार उपसर्गाने से परस्मैपद हो जाता है ।

सन्निवृत्त अवतिष्ठेत् इत्यादि

= सन्निवृत्त (= बचन के अनुसार बने) अवतिष्ठते (= वह इन्द्रियों)

= उपमह (व्यभिचार) के अर्थ हैं । अतः एक उपसर्ग के स्थान में दूसरा सिद्धान्त उपसर्ग सामाजी उपसर्ग व्यभिचार है ऐसे दो अर्थ उपमह व्यभिचार के रूप ।

(१) विरमति उपरमति के अनुवाद के सम्बन्ध में और अन्य अन्य बातों के सम्बन्ध में भी हमारी वही समझोचना है जिसको कि हमने सन्निवृत्ते वतिष्ठते के सम्बन्ध में पृष्ठ ५२३, ५३० में भी है । विरमति उपरमति वाक्य शेषक वार्तिकमें हमको कहा पर नहीं मिले अतः ‘श्लोक वार्तिक’ का भी वतिष्ठते स्थान पर अवतिष्ठते कहना और विरमति अगह पर उपरमति कहना उपमह व्यभिचार मानते हैं । अस्या के राज्ञः पृष्ठ ५८० की यह टिप्पणी टीका नहीं है (देखो श्लोक का पृष्ठ २३३) जहाँ तथा स वतिष्ठते अवतिष्ठते इति ” यह उल्लेख है जिसका अनुवाद अनुगायक महाशय ने स्वयं पृष्ठ ४८३ पर “तथा सन्निवृत्त की अगह पर अवतिष्ठते कहना उपमह व्यभिचार है” देखा किया है ।

(२) रघुवीर्यापासिस्वनात्मनेपदेशपदः । व्याख्यारित्यो एव । उपपन्नः । अष्टादश्यायी प्रथमाध्याये तुनीयापादे ८३ ८४ एवं इति व्याभिचारपुनः । व्याख्यारित्यो एव । उपपन्नः । अष्टादश्यायी अनेन व्याकरणम् इति व्यभिचारसूत्रेऽपि । देववचनपरममिति ।

रघु-कीटायाम् इति अत आसनेपद-उपमह
वि-आह-परिचयः य उपपन्नः रमा
= रघु (अर्थात् प्रथमपद) का शब्द से कीटाय (अर्थात्) में यहाँ आसनेपद का व्याख्या होता है
= (उपपन्न) वि-आह-परिचयः य उपपन्नः रमा

पट्टानिवासी ब्राह्मणसमाय बन्दीसङ्घटन फरफेद और निपटसर्व संहित सर्वोपेक्षितिका सम्बन्ध विधी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३२

धातुधादि वयपाद (बर्ग पर) परस्मैपदका है । इस धातुका रूप बहुधा प्रयोगोंमें प्रथमपुरुष, एकवचन, परस्मैपद, वर्तमानकालकी क्रिया का 'ति' प्रत्यय जोड़कर विच्छति बन जाता है ॥

अष्टाध्यायी ३। १-३-२२ इति

व्यभिचार-सूत्रम् १॥

- = अष्टाध्यायी के अष्टाध्यायी प्रथम, पाठान्त, सूत्र बार्हस्पत्य से हो गये (यह)
- = व्यभिचाररूप सूत्र है अर्थात् एक नियत नियम को पकड़ने वाला सूत्र है आचार्य 'स्या' धातु से नियमकारि परस्मैपदका प्रयोग होता है उस नियम को इस सूत्र ने उक्त धातु के प्रथम सम्-अव-प्र-वि उपसर्ग साकार पकड़ दिया और अगले पद का प्रयोग नियुक्त किया ॥ (इसही प्रकार)
- = सम्-वि-अव-प्र-पूर्वक स्या धातु के पद आगने पद
- = द्वैतम् व्याकरण के प्रथम अध्याय द्वितीय पाद, एकवीसवाँ सूत्र से हो
- = येसे यह (मी) नियत नियम को पकड़ने वाला (= व्यभिचाररूप) सूत्र है

सम्-वि-अव-प्र-पूर्वक स्या ३ (आगने पदम्)

द्वैतम् व्याकरणम् १-१-२१

इति व्यभिचार-सूत्रम् ॥

(१) "संविच्छते प्रतिच्छते विच्छत्युदरमप्युत्पाद व्यभिचारः" (पञ्चमधिक पृष्ठ १२) = उपवाद व्यभिचारः संविच्छते प्रतिच्छते विच्छति बरही इसका बर्त (पं० पञ्चाभास दुनी के अनुसार पृष्ठ ११५ में येसे है कि मर संविच्छते की स्थान में प्रतिच्छते कहै तथा विरामति के स्थान में उपरमति कहै सो उपवाद कहिये उपसर्ग व्यभिचार है ॥ इस अनुवाद से हमका यह अर्थप्रमाण ज्ञान पड़ता है कि उपसर्ग जो क्रिया के साथ आगने में कोई मनुष्य जोड़ता है वा उगाता है वो कीच नहीं लगाता है अर्थात् उपसर्ग जाता है अर्थात् जहाँ सम् उपसर्ग जाता चाहिये वहाँ प्र उपसर्ग लगाता है और सम् धातु के साथ मी जहाँ वि उपसर्ग आना चाहिये वहाँ उप उपसर्ग जाता है येसे एक उपसर्ग के स्थान मनुष्यात्मक ने परस्मैपद और आगनेपद के सम्बन्ध में नहीं किया । आगे पाठान्तव्य विचारक ॥

इसी प्रकार 'संविच्छते मरविच्छते इति' (अष्टाध्यायीव्याकरण पृष्ठ २०३) का रूप का अनुवाद पं० गङ्गाधर जी ने पृष्ठ ५८० में यह किया है कि 'संविच्छते की जगह पर मरविच्छते कहना उपवाद व्यभिचार है ॥ 'अतिच्छेतावतिच्छेतेष्वप्युत्पादमेवमे' अष्टाध्यायीव्याकरण २-१-२१

पटानिवासी जगद्गुरुसहाय श्रीकल्लुत्त पञ्चोद और विमलपर्व साहित्य सर्वांगसिद्धि का मुख्यः द्वितीय अनुवाद । अध्याय २ पृष्ठ ३३,

अतः समान सिंग समान भवन समान साधनादि छन्दों का ही आपस में संबंध होता है । इस बातका शापक छन्दनय है

इस संबंधमें व० उपर्युक्त जी की पञ्चनिरुद्ध मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्व छेक शब्दशः ऐसे है "बहुरि कारकव्यभिचार
देवतपर्वतपिबसति" इहाँ देवत पर्वतके समीप बसे है चेत्ता आचार है, सो सप्तमी विमलपर्वत धारित्ये, जहाँ द्वितीया कही । ताँते कारकव्यभिचार
भया । वा प्रकार व्यवहारणय है ताहि अभ्यास माने है । आते अन्य कार्य का अन्य अर्थकारि संबंध होय बाही । जो अन्य अर्थका कण्ठसे संबंध
होग, वा प्रकृत पर होय ज्ञान पर्वत म्बल हाय जाय । ताँते किंसा किंसा आवि होय पैतारी भ्याय है । इहाँ कार्य कर्म कर्म । सोक विपे तथा शम्भ
निर्ले विरोध भावैय । ताँते कहिये, विराज आवे तो आवो, इहाँ तो पर्यायवक्य विचार एय है । जोपनी एनीके ह्मन् के अनुवाद तो है ना ही ।।
उपर के छेक में बाह्यरूपसे 'ताहि' शब्द कारकव्यभिचार का और संकेत करने वाला मानकर कइ सके है कि ताहि अर्थात् तिस कारक
व्यभिचार को सब कार्य हुआकि वा प्रकार व्यवहारणय है तिस (कारकव्यभिचार) को अभ्यास माने है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र
अर्थशास्त्रिणा पृष्ठ ८५ के इस वाक्य का कि "देखेरी उपरान्त व्यभिचारक व्यवहारणय अर्थात् माने है" हमारे समस्त रक्ते हैं और कहते हैं
कि व० उपर्युक्तजीने कारकव्यभिचार भानमें कहा है और व० सहायजीने उपरान्तव्यभिचारका वर्तन बतलाने किया है इसलिये व० उपर्युक्त जी ने
ताहि (= तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार किया है और अर्थशास्त्रिणा में उपरान्तव्यभिचार किया है इसलिये कोई संतर नहीं पड़ता है ।।
और पर नी कहते हैं कि भाग्य मी ठीक है इस हेतु स कि "कारक व्यभिचार का और उपरान्त व्यभिचार को" अर्थात् "सना पर्यन्तव्यभिचारि"
'न्यतिष्ठते प्रतिष्ठते' विमलपर्वत उपरमति इन वाक्यों को वाक्य बद्धता, व्यभिचार इतका नाम रखना व्यवहारणयके अनुकूल वा अपेक्षासे अभ्याय
है मनुक है और ऐसे ज्ञान व्यवहार में तो आवे ही है ।

(उपर) अर्थशास्त्रिणाके पृष्ठ ८५ में व्याय शब्दके स्थानमें अभ्याय शब्द अशुद्ध मुद्रित होगया है । सहायजी का शुद्ध पाठ ऐसे है कि
"बहुरि भाग्यन परीण परस्मैपद मया येखो उपरान्तव्यभिचारक व्यवहार भय व्यास माने है तथापि शब्दव्यक्ता पदों विषय है ।" इसका
सामर्थ्य यह है कि भाग्यने पद धातु में उपरान्त लग जाने से प्रथममें परस्मैपद धातु होजाती है और परस्मैपद धातुमें उपरान्त लग जाने से आत्मने
पदी (धातु) हो जाती है इसको व्याकरण, जोर प्रयोग व्यवहारणय ग्याग म्बन्ते हैं तो मी शब्दव्यक्ता पदों विषय है कि इन सब प्रयोगोंको
जा व्यवहार में प्रकटित है व्यवहारित या वृत्तित मान । अतः भाग्यका कथन ठीक नहीं है ।। उपर्युक्त कारकव्यभिचार और उपरान्तव्यभिचार
व्यवहारणय की अपेक्षासे मनुक ' अभ्याय रू' है भाग्यकी यह धारणा ठीक नहीं है बरन ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहार
परके अनुकूल है इससे व्यवहार बद्धता है परंतु ग्रन्थमय इसका वृत्तित मांगी है ।।"

एवम्प्रकार व्यवहारनयमन्याय्य मन्यते । अन्यार्थस्यार्थेन सम्यन्धाभावात् ।

परस्मैपदकारम् ३^१

व्यवहार नयम् ३^१ अन्यायम् ३^१ मन्यते ।

नय-अर्थस्य ३^१ अन्य प्रवत् ३^१ सम्यक्-प्रकारम् ३^१

[यह सिद्धि सिद्धि बाव है] ॥ यावत् एक स्रोत व्यभिचार और इय प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयों की समझता है उस नय की प्रत्येका से वेसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परन्तु अन्ध नय की प्रवृत्ता से वे प्रयोग ठीक नहीं है अन्ध नय उनको अभ्यास वा अनुकूल्य मानता है ॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बन्ध हो जाय तो पद का पद हो जाय पद का पद हो जाय वा पद हो जाय इत्यादि ।

[परस्मैपदम्]

अष्टाध्यायी प्रथम-अष्टाधे सुतोय पाठे ८।१८३

एति व्यभिचार सूत्रे

वि-भाक क एग । उ-वात् (एग परस्मैपदम्)

कैकेन्द्र व्याकरण प्रवृत्ताध्याये सुतोय पाठे । ३५

३५ । एति व्यभिचार सूत्रेऽपि

देव्यष्टम् उपरम्पदि

= इसप्रकार (अन्ध नय वा अन्ध मय वा अनुयायी वा अन्ध नयका मानने वाला),

= व्यवहारनयको अन्याय वा अनुचित वा न्यायवर्धित मानना है

नय-अर्थस्य ३^१ अन्य प्रवत् ३^१ सम्यक्-प्रकारम् ३^१ = क्योंकि विषय पदार्थ का पक्ष पदार्थ से संयोग जा मेला नहीं हो सकता है

[यह सिद्धि सिद्धि बाव है] ॥ यावत् एक स्रोत व्यभिचार और इय प्रकार के और भी व्यभिचारों को व्यवहारनयों की समझता है उस नय की प्रत्येका से वेसे प्रयोग किये जा सकते हैं व्याकरण भी उन्हीं प्रयोगों के अनुसार सिद्धि करता है परन्तु अन्ध नय की प्रवृत्ता से वे प्रयोग ठीक नहीं है अन्ध नय उनको अभ्यास वा अनुकूल्य मानता है ॥ क्योंकि यदि अन्य पदार्थ का अन्य पदार्थ के साथ सम्बन्ध हो जाय तो पद का पद हो जाय पद का पद हो जाय वा पद हो जाय इत्यादि ।

= परस्मैपद हो [८।१८३ सूत्रों में ७८ वां सूत्र से परस्मैपदम् अनुवर्तता है]

= अष्टाध्यायी के पहिले अध्याय में तीसरे पाठ में ८३ वां ८५ वां सूत्र है

= ऐसे दोनों सूत्र [= सूत्रों] व्यभिचार रूप हैं [= नियत नियम के विरोधक हैं]

= वि-भाक-परि (= क) रूप (उपसर्गों) पूर्वक रूप पाठ से परस्मैपद हो

= कैकेन्द्रव्याकरण के पहिले अध्यायके तीसरे पाठ में ३५ वां

= ३५ वां (सूत्र) हैं । ऐसे दोनों सूत्र भी (= सूत्रेऽपि) व्यभिचार रूप हैं ।

= देव्यष्टम के दृष्टता है अर्थात् देव्यष्टम के (विषयों से वा किसी ऐसी ही वस्तु से) टोकाता है । यहाँ परस्मैपद किया हेतु भाव में है । उपरमति के सङ्ग भयं देवी है । यह एक प्रकार का क्रिया का उपाहरण है जिसमें हेतुपीठक मययपिक् (इ का प्रभाव समझित हो ।

(१) इस "परम्प्रकार व्यवहारनयम् अन्याय्यं मन्यते" वाक्य का अर्थ स्पष्ट है परन्तु हमको यह दिख्यो इस किये जिसकी पड़ती है

कि सर्वार्थ सिद्धि के वितीय उत्सृजक के एकप्रकार व्यवहारनयं न्याय्यं मन्यते लौक पर सामाजिकता का, यद्यपि प्रमाणानुसि में 'परम्प्रकार व्यवहार नयमन्याय्य मन्यते' ऐसा पाठ वर्तमान है । परन्तु अष्टाध्यायी में पृष्ठ ३५ में इस वाक्य की यह बहानिका की है कि "या प्रकार व्यवहार नय है ताहि मान्याय मानि हि" = या प्रकार व्यवहारनय है (जिस व्यवहारनय है (जिस व्यवहारनय माने है (यह) कीन अन्याय मानि है ? (उत्तर) अन्धनय वा अन्धनय का अनुयायी प्राणी ।

एरानिवासी दगुरुप्रदाय पत्नीसकृत् सन्धेय और विमर्शपूर्ण सहित सर्वाधिकारिका सम्पत्ति हिंदी अनुवाद । अध्याय १ खन ३३,

अतः समान विंग समान पचन समान साधनादि श्रुतों का ही आपस में संबंध होता है । इस बातका शापक सम्बन्ध है

इस संबंधमें वं अथर्व जी की पञ्चमिमा मुद्रित पृष्ठ २०५, हस्तलिखित पृष्ठ ८५ का पूर्व छेक शब्दार्थ; येसे है "बहुवि कारकव्यभिचार देवार्थक्यम्बित्ति" इति दैवत पर्यवर्तक समीप येसे है येसा आचार है, सो स्वामी विमर्श आदि, यहाँ द्वितीया कही । ताँव कारकव्यभिचार मया । ना प्रकार एवधारण है ताँव अन्वय माने है । आँव अन्वय अर्थ का अन्व अर्थकारि संबंध हाय नहीं । आँव अर्थकारि अन्वय संबंध संबंध ही, ना अर्थकार पद होय अन्वय मूल्य हाय आण । ताँव अन्वय किं आदि होय वैलारी व्याप है । इहाँ कर्म कर्म । कोक विवि वृत्ता शास्त्र विवि विरोध आनेय । ताँव कर्म, विरोध आने नौ आने, इहाँ सो एवार्थक्य विना टवे है । नौपणी ऐसीके इत्य के अनुसार तो है नौ ही । अन्वय के छेक में बाह्यकार्य 'ताँव' शब्द कारकव्यभिचार को और संकेत करने काया मानकर कहा सके है कि ताँव अर्थकारि तिस कारक व्यभिचार को तब अर्थ हुआ कि या प्रकार व्यवहारनय है तिस (कारकव्यभिचार) को अन्वय माने है" इस अर्थके समर्थनमें हमारे एक मित्र अर्थकारिका पृष्ठ ८५ के इस वाक्य का कि "येसेही उपसर्ग व्यभिचारक व्यवहारनय अन्वय माने है" हमारे समस्त रखते हैं और कहते हैं कि वं उपसर्गकी कारकव्यभिचार अर्थ कदा है और वं सदाशुद्धिनि उपसर्गव्यभिचारका वर्जन अर्थमें किया है इसलिये वं अन्वय जी ने ताँव (= तिसको) का अर्थ कारकव्यभिचार किया है और अर्थप्रकाशना में उपसर्गव्यभिचार किया है इससे कोई संतर नहीं पड़ता है । और यह भी कहते हैं कि माघ भी टीक है इस हेतु स कि 'कारक व्यभिचार का और उपसर्ग व्यभिचार को' अर्थार्थ, 'सम पर्यवर्तक्यसति' 'अविच्छेद प्रविष्ट' विरचित उपसर्ग इति वाक्यों को बोलक्य कहना, व्यभिचार इनका नाम रखना व्यवहारनयके अनुकूल या अपेक्षसे अन्याय है अनुकूल है और येसे प्रमाण व्यवहार में आ जाते ही हैं ।

(उपर) अर्थप्रकाशिकके पृष्ठ ८५ में व्याप शब्दके स्थानमें अन्वय शब्द अनुद्ध मुद्रित होला है । सदाशुद्धि का शुद्ध पाठ येसे है कि "बहुवि भासन परीके परस्परव मया येसेही उपसर्गव्यभिचारक व्यवहार मय व्याप माने है तथापि शब्दनयका प्यी विस्म है ।" इसका स्थान्य यह है कि आसने पद पाठ में उपसर्ग मया आने से प्रमाणमें परस्परव पाठ होजाती है और परस्परव पाठ में उपसर्ग मया आने से आसने परी (पाठ) हो जाती है इनको शब्दार्थ, लोक प्रमाण, व्यवहारनय शब्द मानने हैं तो भी शब्दनयका प्यी विस्म है कि इन सब प्रयोगोंको आ व्यवहार में प्रयोज्य है व्यभिचारित या मुद्रित माने । अतः आणका कथन टीक नहीं है । अर्थात् कारकव्यभिचार और उपसर्गव्यभिचार व्यवहारनय की अपेक्षासे अनुकूल । अन्वय कः है आवकी यह धारणा टीक नहीं है वरन् ये व्यभिचार व्याकरणके अनुकूल और व्यवहारनयके अनुकूल है इसके व्यवहार चकता है परन्तु शब्दनय इनको मुद्रित मानती है ।

पटानिवासी अगस्तसदाय फकीरकृत्य पदच्छेद और विमर्त्यार्थ सहित सर्वाधिकारिका शब्दशः हिंदी अनुवाद । अगस्त्य १ मृग ३३

लोकसमयविरोध इति चेत् । विरुध्यताम् । तत्त्वमिह भीमास्यते न भोज्यमानुरच्छानुवर्ति ।

लोकसमय-विरोधः । इति चेत् ॥

=अथ वा संसार और शास्त्रमें यदि (=चेत) ऐसा है तो विरोध आवेगा ? अर्थात् जो

प्रयोग व्यवहारनय और अ्याकरणके अनुकूल हैं परंतु श्रव्यनयसे वे वृणित हैं उनको यदि

दोषरूप मानोगे तो ऐसा मानना संसार और शास्त्रके विरुद्ध होगा । उधरमें कहते हैं कि—

=विरोध किया खात । इहां तौ=पर्यायस्वरूप (तत्त्वम्) विचार गयार्ह परीक्षा किया गयाई

=स्वोक्ति औपचि रोगी को इच्छा के अनुसार नहीं होती है

विरुध्यताम्। तत्त्वम् ॥॥ इत्येव भीमास्वरोट

न० नैपुण्यम् ॥॥ आहुर-रुक्मा-अनुवर्ति ॥॥

हैं बाधोंमें हमको 'प्रकार' 'व्याप' (जो कि व्याप्य ओ विरिक्तियों) है । प्रसिद्ध ही मिले बहुत सो दरोह को परंतु अनुसक्त किंगी नहीं मिले (देखो) — प्रकार असर को बर्ण १३ स्तोत्र १३३, जाते व्याप्य संस्कृत कोय पृष्ठ २१८, पदवत्त कोय पृष्ठ २४८, वेद्यसंस्कृतकोय ४५३, नीति = (वाय) न्याः समरकोय बर्ण १२ स्तोत्र १३, इसी सुद्धमें सात आठ स्थानों पर नय शब्द आया, पद्य० पृष्ठ २०८, वेद्य० पृष्ठ ३००) उक्त बाध्यमें प्रकार' व्यवहारनय (=व्यवहारनयको) दोहों शब्द विरोधिया विमर्शित वा कर्मकारकमें हैं ॥ मय विचारि कृत्यं गणका चानु आत्मने पत्नी है पू इस पद्यका विवरण है 'न' काम पुन्य एक कथन आत्मने पत्नी पदोमान किपका पोटक प्रत्यय है अतः मयत्ते बना अय मानता है बर्ह पर कर्त्तरि प्रयोग है । हम पत्नी तीन विशेषण हैं जिससे बाध्यका अपर विरुद्धता है अतः शब्दशः अर्थ हुआ कि "हम प्रसार (बहु) व्यवहारनयको अन्वय समती है ॥ अयम इसके कि हम विरोध अन्वयि के पाठ पर कुछ संशयान्विता करें हम बातको विचारना चाहते हैं कि सर्वाधिकारि वृत्तिके लक्ष्यके वार बाध्योक्ति अर्थका केसा धनिष्ठ संशय वा प्रसंग भिन्नता है "इस प्रकार (शब्दमय) व्यवहारनयको अन्वय मानता है" इसके अन्वय ही बाध्यमें इस प्रथम बाध्यका हेतु दिया है कि अय पदार्थका लभ्य पदार्थोक्ति सक्षय पत्नी होमक्ष है । तीसरे बाध्य में इस हेतु पर मय करविया कि यदि श्रव्यनय व्यवहारनयको अन्वय मानोगे तो कोय (व्यवहार) के विरोध और शास्त्र (=समय अर्थात् शब्दशः) के विरोध होगा क्योंकि इच्छा, संकल्प, साधन, कारण, फल और उपसर्गोंके संकल्पमें आ उदाहरण दिये हैं और उनको श्रव्यनयकी अपेक्षासे व्यभिचार माना है वे समस्त ही कोय व्यवहारकी अपेक्षासे ठीक हैं उन सबका आकर्म व्यवहार होता है प्रयोग होता है दोसचारकमें आते हैं और व्याकरणके नियमोंके अनुकूल हैं । इसके अन्तरमें कोया बाध्य भिन्न कि "विरुधताम्" कोय और शास्त्रके विरुद्ध होने दो कुछ भिन्नता नहीं । फिर इस अन्वयकी भी हेतु दिया कि इस स्थानमें लभ (पदार्थके पदार्थ स्वकय) का निर्णय है जो न विरुद्ध और शब्दशः अय वा अन्य धारकके विरुद्ध हुआ अये क्योंकि औपचि पाई कही दो-तीसरी दो-बचरी हो-कचरी इत्यादि हा रोग का दूर करने वाली द्रव्य की

एटानिवासी अगस्तसभाय क०ल०कृत पत्रच्छेद और निमग्न्यर्थ सहित सर्वाधिसिद्धिदा कुण्डला हिंदी अनुवाद । अप्पाय १ सूत्र ३३, पृ०

नानार्थसमाभिरुद्धानां समाभिरुद्धः ।

नाना-अर्थ-सममिरोहणात् ॥३॥ सममिच्छा ॥
=शुद्ध अभिमितं एक अर्थको प्राप्त होनेसे (=सममिरोहणात्) सममिच्छा दे

(१) सर्वभिक्षजपदी उपर्युक्त परिमाण तथा तत्सर्व्य राजधानिकमें दी हुई परिमाण बालोंका पाठ शब्दशः एक ही है।

सप्त-भूमि-रोडवाह-राइम (पुण्ड्रक पर्वत-पदस्थ (ग०) बड़ना, उममा (पञ्चसम्यक्) पुण्ड्र १६ में है यहाँपर मनुजक सिंगमें आया है ।

(२) इदमस्मिन्निरावर्णन—
 नानार्थसमिरोहणम् " इम वाक्य का अनुवाद " नानावर्णान्मममतीत्येकमर्थम् एव " ऐसा पाक्य है ।

(मम) 'ममत्वोत्पत्त्यादिति बहुपक्षरि' वेसा अनुवाद सममिरोहण्यात् शाक्यका हेस इ० । (उत्तर) पान्थिनीय ब्रह्मण्यायीके प्रथम अण्याय बहुयुपादके रक्षितिस्यै एष मुदा प्रमथः । अथावात्मनः प्रपत्ताजन्मि अन्वर्तिनि कोमोमर्गं कोय र्मर्गं इति भीष्मर्गोक्तस्य नमि है

●मूत्राशय, पातुडे कर्माका हो प्रसव (●अणुचिरायण) माइ बाइक अपादान सक्रम हो । अइके हिमवतः

मन्त्रा प्रमथि-द्विगुण्य (पर्वत, से गंगाजी निकलती है। के बीचें मिल गङ्गातस वार्तिक की दूर है उसके निमिचवे

[illegible]

सुषुप्तमृत्युञ्जय का (देको पृष्ठ ६१) अर्थार्थ यह सत्यसुषुप्त अवाञ्छल का जिसके स्वप्न में जो (जैसे स्वप्न) प्रोण होता है उसे आता है जबकि व्यपष्ट (अपृथक्, अलग) संसृष्ट

[illegible]

(आत्मनः प्रवेष्टुं शक्यं) ॥ आत्मनः प्रवेष्टुं शक्यं ॥ आत्मनः प्रवेष्टुं शक्यं ॥ आत्मनः प्रवेष्टुं शक्यं ॥

(मि) नारक प्रथम अवधारणमें 'प्रासादम्' कर्मकारके सुचित करनेमें उसी पद्य भासार का अपावात कारुण्य है किंते "नाभायांममतीत्यह-

(उपर पृथगाप्युक्तानि नादान्तमस्यिगच्छन्तः सन्त्येव
 भयभीतमिदं कथ्यते स्मः समासतः । 'विभक्त्युक्तानि समासिरोहण-
 व्युक्तानि कर्मकारणं नानासंख्येयं अप्युक्तानि वातिकं साम्प्र-
 दानाद्यन्मनाप्युक्तानि

हो सका है 'बलापनमर्मिच्छम्' समशील' स्वाभावमपि । उपर्युक्त बार्तिकके अनुसार इस प्रकार

अथवा यो यत्राभिरूढः स तत्र समेत्याभिमुल्येनारोहणात्ममभिरूढः । यथा क्व भवानास्ते । आत्मनीति ।
कुत । वस्तन्तरे व्रत्यभावात् ॥ यद्यन्यस्यान्यत्र वृत्ति स्यात्, ज्ञानादीना रूपादीना चाकांशे वृत्तिः स्यात् ॥ ६ ॥
येनात्मनो भूतस्तेनैवाप्यवसाययतीति एवम्भूतः ॥

अथवा यः यत्र अभिरूढः सः यत्र अभिमुल्येनः । अथवा यो जहां (अथ) अभिरूढ है वा प्राप्त है सो तहां प्रधानतासे
आरोहणात् ॥ समंति । (सम-यति)
समभिरूढः यथा क्व भवानास्ते ॥ जैसे कहां आप विष्टे हैं ? आत्मा में (विष्टा है)
इति कुतः ।
वस्तु-अन्तरे वृत्ति-अभावात् ॥

यदि अन्यस्य ॥ अन्वयः इति ॥ स्यात्
ज्ञानादीनाम् ॥ रूपादीनाम् ॥ च
आकांशे ॥ इति ॥ स्यात्
() येन ॥ आत्मना ॥ यत् ॥
येन ॥ एवम्भूतः ॥
इति ॥ एवम्भूतः ॥

(१) समेति = सस-यति 'य' अर्थात् इससेयन परस्परका घातु यहां आत्मा अर्थमें आया है । 'सि' 'एत' सबक प्रत्यये (देखा पृष्ठ ५२२, ५२३)
पदिले 'य' घातु में गुणसेवा होकर 'य' हो जाता है । 'य-मि-ति' प्रथम मुख्य एक वचन परस्परय पूर्वमा ॥ फलकां प्रथम आदेशे पति = वन आता है
अर्थमें 'सस' वचनका अर्थसे (सस-यति) समेति बन आता है ॥ समेति-यत् सप्त साध छेता है अर्थात् आत्मा आत्मामें पला है वस्तुतः विष्टता है
(२) एवम्भूतः इति की इसी पूर्वमूलककी परिभाषाको प्रथममा तात्पर्य प्रथमवर्गिके एवमितोमे एवम्भूतः की है (देखा पृष्ठ ५२३, ५२४)

इति नानार्थमभिरोगणात्समभिरुद्ध ॥ इन्दनादिन्द्र शक्नान्द्रक पृदरणात्परन्दर इत्येव सर्वत्र ॥

कदा आय कि एक अर्थ के प्रतिपादन करने वाले अनेक शब्द भी होते हैं इसलिये अर्थ एक ही रहता है परंतु शब्द भेद बही रहता है उसका उचार यह है कि यदि शब्द भेद होगा तो अर्थ भेद भी निश्चय से होगा क्योंकि कितने शब्द भेद हैं उतने ही उनके अर्थ हैं यह नियम है । उक्तच—“विचिय भिषा सदा विचिय भिषाणि होति परस्मया” शक्नान्द्रा शब्दाः शक्नान्द्रा परस्मया यवन्ति भित्तिने शब्द होते हैं उतने ही उनके उचित (=परम) अर्थ होते हैं ॥

इति नाना-अर्थ-समभिरोगणात् ॥ समभिरुद्धः ॥ =ऐसे नाना अर्थों से एक अर्थ को प्राप्त होने से (=समभिरोगणात्) समभिरुद्ध है (और अनेक अर्थों से एक विशेष गृहीत अर्थ को कहन वाला अथवा जानने वाला है सो समभिरुद्धनय है ॥ जैसे

इन्दनात् ॥ इन्द्रः ॥
=मम ऐश्वर्य्यम किंवा कृतन (के शेरु) से इन्द्र है अर्थात् जब परमैश्वर्य्यम क्रिया करे सब इन्द्र है ।

शक्ननात् ॥ शक्नः ॥ पृद-परनात् ॥

पुन्दराः ॥ इत्येवम् सर्वत्र ॥

(ऐसे समभिरुद्धनय इन अर्थोंसे एक ही अर्थ को ग्रहण करि प्रवर्तती है)

मातार्थ— यद्यपि इन्द्र शक्र पुरंदर आदि शब्द एक ही शब्दीपति-इन्द्र अर्थके कहने वाले हैं तथापि परमैश्वर्य्यका मोक्षा होनेसे इन्द्र सामर्थ्य्यवान होनेसे शक्र और पुर नगरादिका विदारण करनेसे पुरंदर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दोंके भिन्न भिन्न अर्थ हैं । इस रीतिसे पर्यायिक अनुसार इन्द्र शब्दके अनेक अर्थ रहते भी यह शब्द इन्द्र (शक्तीपति) अर्थ में ही है और इस शब्द अर्थ को ही समभिरुद्ध नय विषय करता है यहाँ पर यह बात समझलेनी चाहिये कि चाहे इन्द्र परमैश्वर्य्यका भोग करने वा न करे किसी भा अवस्थामें हो सब भी यह समभिरुद्ध नयका विषय है ।

पदा निपासी आगरूपसाधय वकीछ कृत पदच्छेद और विभक्त्यर्थ सहित सर्वार्थसिद्धि का शब्दार्थः हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३

न स्थितो न शयित इति ॥ अथवा येनात्मनायेन ज्ञानेन भूत परिणतस्तेनैवाध्यवसाययति ।
यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मैवेन्द्रोऽग्निमेति ॥

न * स्थितः न * शयितः इति *
अथवा *

येन आत्मना येन ज्ञानेन सूतः ।

परिणतः तेन एव * अध्यवसाययति ।

= न ऐसा हुआ वा न उतरा हुआ गो (बैल) है (और) न शयन करता हुआ गो (बैल) है
= अथवा (एकमूलनयकी एक परिभाषा में आये हुये शब्द)

= "यिनात्मना भूतः" (कहिये किसी पदार्थक) ज्ञानयुक्त (=ज्ञानेन) हुआ

= परिणत (आत्मनाको) जिस (ज्ञान) युक्त ही मिश्रण करता है वा प्रतीतिक्रिया है
(येसा एवम्भूत-नयवै) अपातुं एक परिभाषा में 'आत्मन्' शब्दका अर्थ पण्डित 'अभिपेय
क्रिया क्षिया' अथ 'ज्ञान' अर्थ क्षिया (आत्मना = ज्ञानेन) इसक्षिये आत्मा जिस ज्ञान
में जिस पदार्थ के ज्ञान से युक्त हो उसे वही करना एवम्भूतनयका विषय है ॥

यथा * इन्द्रज्ञानपरिणतः अग्निज्ञानपरिणतः

आत्मा एव * इन्द्रा च * अग्निः इति *

= जैसे इन्द्र (का आकाररूप) ज्ञान और अग्नि (का आकाररूप) ज्ञान परिणत
= आत्माही इन्द्र और अग्नि ऐसे (अमर्ते) है अर्थात् जैसे जिस ज्ञान में आत्मा इन्द्र पदार्थके
ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे इन्द्र कहेंगे वा जिस समय अग्नि पदार्थ के
ज्ञान से परिणत हो रहा है उसे अग्नि कह देंगे एवं भूत नयका विषय है ॥

येसे व्याकरणके रूपका अनुवाद वैल होना चाहिये वा मत होना चाहिये "न स्थितः न शयितः इस वाक्य में स्थितः शब्द और शयितः शब्द
पुष्टि में आये हैं इस से स्पष्ट है कि वैल से शरप्य है अतः "नौ" का अनुवाद गो (बैल) किया है यदि स्थितः के ज्ञान में 'स्थितः' होता तो
स्तीर्षित है और शयितः के ज्ञान में 'शयितः' स्तीर्षित होता तो अनुवाद गीं रूप का भाव (मत्त) होता ।

(१) इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते । अग्नि ज्ञान परिणत आत्मना अग्नि इत्येति एवम्भूतनयकम् ॥

इन्द्र ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र उच्यते । = इन्द्रा च (आकार रूप) ज्ञान परिणत आत्मा इन्द्र कहा जाता है

च * अग्निज्ञान परिणत आत्मा अग्निः * और अग्नि के ज्ञान परिणत से आत्मा अग्नि (कहा जाता) है

इति * एवम्भूतनयकम्
= येसा एवम्भूतनयका विषय (= समक) है ॥ अथ शीका यह है कि

एता निवासी आकणसराय बहीचकुव पक्ष्छेद और विषकल्यार्थ सरिव सर्वार्थसिद्धि का शब्दशः हिंदी अनुवाद। अध्याय १ सूत्र ३३

स्वाभिधेयक्रियापरिणतिज्ञो एव स शब्दो युक्तो नान्यदेति । यदेवेन्दति तदेवेन्द्रो
नाभिधेयको न पूजक इति । यदैव गच्छति तदैव गो ।

स्व-अभिधेय-क्रिया परिणतिज्ञः एव * = (जो शब्द) अपने अर्थ (=अभिधेय) क्रियासे जिस समय ही (=एव) परिणत हो
सः शब्दः युक्तः न * अन्यदा * इति *

यावार्थे जिस वस्तुको जिस नायकपरि करे उसकी अर्थ की क्रियाकर्म वह वस्तु
परिणत होती हो जो जिसकी काज उस वस्तुको उस नाम से करे अन्य काज वही
वस्तु अन्य परिणतिकर्म परिण में तो पूर्व तक नाम से उस वस्तुको न करे
= जैसे जब ही परदैश्वर्यकर्म क्रिया करता है तब ही इन्द्र है ।

यद् एव * इत्येति १ तद् एव * इन्द्रः ।
न * अभिधेयकः । न * पूजकः इति *

अर्थात् इन्द्र शब्द का अर्थ परमेश्वर है जिस समय वह परदैश्वर्य का योग
कर रहा हो उसी समय उसका इन्द्र कहना यह एवं भूतनयका विषय है किंतु जिसका केवल नाम मात्र इन्द्र है

(नाम निधेय) वा जहाँ पर किसी पदार्थमें इन्द्रको स्थापना है (स्थापना निधेय) वा जो इस समय इन्द्र नहीं आगे
भाकर इन्द्र जाने वाला है (=इव्य निधेय) वह एव भूतनयका विषय नहीं क्योंकि उपर्युक्ततीनों अवस्थाओंमें परदैश्वर्यका
योग नहीं हो रहा है । इसी प्रकार गो इत्यादि अन्य शब्दों में भी जिस जिस कारणसे उनका जिस जिस अर्थ क्रियाको
परिणयन हो रहा है उस उस कारणके उस उस परिणयनकी अवस्था से एवं भूतनयकी याचना कर लेनी चाहिये
यदि अर्थ क्रियाकी परिणति का दूसरा दूसरा काज होगा तो वे एवं भूतनयके विषय नहीं हो सकते (देखो नीचे गो का दृष्टान्त)

यद् एव * गच्छति तद् एव * गोः = अब (=यद्) ही (=एव) गमन करता है तब ही गो है (देख रे)

(१) गो-यस शब्द के बीच अर्थ से भी अधिक है यह पुष्टि ग और बरीसिंग में आता है (बरिचन्द्र एव २५० पैका) जो पुष्टि ग में
देव-दुग्ध (गुग्) के अर्थमें वही सिद्धा गया है और उस को प्रथमा विमर्दि एक बालन पुष्टिग नहीं है और गो जब गमन-गम्य के अर्थ में अतिग ग है
तब भी उसका प्रथमा विमर्दि एक बालन स्त्रीसिंगका रूप पुष्टि ग के समुदाय नहीं (ही) होता है इस लिये प्रथम यह बतलाव है कि पुष्टि में सिद्धादोपनी

हटा निपासी जगद्विषय पक्षीकृत पदच्छेद और विमन्त्र्य सहित सर्वाभिविद्धि का शब्दः हिंदी अनुवाद । अर्थात् १ सुप्र० ३३

भोगमन्त्रके पीछे संप्रत्यय कही गई है जो इसका विषय सर्व प्रत्यय आदिही है
इसके परस्पर नियंत्रणसत् आदि यह विषय नहीं है इसलिये भोगमन्त्रसे संप्रत्यय
अन्वय विषयक वा योग्यी विषय वाली है

= इस प्रकार यहाँ से आगे (= उचरत्वा) श्री स्वामीजी का जगलै योग्य है अर्थात्
संप्रत्ययके पक्षान् व्यवहार नय है सा इसका विषय संप्रत्ययके विषयका मेव है
तहाँ अमेव विषय रखने अतः संप्रत्ययसे व्यवहारनय अन्वय विषय वाली है
व्यवहारनय के पक्षान् अनुसूचि ही इसका विषय अनुसूचि ही अतीत अनागत पर्यायों रहगर् अतः व्यवहारनयसे

परमेश्वरचरः अविभोत्तम्

अनुसूचनय का योग्य विषय है ।

अनुसूचनय जिन संज्ञा साधन कारण उपपन्न आविष्कार मेव लकारके केवल पर्यन्तल पय,यको विषय करता है परन्तु शब्दनय उस
एक पर्यायमें भी जिन संज्ञा साधन कारण उपपन्न आविष्कारके मेवसे अर्थका मेव प्रकाशन करता है इसलिये अनुसूचनयकी अपेक्षासे
शब्दनयका अन्वय विषय है अर्थात् अनुसूचनय अथ पर्याय और शब्दपर्याय स्वयंको ही विषय करता है परन्तु शब्दनय केवल शब्द
पय,य को ही विषय करता है इसलिये अनुसूचनयका विषय शब्दनयसे अविच्छेद है ।

इसके पक्षान् समग्रिक नय कदापि है नो एक वस्तु के अनेक नाम हैं तिनका पय यशस्व कहते हैं जिन पयंय शब्दोंका एकही
अर्थ मानने वाली ती शब्द नय है परन्तु समग्रिकनय जिस शब्दको प्रत्यय करता है जिसकी अपेक्षयको कहता है क्योंकि उन पयाय
शब्दोंके दुनै दुनै अर्थ भी हैं । जैसे शब्द शब्द मुत्तल आविष्कार ये तीन शब्द एक ही शब्दीयति अपेक्षे कहते यत्ने हैं तथापि परमेश्वर्यता का
भाग होने से इन् सामर्थ्यवान् होनेसे शब्द और पुर भगर विचार करने से पुरवर इस प्रकार इन भिन्न भिन्न शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं
इस रीतिसे पयायों के अनुसूचन शब्द शब्दके अनेक अर्थ रहते भी वह नय इत्य (शब्दीयति) अर्थ में ही है और इस नय अर्थको ही

एव। निवासी नागरपदशय वही सङ्कट पक्षेद् और विभक्त्यर्थे सरित सर्वांगसिद्धि का शब्दशः सिद्धि अमुनाद । अथाय १ सूत्र ३३

उक्तो नैगमादयो नयो । उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वात्

नैगम - आक्षेपः नया ।

उक्ताः । उत्तराक्षर-सूक्ष्मविषयत्वात् ।

= नैगम, संग्रह, व्यपहार, शृङ्खला, शब्द, समर्थक, (१) एवमुत्तर (ये सात) नय
= अरेगये है ॥ आगे आगेकी (नय एक दूसरेसे) अन्य विषय (बाओ) होने से

टिप्पणी-यदि अग्नि ज्ञानसे परिपुष्ट आत्माको एवमुत्तरनयकी अपेक्षासे अग्नि कहा जायगा तो गहाना, रान्धना, पकाना आदि नितने धर्म अग्नि में हैं व सब आत्मा में भी मानने पढ़ने इस विषये आत्मा अग्नि नहीं कहा ना सङ्कटा १ (उत्तर) नाम बा सना आदि किस स्वरूप स करे जाते हैं वे उस से अधिक रहते हैं और जिस पदार्थ के जो जो धर्म होते हैं वे नियमित रूप से उसी में रहते हैं । आत्मा का जो अग्नि नाम है उसका आत्मा के साथ अयेद है परतु अग्नि के जो गहाना पकाना आदि धर्म हैं वे अग्नि में ही रहते हैं आत्मा में नहीं हो सकते इस विषये नो आगम प्राब अर्थात् साक्षात् अग्नि में रहने बाओ शहरूपना आगमप्राब अर्थात् औपचारिक अग्नि में नहीं हो सकता । इस रीतिसे यदि आत्मा का नाम अग्नि माना जायगा तो अग्नि दाहकत्व आदि धर्म आत्मा में मानने पढ़ेंगे यह जो ऊपर टीका की गई थी वह निर्वृत्त सिद्ध हो चुकी ।

(१) यहाँ पर 'एवमुत्तर इति' 'ऐसा होने' इस एवमुत्तरनय के अर्थकी प्रतीति या निषय शब्द से होती है इसलिये शब्द ही एवमुत्तरनय माना है कारणसे कार्यका व्यवहार है अर्थात् एवमुत्तरनय के अर्थकी प्रतीति में कारण शब्द है और कार्य एवं एवमुत्तरनय है

(१) नैगमात्संग्रहोऽन्यविषयः तन्मात्रादिरात् । नैगमस्तु प्राबामाविषयाद्दुविषयः । यथैव हि मल्ल सङ्कुलस्तथाऽभावे नैगमस्य सङ्कुलः । एवमुत्तरावि योऽयम् ॥

नैगमात् संग्रहः अन्यविषयः ।

तन्मात्र (= तद - मात्र) प्रादित्वात् ।

नैगम तु ० मात्र - अभाव विषयात् ।

बहु विषय

यथा ० एव ० हि ० मात्र सङ्कुलः ।

तथा ० अभावे नैगमस्य सङ्कुलः ।

= नैगम नयस संग्रहनय योही विषय बाओ है

= क्योंकि केवल उतने विषयकी अर्थात् केवल स्वल्पविषयकी (= तन्मात्र) बाओ है

= और (=तु) नैगमनय सत् (रूप) और असत् (रूप) प्रमाण करन (करतु) से

= आक्षेपिय बाओ या बहुत विषयक है । (बहुविषय-बहुत है विषय जिसका)

= क्योंकि (=हि) ऐसा ही सत् (रूप) में सङ्कुल है अर्थात् सत् रूप में मानना है

= ऐसा असत् (रूप) में नैगमनयका सङ्कुल वा मानना है आक्षेप ।

एता निपाताः अणकपसराय इकील्लुठ पइच्छेइ और विभक्त्यर्थं सहित सर्वाधिसिद्धिना शब्दशः हिंदी अनुवाद। अरथाय १ सूत्र ३३

त एते गुणप्रधानतया परस्परतन्त्रा सम्यग्दर्शनहेतवः पुरुषार्थक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपाय विनिवेश्यमानाः पटादिसंज्ञाः स्वतन्त्राश्चासमर्थाः ॥

पुरुषार्थे क्रिया-साधनसामर्थ्यात् इव ॥

स्तु आदयः यथा-उपाययुक्तसिनिवेश्यमानाः

पटादि संज्ञा ५॥

स्वतन्त्राः

असमर्थाः त एते

गुण प्रधानतया

परस्परतन्त्राः

सम्यग्दर्शन-हेतवः

=पुरुषार्थरूप क्रियाके साधनस्वरूप शक्तिके जैसे

=सुलके ताग्रादिक यथायोग्य उपायद्वारा नियन्त्रिके हुये वा पायेहुये

=बद्धादिक नाम पानेवाले होते हैं और (=ब)

=(सुलके) स्वतन्त्रतार अर्थात् परस्पर अपेक्षारहित न्यारे न्यारे तार

=(बद्धादि नाम पानेवाला) नहीं होसके हैं। (तैसे) वे इतने (नय)

=गौण मुख्यप्राप्ति वा प्रधान साधनरूपसे

=आपसमें सापेक्षरूप हुये वा परस्पर एकदूसरेके आधीन रूप हुये (आअय)

=सम्यग्दर्शन [के उत्पन्न होने] का कारण होते हैं

[और यदि वे एक नय परस्पर अपेक्षारहित हों तो सम्यक्त्वके उत्पत्ति का

कारण कदापि नहीं होसके भिन्नभिन्नसुलक तारोंके सङ्ग कार्यकारी नहीं होते]

मोक्षार्थ जिसप्रकार आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा करनेवाले सुलकतार जिस समय पुनर्भाते हैं उस समय उनकी पटादि संज्ञा हो जाती है और प्राप्तिपक्षोंके शीत निवारण उत्पन्नितारण आदि प्रयोजनीय कार्यों के सिद्ध करने में समर्थ होनाते हैं किन्तु बेही तार जब विभक्त रहते हैं तब किसी भी प्रयोजनीय कार्यको सिद्ध नहीं करसके वही प्रकार परस्पर सापेक्ष आपसमें एक दूसरेकी अपेक्षा रखनेवाले और 'कहीं' गौण तो कहीं प्रधानरूपसे विभक्तित ही नय सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण हैं। यदि वे [नय] परस्पर सापेक्ष न होने तो भिन्न भिन्न वा न्यारे न्यारे सुलके तारोंके समान कमी भी कार्यकारी न होने और सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके कारण भी नहीं होने ॥

(१) गुणः—काल विभक्त आदि शुद्धात्मन कर्तृत्वं वा इदं भाविते अर्थिक अर्थोंमें यद् गुण आता है यदोपर आसाम वा य य अर्थोंमें है (पटा० अर्थ १३३)
(२) निरपेक्षा अथा मिथ्या सापेक्षा यथा केऽप्य कृत् ऐवमत्र १०८) परस्पर विरोधकम मिथ्या है परस्पर सापेक्ष भव कार्यकारी हि न

एतन्निवाती अणुरसराय प्रकीर्ण इव पदच्छेद और विनक्तयं सविध सवायी सोदका श्रवणः हिंदी अनुवाद । अप्याय ? धृप ३३

हेतुवपरिणतिसम्भावत् शक्याऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ॥

देवत-परिणति-सम्भावत् ।
 शक्या ॥ आत्मना ॥ अस्तित्वम् ॥
 इति० उपन्यासस्य ॥
 साम्यम् ॥ एव ०

=कारण सका विशेष रूप परिणत के सबाव से
 =शक्ति (न्यासस्था) रूप (=आत्मना) करि अस्तित्व है-सांश-निरपेक्ष नयों में भी उन के
 नाय और ज्ञान के कारण से सम्यक्त्व के कारण उनके शक्तिरूप से अस्तित्व है
 =येसे ह्युक्तकी (कि जैसे पुरुषके उपागतसंस्तु अदि परस्पर मिलन पर पदादि
 वस्तुओंको उपजाते हैं वैसे ही उक्त साव नय परस्पर सापेक्ष होकर
 =सम्यक्त्व का उपजाती है । समानताही है (विषयवा वा अनपेक्षता नहीं है) ॥

“अथ तन्माविषु... न्यासस्य” वाक्य का तात्पर्य—बादीको इस शकापर

कि निरपेक्ष संतुओं में शक्ति की अर्पणा पटादि कार्य करनकी सामर्थ्य है इस खिये निरपेक्षवर्णु ब्रह्मादि कार्य स्वरूप करे जो सकृदेर
 (वैसे नयों की निरपेक्ष रूप में शक्ति नहीं है) इस के समाधानमें करते हैं कि निरपेक्ष नयोंको विषय भिन्न नाम और उन
 का न्यायान्वारो ज्ञान भी सम्यग्दर्शको भक्ति में कारण रूप शक्ति रक्ता ही है ॥ इस खिये निरपेक्ष नय भी सम्यक्त्वके कारण
 बन सकृदेर ही इस रीति से ह्युक्त और शर्णित शानों में समानता रहने से वस्तुओंके वक्त ब्रह्मरूपको विषय वा अनपेक्ष उदाहरण
 बराडाना असंगत है ॥

इयान रई कि यथार्थ में किसी अधिमाय विशेषको तय करते हैं भिन्नने अधिमाय जो सकृदेर खाने ही नय करे जा सकृदेर अथ
 अधिमायों के भेद अनन्त होने से नयबाद भी अनन्त है । वे स्पूल रूपसे परिणत खिये जाते हैं इसखिये संस्थाते नय है ॥

(१) जिस पदार्थका ज्ञान जाना है वह विषयही और जिसके द्वारा ज्ञाना जाता है वह विषयीही । निरूप विषय है नय विषयी ही । ज्ञान
 साधना-नय निरूप द्रव्याधिक नयके विषय यत्न है अर्थात् प्रहण खिये जातेहैं और माय निरूपे यथार्थविक नयका विषय यत्न है ॥ सममिच्छ नय
 और एवं यत्न के अन्तर वा मन्तेखिये देखा पृष्ठ१००॥ अस्तित्व ज्ञानगत शानों पर्याप्तकर यत्नमात्र पर्यायोंको प्रहणकरे जो अष्ट सूत्रमायों है । यह
 सूत्रमा अष्टुलन और स्थूलचतु सत्रसे भी भेद स्पष्ट है ॥ एक समय बातों पर्याय जो अवाक्याही और (जिसको अर्थ यथार्थ कहतेहैं) (यथाकि वस्तु समय
 समय परिवर्तित) सूत्रमा अष्टुलनयका विषयही समीर एक यथार्थके आरम्भसेअत तक प्रहण करलो एवम अष्टुलन है जैसे मनुष्यादि पर्यायोंसेसा रूपने
 अपने अपने परिमाण रहती है ॥ अष्टुलन नय और सममिच्छनय में भेद यह है कि अष्टुलनमाय यत्नमात्र उक्त यथार्थोंका ही प्रहण करता है ॥

एषा निवासी आरूपसहाय पक्षीह कुव पक्ष्येष्ट और विभक्त्यर्थ सहित सर्वाथिसिद्धिका शब्दश हिंदी अनुवाद । अध्याय १ सूत्र ३३

ज्ञानदर्शनयोस्तत्त्व । नयाना चैव लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य च प्रमाणत्व । मध्यायेऽस्मिन्निरूपितम् ॥ १ ॥ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वाथिसिद्धिसञ्ज्ञाया प्रथमोऽध्याय ॥

ज्ञानदर्शनयोः ॥ तत्त्वम् ॥ नयानाम् ॥ १ ॥ व०
 एष० लक्षणम् ॥ ज्ञानस्य ॥ १ ॥ व० प्रमाणत्वम् ॥ १ ॥
 अध्याये १ ॥ अस्मिन् १ ॥ निरूपितम् ॥ १ ॥ ॥ १ ॥
 शिव० सर्वाथिसिद्धिसञ्ज्ञायाम् ॥ १ ॥
 वृत्तार्थवृत्तौ १ ॥ मध्यमः १ ॥ अध्याय १ ॥

= ज्ञान और दर्शनका यथार्थ स्वरूप वा यथोक्तस्यो स्वरूप और (=च) नयोंका
 = ही (=एव) लक्षण, और (=च) (पात्र) ज्ञानके प्रमाणता
 (ज्ञान का ही प्रमाणता सिद्ध करना)
 = इस (मध्यम) अध्याय में बहण किया गया है ॥ दाहा, "दर्शन बाध यथार्थता
 नयलक्षण बरणाया ॥ ज्ञान पत्रकै पानता । कही आदि अध्याय 'अय ० २२१
 = इस प्रकार सर्वाथि सिद्धिनाम (ग्रन्थ) में
 = सर्वाथिके विवरण में पड़िका अध्याय (समाप्त वा पूर्ण) हुआ

परंतु सममिच्छनय उस शब्द से प्रगत होने वाले अर्थको ही प्रदत्त करता है जैसे अज्ञानजन्य उत्पन्न होने से मरण पर्यंत शब्द पर आधारित करने वाले शब्दी पत्रिका शब्द कहता है परंतु सममिच्छनय शब्द हीन देख्यमान होनेसे कोही शब्द कहता है शब्द जिस समय पूजा करता है उस समय अज्ञानजन्य से शब्द है परंतु सममिच्छ नय से शब्द नहीं है ॥

अब सग और परममूलनयो में यह अन्तर है कि अज्ञान सग नय वस्तुकी वज्रमान कालकी पर्याय को प्रदत्त करता है परंतु परममूलनय जिस कालमें जो किया करता हो वा किया कर रहा हो उसको उस काल में उसी नाम से प्रगत करता है वा कहता है जैसे अज्ञान सग नय उत्पन्न होने से मरण पर्यंत शब्द पर आधारित करने वाले शब्दी पत्रिका शब्द कहता है और वह किसी समय कोही भी क्षण कर रहा हो परंतु परममूलनय शब्दों के पत्रिका नाम देख्य सहित हो उसी प्रकृति में शब्द कहता है परंतु अमियेकानि करने दूरे का शब्द नहीं कहैगा इसी प्रकार जिस समय यह शक्तिरूप किया का करे उसी समय एक कहीगा अन्य समय में एक नहीं कहैगा । न शब्द कहीगा अब कि यह शक्ति रूप किया कर रहा हो ॥

() अज्ञान न-सममिच्छ और परममूल नयो में यह अन्तर है कि अज्ञान सग नय वस्तुकी एक समय मात्र पर्यय का अर्थया आत्मनसे अन्त तक एक पर्ययका प्राप्ति है सममिच्छनय मात्रा अर्थका उल्लेख करके जो एक ही क्षण में एक (मिस्त्र) हो उसका प्राप्ति है परंतु परममूलनय जो जिस समय जो किया कर रहा हो उसको उस कालमें उस किया ही के सर्वथा वा सयोग से प्रगत करता है जैसे गाय पर्याय लीकिये वा अज्ञानजन्य अयम से लेकर मरण पर्यंत उसका गाय समझता है । सममिच्छनय गाय शब्दसे पुणिलो मात्रा बहण शब्दाधि अनेक अर्थोंका शब्दकार जिसमें बहने को शक्ति हो ऐसे गाय (गाय) को अर्थात् वह कभीही हो बैठी हो साती हो आरती हो सब अवस्था में सममिच्छनयकी प्रकृति से यह गाय (गाय) ही है परंतु परममूलनय जिस समय वह बैठी रहते उस समय गाय कहीगी सोने बैठी हुई को गाय न कहीगी यदि उसमें बहने लियेकी शक्ति हो परममूलनय उस अवस्था में भी रहता है यदि भी परममूलनय उसका गाय कहीगा ॥

[illegible][illegible]

पुण्ड्र अमृत

शुद्ध

पुण्ड्र १० १६ (नोर) पुष्पिनी
५६१ १५ १३ अर्धपद, १॥ आरम्भकाः १, १०
५६२ ३, ८ देवमृतो (सप्त) नवाः
५६३ १५ २२ एवं मृतानवा परिकेरी,
५६४ अष्टमानातीय लक्ष्मन्
५६५ समीपक

५६६ १० १९ पारम्परा, मायेकमालं
५६७ ८, १० स्वपुत्रा बहमरेणी
५६८ ४ ४ होनुकन, मातः,
५६९ १६ २० पनाय अनाय, पनायक,
५७० १५ २१ बाली पत्नीभर्तृका
५७१ ५ ८, ६ न (नौ) वरा, पदार्थ
५७२ १० १७ अर्धदे, पाद,
५७३ १ ७ अर्धगत द्वार्धदेक,
५७४ १० कुत्रो

५७५ ६, १८ आरम्भम् मन्त्रित
५७६ ८, २१ मूर्धन्यम् मूर्धन्य
५७७ २० = आनुपूर्विक (देवो)
५७८ २१ नाप स्वायमा
५७९ ३, १९ विनटान् अनुसुमाः
५८० ३, सारम्भारम्भार्थकसमूह
सायः केतः,

५८१ २, १० आरम्भकित समानात्म,
५८२ ३ १७ अनु विग धर्मिकार

पुण्ड्र

अमृत

५८३ १२, २२ अर्यागन्ध कर्तुं-कर्मयोगः
५८४ ७, १६ वन प्रथम वसती है
५८५ १२ आनुमोका देसा कप बला
५८६ १२ मय-उपपदे १॥
५८७ ६ १७, ७ अलक साये मोक्ष, प्रहास
५८८ १७ अमवाकपुत्रमम्यतरस्मदेकवय
५८९ १४ २१ कदा आल-परिम्य

५९० ५ १७ १८ अयम उपरमसि
५९१ ३ १६, २१ ती-पराय, लाक, लोक
५९२ ३, ४ अनुवादि व्यवहारनय,
५९३ ५, ९ (पु०) ३ ३ ३
५९४ ७ अलक अलक, अयोमैस
५९५ १० १४ पयुक्त, अलक, यतायैत्वात्
५९६ ३, १६ वृत्त्यमात्र, वत्
५९७ २, ८ परकतिक्रमे परिक्रमे ।

५९८ ८, १७ २० पहिले रूप परिक्रमा
५९९ ३, १० वारपना, अग्नि
६०० १९, ३७ जाये रोति, ईश्वर्य
६०१ २० २१ लल देवाय १०८
६०२ २२ अति द्वितीया बन्धि में
अमृत कुर्यात् है

६०३ ३ १८ आर्ष अग्नि
६०४ १० १३, १५ लकरी व दार्शन अति
६०५ १३, १६, २१ अर्धकित, अतीत अल

शुद्ध

६०६ अर्यागन्ध, कर्तुं-कर्मयोगः
६०७ वन प्रथम, वसती है
६०८ आनुमोका देसे रूप बने
अमृतपदे १॥
६०९ अलक, मोक्षे मोक्षे प्रहासे
अमवाकपुत्रमम्यतरस्मदेकवय

६१० कदा आल-परिम्य
अयम उपरमसि
ती यथार्थ, लोक, लोक
अनुवादि, व्यवहारनय,
(पु०) ३२९, कुत्र
अलक अलक अयोमैस
पयुक्ते अलक गतायैत्वात्
अमवाकपुत्र पितृ

परकतिक्रमे, परिक्रमे
पहिले (पु० १३६) रूप परिक्रमात्
अवायना अग्नि
(गान्ध) आये रोति इत्यर्थः ।
अमृत, (देवोयम १०८)
अभिलेख मन्त्रिने मिला, अलक दोनो
पद लिखे गये हैं
आर्ष अग्नि ३१६ अग्नि
अलक है दार्शन अलक
अर्धकित अतीत अलक

